डॉ० रामनाथ शर्मा
डी० फिल० (प्रयाग), डी० लिट०, (मेरठ)
रीडर तथा अध्यक्ष
स्नातकोत्तर अध्ययन एवं अनुसंधान विभाग
मेरठ कॉलिज, मेरठ विश्वविद्यालय

तर्कशास्त्र
(LOGIC)

केदार नाथ राम नाथ
प्रकाशक मेरठ

डॉ० रामनाथ शर्मा
डी० फिल० (प्रयाग), डी० लिट०, (मेरठ)
रीडर तथा अध्यक्ष
स्नातकोत्तर अध्ययन एवं अनुसंधान विभाग
मेरठ कॉलिज, मेरठ विश्वविद्यालय

तर्कशास्त्र
(LOGIC)

केदार नाथ राम नाथ
प्रकाशक मेरठ

दर्शनशास्त्र में लेखक की रचनायें

१. समकालीन दर्शन
२. समकालीन भारतीय दर्शन
३. भारतीय दर्शन के मूल तत्व
४. नीतिशास्त्र की रूपरेखा
५. भारतीय नीतिशास्त्र
६ पाश्चात्य नीतिशास्त्र
७. पाश्चात्य दर्शन का समस्यात्मक विवेचन
८. पाश्चात्य दर्शन का ऐतिहासिक विवेचन
९ तर्कशास्त्र
१०. धर्म दर्शन
११. समाज दर्शन
१२. Philosophy of Shankaracharya
१३. Outlines of Ethics
१४. Indian Philosophy
१५. Philosophy of Sri Aurobindo
१६. History of Western Philosophy
१७ Philosophical Problems
१८. Nature of Self (Ed.)
१९. Parapsychology and Yoga (Ed.)
२०. Indian Psychology (Ed.)

तर्कशास्त्र

तृतीय संशोधित संस्करण १९७९–८०

मूल्य : रु० १६·००

प्रकाशक :
केदार नाथ राम नाथ,
कॉलिज रोड,
मेरठ–२५०००१
दूरभाष—७३५७५, ७३१३४, ७४६६५

मुद्रक :
अतुल प्रिंटिंग प्रेस,
मेरठ।

तृतीय संशोधित संस्करण

भूमिका

पिछले लगभग दस वर्षों से तर्कशास्त्र का अध्यापन करते समय लेखक के सामने बराबर यह कठिनाई रही कि राष्ट्रभाषा के माध्यम से तर्कशास्त्र विषय पर कोई भी अच्छी पाठ्यपुस्तक उपस्थित नही है। अधिकतर पुस्तके अग्रेजी भाषा की मूल पुस्तको के अनुवाद है और उनमे मूल अग्रेजी कथन कही नही दिये गये है। अस्तु न तो अनुवाद की प्रामाणिकता का पता चलता है और न विषय ही स्पष्ट होता है। लेखक ने मूल रूप से हिन्दी भाषा मे ही तर्कशास्त्र पर प्रस्तुत ग्रन्थ का आयोजन किया है। इसमे जिन अग्रेजी पुस्तको से सहायता ली गई है उनके उद्धरणो को हिन्दी अनुवाद के साथ-साथ फुट नोट मे अग्रेजी भाषा मे भी दे दिया गया है ताकि विवेचन की प्रामाणिकता बनी रहे।

पाश्चात्य तर्कशास्त्र के विवेचन मे अग्रेजी शब्दो के लिए हिन्दी की पुस्तको मे भिन्न-भिन्न शब्दो का प्रयोग किया जाता है। इससे विद्यार्थियो को बडी कठिनाई होती है। प्रस्तुत पुस्तक मे लेखक ने यथासम्भव सही और प्रचलित शब्दो का प्रयोग किया है और पारिभाषिक शब्दो के साथ-साथ उनके अग्रेजी शब्द भी ब्रेकेट मे दे दिये है जिससे विद्यार्थियो को आसानी हो। प्रत्येक अध्याय के अन्त मे साराश के साथ-साथ पिछले दस वर्षो की परीक्षाओं मे पूछे गये प्रश्न भी दिये गये है जिससे विद्यार्थी परीक्षा के लिये अभ्यास कर सके।

पुस्तक मे लेखक की अन्य पाठ्य पुस्तको की सभी विशेषताये मिलती है जैसे प्रत्येक बात को अलग पैराग्राफ मे कहना, पॉइण्ट को मोटे टाइप मे देना तथा विषय को अधिक से अधिक स्पष्ट रूप मे उपस्थित करना। स्थान-स्थान पर अभ्यास के रूप मे बहुत से उदाहरण भी उपस्थित किये गये है।

इस प्रकार लेखक ने अपनी ओर से तर्कशास्त्र जैसे कठिन विषय को पर्याप्त रूप से सरल बनाने का प्रयास किया है। इस सम्बन्ध मे सुझाव मिलने पर लेखक आभारी होगा।

'अर्चना'
सिविल लाइन्स मेरठ।

विषय-सूची

१

विषय-प्रवेश

(INTRODUCTORY)

ज्ञान क्या है ?

ज्ञान ऐसे विचारो के समूह को कहा जाता है जो कि चिन्तन की विपय वस्तु की वास्तविक प्रकृति के अनुरूप हो। उदाहरण के लिये जव हम किसी ऐसे व्यक्ति को देखते है जो जगत की वास्तविक प्रकृति से परिचित है तो हम यह कह सकते है कि उसको जगत का ज्ञान है। दार्शनिक क्षेत्र मे आत्मा, प्रकृति और ईश्वर की वास्तविक प्रकृति से परिचित व्यक्ति को ज्ञानी कहा जाता है किन्तु ज्ञान का क्षेत्र दर्शन तक ही सीमित नही है यद्यपि वहुत से दार्शनिको ने जगत की विविध वस्तुओ के ज्ञान को अज्ञान कहकर सम्वोधित किया है। विभिन्न विज्ञान जगत की विभिन्न वस्तुओ, घटनाओ और जीवो के विपय से ऐसी जानकारी देते है जो उनकी यथार्थ प्रकृति के अनुरूप मानी जाती है। यह वैज्ञानिक ज्ञान है। ज्ञान की प्रकृति अज्ञान से उसकी तुलना से भी स्पष्ट होती है। जव कोई व्यक्ति जीवशास्त्र के नियमो को नही जानता तो हम यह कहते हैं वह जीवशास्त्र के विपय मे ज्ञान नही रखता। स्पष्ट है कि यहाँ पर ज्ञान से तात्पर्य जीवो के व्यवहार के सामान्य नियमो की जानकारी से है। दैनिक जीवन मे जिस व्यक्ति को जिस वात का अनुभव होता है उसे उस सम्वन्ध मे ज्ञान हुआ माना जाता है। उदाहरण के लिये यह कहा जाता है कि अविवाहित व्यक्ति वैवाहिक जीवन के विपय मे अज्ञानी होता है। इस प्रकार ज्ञान से तात्पर्य अनुभव से भी है। अनुभव के विना ज्ञान नही हो सकता। वालक के अनुभव के क्षेत्र के वढने के साथ-साथ उसका ज्ञान भी वढता जाता है।

ज्ञान की प्रकृति के उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि ज्ञान मे निम्नलिखित तीन तत्व सम्मिलित होते है—

ज्ञान के मूल तत्व

(१) **विचार**—ज्ञान विचारो के रूप मे मन मे रहता है। ये विचार ही सकल्प वन कर कार्य रूप मे परिणित हो जाते है।

(२) **प्राकृतिक**—ज्ञान कहलाने वाले विचारो का वस्तुओ, घटनाओ, जीवो, सक्षेप मे ज्ञान की विपय वस्तु की वास्तविक प्रकृति के अनुरूप होना आवश्यक है अन्यथा वे विचार ज्ञान न कहे जाकर अज्ञान कहलायेगे।

(३) **यथार्थता**—यूँ तो हमारे पास यह पता लगा लेने का कोई साधन नही है कि हमारे विचार वाह्य वस्तुओ, घटनाओ अथवा जीवो की यथार्थ प्रकृति के

अनुरूप है या नही किन्तु जब हम किसी विचार को ज्ञान कहते है तो हमे यह विश्वास होता है कि हमारा विचार यथातथ्य है। ऐसा न होने पर उसे ज्ञान नही कहा जा सकता। अस्तु, जब तक यथार्थ अनुभव मे हमारे विचार का खण्डन ही न हो जाए, अर्थात् वह गलत ही सिद्ध न हो तब तक हम उसे ज्ञान ही माने रहते है।

ज्ञान मुख्य रूप से दो प्रकार का माना गया है, प्रत्यक्ष ज्ञान और अप्रत्यक्ष ज्ञान। इनकी व्याख्या निम्नलिखित है :—

ज्ञान के प्रकार

(१) **प्रत्यक्ष ज्ञान**—प्रत्यक्ष ज्ञान वह है जिसके द्वारा हमें वस्तु का सीधा ज्ञान होता है। हमारी आँख, नाक, कान, त्वचा और जीभ इत्यादि ज्ञानेन्द्रियो मे हुआ ज्ञान इसी प्रकार का होता है। हमे जो वस्तु जैसी दिखाई पडती है हम उसे वैसी ही समझते है क्योकि यह प्रत्यक्ष ज्ञान है। प्रत्यक्ष ज्ञान के दो प्रकार है—**बाह्य प्रत्यक्ष** से बाहरी वस्तुओ का ज्ञान होता है, **आन्तरिक प्रत्यक्ष** मे सुख-दुख आदि आन्तरिक अनुभूतियो और मनोवृत्तियो का ज्ञान होता है। इस प्रकार आन्तरिक प्रत्यक्ष से हम अपने सवेगों, अनुभूतियों, मानसिक दशाओ, स्थायी भावो, सकल्पो, इच्छाओ आदि मानसिक प्रक्रियाओ का ज्ञान प्राप्त करते है। यह ज्ञान सामान्य अनुभव और वैज्ञानिक ज्ञान का क्षेत्र है।

(२) **अप्रत्यक्ष ज्ञान**—ज्ञान के इस क्षेत्र मे तर्कशास्त्र की आवश्यकता पडती है क्योकि यहाँ पर ज्ञान सीधे वस्तुओ, घटनाओ अथवा जीवो के सम्पर्क मे नही होता। *अप्रत्यक्ष ज्ञान वह ज्ञान है जो कि वस्तुओ के सीधे सम्पर्क मे न होकर किसी अन्य ज्ञान के माध्यम से होता है।* अप्रत्यक्ष ज्ञान निम्नलिखित दो स्रोतो मे मिलता है :—

(अ) **अनुमान या तर्क**—ज्ञात से अज्ञात पर पहुंचने के लिये अनुमान का सहारा लिया जाता है। अनुमान की प्रक्रिया आगमनात्मक और निगमनात्मक दो रूपों में होती है। पहले रूप मे विशेषो के ज्ञान से अज्ञात सामान्य पर पहुँचा जाता है। उदाहरण के लिये अनेक स्थानो पर धुआ के साथ आग देखकर यह ज्ञान प्राप्त होता है कि जहाँ कही आग है वहाँ धुआ है। दूसरी ओर निगमनात्मक ज्ञान मे ज्ञात सामान्य सिद्धान्त से अज्ञात विशेष तथ्य के विषय मे अनुमान लगाया जाता है। उदाहरण के लिए यदि हम यह जानते है कि जहाँ धुँआ होता है वहाँ आग होती है तो किसी पहाड की चोटी से उठते हुए धुँए को देखकर निगमनात्मक तर्क की सहायता से हमे यह ज्ञान हो जाता है कि पहाड की चोटी पर आग है।

(ब) **साक्ष्य**—साक्ष्य वह ज्ञान है जो आप्त पुरुषो से प्राप्त होता है। आप्त पुरुष वे है जिनके अनुभव के कारण हम उन्हे विश्वसनीय मानते है। उदाहरण के लिए माता-पिता और गुरु जन आप्त पुरुष माने जाते है। विद्वानो के द्वारा लिखी गयी पुस्तको से प्रमाण दिये जाते है क्योकि उनके विद्वान होने के कारण उन्हे आप्त पुरुष माना जाता है। मनुष्य प्रत्येक क्षेत्र मे ज्ञान को स्वय अपने अनुभव के आधार पर प्राप्त नही कर सकता। अस्तु, वह इन क्षेत्रो मे ज्ञान के लिये इन क्षेत्रो के विशेषज्ञ अनुभवी व्यक्तियो के विचारो पर निर्भर रहता है। इसी कारण धार्मिक विषयो मे धर्म पुस्तको के लेख प्रामाणिक माने जाते है और वैज्ञानिक विषयो मे विज्ञान की पुस्तको मे लिखी बातो पर विश्वास किया जाता है। जिन बातो को लोग नही जानते उनकी सत्यता के विषय मे वे आप्त पुरुषो के साक्ष्य दिया करते है। चूंकि

यह ज्ञान व्यक्ति ने स्वय नही प्राप्त किया होता इसलिये इसको अप्रत्यक्ष या परोक्ष ज्ञान कहा जाता है ।

वास्तव मे अप्रत्यक्ष ज्ञान के उपरोक्त दोनो रूप केवल वाह्य रूप मे भिन्न है साक्ष्य से प्राप्त ज्ञान भी अनुमान ही है क्योकि उसमे यह तर्क सम्मिलित होता है कि चूँकि अमुक व्यक्ति ने अमुक क्षेत्र मे विशेष अध्ययन किया है या विशेष अनुभव किया है इसलिए उसके विचार सही होगे । इस अनुमान के आधार पर आप्त पुरुष के विचार को साक्षी माना जाता है । विभिन्न क्षेत्रो मे विभिन्न वैज्ञानिको के विचारो पर विश्वास इसी प्रकार के अनुमान पर आधारित है । अस्तु, अप्रत्यक्ष ज्ञान का माध्यम अनुमान है । यह अनुमान तर्कशास्त्र का विषय है । इसलिये यह कहा जा सकता है कि मनुष्य का प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष ज्ञान तर्कशास्त्र की सहायता से प्राप्त किया जा सकता है ।

कुछ तर्कशास्त्रियो ने यह माना है कि तर्कशास्त्र का सम्बन्ध प्रत्यक्ष ज्ञान से ही है किन्तु इस विचार को अधिकतर तर्कशास्त्री नही मानते । तर्कशास्त्र का विषय, जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, प्रत्यक्ष नही बल्कि अप्रत्यक्ष ज्ञान है । उसमे हमारा उद्देश्य किसी बात की सत्यता को सिद्ध करना होता है । यह प्रश्न उन्ही क्षेत्रो मे उठता है जहाँ प्रत्यक्ष ज्ञान नही होता । यदि मैं आँख से पर्वत देख रहा हूँ तो इसमे किसी प्रकार के तर्क की आवश्यकता नही है किन्तु यदि मुझे केवल धुँआ ही दिखलाई पडता है तो तर्क की सहायता से ही मैं आग के ज्ञान पर पहुँच सकता हूँ । यह ज्ञान कहा तक सत्य है इसका निर्णय भी तार्किक नियमो से ही होगा । अस्तु, सक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि जब कि विज्ञान का क्षेत्र प्रत्यक्ष ज्ञान है, तर्कशास्त्र का सम्बन्ध अप्रत्यक्ष ज्ञान से है । सभी विज्ञानो के क्षेत्रो मे अप्रत्यक्ष ज्ञान के विषय मे सत्यता की परीक्षा करने के लिए तर्कशास्त्र का सहारा लिया जाता है ।

तर्कशास्त्र का विषय अप्रत्यक्ष ज्ञान है ।

जीवित प्राणियो मे मनुष्य सर्वश्रेष्ठ प्राणी है । उसकी इस श्रेष्ठता का श्रेय उसकी विवेकशीलता को है । दूसरे शब्दो मे, यह कहा जा सकता है कि विश्व मे मनुष्य एकमात्र विवेकशील प्राणी है । विवेक से तात्पर्य सत्य और असत्य मे अन्तर करने से है । इसमे तर्कशास्त्र मनुष्य की सहायता करता है ।

बहुधा अनेक लोग किसी सामान्य बात के आधार पर विशेष बात निकालने मे अथवा विशेष बात के आधार पर सामान्य सिद्धान्त पर पहुच जाने मे बहुत जल्दी से काम लेते है और वैज्ञानिक नियमो का कोई विचार नही करते । इसका परिणाम यह होता है कि वे गलत निष्कर्ष निकाल लेते है । सही निष्कर्ष पर पहुँचने के लिये तर्कशास्त्र की सहायता की आवश्यकता है । सभ्य ससार मे और आदिम जगत मे भी मनुष्यो को सब कही सामान्य से विशेष और विशेष से सामान्य ज्ञान के आधार पर तर्क करना पडता है किन्तु कितने लोग शास्त्रीय रूप मे तर्कशास्त्र का अध्ययन करते है ? दार्शनिको मे तर्कशास्त्र का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक माना जाता है अन्यथा सही अनुभव होते हुए भी गलत निष्कर्षो पर पहुँच जाने की सम्भावना रहती है ।

तर्कशास्त्र की परिभाषा

किसी भी विषय का शास्त्रीय अध्ययन करने के पहले उसकी परिभाषा

करना आवश्यक होता है। परिभाषा का अर्थ दिये हुये विषय का तात्पर्य निश्चित करना है। अस्तु, यहाँ पर तर्कशास्त्र का अध्ययन करने के पूर्व उसकी परिभाषा निश्चित करना प्रासंगिक होगा।

लॉजिक का अर्थ

तर्कशास्त्र अंग्रेजी भाषा के लॉजिक (Logic) शब्द का पर्याय है। लॉजिक शब्द यूनानी-भाषा के लोगस (Logos) शब्द से लिया गया है जिसका तात्पर्य विचार अथवा शब्द मे है जो कि विचार को प्रकट करता है। इस प्रकार व्युत्पत्ति की दृष्टि से तर्कशास्त्र **भाषा मे अभिव्यक्त विचारों का विज्ञान** है। विचार मन की एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा ज्ञान प्राप्त होता है। तर्कशास्त्र मे उन नियमो की खोज की जाती है जिनके आधार पर विचार की प्रक्रिया चलती है।

तर्कशास्त्र क्या है ?

यदि तर्कशास्त्र शब्द को लिया जाये तो उसकी परिभाषा तर्क के शास्त्र अथवा विज्ञान से की जा सकती है। तर्क चिन्तन की सबसे ऊची अवस्था है। इसमे किसी उपस्थित समस्या को सुलझाने का प्रयास किया जाता है। जान ड्यूई तर्क को विवेकयुक्त चिन्तन कहता है। तर्क करने मे सबसे पहले किसी कठिनाई का अनुभव होना है। फिर इस कठिनाई की स्थापना और परिभाषा की जाती है। अब सूचनाओ को ढूँढना, मूल्यांकन करना, सगठित करना और प्रदत्तो का वर्गीकरण करना होना है। इसके बाद परिकल्पना का मूल्याकन किया जाता है, तब हल को लागू किया जाता है। तर्क के सामान्य नियमो का तर्कशास्त्र मे अध्ययन किया जाता है, इसीलिये अध्यापको के लिये तर्कशास्त्र का ज्ञान आवश्यक है।

तर्क के दो रूप

तर्क की प्रक्रिया दो रूपो मे चलती है, सामान्य से विशेष की ओर और विशेष से सामान्य की ओर। इन दोनो ही परिस्थितियो मे कुछ ज्ञात बातो के आधार पर अज्ञात बातो पर पहुँचने का प्रयास किया जाता है। उदाहरण के लिये यदि हम अपने अनुभव मे आने वाले अनेक व्यक्तियो के बारे मे यह देखते है कि उनकी मृत्यु अवश्य होती है तो इन अनुभवो के आधार पर हम यह अज्ञात सामान्य निष्कर्ष निकाल लेते है कि सभी मनुष्य मरणशील हैं। इस प्रक्रिया को निम्नलिखित तीन सोपानो मे रक्खा जा सकता है—

राम, मोहन, सोहन इत्यादि मरणशील है।
ये सब मनुष्य है।
∴ सब मनुष्य मरणशील है।

अब इस सामान्य निष्कर्ष के आधार पर विशेष परिस्थितियो मे अज्ञात बातो का पता लगाया जा सकता है। उदाहरण के लिये जब सब मनुष्य मरणशील है और कृष्ण एक मनुष्य है तो कृष्ण भी अवश्य मरणशील होगा। सामान्य सिद्धात के आधार पर विशेष अज्ञात ज्ञान पर पहुँचने की इस प्रक्रिया को तर्कशास्त्र की दृष्टि निम्नलिखित तीन सोपानो मे रखा जा सकता है—

सब मनुष्य मरणशील है।
कृष्ण मनुष्य है।
∴ कृष्ण मरणशील है।

उपरोक्त उदाहरणो से स्पष्ट है कि तर्कशास्त्र मे विशेष तथ्यो से सामान्य

नियम और सामान्य नियम से विशेप तथ्य निकाले जाते है । पहली प्रकार की प्रक्रिया **आगमन** (Induction) और दूसरे प्रकार का तर्क **निगमन** (Deduction) कहलाता है । इस प्रकार तर्कशास्त्र के क्षेत्र को आगमन और निगमन नामक दो वडे वर्गो मे वाँट दिया गया है ।

आकार विषयक और द्रव्य विषयक सत्यता का विज्ञान

ज्ञान की उपरोक्त दोनो प्रक्रियाये विचार की प्रक्रिया से सम्वन्धित है । इस प्रकार तर्कशास्त्र को **सही विचार के नियामक नियमो का विज्ञान** कहा जा सकता है । दूसरे शब्दो मे, तर्कशास्त्र वह विज्ञान है जो उन नियामक नियमो को वतलाता है जिनका पालन करके सही विचार पर पहुँचा जा सकता है । विचार की सत्यता आकार विषयक (Formal) भी हो सकती है और द्रव्य विपयक (Material) भी हो सकती है । ये दोनो ही तर्क-शास्त्र के विपय है । किन्तु तर्कशास्त्रियो के अनुसार तर्कशास्त्र केवल आकार विपयक नियमो का विज्ञान है । इस विचार के समर्थको मे हैमिल्टन, मैन्सेल, और टामसन इत्यादि तर्कशास्त्री उल्लेखनीय है । तर्कशास्त्र को यह परिभापा उसके क्षेत्र को अत्यधिक सकुचित कर देती है । दूसरी ओर अन्य तर्कशास्त्री तर्कशास्त्र को केवल आकार विपयक सत्यता नही वल्कि द्रव्य विपयक सत्यता का भी शास्त्र मानते है । यह दूसरा मत ही तर्कशास्त्र की अधिक उचित व्याख्या उपस्थित करता है ।

विज्ञान और कला

तर्कशास्त्र की परिभापा को लेकर एक अन्य विवाद उसको विज्ञान अथवा कला मानने क रूप मे उपस्थित हुआ है । आल्ड्रिच (Aldrich) के शब्दो मे "तर्क-शास्त्र तर्क की कला है ।"[1] दूसरी आर टामसन (Thomson) के अनुसार "तर्कशास्त्र विचार के नियमो का विज्ञान है ।"[2] व्हेटली (Whatley) ने तर्कशास्त्र की अपनी परि-भापा मे उसे विज्ञान और कला दोनो ही माना है । उसके शब्दो मे, "तर्कशास्त्र तर्क का विज्ञान और कला है ।"[3] आल्ड्रिच और टामसन की परिभापा की तुलना मे व्हेटली द्वारा दी गयी परिभापा अधिक उपयुक्त है । वास्तव मे तर्कशास्त्र विज्ञान और कला दोनो ही है । उसका एक पहलू सैद्धातिक (Theoretical) है और दूसरा व्यवहारिक (Applied) है । वह **विज्ञानो का विज्ञान और कलाओ की कला** है ।

जैसा कि पीछे वतलाया जा चुका है, तर्कशास्त्र की परिभापा करने मे उसको केवल विज्ञान कहने वाली परिभापाये उपयुक्त नही है । उदाहरण के लिये हैमिल्टन ने लिखा है कि तर्कशास्त्र, "विचार के आकार विपयक नियमो का विज्ञान है ।"[4] आरनोल्ड के शब्दो मे तर्कशास्त्र "सत्य के अनुसधान मे लगी हुई बुद्धि का विज्ञान है ।"[5] ये दोनो ही परिभापाये त्रुटिपूर्ण है, क्योकि तर्कशास्त्र विज्ञान और कला दोनों ही है ।

अन्त मे तर्कशास्त्र की सवसे अधिक उपयुक्त परिभापा मिल के शब्दो मे की जा सकती है । मिल के अनुसार, "तर्कशास्त्र बुद्धि की उन त्रियाओ का विज्ञान

---

1. Logic is "the art of reasoning" —Aldrich
2 Logic is "the art and science of reasoning" —Whatley
3 Logic is "the science of the laws of thought." —Thomson.
4. Logic "the science of the formal laws of thought" —Hamilton
5 Logic is "the science of the understanding in the persuit of truth" —Arnauld.

है जो प्रमाण के मूल्यांकन मे उपयोगी है और यह ज्ञात तथ्यो से अज्ञात तथ्यो पर पहुँचने की प्रक्रिया तथा उसमे सहायता देने वाली सभी अन्य बौद्धिक क्रियाओ का विचार करता है।"[1] तर्कशास्त्र की इस परिभाषा मे निम्नलिखित बाते उल्लेखनीय है—

(१) **तर्कशास्त्र प्रमाण के मूल्यांकन मे उपयोगी है**—इस प्रकार तर्कशास्त्र के सैद्धान्तिक पहलू के साथ-साथ उसका व्यवहारिक पहलू भी है। तर्कशास्त्र को बुद्धि की क्रियाओ के विज्ञान के साथ-साथ प्रमाण के मूल्याकन मे उपयोगी मान लेने से मिल उसके सैद्धातिक और व्यावहारिक दोनो पहलुओ पर जोर देता है। दूसरे शब्दो मे वह तर्कशास्त्र को विज्ञान और कला दोनो ही मानता है।

(२) **तर्कशास्त्र ज्ञात से अज्ञात तथ्यो पर पहुँचने की प्रक्रिया पर विचार करता है**—जैसाकि पीछे बतलाया जा चुका है, तर्कशास्त्र मे आगमन और निगमन के आधार पर ज्ञात से अज्ञात पर पहुँचने का प्रयास किया जाता है। मिल की इस परिभाषा मे तर्कशास्त्र मे आगमन और निगमन दोनो ही क्षेत्रो पर जोर दिया गया है।

(३) **तर्कशास्त्र आगमन और निगमन मे सहायता करने वाली सभी अन्य बौद्धिक क्रियाओं पर विचार करता है**—तर्कशास्त्र के किसी भी ग्रन्थ पर दृष्टि डालने से यह स्पष्ट होगा कि उसमे निगमन के क्षेत्र मे तर्कशास्त्र के मूल नियम पद, वाच्य धर्म, परिभाषा, तार्किक विभाजन, तर्क वाक्य, वाक्यो का विरोध, अनुमान, न्याय वाक्य इत्यादि सम्मिलित है। दूसरी ओर तर्कशास्त्र के आगमन क्षेत्र मे परिकल्पना, प्रायोगिक विधियाँ, सादृश्य से अनुमान, प्रकृति के नियम, व्याख्या और उसकी सीमाये, परिभाषा, वर्गीकरण, पारिभाषिक पदावली इत्यादि सम्मिलित है। तर्कशास्त्र मे इन सब बौद्धिक क्रियाओं पर भी विचार किया जाता है।

इस प्रकार तर्कशास्त्र की मिल के द्वारा दी गई परिभाषा उसकी सर्वागीण पूर्ण परिभाषा मानी जा सकती है।

तर्कशास्त्र विज्ञान है अथवा कला ?

तर्कशास्त्र की प्रकृति के विषय मे इस प्रश्न पर विवाद दिखलाई पडता है कि तर्कशास्त्र विज्ञान है अथवा कला है। इस विवाद पर विचार करने मे सबसे पहले यह विचार करना उपयुक्त होगा कि तर्कशास्त्र कहाँ तक विज्ञान है।

तर्कशास्त्र विज्ञान है

तर्कशास्त्र विज्ञान है इसका अर्थ समझने के लिये यह जानना आवश्यक है कि विज्ञान क्या है। विज्ञान अनुसधान की एक पद्धति है। उसकी कसौटी विषय सामग्री नही बल्कि दृष्टिकोण है। उसकी एकता उसकी विषय सामग्री मे न होकर उसकी पद्धति मे है। विज्ञान मे सीमित क्षेत्र की विषय सामग्री का व्यवस्थित अध्ययन किया जाता है। इसमे बडे धैर्य, साहस, कठोर परिश्रम, रचनात्मक कल्पना शक्ति और तटस्थता की आवश्यकता होती है। इस वैज्ञानिक अभिवृत्ति के बिना

1 "Logic is the science of the operations of the understanding which are subsequent to the estimation of evidence, both the process itself of advancing from known truth to unknown and all other intellectual operations in so far as auxiliary to this" —Mill.

वैज्ञानिक पद्धति से लाभ नही उठाया जा सकता। वैज्ञानिक पद्धति मे अवलोकन, अवलोकन को लिखना, वर्गीकरण, सामान्यीकरण और परीक्षण ये पाँच सोपान होते है। विज्ञान तथ्यात्मक होता है। वह कार्य कारण सम्बन्धो की खोज करता है। वह सार्वभौम है। वह प्रामाणिक होता है और ज्ञात के आधार पर अज्ञात के विषय मे भविष्यवाणी करता है। तर्कशास्त्र मे विज्ञान के ये सभी गुण पाये जाते है। तर्कशास्त्र मे वैज्ञानिक विधियो का प्रयोग किया जाता है। उसमे विचार से सम्बन्धित तथ्यो का पता लगाया जाता है। उसके सिद्धान्त सार्वभौम होते है और प्रामाणिक होते है। तर्कशास्त्रीय नियमो के आधार पर ज्ञात के आधार पर अज्ञात के विषय मे भविष्यवाणी की जा सकती है। अस्तु, तर्कशास्त्र एक विज्ञान है।

किन्तु तर्कशास्त्र को विज्ञान कहते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि वह नियामक विज्ञान है। सामान्य रूप से नियामक विज्ञान तीन है। नीतिशास्त्र शुभ का नियामक विज्ञान है। सौदर्यशास्त्र सुन्दरता का नियामक विज्ञान है। तर्कशास्त्र सत्य का नियामक विज्ञान है। ये तीनो ही नियामक विज्ञान अपने-अपने क्षेत्रो मे नियमो का पता लगाते है। ये तथ्यो का अध्ययन न करके मूल्यो का अध्ययन करते है। इनके निर्णय तथ्यात्मक न होकर मूल्यात्मक होते है। इस प्रकार नियामक विज्ञान के रूप मे तर्कशास्त्र प्राकृतिक विज्ञानो से भिन्न है। वह उन नियमो का विज्ञान है जिनका पालन करके सत्य विचारो पर पहुँचा जा सकता है। वह विचारो का यथा-तथ्य अध्ययन नही करता, यह तो मनोविज्ञान का क्षेत्र है। तर्कशास्त्र तो सत्य का आदर्श रखकर विचार के नियमो का अध्ययन करता है।

तर्कशास्त्र कला है

किन्तु जहाँ विज्ञान के रूप मे तर्कशास्त्र सैद्धान्तिक है वहाँ उसका व्यावहारिक पहलू भी है। व्यावहारिक पहलू मे तर्कशास्त्र कला है। जबकि विज्ञान हमे जानना सिखाता है, कला करना सिखाती है। ये दोनों ही परस्पर पूरक है। जानने का उपयोग करने मे है और करना जानने के बिना सम्भव नही है। इस प्रकार कला विज्ञान पर आधारित है। वह अनुभवमूलक है और विज्ञानमूलक भी है। व्हेटली और मिल ने तर्कशास्त्र को विज्ञान और कला दोनो ही माना है।

विज्ञानों का विज्ञान

प्रत्येक विज्ञान मे कुछ मूल प्रत्ययो का प्रयोग किया जाता है। इन प्रत्ययो के विषय मे गलत फहमी न होने के लिये यह आवश्यक है कि इनकी स्पष्ट रूप से परिभाषा कर दी जाये। परिभाषा तभी की जा सकती है जबकि यह पता हो कि परिभाषा क्या है और कौन-सी परिभाषा सही और कौन-सी दोषपूर्ण होती है। यह तर्कशास्त्र का विषय है। स्पष्ट है कि विज्ञान के मूल प्रत्ययो का स्पष्टीकरण करने के लिये तर्कशास्त्र की सहायता अपेक्षित है।

मूल प्रत्ययों की व्याख्या

विज्ञान मे निर्णयो को वाक्यो मे रखा जाता है। इन वाक्यो मे दो प्रकार के दोष सम्भव है। एक तो इनमे जिन शब्दो का प्रयोग किया जाता है वे निरर्थक हो और दूसरे इनमे प्रयुक्त पदो को सही क्रम से न रखा जाए। पहले प्रकार की सम्भावना मे विज्ञान मे प्रयोग किये जाने वाले प्रत्ययो की स्पष्ट परिभाषा करने की आवश्यकता है। इसमे, जैसाकि पीछे बतलाया जा चुका है, तर्कशास्त्र

वैज्ञानिक निर्णयो के दोष

की सहायता अपेक्षित है। दूसरे प्रकार की सम्भावना मे उद्देश्य और विधेय पदो के परस्पर सम्बन्ध के विषय मे नियमो का ज्ञान आवश्यक है। यह तर्कशास्त्र का विषय है। अस्तु, स्पष्ट है कि किसी विचार मे निष्कर्षो को वाक्यो के रूप मे रखने के लिए तर्कशास्त्र की सहायता अपेक्षित है। तर्कशास्त्र के नियमो को न जानने के कारण अनेक वैज्ञानिको ने अपने निष्कर्षो को ऐसे वाक्यो मे रखा है जिनसे उनका तात्पर्य स्पष्ट नही हो सका है। आधुनिक काल मे तार्किक भाववादी (Logical Positivist) नामक दार्शनिक साम्प्रदाय ने विज्ञान के क्षेत्र मे तर्कशास्त्र के महत्व पर विशेष रूप से जोर दिया है।

तार्किक प्रत्ययो का प्रयोग

विज्ञान के क्षेत्र मे अनेक प्रत्ययो का प्रयोग किया जाता है जो मूल रूप से तर्कशास्त्र के प्रत्यय है। उदाहरण के लिये विज्ञानो मे प्रमाण की आवश्यकता होती है। प्रमाण (Testimony) किसे कहते है, कौन-सा प्रमाण शुद्ध होता है और प्रमाणो में कौन-सी अशुद्धियाँ हो सकती है, इन सबका विवेचन तर्कशास्त्र मे किया जाता है। अस्तु, स्पष्ट है कि विज्ञानो के अनेक मूलभूत प्रत्ययो को सीधे-सीधे तर्क शास्त्र मे लिया जाता है।

विज्ञान की आगमन और निगमन विधियाँ

प्रत्येक विज्ञान मे तथ्यात्मक निष्कर्षो पर पहुँचने के लिये अथवा ज्ञात के आधार पर अज्ञात ज्ञान पर पहुँचने के लिये दो विधियाँ अपनायी जाती है—आगमन और निगमन। आगमन विधि मे सामान्य तथ्यो से विशेष निष्कर्ष पर पहुँचा जाता है जबकि निगमन विधि मे सामान्य निष्कर्ष से विशेष तथ्यो पर पहुँचा जाता है। इन विधियो का प्रयोग करने मे वहुधा तर्क सम्बन्धी दोष आ जाते है। तर्कशास्त्र आगमन और निगमन विधियो का विस्तारपूर्वक विवेचन करता है, उनके दोपो की ओर ध्यान दिलाता है, उससे बचने के उपाय बतलाता है और इनमे प्रयोग की जाने वाली मानसिक क्रियाओ का विस्तारपूर्वक विश्लेषण करता है। स्पष्ट है कि तर्कशास्त्र का ज्ञान प्रत्येक वैज्ञानिक के किये कितना अधिक आवश्यक है।

विज्ञानों का विज्ञान

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रत्येक विज्ञान के लिये तर्कशास्त्र का ज्ञान आवश्यक है। इसीलिये तर्कशास्त्र को विज्ञानो का विज्ञान कहा गया है। विज्ञान मे किसी भी विषय की मूल समस्यायो का अध्ययन किया जाता है। विज्ञानो के विज्ञान के रूप मे तर्कशास्त्र विज्ञानो के अनेक मूल प्रत्ययो को स्पष्ट करता है। दूसरे, विज्ञानो के विज्ञान के रूप मे तर्कशास्त्र प्रत्येक विज्ञान की व्यवस्था, क्रम तथा तार्किकता के लिए आधार उपस्थित करता है। आधुनिक काल मे तार्किक भाववादी (Logical Positivist) दार्शनिको ने विज्ञानो के विज्ञान के रूप मे तर्कशास्त्र के महत्व को स्पष्ट किया है।

कलाओं की कला

इसी प्रकार तर्कशास्त्र को कलाओ की कला कहा गया है। इसका तात्पर्य यह है कि यद्यपि भिन्न-भिन्न कलाये अपने-अपने क्षेत्र मे अपना विशिष्ट कार्य करती है परन्तु वे सभी तर्कशास्त्र के नियमो का पालन करती है। इस प्रकार तर्कशास्त्र विज्ञानो का विज्ञान और कलाओ की कला कहलाता है।

तर्कशास्त्र और कला मे अन्तर और समानताएँ

यहाँ पर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि तर्कशास्त्र को कुछ सीमित अर्थो मे ही कला कहा गया है। कला जन्मजात होती है जबकि तर्कशास्त्र का ज्ञान अर्जित है। कला कलाकार मे होती है परन्तु तर्कशास्त्र तर्क मे है। कला किसी कार्य को करने मे प्रवीणता है, तर्कशास्त्र तर्क करने का शास्त्र है। परन्तु दूसरी ओर तर्कशास्त्र और कला मे कुछ समानताये भी है। कला मे अन्तिम अपील कार्य के प्रति होती है, यही बात तर्कशास्त्र मे भी है। कला और तर्क दोनो ही सिखाये जा सकते है। अस्तु, जहाँ कुछ बातो मे तर्कशास्त्र विशुद्ध रूप से कला नही कहा जा सकता, अन्य बातो मे उसको कला कहा जा सकता है।

तर्कशास्त्र कैसा विज्ञान है ?

तर्कशास्त्र विज्ञान अवश्य है परन्तु वह तथ्यो का अध्ययन नही करता। तब फिर वह कैसा विज्ञान है ? यह समझने के लिये विज्ञान के दो प्रमुख वर्गों विधायक और नियामक विज्ञान मे अन्तर समझना आवश्यक है। भौतिक शास्त्र, रसायनशास्त्र तथा जीवशास्त्र इत्यादि भौतिक विज्ञान है। दूसरी ओर सौदर्य-शास्त्र, नीति शास्त्र और **तर्कशास्त्र नियामक विज्ञान है**। नियामक विज्ञान के रूप मे तर्कशास्त्र की प्रकृति को समझने के पहले विधायक (Positive) और नियामक (Normative) विज्ञान मे अन्तर समझना आवश्यक है।

सक्षेप मे, विधायक विज्ञान और नियामक विज्ञान मे निम्नलिखित अन्तर बतलाये जा सकते है :—

(१) **विधायक विज्ञान 'है' का और नियामक विज्ञान 'होना चाहिए' का अध्ययन करता है**—विधायक विज्ञान अपने क्षेत्र की विषय वस्तु का यथातथ्य अध्ययन करता है। वह प्राकृतिक घटनाओ का अध्ययन करके उनमे कार्यकारण सम्बन्धो का पता लगाता है। वह जो कुछ 'है' (Is) उसी का अध्ययन करता है। परन्तु दूसरी ओर नियामक विज्ञान के अध्ययन का विषय जो कुछ 'है' वह नही है बल्कि वह है जो कि 'होना चाहिये' (Ought)। इसी कारण जब कि विधायक विज्ञान के निर्णय तथ्यात्मक होते है, नियामक विज्ञान के निर्णय मूल्यात्मक होते है। सौन्दर्य-शास्त्र (Aesthetics), नीतिशास्त्र (Ethics) और तर्कशास्त्र मूल्यो का अध्ययन करते है। सौन्दर्यशास्त्र सौन्दर्य का अध्ययन करता है, नीतिशास्त्र परम शुभ का विज्ञान है, तर्कशास्त्र सत्यता का नियामक विज्ञान है। ये तीनो ही क्रमश. मनुष्य की अनुभूति, संकल्प और ज्ञान के मूल्यो का निर्णय करते है। तर्कशास्त्र यह बतलाता है कि किन विचारो को सत्य कहा जाना चाहिये अथवा कि सत्यता के आदर्श को प्राप्त करने के लिये चिन्तन मे किन नियमो का पालन करना आवश्यक है। दूसरे शब्दो मे, तर्कशास्त्र चिन्तन के क्षेत्र मे जो कुछ होना चाहिए उसका अध्ययन करता है। चिन्तन मे क्या होता है यह उसके अध्ययन का विषय नही है। इसका अध्ययन मनोविज्ञान नामक विधायक विज्ञान करता है क्योकि यह तथ्यात्मक विवेचना है।

(२) **विधायक विज्ञान तथ्यों से और नियामक मूल्यो से सम्बन्धित है**—उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जबकि विधायक विज्ञान का सम्बन्ध तथ्यो से है नियामक विज्ञान मूल्यो से सम्बन्ध रखते है। इसका अर्थ यह नही है कि तथ्यो और मूल्यो का परस्पर कोई सम्बन्ध नही है। वास्तव मे तथ्य और मूल्य आपस मे गुँथे हुए है। तथ्यो से अलग मूल्य कोरी कल्पनाये है और मूल्यो से अलग तथ्य

अर्थहीन है। अस्तु, यथार्थ स्थिति में सब कहीं ये दोनो एक साथ पाये जाते हैं। फिर भी, क्योंकि विज्ञान सीमित विषय का व्यवस्थित अध्ययन है इसलिए सैद्धान्तिक विवेचना के लिये तथ्यो और मूल्यों को क्रमशः विधायक विज्ञानों और नियामक विज्ञानो के क्षेत्र मे बाँट दिया गया है।

(३) नियामक विज्ञानो का क्षेत्र विधायक विज्ञानो से अधिक व्यापक है— समाजशास्त्र, मनोविज्ञान इत्यादि सामाजिक विज्ञानो और भौतिकशास्त्र तथा रसायन शास्त्र इत्यादि भौतिक विज्ञानो का क्षेत्र नियामक विज्ञानो से कहीं अधिक सीमित होता है। बहुधा प्रत्येक विधायक विज्ञान के नियम उसके अपने क्षेत्र मे लागू होते हैं। उदाहरण के लिये भौतिकशास्त्र के नियमो का तर्कशास्त्र पर कोई प्रभाव नही पडता। परन्तु दूसरी ओर नियामक विज्ञानो के बारे मे ऐसा नही है। तर्कशास्त्र नियामक विज्ञान के रूप मे चिन्तन के नियमो का अध्ययन करता है। ये नियम प्रत्येक विज्ञान के क्षेत्र मे चिन्तन को प्रभावित करते है क्योकि उनका पालन किये बिना कही भी प्रामाणिक चिन्तन नही किया जा सकता। इस प्रकार विज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र मे तर्कशास्त्र का प्रवेश है। जहाँ कही चिन्तन है वहाँ तर्कशास्त्र का महत्व है। किसी भी अन्य विज्ञान का महत्व इतना व्यापक नही है।

(४) प्राकृतिक विज्ञान के निर्णय तथ्यात्मक और नियामक विज्ञान के मूल्यात्मक होते हैं—प्राकृतिक विज्ञानो के निर्णय तथ्यात्मक होते है। उदाहरण के लिये पौधे सूर्य के प्रकाश की ओर झुकते है। वनस्पति विज्ञान का यह निर्णय एक तथ्यात्मक निर्णय है। इसमे पौधो के किसी गुण अवगुण की आलोचना नही की गई है। इसमे किसी प्रकार का मूल्याकन निहित नही है। इसमे किसी मानदण्ड की आवश्यकता नही पड़ती। इसमे किसी आदर्श की ओर सकेत नही है। दूसरी ओर नियामक विज्ञान के निर्णय मूल्याकन होते है। वे किसी अन्य मानदण्ड को ध्यान मे रखकर दिये जाते है। उनमे मूल्याकन, आलोचना और विवेचन सम्मिलित होते है। उनमे किसी आदर्श की ओर सकेत होता है। उदाहरण के लिये तर्कशास्त्र मे व्याघात का नियम बतलाते हुए कहा गया है कि "कोई भी वस्तु एक साथ भावरूप और अभाव रूप नही हो सकती है।" यहाँ पर तात्पर्य तथ्यात्मक निर्णय देना नही है बल्कि यह बतलाना है कि प्रामाणिक चिन्तन के लिये एक ही वस्तु मे परस्पर विरोधी गुणो का आरोप नही किया जाना चाहिये भले ही व्यावहारिक जगत मे वस्तुओ मे परस्पर विरोधी गुण मिलते हो। अव्याघात का नियम अर्थात व्याघात के अभाव मे विचार के सत्य होने का नियम यह बतलाता है कि वही विचार सत्य होगा जिसमे व्याघात न हो। इस प्रकार यह एक मानदण्ड उपस्थित करता है जिस पर तोल कर विचारो की सत्यता की परीक्षा की जा सकती है। यह एक आदर्श बतलाता है कि प्रामाणिक विचार कैसा होना चाहिये।

तर्कशास्त्र नियामक विज्ञान है।

विधायक विज्ञान मे भौतिक विज्ञान और सामाजिक विज्ञान दोनो ही सम्मिलित है। इनसे तर्कशास्त्र का भेद उसकी नियामक प्रकृति के कारण होता है। दूसरी ओर सौन्दर्यशास्त्र तथा नीतिशास्त्र जैसे नियामक विज्ञानो से वह अपने क्षेत्र के कारण भिन्न है। वह कलाओ से भिन्न है क्योकि वह कला होने के साथ-साथ विज्ञान भी है। वह विज्ञानो से भिन्न है क्योकि वह विज्ञान होने के साथ-साथ दर्शन का अंग भी है। नियामक विज्ञान के रूप मे वह विचार के नियमो

की स्थापना करता है। वह 'है' का नही वल्कि विचारो के क्षेत्र मे 'होना चाहिए' का अध्ययन करता है। वह सत्यता के मूल्यो से सम्बन्धित है। उसका क्षेत्र विधायक विज्ञानो से अधिक व्यापक है। उसके निर्णय मूल्यात्मक होते है। अन्त मे यह ध्यान रखना आवश्यक है कि प्रत्येक विज्ञान मे तर्कशास्त्र की आवश्यकता होती है क्योकि तर्कशास्त्र प्रामाणिक चिन्तन का विज्ञान है।

निहित अर्थ के विज्ञान के रूप में तर्कशास्त्र
(Logic as the Science of Implication)

आगमन और निगमन में निहित अर्थ

तर्कशास्त्र भापा द्वारा प्रकाशित विचारो का विज्ञान है। वह भाषा मे व्यक्त तर्क से और इसमे सहायक प्रक्रियाओ से सम्वन्ध रखता है। वह यह वतलाता है कि विचारो को भापा मे किस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है। उदाहरण के लिये तर्कशास्त्र विचार के नियमो से परिचित कराता है। इन नियमो का पालन न करने से व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध होने पर भी वाक्य गलत होगे। तर्कशास्त्र ज्ञात से अज्ञात ज्ञान पर पहुँचने का विज्ञान है। यह कार्य आगमन और निगमन की विधियो से होता है। इस दृष्टि से तर्कशास्त्र निहित अर्थ का विज्ञान (Science of Implication) है। किसी भी सामान्य सिद्धात मे विशेप घटनाओ से सम्वन्धित सत्य निहित होता है। तर्कशास्त्र की सहायता से सामान्य सिद्धात मे निहित विशिष्ट अर्थ पर पहुँचा जा सकता है। यह निगमन की प्रक्रिया से होता है। उदाहरण के लिये जव हम यह कहते है कि मनुष्य मरणशील है तो इस सामान्य सिद्धात मे यह विशिष्ट सत्य निहित है कि सुकरात, मोहन अथवा रफीक इत्यादि विशिष्ट व्यक्ति भी मरणशील है क्योकि ये सब मनुष्य हैं। दूसरी ओर अनेक विशिष्ट सत्यो के आधार पर अज्ञात सामान्य सत्य पर पहुँचा जा सकता है। उदाहरण के लिये यदि किसी विद्यालय के प्रत्येक शिक्षक के वारे मे यह कहा जाता है कि वह विद्वान है तो इससे यह सामान्य निष्कर्प निकाला जा सकता है कि उस विद्यालय के सभी शिक्षक विद्वान है। दूसरे शब्दो मे जव मै यह कहता हूँ कि अमुक विद्यालय के शिक्षक 'अ' 'ब' 'स' 'द' इत्यादि विद्वान हैं तो इसमे यह सत्य निहित है कि उस विद्यालय के सभी शिक्षक विद्वान है। विशेप सत्यो मे निहित सामान्य सत्य पर पहुँचने के लिये तर्कशास्त्र में आगमन की विधि अपनायी जाती है। इस प्रकार तर्कशास्त्र मे निगमन और आगमन की विधि की सहायता से हम दिये हुये निर्णय के निहित अर्थ पर पहुँचते है।

दार्शनिक निष्कर्षो के निहित अर्थ

दर्शनशास्त्र मे तर्कशास्त्र का सवसे अधिक उपयोग दार्शनिक निष्कर्पो अथवा तर्कवाक्यो मे निहित अर्थो का पता लगाने के लिये किया जाता है। उदाहरण के लिये यदि कोई दार्शनिक यह कहता है कि विश्व ईश्वर की रचना है तो हम तुरन्त यह जानने की चेष्टा करते है कि इस तर्क वाक्य मे क्या अर्थ निहित है। तर्कशास्त्र की दृष्टि से सवसे पहले यह आवश्यक होता है कि हम विश्व और ईश्वर की परिभापा करे। यह परिभापा किस प्रकार की जायेगी अथवा कौन सी परिभापा शुद्ध होती है, यह निश्चय तर्कशास्त्र करता है। तर्कशास्त्र मे परिभाषा की परिभापा की जाती है और उसके प्रकारो, शुद्धियो और अशुद्धियो पर विचार किया जाता है। जव तक हम यह नही जानते कि विश्व अथवा ईश्वर का क्या अर्थ है तब तक विश्व ईश्वर की रचना है, इस तर्क वाक्य के निहित अर्थ को नही समझा

जा सकता । दूसरे, अधिकतर दार्शनिक तर्कवाक्य (Proposition) जगत मे विभिन्न प्रकार के अनुभवो को समझाने के लिये परिकल्पना (Hypothesis) के रूप मे उपस्थित किये जाते है क्योंकि हम केवल अनुभव के आधार पर परम सत्य का अनुमान मात्र लगा सकते है किन्तु जब अनेक परिकल्पनाएँ उपस्थित की जाती है तो उनमे चुनाव करने के लिये तर्कशास्त्र ही एक मात्र सहारा है । दूसरे शब्दों मे, जो परिकल्पना तर्कशास्त्र के नियमो के अनुसार की जाती है वही उपयुक्त होती है । परिकल्पना का अर्थ समझने से भी किसी तर्क वाक्य के निहित अर्थ को समझने मे सहायता मिलती है ।

निहित अर्थ की व्याख्या की प्रक्रियायें

निहित अर्थ को समझने के लिये वर्गीकरण (Classification) और व्याख्या (Explanation) का सहारा लिया जाता है । व्याख्या वर्णन (Description) मे भिन्न है । वर्णन भी निहित अथ को स्पष्ट करता है । तर्कशास्त्र मे वर्गीकरण, वर्णन और व्याख्या इन तीनो की विवेचना की जाती है, उसमे अनुमान के गुण दोपों पर विचार किया जाता है और उसकी सीमाओ का सकेत किया जाता है । ऊपर दिये गये तर्क वाक्य 'विश्व ईश्वर की रचना है' के निहित अर्थ को समझने के लिये इस विपय मे विस्तृत वर्णन आवश्यक है । पुन इस तर्क वाक्य की व्याख्या भी करनी होगी । फिर यह पता लगाना होगा कि दार्शनिक इस निष्कर्ष पर किस विधि से पहुँचा है । तर्कशास्त्र ज्ञान की विभिन्न विधियो और उनके व्यावहारिक उपयोगो के गुण दोप की विवेचना करता है । वह बतलाता है कि ज्ञात से अज्ञात पर सही रूप मे किस तरह पहुँचा जा सकता है । अस्तु, तर्कशास्त्र की सहायता से दार्शनिक तर्कवाक्यो के निहित अर्थ का पता लगाया जाता है ।

तार्किक भाववादी मत

आधुनिक युग मे तार्किक भाववादी (Logical Positivist) नामक दार्शनिक सम्प्रदाय के अनुयायियो ने निहित अर्थ के विज्ञान के रूप मे तर्कशास्त्र को दर्शन मे अत्यधिक महत्व दिया है यहाँ तक कि उन्होने दर्शन का एक मात्र कार्य विज्ञान के विभिन्न प्रत्ययों और तर्कवाक्यो के निहित अर्थ की विवेचना मान लिया है । यह विवेचना तर्कशास्त्र के नियमो के अनुसार की जाती है । इससे यह पता चलता है कि कोई भी प्रत्यय जिस अनुभव का प्रतिनिधित्व करता है उसके लिये वह कहाँ तक उपयुक्त है । दूसरे वैज्ञानिक तर्कवाक्यो के निहित अर्थ की विवेचना करने से यह पता चलता है कि वे कहाँ तक सार्थक हैं । कभी-कभी हम ऐसे प्रश्न उठाते है जिनका कोई अर्थ नही होता और यदि अर्थ की विवेचना पहले से ही कर ली जाए तो ऐसे प्रश्नो का उत्तर देने की कोई आवश्यकता नही होती । उदाहरण के लिये यदि कही पर अधकार देखकर कोई यह प्रश्न करता है कि बिजली कहाँ चली गयी तो इसका उत्तर देने से पहले इस तर्क वाक्य के निहित अर्थ की विवेचना की जानी चाहिये । ऐसा करने पर हम देखेंगे कि जाने की क्रिया का बिजली के साथ मे प्रयोग नही किया जा सकता और इसलिये यह प्रश्न निरर्थक है । इसी प्रकार जो लोग ईश्वर के अस्तित्व का प्रमाण मागते है वे यदि पहले अपने ईश्वर के प्रत्यय के निहित अर्थ की विवेचना करे तो उन्हे यह स्पष्ट हो जाएगा कि उनका प्रश्न कितना गलत है । अस्तु, तार्किक भाववादियो का यह सुझाव अधिकतर आधुनिक दार्शनिको को मान्य

है कि दार्शनिक विवेचन करने के पूर्व दिये हुये प्रत्ययो और तर्क वाक्यो के निहित अर्थो की विवेचना करना आवश्यक है। यह निहित अर्थ के विज्ञान के रूप मे तर्क-शास्त्र का कार्य है।

तर्कशास्त्र का क्षेत्र
(Scope of Logic)

तर्कशास्त्र की परिभाषा से उसका क्षेत्र स्पष्ट होता है। मिल के शब्दो मे "तर्कशास्त्र बुद्धि की उन क्रियाओ का विज्ञान है जो प्रमाण के मूल्यांकन में उपयोगी है और वह ज्ञात तथ्यो से अज्ञात तथ्यों पर पहुंचने की प्रक्रिया तथा इसमे सहायता करने वाली सभी अन्य बौद्धिक क्रियाओ पर विचार करता है।" तर्कशास्त्र की इस परिभाषा से उसका निम्नलिखित क्षेत्र स्पष्ट होता है—

(१) **बुद्धि की क्रियाओ का अध्ययन**—तर्कशास्त्र मे बुद्धि की विभिन्न क्रियाओ विचार, तर्क इत्यादि का अध्ययन किया जाता है। उसमे प्रत्ययन, निर्णय करना, तर्क करना इत्यादि बुद्धि की क्रियाये सम्मिलित है।

(२) **प्रमाण के मूल्यांकन में उपयोगी क्रियाओ का अध्ययन**—तर्कशास्त्र आकार विषयक होने के साथ-साथ द्रव्य विषयक भी है। उसके विचार अथवा निर्णय और तर्क मे आधार वाक्यो की परीक्षा की जाती है जिससे कि उसमे निकलने वाले निष्कर्ष की सत्यता का पता चल सके।

(३) **ज्ञात तथ्यो से अज्ञात तथ्यो पर पहुँचने की प्रक्रियाओं का अध्ययन**—विज्ञान के रूप मे तर्कशास्त्र हमे ज्ञात तथ्यो से अज्ञात तथ्यो पर पहुँचने मे सहायता करता है। ज्ञात से अज्ञात पर पहुँचने की प्रक्रियाये दो प्रकार की है—निगमन और आगमन। इस प्रकार तर्कशास्त्र का क्षेत्र दो बडे भागो मे बाँट दिया गया है—निगमन और आगमन। निगमन मे सामान्य ज्ञात तथ्य से विशेष अज्ञात तथ्य पर पहुँचा जाता है। उदाहरण के लिये "सब मनुष्य विवेकशील है" इस सामान्य सिद्धांत से यह अज्ञात विशेष तथ्य निकाला जा सकता है कि 'राम विवेकशील है।' दूसरी ओर विशेष ज्ञात तथ्यो के आधार पर अज्ञात सामान्य तथ्य पर पहुँचने की प्रक्रिया आगमन कहलाती है। आगमन की इस प्रक्रिया का समस्त विज्ञानो मे सामान्य सिद्धान्त निकालने के लिये प्रयोग किया जाता है। तर्कशास्त्र के क्षेत्र मे निगमन और आगमन दोनो ही प्रक्रियाये सम्मिलित है। चूँकि ये दोनो ही प्रक्रियायें समस्त विचार के क्षेत्र को आत्मसात कर लेती है इसलिये तर्कशास्त्र का क्षेत्र समस्त विचार का क्षेत्र है। इसी कारण उसे विज्ञानो का विज्ञान और कलाओ की कला कहा गया है।

(४) **आगमन और निगमन में सहायक बौद्धिक क्रियाओं का अध्ययन**—तर्कशास्त्र के क्षेत्र को विस्तार-पूर्वक समझने के लिये उसके दो बडे क्षेत्रो आगमन और निगमन मे सहायक क्रियाओ को समझना उपयुक्त होगा।

(अ) **निगमन मे सहायक क्रियायें**—निगमन मे विचार के मूल नियमो जैसे तादात्म्य का नियम, व्याघात का नियम और मध्य दशा परिहार का नियम तथा पर्याप्त कारण के नियम का अध्ययन किया जाता है। उसमे पद के विभिन्न प्रकारो का अध्ययन किया जाता है। उसमे जाति, उपजाति, व्यावर्तक गुण, सहज गुण और आकस्मिक गुण आदि वाच्य धर्मो का अध्ययन किया जाता है। उसमे परिभाषा के स्वरूप, उसकी सीमाओ और आकार विषयक नियमो का अध्ययन किया जाता

है। उसमे तर्क विभाजन के प्रकारो का अध्ययन किया जाता है। उसमें तर्क वाक्य का विश्लेपण करके विभिन्न प्रकार के तर्क वाक्यो का अध्ययन किया जाता है। उसमे निरपेक्ष वाक्यो के विधान के सिद्धान्तो का अध्ययन किया जाता है। उसमे वाक्यों के विरोध के रूपो का अध्ययन किया जाता है। उसमे विभिन्न प्रकार के अनुमानो और उनके गुण दोपो का विवेचन किया जाता है। उसमे न्याय वाक्य की रचना, प्रकार तथा दोप आदि का विश्लेपण किया जाता है। अन्त मे, तर्कशास्त्र के इस क्षेत्र मे निगमन के विभिन्न प्रकार के दोपो का विवेचन किया जाता है और उनसे वचने के उपाय भी वतलाये जाते है।

(व) आगमन विषयक विभिन्न क्रियाएँ—तर्कशास्त्र के इस क्षेत्र मे आगमन की प्रकृति, स्थिति, विरोधियो और उपयोगों का अध्ययन किया जाता है। दूसरे, आगमन के आकार विपयक और द्रव्य विपयक आधारो का अध्ययन किया जाता है। इसमे परिकल्पना के अर्थ, प्रकार, प्रमाण और उपयोग का अध्ययन किया जाता है। इसमे विभिन्न प्रायोगिक विधियो का अध्ययन किया जाता है और उनके व्यावहारिक उपयोग का विवेचन किया जाता है। इसमे प्रकृति के मूल नियमो और गौण नियमो का अध्ययन किया जाता है। इसमे व्याख्या के प्रकारो, दोपो और सीमाओ का अध्ययन किया जाता है। इसमे परिभापा के अर्थ, पकार और सीमाओ का अध्ययन किया जाता है। इसमे वर्गीकरण के प्रकारो, नियमो, उपयोगो और सीमाओ का अध्ययन किया जाता है। इसमे नामकरण के प्रतिवन्धो और वैज्ञानिक भापा की आवश्यकताओ का अध्ययन किया जाता है। अन्त मे तर्कशास्त्र के इस क्षेत्र मे आगमनिक और अतार्किक दोपो का भी विवेचन किया जाता है।

तर्कशास्त्र की अधिकतर पुस्तकें दो भागो मे वटी होती है—निगमन और आगमन। इन दोनो भागो की विपय सूची पर दृष्टि डालने से इन दोनो क्षेत्रो मे सहायक उपरोक्त विभिन्न क्रियाओ को देखा जा सकता है।

आकार विषयक और द्रव्य विपयक तर्कशास्त्र
(Formal and Material Logic)

ससार की प्रत्येक वस्तु मे कोई न कोई आकार होता है और वह किसी न किसी द्रव्य (Matter) की वनी हुई होती है। उदाहरण के लिये लोटा गोल होता है और धातु का वना होता है। इसी प्रकार विचार मे भी एक आकार और द्रव्य होता है। आकार से तात्पर्य विचार की अभिव्यक्ति की विधि से है। द्रव्य से तात्पर्य उस विपय से है जिसके वारे मे विचार किया जाता है। अनेक विचारो मे आकार एक रहते हुए भी द्रव्य भिन्न हो सकते है और दूसरी ओर द्रव्य एक रहते हुये भी आकार भिन्न हो सकते है।

विचार के आकार से सम्वन्धित सत्यता आकार विपयक सत्य (Formal Truth) कहलाती है। इसका अर्थ आत्मसंगति (Self Consistency) से है। उदाहरण के लिये वृत्ताकार वर्ग मे आकार विपयक सत्य नही है क्योकि वर्ग वृत्ताकार नही हो सकता। दूसरी ओर विचार के द्रव्य की सत्यता द्रव्य विपयक सत्यता कहलाती है। इसका अर्थ विचार की वस्तुओ से सगित होने से है। उदाहरण के लिये क्षीर सागर के विचार मे द्रव्य विपयक सत्य नही है क्योकि वस्तुजगत मे दूध का समुद्र नही होता।

आकार विषयक और द्रव्य विषयक सत्यता के आधार पर तर्कशास्त्रियो ने तर्कशास्त्र को निम्नलिखित दो विभागों मे बाँट दिया है—

(१) **आकार विषयक तर्कशास्त्र** (Formal Logic)—इसमे, जैसाकि इसके नाम से स्पष्ट है, विचारो की आकार विषयक सत्यता का विवेचन किया जाता है। यह आत्मसगति का तर्कशास्त्र भी कहा जाता है क्योकि इसका सम्बन्ध विचारों की आत्मसगति से है। यह विशुद्ध (pure) तर्कशास्त्र भी कहलाता है। अनेक तर्कशास्त्रियो ने तर्कशास्त्र को आकार विषयक माना है। उदाहरण के लिये हैमिल्टन के अनुसार "तर्कशास्त्र विचारो के आकार विषयक नियमो का विज्ञान है।" मैक्सवेल और टॉमसन ने भी इस मत का समर्थन किया है। इस मत के अनुसार तर्कशास्त्र सत्य का ही नही बल्कि आत्मसगति का विज्ञान है।

(२) **द्रव्य विषयक तर्कशास्त्र** (Material Logic)—इसमे, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, यह विचार किया जाता है कि हमारे विचार कहाँ तक वस्तुजगत की वस्तुओ से अनुरूप है। दूसरे शब्दो मे, इसमे यह जॉच की जाती है कि तर्क के आधार वाक्य यथार्थ है या नही और उससे निकाला हुआ निष्कर्ष कहाँ तक वस्तु स्थिति के अनुरूप है। द्रव्य विषयक तर्कशास्त्र व्यावहारिक (Applied) तर्कशास्त्र भी कहलाता है क्योकि इसका सम्बन्ध विचारो की सगतिमात्र से न होकर उनकी व्यवहारिक सत्यता से है।

तर्कशास्त्र के विषय मे उपरोक्त दोनो मत एकाँगी हैं। वास्तव मे तर्कशास्त्र को आकार विषयक और द्रव्य विषयक विभागो मे बाँटना अनुचित है क्योकि उसका सम्बन्ध दोनो ही प्रकार की सत्यता से है तथा इन दोनो सत्यताओ को एक दूसरे से अलग नही किया जा सकता। विचार के आकारो को उसके द्रव्य से पूर्णतया पृथक् नही किया जा सकता। इसलिये आकार विषयक और द्रव्य विषयक तर्कशास्त्र को पृथक् मानना अनुचित है। ये तर्कशास्त्र के दो परस्पर सम्बन्धित पहलू है। केवल विवेचन की सुविधा के लिये इनको अलग अलग कर दिया गया है। अस्तु, तर्कशास्त्र को केवल आकार विषयक या केवल द्रव्य विषयक मानना अनुचित है। इस प्रकार सत्यता को समझने के लिये उसके आकार और द्रव्य दोनो पर विचार करना आवश्यक है। यही बात विचार के बारे मे कही जा सकती है। किसी भी दार्शनिक के विचारो की तार्किक विवेचना करने मे जहाँ यह देखना आवश्यक है कि वे कहाँ तक आत्मसगत है, वहाँ यह भी देखना जरूरी है कि वे कहाँ तक हमारे अनुभवो के अनुरूप है। यदि कोई विचार हमारे अनुभव के विरुद्ध है तो चाहे वे आपस मे कैसे भी सुसगत हो उनको सत्य नही कहा जा सकता। अस्तु, आधुनिक तर्कशास्त्री तर्कशास्त्र को आकार विषयक और द्रव्य विषयक पहलूओ मे विभाजित करते हुए भी यह मानते हैं कि तर्कशास्त्र का सम्बन्ध इन दोनो ही प्रकार की सत्यता से है।

तर्कशास्त्र के विरुद्ध आपत्तियाँ

आधुनिक काल मे कोई भी समझदार विद्वान तर्कशास्त्र के महत्त्व से इन्कार नही करता किन्तु फिर भी ज्ञान के इतिहास मे कुछ आलोचको ने तर्कशास्त्र के अध्ययन को व्यर्थ ठहराया है। यहाँ पर तर्कशास्त्र के महत्त्व का विवेचन करने से पूर्व उसके अध्ययन के विरुद्ध उठायी गई आपत्तियो का सक्षिप्त वर्णन उपयुक्त होगा। स्थूल रूप से तर्कशास्त्र के विरुद्ध आपत्तियाँ निम्नलिखित है —

(१) **तर्कशास्त्र तर्क करना नहीं सिखाता**—तर्कशास्त्र के विरुद्ध एक आक्षेप यह उठाया गया है कि यह आवश्यक नही है कि तर्कशास्त्र के अध्ययन से तर्क करना

आ जाये। वास्तव मे तर्कशास्त्र के विरुद्ध यह आक्षेप निराधार है क्योंकि तर्कशास्त्र का कार्य तो तर्क के नियमो को स्पष्ट कर देना है, उन नियमों पर अमल करना प्रत्येक व्यक्ति की अपनी इच्छा पर निर्भर है। तर्कशास्त्र हमे तर्क मे होने वाले दोषों से परिचित कराता है जिससे कि हम उन दोषो से बच सकते है। वास्तव मे केवल तर्कशास्त्र ही नही बल्कि कोई भी विज्ञान मनुष्य को अपने क्षेत्र की ऐसी व्यावहारिक शिक्षा नही देता कि वह उसे विशिष्ट प्रकार के व्यवहार मे कुशल बनाने का दावा कर सके। उदाहरण के लिये समाज मनोविज्ञान के अध्ययन से कोई व्यक्ति कुशल नेता बन जाये यह आवश्यक नही है यद्यपि समाज मनोविज्ञान मे नेतृत्व की प्रकृति, प्रकार, गुण इत्यादि की विवेचना की जाती है। यही बात तर्कशास्त्र के विषय मे कही जा सकती है और जिस तरह समाज मनोविज्ञान तथा अन्य विज्ञानो के अध्ययन के विरुद्ध यह आक्षेप नही उठाया जाता कि उनसे हम कोई कुशलता प्राप्त नहीं होती उसी प्रकार यह कहना व्यर्थ है कि तर्कशास्त्र हमे तर्क करना नही सिखाता।

(२) **तर्कशास्त्र सही तर्क करना नही सिखाता**—तर्कशास्त्र के विरुद्ध इस आक्षेप के अनुसार केवल तर्कशास्त्र पढने से ही सही तर्क करना सीखा जाता हो यह आवश्यक नही है। अनेक विद्वानो ने कभी तर्कशास्त्र नही पढ़ा। परन्तु फिर भी वे सही तर्क करते है। दूसरी ओर अनेक ऐसे व्यक्ति गलत तर्क करते हैं जो तर्कशास्त्र से परिचित है। ध्यान से देखा जाए तो तर्कशास्त्र के विरुद्ध यह आक्षेप बिल्कुल निराधार है। यदि कुछ बाते अनुमान से सही बन पडती है तो इसका अर्थ यह नही है कि हम उनके विषय मे वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने की चेष्टा न करें। यह ठीक है कि कई बार तर्कशास्त्र के ज्ञान के अभाव मे भी व्यक्ति सही तर्क करता है परन्तु क्या इससे यह तथ्य किसी प्रकार से गलत सिद्ध होता है कि तर्कशास्त्र का ज्ञान होने पर सही तर्क करने की सम्भावना और भी बढ जायेगी। यह ठीक है कि स्वास्थ्य विज्ञान का अध्ययन न करने पर भी कुछ लोग स्वास्थ्य बनाये रह सकते है परन्तु क्या स्वास्थ्य विज्ञान का अध्ययन करने से उनके लिये स्वास्थ्य बनाये रखना अधिक सम्भव नही होगा। अस्तु, तर्कशास्त्र के ज्ञान से सही तर्क करना निश्चय ही अधिक सम्भव हो जाता है।

तर्कशास्त्र का महत्त्व

तर्कशास्त्र के अध्ययन के विरुद्ध उपरोक्त आपत्तियो का निराकरण करने के पश्चात् अब तर्कशास्त्र के महत्त्व अथवा उपयोगिता का विवेचन किया जा सकता है। इस सम्बन्ध मे निम्नलिखित बाते कही जा सकती है।

(१) **विज्ञानो का विज्ञान**—तर्कशास्त्र का महत्त्व इस बात से सिद्ध होता है कि वह विज्ञानो का विज्ञान है। उसके ज्ञान के अभाव मे कोई भी वैज्ञानिक न तो शुद्ध रूप मे विचार कर सकता है न आगमन और निगमन की विधियो के द्वारा ज्ञात तथ्यो से अज्ञात निष्कर्षों पर पहुँच सकता है और न अपने निष्कर्षों को तर्कयुक्त भाषा मे ही उपस्थित कर सकता है। स्पष्ट है कि प्रत्येक वैज्ञानिक के लिए तर्कशास्त्र का ज्ञान आवश्यक है।

(२) **विचार के नियमों का ज्ञान**—तर्कशास्त्र हमे विचार के नियम बतलाता है जिन पर चल कर सही विचार किया जा सकता है। इन नियमो का उल्लंघन करने से विचार दोषपूर्ण हो जाता है। इसलिये तर्कशास्त्र के नियमो को न जानने के कारण बहुत से लोग अनायास ही गलत निष्कर्ष निकाल लेते है। उदाहरण के

लिये कोई व्यक्ति यह तर्क कर सकता है कि आदमी के दो पैर है और मुर्गे के भी दो पैर है तथा इसलिये आदमी मुर्गा है । इस प्रकार के तर्क मे क्या दोष है, यह तर्क-शास्त्र वतलाता है ।

(३) **भूलो से वचाव**—इस प्रकार तर्कशास्त्र हमे विचार की भूलो से वचाता है । वह हमे यह वतलाता है कि किस वात से तार्किक रूप मे क्या निष्कर्ष निकाला जा सकता है और कौन-से निष्कर्ष गलत है । तर्कशास्त्र केवल हमे अपने विचार और चिन्तन की भूलो से ही नही वचाता किन्तु वह हमे दूसरो द्वारा उपस्थित किये गये विचारो के दोष समझने मे भी सहायक होता है । जनतन्त्र मे प्रत्येक व्यक्ति को देश से सम्वन्धित प्रश्नो पर स्वतन्त्र रूप से विचार करना पडता है क्योंकि भिन्न-भिन्न राजनैतिक दल प्रत्येक प्रश्न पर इतने अलग-अलग दृष्टिकोण से मत प्रस्तुत करते है कि यदि व्यक्ति मे स्वतन्त्र चिन्तन की सामर्थ्य न हो तो वह सही फैसला नही कर सकेगा । विभिन्न मत मतान्तरो मे सत्य को पहचान लेने के लिए तर्कशास्त्र का ज्ञान आवश्यक है जिससे कि हम शुद्ध और अशुद्ध विचारो मे अन्तर कर सके । वास्तव मे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे प्रत्येक व्यक्ति को जो विचार करने की आवश्यकता पडती है उसमे भूलो से वचने के लिए तर्कशास्त्र का ज्ञान आवश्यक है । समाज के जीवन मे औद्योगिक, राजनैतिक, आर्थिक तथा विभिन्न सामाजिक सस्थाओ के जीवन मे विभिन्न वातो को समझने के लिये शुद्ध विचार की आवश्यकता होती है । शुद्ध और तर्कपूर्ण विचार न करने वाला नेता, राजनीतिज्ञ अथवा कूटनीतिज्ञ कभी भी सफल नही हो सकता । यही वात वकील, डाक्टर, इजीनियर, मजिस्ट्रेट, कलक्टर आदि समाज मे किसी भी स्थिति मे जिम्मेदार व्यक्ति के लिये कही जा सकती है । सच तो यह है कि जहाँ कही भी विचार की आवश्यकता पडती है वही तर्कशास्त्र का महत्व है । दूसरे शव्दो मे, तर्कशास्त्र का महत्व सव कही है ।

(४) **भूल को समझने और समझाने में सहायता**—विचार के दौरान में हमारे सामने वरावर यह समस्या उपस्थित होती है कि हम ठीक प्रकार से तर्क कर रहे है या नही, इसी प्रकार दूसरे के विचारो की आलोचना मे जव हमे कोई गलती अनुभव होती है तो उसे यह समझाना होता है कि गलती कहाँ है । इन दोनो ही कामो मे तर्कशास्त्र का ज्ञान अपेक्षित है । तर्कशास्त्र का ज्ञान होने पर व्यक्ति अपने विचारो पर नजर रखकर यह जान सकता है कि उससे कहाँ भूल हो रही है । वह शुद्ध विचार के नियमो के आधार पर वार-वार अपने चिन्तन का अवलोकन कर सकता है । इसी तरह वह दूसरे व्यक्ति को तर्कशास्त्र के नियमो का हवाला देकर यह सिद्ध कर सकता है कि उसका तर्क अशुद्ध है । ये नियम किसी व्यक्ति ने नही वनाये है वल्कि ये विचार के सार्वभौम और स्वाभाविक नियम है । इसलिए जहाँ भी इन नियमो को भग किया जाता है वही गलती होती है ।

(५) **सिद्धान्त पर पहुँचने में सहायता**—किसी भी वैज्ञानिक खोज मे सिद्धान्त पर पहुँचने के लिये सामान्य से विशेष अथवा विशेष से सामान्य की ओर तर्क करना पडता है । निगमन और आगमन की इन विधियो के आधार पर सिद्धान्त निकालने मे तर्कशास्त्र सहायता करता है ।

(६) **विवाद में निर्णय पर पहुँचने मे सहायता**—कई वार हम देखते है कि अनेक व्यक्ति अपने-अपने तर्को को लेकर इस कदर उलझ जाते है कि किसी भी निर्णय पर नही पहुँचा जा सकता । ऐसी स्थिति मे तर्कशास्त्रीय नियमो के आधार पर

विभिन्न विकल्पों के गुण दोषों की छानबीन की जा सकती है और निर्णय पर पहुँचा जा सकता है। कभी-कभी व्यक्तिगत रूप से विचार करने में भी हमारे सामने इतने अधिक विकल्प उपस्थित हो जाते हैं कि हम कोई निर्णय नहीं कर पाते कि कौनसी सम्भावना ठीक है और कौन-सी सम्भावना गलत है। ऐसी स्थिति में तर्कशास्त्रीय नियमों पर चलकर सही निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है। इस प्रकार तर्कशास्त्र हमें वाद-विवाद के अन्धकार में प्रकाश दिखलाता है। वह वितण्डा और वाग्जाल में सही मार्ग दर्शन करता है, उसके ज्ञान से व्यक्ति और समूह किसी भी जटिल प्रश्न पर सही निर्णय पर पहुँच सकते हैं।

(७) मानसिक व्यायाम—अन्त में तर्कशास्त्र का अध्ययन एक प्रकार का मानसिक व्यायाम है। तर्कशास्त्रीय प्रश्नों को हल करने से व्यक्तियों में सही तर्क करने की योग्यता बढ़ती है और मस्तिष्क को सही चिन्तन करने की आदत पड़ती है। यही कारण है कि तर्कशास्त्र का अध्ययन ज्ञान के किसी भी क्षेत्र में गहराई से प्रवेश करने के लिये आवश्यक माना गया है। तर्कशास्त्र के अभ्यास से सही चिन्तन की शक्ति प्राप्त करके यदि व्यक्ति ज्ञान के किसी क्षेत्र में उतरता है तो वह गलतियों से सावधान रहता है और विभिन्न मतों में सही मत को पकड़ सकता है तथा सही रूप से विचार कर सकता है।

तर्कशास्त्र की उपयोगिता अथवा महत्व के उपरोक्त पहलुओं के अध्ययन से स्पष्ट है कि तर्कशास्त्र का केवल दार्शनिक के ही लिये नहीं बल्कि वैज्ञानिक के लिए भी, विद्वान और प्राध्यापक के लिये ही नहीं बल्कि सामान्य व्यक्ति और किसी भी व्यवसाय में लगे व्यक्ति के लिये समान रूप से महत्व है।

सारांश

प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष ज्ञान—ज्ञान ऐसे विचारों का समूह है जो चिन्तन की विषय वस्तु की वास्तविक प्रकृति के अनुरूप हों। ज्ञान में तीन मूल तत्व होते हैं—१. ज्ञान विचारों के रूप में मन में रहता है, २. ज्ञान कहलाने वाले विचारों का वास्तविक प्रकृति के अनुरूप होना आवश्यक है, ३. ज्ञान कहने में इस अनुरूपता में विश्वास सम्मिलित है। ज्ञान मुख्य रूप से दो प्रकार का माना गया है, प्रत्यक्ष ज्ञान और अप्रत्यक्ष ज्ञान। अप्रत्यक्ष ज्ञान के दो मुख्य स्रोत हैं—अनुमान या तर्क और साक्ष्य। यह अप्रत्यक्ष ज्ञान ही तर्कशास्त्र का विषय है। इस प्रकार तर्कशास्त्र में अनुमान या तर्क और साक्ष्य का विवेचन किया जाता है।

तर्कशास्त्र की परिभाषा—तर्कशास्त्र भाषाभिव्यक्त विचारों का विज्ञान है। यह तर्क का विज्ञान है जो कि चिन्तन की सबसे ऊँची अवस्था है। तर्क दो प्रकार के होते हैं—आगमनात्मक और निगमनात्मक, जिसके आधार पर तर्कशास्त्र को इन दो बड़े वर्गों में बाँटा जाता है। तर्कशास्त्र आकार विषयक सत्यता का विज्ञान है अथवा वह द्रव्य विषयक सत्यता का विज्ञान है, इस विषय में मतभेद है। वास्तव में तर्कशास्त्र आकार और द्रव्य विषयक सत्यता का विज्ञान है।

विज्ञान अथवा कला—कुछ तर्कशास्त्रियों ने तर्कशास्त्र को तर्क करने की कला कहा है। अन्य तर्कशास्त्रियों ने उसको तर्क का विज्ञान माना है। वास्तव में तर्कशास्त्र विज्ञानों का विज्ञान और कलाओं की कला है। मिल के शब्दों में, "तर्क-शास्त्र बुद्धि की उन क्रियाओं का विज्ञान है जो प्रमाण के मूल्यांकन में उपयोगी हैं

और यह ज्ञात तथ्यों से अज्ञात तथ्यों पर पहुँचने की प्रक्रिया तथा उसमें सहायता देने वाली अन्य सभी बौद्धिक क्रियाओं का विचार करता है।"

विज्ञानों का विज्ञान—तर्कशास्त्र को विज्ञानों का विज्ञान कहा जाता है क्योंकि इससे—१. मूल प्रत्ययों की व्याख्या होती है, २. वैज्ञानिक निर्णयों के दोष पता चलते है, ३. तार्किक प्रत्ययों के प्रयोग निश्चित होते हैं, ४. विज्ञान के क्षेत्र में आगमन और निगमन विधियो के प्रयोग की जाँच की जाती है।

विधायक अथवा नियामक विज्ञान—तर्कशास्त्र नियामक विज्ञान है। विधायक विज्ञान और नियामक विज्ञान के अन्तर से उसकी प्रकृति स्पष्ट होती है। यह अन्तर इस प्रकार है—१. विधायक विज्ञान 'है' का और नियामक विज्ञान 'होना चाहिए' का अध्ययन करता है, २. विधायक विज्ञान तथ्यों से और नियामक विज्ञान मूल्यों से सम्बन्धित है, ३. नियामक विज्ञानों का क्षेत्र विधायक विज्ञानों से अधिक व्यापक है, ४. प्राकृतिक विज्ञान के निर्णय तथ्यात्मक और नियामक विज्ञान के मूल्यात्मक होते हैं।

निहित अर्थ के विज्ञान के रूप में तर्कशास्त्र—तर्कशास्त्र भाषाभिव्यक्त विचारों का विज्ञान है। उसमें तर्कवाक्यों और पदो में निहित अर्थों की विवेचना की जाती है। यह निहित अर्थ आगमन और निगमन दो विधियों से निकाला जाता है। इस प्रकार तर्कशास्त्र को निहित अर्थ का विज्ञान कहा जा सकता है। तर्कशास्त्र के इस रूप पर आधुनिक काल में तार्किक भाववादी नामक दार्शनिक सम्प्रदाय के अनुयायियों ने विशेष जोर दिया है।

तर्कशास्त्र का क्षेत्र—तर्कशास्त्र की परिभाषा से उसका क्षेत्र स्पष्ट होता है। यह क्षेत्र है—१. बुद्धि की क्रियाओं का अध्ययन, २. प्रमाण के मूल्यांकन में उपयोगी क्रियाओं का अध्ययन, ३. ज्ञात तथ्यों से अज्ञात तथ्यो पर पहुँचने की प्रक्रियाओं का अध्ययन, ४. आगमन और निगमन में सहायक बौद्धिक क्रियाओं का अध्ययन।

आकार विषयक और द्रव्य विषयक तर्कशास्त्र—तर्कशास्त्र के क्षेत्र के विषय में यह विवाद उठ खड़ा हुआ है कि उसकी विषय सामग्री आकार विषयक सत्यता है अथवा द्रव्य विषयक सत्यता। चूँकि आधुनिक तर्कशास्त्री दोनों ही प्रकार की सत्यता को तर्कशास्त्र की विषय सामग्री मानते हैं इसलिये तर्कशास्त्र के क्षेत्र को आकार विषयक तर्कशास्त्र और द्रव्य विषयक तर्कशास्त्र में बाँट दिया गया है। इनमें से पहले में तर्कशास्त्र के सिद्धान्त और दूसरे में व्यावहारिक तर्कशास्त्र आता है।

तर्कशास्त्र के विरुद्ध आपत्तियाँ—कुछ विचारकों ने तर्कशास्त्र के महत्व के विरुद्ध आपत्तियाँ उठायी हैं। इनमें मुख्य आपत्तियाँ हैं—१. तर्कशास्त्र तर्क करना नहीं सिखाता, २ तर्कशास्त्र सही तर्क करना नहीं सिखाता। तर्कशास्त्र के विषय में ये दोनों ही आपत्तियाँ अज्ञान की परिचायक है।

तर्कशास्त्र का महत्व—तर्कशास्त्र के महत्व के विषय में मुख्य बातें हैं—१. तर्कशास्त्र विज्ञानों का विज्ञान है, २. वह विचार के नियम का ज्ञान देता है, ३. वह विचार की भूलों से बचाता है, ४. वह भूलों को समझने और समझाने में सहायता देता है, ५. वह सामान्य सिद्धान्तों पर पहुँचने मे सहायता देता है, ६ वह विवाद में निर्णय पर पहुँचने में सहायता देता है, ७ वह एक प्रकार का मानसिक व्यायाम है।

अभ्यास के लिये प्रश्न

१ तर्कशास्त्र से आप क्या समझते है ? मनोविज्ञान तथा तर्कशास्त्र के भेद बताइये ।
(यू० पी० बोर्ड १९७०)

२. तर्कशास्त्र की उपयुक्त परिभाषा कीजिये । तर्कशास्त्र विज्ञान है अथवा कला ?
(यू० पी० बोर्ड १९६३)

३. तर्कशास्त्र क्या है ? तर्कशास्त्र के स्वरूप, क्षेत्र तथा महत्व का विवेचन कीजिए ।
(यू० पी० बोर्ड १९६२)

४. आपके अनुसार तर्कशास्त्र की सर्वाधिक सन्तोषजनक परिभाषा क्या है ? सकारण उत्तर दीजिये । (गोरखपुर १९७२)

५. इस कथन का क्या अर्थ है कि तर्कशास्त्र सही अनुमान का विज्ञान है ? विस्तृत उत्तर दीजिये । (आगरा १९७४)

६. तर्कशास्त्र क्या है ? उसका महत्व बतलाइये । (बुंदेलखण्ड १९७८)

७. विधायक तथा नियामक विज्ञानो मे भेद कीजिये और विज्ञान के रूप मे तर्कशास्त्र के स्वरूप को स्पष्ट कीजिये । (मेरठ १९७८)

८. "तर्कशास्त्र युक्ति का विज्ञान तथा कला है ।" विवेचन कीजिये । (आगरा १९७६)

९. क्या आप इस कथन से सहमत है कि तर्कशास्त्र विज्ञानो का विज्ञान है ? इसे नियामक विज्ञान क्यो कहा गया है ? (आगरा १९७५)

१०. तर्कशास्त्र एक विज्ञान है जो शुद्ध विचार के सामान्य सिद्धान्तो का अन्वेषण करता है । विवेचन कीजिये । (गोरखपुर १९७६)

११. सक्षिप्त टिप्पणी लिखिये—तर्कशास्त्र का स्वरूप । (गोरखपुर १९७५)

२

शब्द और भाषा

(WORDS AND LANGUAGE)

जीवित प्राणियो मे सब कही उच्च श्रेणी के पशुओ मे किसी न किसी प्रकार के सकेतो और चिन्हो के द्वारा सदेशवहन की क्रिया दिखलाई पडती है। सामूहिक जीवन मे एक पशु को दूसरे पशु से सदेशवहन करना आवश्यक हो जाता है। मनुष्यो ने भाषा का विकास करके सदेशवहन की अभूतपूर्व शक्ति प्राप्त की है। मानव शिशु मे भाषा के विकास के पूर्व क्रन्दन ध्वनि, बबलाना तथा अग विक्षेप आदि के द्वारा सदेशवहन का कार्य किया जाता है। इनसे बालक अपनी आवश्यकता को अपने माता पिता को समझाता है। डेढ वर्ष की आयु के बालक मे भाषा का विकास होने लगता है। उसकी आकलन शक्ति बढने लगती है। उसके शब्द कोष मे वृद्धि होती जाती है। वह वाक्य निर्माण करना सीखता है और शब्दो का सही उच्चारण कर सकता है।

भाषा का विकास

भिन्न-भिन्न भाषाओ मे भिन्न-भिन्न प्रकार के शब्दो का प्रयोग किया जाता है। ये शब्द ही भाषा बनाते है। भाषा मे बोले जाने वाले वाक्य शब्दो से बनते है और ये शब्द अक्षरो से मिलकर बनते है। शब्दो के अभाव मे न तो अक्षर का महत्व होता है और न वाक्य का महत्व होता है। दूसरी ओर वाक्य अथवा अक्षर के अभाव मे भी शब्द का महत्व होता है। अकेले शब्द की ध्वनि भी होती है और अर्थ भी होता है। यद्यपि कुछ शब्द निरर्थक भी होते है परन्तु अधिकतर शब्दो मे ध्वनि और अर्थ दोनो ही मिलते है। शब्द निरूपण मे शब्द के रूप और अर्थ दोनो का विचार किया जाता है। इसमे यह देखना होता है कि विशिष्ट शब्द किस धातु से किस प्रकार बना है। दूसरे, शब्द निरूपण मे यह भी देखना होता है कि व्याकरण की दृष्टि से उचित शब्द क्या है अर्थात् वह सज्ञा है, विशेषण है, अथवा अन्य कुछ है।

शब्द और भाषा

हिन्दी भाषा मे पाँच प्रकार के शब्द पाये जाते है तत्सम शब्द जो कि सस्कृत भाषा से ज्यो के त्यो लिये गये है जैसे ज्ञान, तद्भव शब्द जो कि सस्कृत या प्राकृत से बिगड कर हिन्दी मे आये है जैसे दूध, देशज शब्द जो विभिन्न प्रदेशो मे बोले जाते है और जिनकी उत्पत्ति का पता नही है जैसे जूता, चिडिया इत्यादि, विदेशी शब्द जिनमे अर्बी, पश्तो, तुर्की, डच, फ्रासीसी, पुर्तगाली तथा अग्रेजी इत्यादि विदेशी भाषाओ के शब्द सम्मिलित है। इनके अलावा समान अर्थो वाले पर्यायवाची शब्द

शब्द के प्रकार

होते हैं जैसे जल के लिये सलिल, नीर, वारि, पय इत्यादि अनेक शब्दों का प्रयोग किया जाता है। कुछ शब्द ऐसे हैं जो अनेक अर्थों मे प्रयोग किये जाते हैं जैसे हिन्दी मे अक्षर का अर्थ वर्ण, सत्य, गगन, मोक्ष, शिव, तपस्या आदि अनेक अर्थों में किया जाता है। कुछ शब्द विलोम अथवा विपरीत अर्थ देने वाले होते हैं जैसे अनाथ का विरोधी सनाथ है। कुछ शब्द विविधार्थक होते हैं जिनमे उच्चारण समान होता है परन्तु अर्थो का भेद होता हे जैसे अन्न का अर्थ खाने योग्य पदार्थ है परन्तु आजकल उसका अर्थ अनाज से लिया जाता हे। इसके अतिरिक्त कुछ शब्द ऐसे हैं जो अनेक शब्दों के लिये प्रयोग किये जाते हैं जैसे अजातशत्रु उसके लिये प्रयोग किया जाता है जिसका अभी तक कोई शत्रु नही जन्मा है।

हिन्दी भाषा मे विभिन्न प्रकार के शब्दो के उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भाषा मे शब्द का कितना अधिक महत्व है। तर्कशास्त्र मे भाषा का अर्थ बोलने के अगो से उत्पन्न सार्थक ध्वनियो के एक क्रम अथवा लिखे हुए शब्दो के एक क्रम से लिया जाता है। ये लिखे हुये शब्द बोले हुये शब्दों के प्रतीक होते है। बोले अथवा लिखे हुये शब्द विचारो के प्रतीक होते हैं।

भाषा के कार्य
(Functions of Language)

मानव जीवन मे भाषा के कार्य निम्नलिखित है—

(१) **विचारों का विस्तार**—जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, भाषा का मुख्य कार्य सदेशवहन अर्थात् विचारो को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक पहुंचाना है। यदि भाषा न हो तो हम दूसरे को अपने मन की बात नही समझा सकते और वह हमारे मन मे ही रह जायेगी। इसीलिये भिन्न भाषा-भाषी व्यक्ति को अपनी बात समझाने मे बड़ी कठिनाई होती है और इसीलिये जब हम किसी विशेष मानव समूह के विचारो से परिचित होना चाहते है तो पहले उसकी भाषा सीखते हैं। लिखित भाषा मे सदेशवहन देशकाल की सीमाओ से बन्धा नही होता क्योकि लेख के रूप मे विचार लिखे जाने के बहुत समय बाद और बहुत दूर तक भी पहुंचाया जा सकता है। यही कारण है कि आज भी लोग सुकरात और मनु के विचारो से प्रभावित होते हैं। इसीलिये अपने विचारो को बहुत दूर तक फैलाने के लिये लोग भाषा को लिपिबद्ध करते है।

(२) **विचारो में स्थिरता**—भाषा का एक दूसरा कार्य विचारों मे स्थिरता उत्पन्न करना है। भाषा के बिना चिन्तन असम्भव है। भाषा के द्वारा ही हम अपने अनुभवो को प्रत्ययो और विचारो का रूप देते है जिससे कि वे हमारे मन मे बने रहते हैं। अनुभव क्षणिक होता है और उसके बीत जाने के बाद वह विचार के रूप मे ही स्थायी रहता है। भाषा के द्वारा अनुभव को शब्दो मे जकड़ लिया जाता है। भाषा के माध्यम से ही विभिन्न अनुभूतियाँ और भाव स्थायी हो पाते हैं।

(३) **जटिल तथ्यों का विश्लेषण**—भाषा की सहायता से जटिल तथ्यो का सरल तथ्यो मे विश्लेषण किया जा सकता है जिससे कि उनके अर्थ को समझा जा सके।

(४) **प्रत्ययों का निर्माण**—भाषा की सहायता से हम प्रत्ययो का निर्माण करते है जिनसे विचार करने की प्रक्रिया सम्भव हो पाती है।

भाषा की शुद्धता व्याकरण का विषय है। व्याकरण उन नियमो का वर्णन

करता है जिन पर चल कर शब्दो और वाक्यो की ठीक प्रकार से रचना की जा सकती है। यद्यपि सभी भाषाओ मे सामान्य व्याकरण का ही प्रयोग होता है किन्तु फिर भिन्न-भिन्न भाषाओ मे विशेष व्याकरण भी होते है।

भाषा और व्याकरण

व्याकरण यह बतलाता है कि किन शर्तो को मानने से भाषा सही होती है। दूसरी ओर तर्कशास्त्र भाषा मे अभिव्यक्त विचारो का विज्ञान है इसीलिये कुछ विद्वानो ने दोनो मे अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध माना। व्हेटली के अनुसार तर्कशास्त्र का एकमात्र लक्ष्य शब्दो का स्वगत प्रयोग है इस विचार में तर्कशास्त्र और व्याकरण का अन्तर भुला दिया गया है। जब कि व्याकरण का सम्बन्ध भाषा से होता है, तर्कशास्त्र का सम्बन्ध विचार से है। भाषा की दृष्टि से सही होते हुये भी तर्कशास्त्र की दृष्टि से वाक्य गलत हो सकता है, इसी कारण दार्शनिक विवेचन मे व्याकरण की दृष्टि से नही बल्कि तर्कशास्त्र की दृष्टि से विचार किया जा सकता है।

भाषा और विचार के सम्बन्ध को लेकर दार्शनिको ने यह प्रश्न उठाया है कि क्या भाषा मे प्रचलित सामान्य प्रत्यय की कोई वास्तविक सत्ता होती है अथवा वह केवल नाम मात्र है। इस सम्बन्ध मे निम्नलिखित तीन मत प्रचलित है—

(१) **वस्तुवाद**—इसके अनुसार प्रत्येक सामान्य प्रत्यय की वास्तविक सत्ता होती है। उदाहरण के लिये मनुष्य के सामान्य प्रत्यय की सत्ता प्रत्येक मनुष्य मे सत्व के रूप मे होती है।

सामान्य प्रत्यय की प्रकृति

(२) **सामान्य प्रत्ययवाद** (Conceptualism)—इसके अनुसार सामान्य प्रत्यय की कोई वास्तविक सत्ता नही होती, वह मानसिक होता है।

(३) **नामवाद** (Nominalism)—इसके अनुसार सामान्य प्रत्यय सत्ता का सूचक न होकर नाम का सूचक होता है।

तर्कशास्त्र मे जो विचार का प्रयोग किया जाता है उसका अर्थ साधारण ज्ञान अथवा विचार की प्रक्रिया का फल है। भाषा मे व्यक्त विचार तर्क वाक्य कहलाता है। तर्क वाक्यो से युक्ति बनती है। यही तर्कशास्त्र की विषय वस्तु है।

सारांश

जीवित प्राणियो मे केवल मनुष्य ही भाषा के माध्यम से विचारों का आदान प्रदान करता है। भाषा शब्द से बनती है। शब्द विभिन्न प्रकार के होते हैं जैसे तत्सम, तद्भव, पर्यायवाची, अनेकार्थक शब्द इत्यादि। भाषा का कार्य विचारों को एक व्यक्ति से दूसरे तक पहुंचाना है। वह विचारों में स्थिरता उत्पन्न करती है। उसकी शुद्धता व्याकरण का विषय है। भाषा और विचार के सम्बन्ध को लेकर दार्शनिकों में विशेष तौर से तीन मत मिलते हैं—(१) वस्तुवाद, (२) सामान्य प्रत्ययवाद, (३) नामवाद।

अभ्यास के लिये प्रश्न

१. चिन्तन मे भाषा के कार्यों की विवेचना कीजिये। (बुन्देलखण्ड १९७८)

२. सक्षिप्त टिप्पणी लिखिये—सावेगिक रूप से तटस्थ भाषा। (गोरखपुर १९७६)

३

तर्कशास्त्र का ज्ञान की अन्य शाखाओं से सम्बन्ध

(RELATION OF LOGIC WITH OTHER BRANCHES OF KNOWLEDGE)

प्रस्तुत अध्याय मे तर्कशास्त्र के मनोविज्ञान, दर्शनशास्त्र, और नीति शास्त्र से सम्बन्ध की विवेचना की जायेगी ।

तर्कशास्त्र और मनोविज्ञान
(Logic and Psychology)

मनोविज्ञान क्या है ?

शाब्दिक अर्थ मे मनोविज्ञान मन का विज्ञान है किन्तु आधुनिक काल मे उसे मन का विज्ञान नही माना जाता । अति प्राचीनकाल में मनोविज्ञान को आत्मा का विज्ञान कहा जाता था । यूनानी दार्शनिको ने उसे मन का विज्ञान कहा । विलियम जेम्स ने मनोविज्ञान को चेतना का विज्ञान ठहराया था । वाटसन ने मनोविज्ञान को व्यवहार का विज्ञान माना था । आधुनिक काल मे वुडवर्थ के शब्दो मे, "मनोविज्ञान उसके पर्यावरण के सम्बन्ध मे व्यक्ति की क्रियाओ का वैज्ञानिक अध्ययन है ।"[1] क्रियाओ को सक्षेप मे व्यवहार कहा जा सकता है । व्यवहार मे अनुभव भी शामिल है । जैसा कि मन ने लिखा है, "आजकल मनोविज्ञान का सम्बन्ध व्यवहार की वैज्ञानिक शोध से है जिसमे व्यवहार के दृष्टिकोण से बहुत कुछ वह भी सम्मिलित है जिसको पहले के मनोवैज्ञानिक अनुभव के रूप मे देखते थे ।"[2] सक्षेप मे, मनोविज्ञान व्यवहार का विधायक विज्ञान हे ।

तर्कशास्त्र और मनोविज्ञान में सम्बन्ध

मनोविज्ञान की उपरोक्त परिभाषा तर्कशास्त्र से उसका सम्बन्ध और अन्तर दिखलाती है । इन दोनो मे सम्बन्व निम्नलिखित है—

(१) **विचार का अध्ययन**—मनोविज्ञान चिन्तन की प्रक्रिया का अध्ययन

---

1 "Psychology is the science of the activities of the individual in relation to his environment"

—Woodworth, R S, *Psychology*, Methuen & Co London. (1949), p 20.

2 "Psychology today concerns itself with the scientific investigation of behaviour including, from the stand point of behaviour, much of what earlier psychologists dealt with as experience"

—Munn, N L, *Psychology*, George G. Harrap & Co. (London), p. 23.

करता है । उसमे विचार और तर्क की मानसिक प्रक्रिया का विश्लेषण किया जाता है । यह ज्ञान तर्कशास्त्र मे अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होता है क्योकि तर्कशास्त्र विचार के जिन नियमो को बतलाता है उनका पालन विचार से सम्बन्धित तथ्यो के ज्ञान के अभाव मे नही किया जा सकता। यहाँ पर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि जबकि मनोविज्ञान तथ्यात्मक रूप मे विचार का अध्ययन करता है, तर्कशास्त्र विचार के नियमो का पता लगाता है ।

तर्कशास्त्र और मनोविज्ञान

(२) **वैज्ञानिक प्रकृति**—मनोविज्ञान और तर्कशास्त्र दोनो की प्रकृति वैज्ञानिक है दोनों ही अपने अध्ययन मे वैज्ञानिक विधियो का प्रयोग करते है। दोनो ही कार्यकारण के सिद्धान्त को मानते है और ज्ञात के आधार पर अज्ञात के विषय मे भविष्यवाणी करने की सम्भावना मानते है ।

(३) **सैद्धान्तिक और व्यवहारिक पहलू**—तर्कशास्त्र और मनोविज्ञान दोनो ही मे सैद्धान्तिक और व्यवहारिक पहलू पाये जाते है ।

तर्कशास्त्र और मनोविज्ञान मे अन्तर

किन्तु यदि ध्यान से देखा जाए तो मनोविज्ञान और तर्कशास्त्र मे उपरोक्त समानताये स्थूल समानताये मात्र है क्योकि इन दोनो मे मौलिक अन्तर है । सक्षेप मे यह अन्तर निम्नलिखित है—

(१) **क्षेत्र का अन्तर**—जैसा कि मनोविज्ञान की परिभाषा मे पीछे बतलाया जा चुका है मनोविज्ञान का सम्बन्ध व्यवहार की वैज्ञानिक खोज से है तथा इस व्यवहार मे अनुभव भी सम्मिलित है। इस प्रकार मनोविज्ञान के क्षेत्र में समस्त मानसिक क्रियाये आ जाती है। दूसरी ओर, जैसा कि मिल के द्वारा दी हुई तर्कशास्त्र की परिभाषा से स्पष्ट होता है, तर्कशास्त्र उन मानसिक क्रियाओ से सम्बन्धित है जो कि आगमन और निगमन की क्रियाओ मे सहायता देती है। इस प्रकार तर्कशास्त्र का क्षेत्र मनोविज्ञान से सीमित है। परन्तु फिर दूसरी ओर तर्कशास्त्र का क्षेत्र मनोविज्ञान से कही अधिक व्यापक है क्योकि उसके सिद्धान्त समस्त विज्ञानो के क्षेत्र मे लागू होते है । इसीलिये उसको विज्ञान कहा जाता है ।

(२) **विषय सामग्री में अन्तर**—तर्कशास्त्र के क्षेत्र के विवेचन से स्पष्ट है कि उसकी विषय सामग्री मनोविज्ञान की विषय सामग्री से भिन्न है। सामान्य रूप से मानसिक क्रियाये तीन प्रकार की मानी जाती है—ज्ञानात्मक, भावात्मक और सकल्पात्मक । मनोविज्ञान इन तीनो का ही अध्ययन करता है। दूसरी ओर तर्कशास्त्र का सम्बन्ध केवल ज्ञानात्मक मानसिक क्रियाओ से है, वह भावात्मक अथवा सकल्पात्मक मानसिक क्रियाओ से कोई सम्बन्ध नही रखता । इस प्रकार तर्कशास्त्र की विषय सामग्री मनोविज्ञान से कही अधिक सीमित है ।

(३) **प्रकृति का अन्तर**—पीछे कहा जा चुका है कि मनोविज्ञान और तर्कशास्त्र दोनो की प्रकृति वैज्ञानिक है किन्तु फिर जबकि मनोविज्ञान विधायक विज्ञान है तर्कशास्त्र नियामक विज्ञान है। विधायक विज्ञान तथ्यो का अध्ययन करता है जब कि नियामक विज्ञान मूल्यो का अध्ययन करता है। विधायक विज्ञान के निर्णय तथ्यात्मक होते है। नियामक विज्ञान के निर्णय मूल्यात्मक होते हैं। विधायक विज्ञान जो कुछ है उसका अध्ययन करता है नियामक विज्ञान यह बतलाता है कि क्या होना चाहिये । इस प्रकार स्पष्ट है कि मनोविज्ञान और तर्कशास्त्र की प्रकृति मे मौलिक अन्तर है ।

उपरोक्त अन्तरो के होते हुए भी मनोविज्ञान और तर्कशास्त्र परस्पर पूरक है। तर्कशास्त्र के ज्ञान के बिना मनोविज्ञान ही क्या किसी भी विज्ञान में प्रामाणिक चिन्तन नही हो सकता। दूसरी ओर विचार, तर्क, स्मृति, इत्यादि के विषय में मनोवैज्ञानिक ज्ञान के अभाव मे तर्कशास्त्री अपने कार्य को सही ढग से पूरा नहीं कर सकता। इसीलिए तर्कशास्त्री को मनोविज्ञान का ज्ञान अपेक्षित है और मनोवैज्ञानिक को तर्कशास्त्र का ज्ञान होना चाहिये। यही कारण है कि विश्वविद्यालयों में दर्शनशास्त्र के अध्ययन मे मनोविज्ञान और तर्कशास्त्र दोनो ही विषय पढ़ाए जाते हैं।

तर्कशास्त्र और दर्शनशास्त्र
(Logic and Philosophy)

दर्शन क्या है ?

दर्शन कुछ विशिष्ट समस्याओ को विशिष्ट दृष्टिकोण और विशिष्ट विधियों से हल करने की दार्शनिक प्रक्रिया है जिससे विशिष्ट निष्कर्षों और परिणामों पर पहुँचा जाता है।[1] दर्शन की इस परिभाषा मे दर्शन और विज्ञान का अन्तर स्पष्ट होता है। दर्शन की मुख्य शाखाएँ आध्यात्मशास्त्र, प्रमाण-शास्त्र और मूल्यशास्त्र हैं। मूल्यशास्त्र मे विभिन्न मूल्यो का दार्शनिक विवेचन किया जाता है। मूल्य तीन प्रकार के हैं, सत्य (Truth), शुभ (Good) और सुन्दर (Beautiful) इसमें शुभ का विचार नीतिशास्त्र का विषय है और सुन्दर का विचार सौन्दर्यशास्त्र (Aesthetics) में आता है। तर्कशास्त्र तर्क वाक्यो पर पहुँचने की विधियों, उनके अर्थ निकालने की विधियो और चिन्तन के मूलभूत नियमो मे तथा निर्णयों मे सत्य और असत्य का विवेचन करता है। यह सत्य के मूल्य का शास्त्र है। इस प्रकार तर्कशास्त्र दर्शन की शाखा है। दार्शनिक के लिये तर्कशास्त्र का ज्ञान आवश्यक है यद्यपि इससे यह नही कहा जा सकता कि तर्कशास्त्री के लिये भी दर्शन का ज्ञान आवश्यक है। दर्शन तर्कशास्त्र पर निर्भर है किन्तु तर्कशास्त्र दर्शन पर निर्भर नहीं है।

दार्शनिक और तार्किक विधियाँ

दर्शन और तर्कशास्त्र का सम्बन्ध सबसे अधिक दार्शनिक विधियो के क्षेत्र मे देखा जाता है। दार्शनिक विधियो मे मुख्य विधियाँ आगमन और निगमन विधियाँ हैं। ये दोनो ही विधियाँ दार्शनिक को तर्कशास्त्र से मिलती हैं। तर्कशास्त्र आगमन और निगमन के नियमो, दोषो और उनसे सम्बन्धित विभिन्न मानसिक क्रियाओ का विज्ञान है। दर्शनशास्त्र में विश्लेषण और संश्लेषण की क्रियायें भी तर्कशास्त्र के ज्ञान के अभाव मे नही हो सकती। समकालीन दार्शनिक सम्प्रदाय तार्किक भाववाद ने विश्लेषण को दर्शन की मुख्य प्रणाली माना है। तार्किक विश्लेषण मे तर्कशास्त्र का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। इस प्रकार दर्शन की मुख्य विधि तार्किक विधि है। तर्कशास्त्र के ज्ञान के अभाव मे दार्शनिक प्रक्रिया असम्भव है।

तर्कशास्त्र का दर्शनशास्त्र से वही सम्बन्ध है जो कि उसका अन्य विज्ञानों से है। सभी विज्ञानो मे तर्कशास्त्र की आवश्यकता सही चिन्तन और सही निष्कर्ष तथा

---

१. शर्मा, डॉ० रामनाथ, पाश्चात्य दर्शन का समस्यात्मक विवेचन, केदारनाथ रामनाथ, मेरठ, तृतीय संस्करण, अध्याय १।

दर्शन में तर्कशास्त्र का महत्व

निर्णयो को उचित रूप मे अभिव्यक्त करने के लिये होती है। दर्शनशास्त्र में भी तर्कशास्त्र के ज्ञान के अभाव मे न तो शुद्ध चिन्तन हो सकता है और न तर्कयुक्त निर्णय दिये जा सकते हैं।

तर्कशास्त्र विज्ञान के रूप मे विचार के नियमो की खोज करता है। इन नियमों का पालन करके ही शुद्ध विचार किया जा सकता है। प्रत्येक विज्ञान कुछ मौलिक मान्यताओ पर आधारित होता है। उदाहरण के लिये भौतिक विज्ञान मे कार्यकारण का नियम एक मौलिक मान्यता है। इसी प्रकार तर्कशास्त्र मे तादात्म्य का नियम, व्याघात का नियम, मध्य दशा परिहार का नियम और पर्याप्त कारण का नियम इत्यादि अनेक ऐसे नियम हैं जो सिद्ध नही किये जाते बल्कि जिन्हे मान्यता के रूप मे मान लिया जाता है। इन मान्यताओ की सत्यता की परीक्षा तर्कशास्त्र की सीमा से परे है। यह कार्य दर्शनशास्त्र करता है। इस प्रकार दर्शनशास्त्र तर्कशास्त्र को ठोस आधार भूमि प्रदान करता है। दूसरी ओर तर्कशास्त्र दर्शनशास्त्र को तार्किक आधार प्रदान करता है। इस प्रकार ये दोनो ही एक दूसरे के पूरक हैं।

तर्कशास्त्र को दर्शन की आवश्यकता

तार्किक भाववादियों के अनुसार दर्शन का कार्य समस्त विज्ञानो की मूल मान्यताओं की परीक्षा करना है और यह दिखलाना है कि वे मान्यताये कहाँ तक प्रामाणिक है क्योकि विज्ञान तथ्यो के क्षेत्र तक ही सीमित रहता है और उनसे ऊपर नही उठ सकता। तर्कशास्त्र एक विज्ञान है और उसके क्षेत्र मे भी दर्शनशास्त्र वही कार्य करता है जो कि वह अन्य विज्ञानो के क्षेत्र मे करता है।

तार्किक भाववादी मत

उपरोक्त विवेचन से तर्कशास्त्र और दर्शन की शाखा आध्यात्मशास्त्र (Metaphysics) का घनिष्ठ सम्बन्ध भी स्पष्ट होता है।

तर्कशास्त्र और नीतिशास्त्र
(Logic and Ethics)

नीतिशास्त्र परम शुभ का विज्ञान है। वह मनुष्य के कर्त्तव्य अकर्त्तव्य पर विचार करता है। वह चरित्र का विज्ञान है। वह उचित और अनुचित मे भेद दिखलाता है। दूसरी ओर तर्कशास्त्र भाषा मे अभिव्यक्त विचारो का विज्ञान है। तर्कशास्त्र की सहायता से ही यह जाना जा सकता है कि कोई नैतिक निष्कर्ष कहाँ तक उचित है। उदाहरण के लिये सुखवादी दार्शनिको ने 'मनुष्य सुख की खोज करता है' इस आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि मनुष्य को सुख की खोज करनी चाहिये। तर्क की दृष्टि से तथ्यो से आदर्श नही निकलते इस लिये यह सिद्धान्त उचित नही है। उपयोगितावादी नीतिशास्त्री मिल ने यह तर्क उपस्थित किया कि जिसकी इच्छा की जा सके वह वाछनीय है। तर्कशास्त्र की दृष्टि से यहाँ पर वाक्यालकार हेत्वाभास (Fallacy of Speech) है। वाछनीय वह वस्तु नही है जिसकी हम साधारणतया इच्छा करते है बल्कि वह वस्तु है जिसकी इच्छा की जानी चाहिये। मैकेन्जी के शब्दो मे, "जब हम किसी वस्तु को वाछनीय कहते है तो बहुधा हमारा तात्पर्य केवल यही नही होता कि जो इच्छा करने योग्य है। ऐसी वस्तु कठिनता से ही कोई होगी जिसकी इच्छा न की सकती हो।

नीतिशास्त्रीय निर्णयो की तार्किक जाँच

हमारा तात्पर्य यह होता है कि उसकी वाञ्छनीयता बुद्धियुक्त है अथवा कि उसकी इच्छा की जानी चाहिये ।"[1] प्रत्येक व्यक्ति का सुख उसके लिये शुभ है, इसलिये मिल ने यह निष्कर्ष निकाला कि सबका सुख सबके लिये शुभ है। यहा पर तर्कशास्त्र की दृष्टि से रचना का हेत्वाभास (Fallacy of Composition) है। मैकेन्ज़ी के शब्दों मे यहाँ पर, "यह भुला दिया गया है कि न तो सुखो और न व्यक्तियो को ही जोड़ा जा सकता है। सुखो का एक जोड़ सुख नही है जैसे कि व्यक्तियों का एक जोड व्यक्ति नही है।

तर्कशास्त्र और नीतिशास्त्र का सम्बन्ध

उपरोक्त उदाहरणो से स्पष्ट है कि तर्कशास्त्र यह दिखलाता है कि कोई भी नैतिक निष्कर्ष कहाँ तक सत्य है। नैतिक निर्णय मे मनुष्य के सामने अनेक विकल्प होते है। इन विकल्पो मे तर्क के द्वारा स्पष्टीकरण करने की आवश्यकता होती है। उनके परिणामो का विश्लेषण किया जाता है, कल्पना से अपने को परिणामों के देश काल मे रखकर उन लोगो की दृष्टि से देखना होता है जिन पर कार्य का प्रभाव पड़ता हो। कार्यो का मूल्याकन और मूल्य की तुलना की जाती है। तब निर्णय किया जाता है और फिर उस पर अमल किया जाता है। नैतिक निर्णय की इस सम्पूर्ण प्रक्रिया मे पग पग पर तर्कशास्त्र की आवश्यकता होती है। जब कभी भी तर्कशास्त्र के नियमो को भुला दिया जाता है तभी नैतिक निर्णय गलत हो जाता है। इसलिए तर्कशास्त्र के ज्ञान के अभाव मे सही नैतिक निर्णयो पर नही पहुँचा जा सकता। अस्तु, नीतिशास्त्र का तर्कशास्त्र से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इन दोनो के सम्बन्ध के विषय मे मुख्य बाते निम्नलिखित है :—

(१) **नैतिक निर्णयो पर पहुँचने के लिये तर्कशास्त्र आवश्यक है**—जैसा कि अनेक उदाहरणो से पीछे सिद्ध किया जा चुका है, नैतिक निर्णयो पर पहुँचने के लिये तर्कशास्त्र का ज्ञान आवश्यक है।

(२) **दर्शन की शाखायें**—तर्कशास्त्र और नीतिशास्त्र दोनो ही दर्शन की दो मुख्य शाखायें है। दर्शन के क्षेत्र मे समस्त मूल्य आ जाते है। नीतिशास्त्र शुभ और तर्कशास्त्र सत्य के मूल्य की विवेचना करता है। दर्शन की शाखाओ के रूप मे दोनो परस्पर पूरक है।

(३) **विधायक विज्ञान**—तर्कशास्त्र और नीतिशास्त्र दोनो की प्रकृति वैज्ञानिक है किन्तु साथ ही साथ दोनो नियामक विज्ञान है। नियामक विज्ञान के रूप मे वे आदर्शों और नियमो से सम्बन्धित है। वे तथ्यो से सम्बन्धित नही है। इसमे से कोई भी व्यावहारिक विज्ञान नही कहा जा सकता यद्यपि दोनो ही व्यावहारिक जीवन मे उपयोगी है।

तर्कशास्त्र और नीतिशास्त्र का अन्तर

उपरोक्त समानताओ के होते हुये भी तर्कशास्त्र और नीतिशास्त्र मे अग्रलिखित अन्तर है —

1 "When we say that anything is desirable, we do not usually mean merely that it is able to be desired. There is scarcely anything that is not able to be desired. What we mean is rather that it is reasonable to desire it, or that it ought to be desired"

—Mackenzie, J S., *A Manual of Ethics*, p 169

(१) **तर्कशास्त्र व्यावहारिक विज्ञान है**—तर्कशास्त्र व्यावहारिक विज्ञान है। उसके अध्ययन से व्यक्ति शुद्ध विचार करना सीखता है क्योंकि अधिकतर अशुद्ध विचार तर्कशास्त्रीय नियमों के अज्ञान के कारण होता है। तर्कशास्त्र के इसी व्यावहारिक महत्व के कारण उसका ज्ञान प्रत्येक वैज्ञानिक और दार्शनिक के लिये आवश्यक माना जाता है। दूसरी ओर नीतिशास्त्र व्यावहारिक विज्ञान नहीं है। नीतिशास्त्र का ज्ञान होने पर भी जब तक व्यक्ति स्वतन्त्र रूप से विचार नहीं करेगा वह नैतिक निर्णय नहीं कर सकता। वह केवल आदर्शों की खोज करता है, साधनों की नहीं। वह यह तो खोजता है कि मानव जीवन का परम लक्ष्य क्या है परन्तु यह नहीं बतलाता कि इस लक्ष्य तक कैसे पहुँचा जाए। वह कर्मों और आचार के उचित और अनुचित होने का निर्णय तो देता है परन्तु यह नहीं बतलाता कि शुभ आचार करने की आदत कैसे डाली जाये अथवा चरित्र को कैसे ऊपर उठाया जाये। नियामक विज्ञान के रूप में उसका कार्य केवल आदर्श की व्याख्या करना है, उसको प्राप्त करने के नियम बतलाना नहीं है। दूसरी ओर तर्कशास्त्र केवल विचारों की शुद्धियों और अशुद्धियों से ही परिचित नहीं कराता बल्कि यह भी बतलाता है कि हम शुद्ध विचार पर कैसे पहुँच सकते हैं। किन्तु तर्कशास्त्र और नीतिशास्त्र में यह अन्तर सापेक्ष अन्तर है क्योंकि नीतिशास्त्र के ज्ञान से भी हमारे चरित्र, व्यवहार और कर्मों पर प्रभाव पड़ता है तथा केवल तर्कशास्त्र जानने मात्र से व्यक्ति सदैव ठीक प्रकार से विचार नहीं करता।

(२) **तर्कशास्त्र कला भी है**—तर्कशास्त्र विज्ञानों का विज्ञान और कलाओं की कला है। सभी कलाओं के क्षेत्र में विचार की कला के रूप में तर्कशास्त्र का प्रयोग किया जाता है। आल्ड्रिच के शब्दों में, "तर्कशास्त्र तर्क की कला है।" व्हेटली ने लिखा है, कि "तर्कशास्त्र तर्क का विज्ञान और कला है।" तर्कशास्त्र का व्यावहारिक पहलू उसका कलात्मक पक्ष दिखलाता है। दूसरी ओर, जैसाकि पीछे कहा जा चुका है नीतिशास्त्र व्यावहारिक विज्ञान नहीं है। इसीलिये वह कला भी नहीं है। मैकेन्जी के शब्दों में, "कला में अन्तिम अपील किये हुये काम के प्रति होती है जबकि नीति में अन्तिम अपील आन्तरिक लक्ष्य के प्रति होती है।"[1] जबकि कला कलाकार की योग्यता पर निर्भर है, नीति योग्यता पर नहीं बल्कि संकल्प पर निर्भर है। नैतिक गुण क्रिया में होता है जबकि कलाकार कुछ न करने पर भी अपनी प्रवीणता के कारण कलाकार बना रहता है। मैकेन्जी के शब्दों में, "एक उत्तम चित्रकार वह है जो कि सुन्दरता से चित्र बना सकता है, एक अच्छा मनुष्य वह नहीं है जो शुभ कार्य कर सकता है बल्कि वह है जो कि वास्तव में करता है।"[2] इस प्रकार स्पष्ट है कि जबकि तर्कशास्त्र कला है नीतिशास्त्र कला नहीं है।

(३) **विषय वस्तु का अन्तर**—दर्शन की दो भिन्न-भिन्न शाखाओं के रूप में तर्कशास्त्र और नीतिशास्त्र की विषय वस्तु अलग अलग है। जबकि तर्कशास्त्र की विषय वस्तु सत्यता है, नीतिशास्त्र की विषय वस्तु शुभ है। दूसरे शब्दों में जब कि तर्कशास्त्र विचार में सत्यता का अध्ययन करता है, नीतिशास्त्र संकल्प में शुभ की

---

1 "In art the ultimate appeal is to the work achieved, whereas in morals the ultimate appeal is to the inner aim —Ibid, p 10.

2 "A good painter is one who paints beautifully, a good man is not one who can but who does act rightly." —Ibid, p 8

विवेचना करता है। इस प्रकार इन दोनो ही के क्षेत्र अलग-अलग है, यद्यपि दोनो का ही दृष्टिकोण दार्शनिक दृष्टिकोण है। दोनो ही मूल्यशास्त्र की दो शाखाये हैं।

नीतिशास्त्र और तर्कशास्त्र के उपरोक्त अन्तर से यह नही समझना चाहिए कि इनका परस्पर सम्पर्क नही है। जैसाकि पीछे बतलाया जा चुका है, ये दोनो मूल्यशास्त्र है और दर्शन की दो शाखाओं के रूप मे परस्पर पूरक है। मनुष्य का लक्ष्य सत्य, शिव और सुन्दर को प्राप्त करना है। इसमे तर्कशास्त्र सत्य को और नीतिशास्त्र शिव को प्राप्त करने मे सहायक सिद्ध होता है और चूंकि सत्य और शिव परस्पर घनिष्ठ रूप से सम्बधित है इसलिये तर्कशास्त्र और नीतिशास्त्र दोनो परस्पर पूरक है।

सारांश

तर्कशास्त्र और मनोविज्ञान—तर्कशास्त्र और मनोविज्ञान दोनों में विचार का अध्ययन किया जाता है और दोनों की प्रकृति वैज्ञानिक है। दोनों में ही सैद्धान्तिक और व्यावहारिक पहलू पाये जाते है। फिर भी इन दोनो में क्षेत्र, विषय सामग्री और प्रकृति में मौलिक अन्तर है।

तर्कशास्त्र और दर्शनशास्त्र—दार्शनिक के लिये तर्कशास्त्र का ज्ञान आवश्यक है किन्तु तर्कशास्त्री के लिये दर्शन का ज्ञान आवश्यक नहीं है। तार्किक विधियों को दर्शन में प्रयोग किया जाता है। तार्किक भाववादी सम्प्रदाय ने दर्शन में तर्कशास्त्र के इस महत्व पर विशेष जोर दिया है। जबकि दर्शनशास्त्र तर्कशास्त्र को ठोस आधार भूमि प्रदान करता है, तर्कशास्त्र दर्शनशास्त्र को तार्किक आधार देता है। संक्षेप में तर्कशास्त्र दर्शनशास्त्र की एक महत्वपूर्ण शाखा है।

तर्कशास्त्र और नीतिशास्त्र—नीतिशास्त्र परम शुभ का विज्ञान है। तर्कशास्त्र भाषाभिव्यक्त विचारों का विज्ञान है। तर्कशास्त्र के द्वारा नीतिशास्त्रीय निष्कर्षो की सत्यता की जांच की जा सकती है। नैतिक निर्णयों पर पहुंचने के लिये तर्कशास्त्र आवश्यक है। तर्कशास्त्र और नीतिशास्त्र दोनो ही दर्शन की शाखायें हैं और दोनो ही नियामक विज्ञान हैं फिर भी जब कि तर्कशास्त्र व्यावहारिक विज्ञान भी है नीतिशास्त्र व्यावहारिक विज्ञान नहीं है। तर्कशास्त्र कला भी है, नीतिशास्त्र कला नहीं है। इन दोनों में विषय वस्तु का भी अन्तर है फिर भी दोनों परस्पर पूरक हैं।

अभ्यास के लिये प्रश्न

प्रश्न १—तर्कशास्त्र का निम्नलिखित मे से किसी एक से सम्बन्ध बताइये—
(अ) मनोविज्ञान, (ब) दर्शन, (स) नीतिशास्त्र।

४

विचारों के मूल नियम

(THE FUNDAMENTAL LAWS OF THOUGHT)

मनुष्य चिन्तनशील प्राणी है। चिन्तन की प्रकृति का विश्लेषण करके कुछ ऐसे मूल नियमों का पता लगाया गया है जिनको माने बिना चिन्तन सम्भव नही है।

विचार के नियम क्या हैं ?

दूसरे शब्दो मे, शुद्ध चिन्तन इन मूल नियमो के अनुसार चलता है। इस प्रकार ये नियम तर्कशास्त्र की आधारभूत मान्यताये (Fundamental Postulates) है। इनको सिद्ध करने की आवश्यकता नही है और न ये सिद्ध किये जा सकते है। ये समस्त प्रमाणो के आधार हैं, इनको स्वयं प्रमाण की आवश्यकता नही है। इसीलिये मिल ने इन्हे तर्क की सार्वभौम मान्यताये (Universal postulates of Reasoning) कहा है। यूवरवेग के शब्दों मे "ये अनुमान की स्वय सिद्धियाँ (Axioms of Inference)" है। स्पष्ट है कि इनको सिद्ध करने की आवश्यकता नही है। जहाँ कही चिन्तन है वहाँ ये नियम काम करते है। जिस प्रकार आँख के द्वारा प्रत्यक्षीकरण आँख की प्रकृति पर निर्भर है, उसी प्रकार तर्क विचारों के मूल नियमो पर आधारित है। यद्यपि हैराक्लाइटस और पारमैनाइडीज जैसे कुछ विद्वानो ने विचार के नियमो को स्वय सिद्ध मानने से इन्कार किया है परन्तु चूंकि विचार स्वय इन्ही नियमो के अनुसार किया जाता है इसलिये इन नियमो का खण्डन करने वाला विचार यदि शुद्ध है तो इन नियमो का पालन करता है और अन्यथा अशुद्ध है। दोनो ही स्थितियो मे विचार के नियमो की सत्यता सिद्ध होती है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, इनको प्रत्यक्ष रूप मे प्रमाणित नही किया जा सकता किन्तु चूंकि इन्ही के आधार पर विचार किया जाता है इसलिये ये अप्रत्यक्ष रूप से प्रमाणित होते है। इन नियमों को माने बिना विचारो को इस रूप मे नही रखा जा सकता कि अन्य व्यक्ति उनसे वही मतलब लगायें जो कि बोलने वाला कहना चाहता है।

मूल नियमों की विशेषतायें

सक्षेप मे, विचार के मूल नियमो की निम्नलिखित विशेषतायें बतलाई जा सकती है—

(१) **ये तर्कशास्त्र की मूल मान्यतायें है**—प्रत्येक विज्ञान कुछ मूल मान्यताओ पर आधारित होता है। तर्कशास्त्र विचार के मूल नियमों पर आधारित हैं। इस प्रकार ये नियम तर्कशास्त्र की मूल मान्यतायें है।

(२) **ये अटल और अनिवार्य हैं**—विचार के स्वाभाविक नियम होने के

कारण ये नियम प्राकृतिक नियमों के समान अटल और अनिवार्य है। इनका उल्लंघन नही किया जा सकता। दूसरे शब्दों में, सही विचार करने के लिये इनका पालन अनिवार्य है।

(३) **औपचारिक नियम**—प्रत्येक विचार में उसका एक वाह्य रूप होता है और कुछ अन्तर्वस्तु होती है। विचार के नियम केवल वाह्य रूप से सम्बन्धित हैं। इस प्रकार ये औपचारिक नियम है। ये तथ्य के सम्बन्ध मे कुछ भी नही बतलाते किन्तु केवल यह बतलाते हैं कि शुद्ध विचार का रूप क्या है। उदाहरण के लिये मध्यदशा परिहार का नियम यह दिखलाता है कि दो परस्पर विरोधी धर्म एक ही साथ सत्य अथवा असत्य नही हो सकते। उदाहरण के लिये आप यह नही कह सकते कि कागज न तो श्वेत है और न अश्वेत क्योकि यह इन दोनो मे से एक अवश्य होगा। इस नियम का किसी भी परिस्थिति मे उल्लघन नही किया जा सकता।

(४) **समान रूप से मौलिक**—विचार के समस्त मूल नियम परस्पर सम्बन्धित होते हुए भी एक दूसरे से उत्पन्न नही होते। दूसरे शब्दो मे ये सब नियम समान रूप से मौलिक है।

मूल नियमों की संख्या

विचार के मूल नियमो की संख्या सभी तर्कशास्त्रियो ने एक सी नही दी है। अरस्तु ने निम्नलिखित तीन मुख्य नियम बतलाए है—

(१) तादात्म्य का नियम (Law of Identity)
(२) व्याघात का नियम (Law of Contradiction)
(३) मध्य दशा परिहार का नियम (Law of Excluded Middle)

अरस्तु के बाद लाइबनित्स ने उपरोक्त तीन नियमो के अतिरिक्त विचार का एक अन्य मूल नियम माना जिसे उसने पर्याप्त कारण का नियम (Law of Sufficient Reason) कहा।

तादात्म्य का नियम

तादात्म्य के नियम को साधारणतया यह कहकर अभिव्यक्त किया जाता है कि 'अ अ है' अथवा प्रत्येक वस्तु जो है वह है। स्थूलरूप से यह वाक्य पुनरुक्ति मात्र प्रतीत होता है किन्तु यदि ध्यान से देखा जाए तो यह पुनरुक्ति नही है। इसमे भेद मे अभेद की स्थापना की गई है। इसका मूल अर्थ यह है कि वाद विवाद अथवा विचार के दौरान मे विचार के विषय का रूप एक ही बना रहना चाहिये। निगमन की प्रक्रिया मे हम जिन प्रदत्तो से प्रारम्भ करते है उनको अन्त तक अपरिवर्तित रहना चाहिये। प्रत्येक युक्ति मे प्रत्येक पद का एक ही अर्थ मे प्रयोग किया जाना चाहिए, भिन्न अर्थ मे प्रयोग करने से विचार अशुद्ध हो जायगा। इस बात को प्राचीन यूनानी दार्शनिक हैराक्लाइटस ने यह कह कर अभिव्यक्त किया था कि "हम एक ही धारा मे दो बार नही उतर सकते।" जब आप किसी नदी मे दूसरी बार कूदते है तो पहले का पानी आगे बह चुका होता है और वास्तव मे आप नये पानी मे कूदते हैं, इसलिए एक ही धारा मे दो बार उतरना सम्भव नही है। इस प्रकार ससार मे सब कुछ परिवर्तनशील है। इस आधार पर हैराक्लाइटस ने और भारतवर्ष मे बौद्ध दार्शनिको ने तादात्म्य के नियम को मानने से इन्कार किया है

तादात्म्य का नियम क्या है ?

किन्तु यदि क्षणिकवाद का सिद्धान्त मान लिया जाये तो कोई भी विचार संभव नही है और यदि विचार किया ही जाना है तो यह मानकर चलना पड़ेगा कि वस्तु, पद अथवा गुण विचार के दौरान मे स्थिर रहता है।

तादात्म्य के नियम को निम्नलिखित रूपो मे अभिव्यक्त किया जा सकता है—

तादात्म्य के नियम के विभिन्न अर्थ

(१) **जो कुछ है, है**—गीता मे कहा गया है कि जिसका भाव है उसका अभाव नही हो सकता और जिसका अभाव है उसका भाव नही हो सकता। दूसरे शब्दो मे, जो कुछ है, है और जो कुछ नही है, नही है।

(२) **प्रत्येक वस्तु अपने बराबर है**—किसी भी वस्तु से वही समझा जाना चाहिए जो कि वह है। उदाहरण के लिए किलोग्राम किलोग्राम हे और सेर सेर है, किलोग्राम और सेर इन दोनो शब्दो के निश्चित अर्थ न करने से गडबड़ होने की सम्भावना है।

(३) **कोई वस्तु वही है जो वह है**—किसी भी वस्तु की प्रकृति मे वे ही तत्व स्थायी है जो उसकी मूल प्रकृति दिखलाते है। उदाहरण के लिए मनुष्य मनुष्य है यह कहने मे भले ही पुनरुक्ति मालूम हो किन्तु कहने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य पशु अथवा पत्थर और देवता आदि से भिन्न जो मानव प्रकृति है, वही है।

(४) **प्रत्येक वस्तु अपने अनुरूप है**—लाइबनित्स ने अपने दर्शन मे यह दिखलाया है कि समस्त जगत मे निम्न से उच्चतम स्तर तक विभिन्न प्रकार की श्रेणियो मे विभाजित तत्व पाये जाते है। भिन्न-भिन्न स्तरो की वस्तुये एक दूसरे से भिन्न हैं और एक ही स्तर पर भी देशकाल के अन्तर से वस्तुओ मे अन्तर हो जाता है। इस प्रकार जगत मे कोई भी दो वस्तुये एकसी नही है इस बात को दिखलाने के लिये लाइबनित्स ने जगत मे अभेदो के तादात्म्य का नियम दिखलाया है। यदि वस्तुओ मे अभेद होता तो उनमे तादात्म्य होना चाहिये था अर्थात् उनको दो न कहकर एक ही कहना अधिक उपयुक्त होता। दूसरे शब्दो मे, जिनमे भेद नही है वे एक ही हैं और जिनमे तादात्म्य नही है उनमे भेद है। इस प्रकार किसी भी वस्तु की उपमा अन्य वस्तु से नही दी जा सकती, कलम कलम है और तलवार तलवार, प्रत्येक वस्तु अपने अनुरूप है।

(५) **प्रत्येक वस्तु अपने स्वभाव के ही अनुसार है**—इस प्रकार प्रत्येक वस्तु अपने प्राकृतिक स्वभाव के अनुसार कार्य करती है। गीता के अनुसार कोई भी व्यक्ति अपनी प्रकृति से बाहर नही जा सकता। प्रत्येक अपने स्वभाव के अनुसार व्यवहार करने के लिए बाध्य है। अतः यह कहा जा सकता है कि सिंह सिह हैं और शृगाल शृगाल, दूसरे शब्दो मे, सिह सिह की प्रकृति के अनुसार कार्य करता है और शृगाल शृगाल का स्वभाव नही छोड़ सकता।

(६) **सत्य सदैव आत्मसंगत होता है**—किसी भी सिद्धान्त की व्याख्या उसकी मूल मान्यता को ध्यान मे रखते हुये की जानी चाहिये क्योकि सत्य सदैव आत्मसंगत होता है। दार्शनिक विचारो मे किसी भी दार्शनिक के दर्शन की समीक्षा करते समय अन्य दार्शनिक सिद्धान्तो से उसकी तुलना न करते हुये यह देखना अधिक उपयुक्त होगा कि उस दर्शन मे आत्मसंगति कहाँ तक है अर्थात् वह आरम्भ मे जिन बातो को लेकर चला है उनको उसने अन्त तक निभाया है या नही?

तादात्म्य के नियम का महत्व

तादात्म्य के नियम का अर्थ यह नही है कि किसी पदार्थ मे कोई परिवर्तन होता ही नही किन्तु इस परिवर्तन मे भी एकरूपता रहती है जिसके कारण वस्तु मे तादात्म्य या निरन्तरता बनी रहती है। हमारे चारो ओर की वस्तुओं में बराबर परिवर्तन होता रहता है किन्तु जब हम किसी वस्तु पर विचार करते है तो विचार जगत मे विचार के दौरान मे वह अपरिवर्तित ही रहती है क्योंकि यदि ऐसा न हो तो उस पर विचार नही किया जा सकता। अस्तु, भले ही वास्तविक जगत मे प्रत्येक वस्तु निरन्तर परिवर्तनशील हो किन्तु तादात्म्य का नियम लागू किये बिना किसी भी वस्तु के विषय मे विचार करना सम्भव नही है क्योकि यदि विचार के दौरान मे वस्तु बदल जाती है तो विचार अशुद्ध हो जाता है। अस्तु, विचार तभी सम्भव है जबकि हम तादात्म्य का नियम मान लें और यह समझ ले कि परिवर्तन होते हुये भी प्रत्येक वस्तु मे उसका स्वभाव और प्रकृति अपरिवर्तित रहती है। ऐसा न होने पर किसी वस्तु की परिभाषा नही की जा सकती और न उसके विषय मे कोई निर्णय ही दिया जा सकता है। यहां पर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि विचार के जगत के अपने नियम है और चाहे वास्तविक जगत कुछ भी हो विचार के जगत मे विचार के नियमो का पालन किए बिना विचार सम्भव नही है। अस्तु, भले ही बर्गसां और ब्रैडले जैसे दार्शनिकों के साथ हम यह मान लें कि विचारो का जगत वस्तु जगत का प्रतिनिधि नही है बल्कि वस्तु जगत से अमूर्तकरण (Abstraction) का परिणाम है किन्तु यह निश्चित है कि इस अमूर्तकरण के बिना बर्गसां और ब्रैडले के दर्शन भी सम्भव नही थे। सच तो यह है कि विचारो के जगत को यथार्थ जगत से भिन्न ही माना जाना चाहिये भले ही इन दोनो मे परस्पर सम्बन्ध हो। इस भिन्नता को समझने पर ही हम यह समझ सकेंगे कि जिस तरह प्रकृति मे घटनाये प्राकृतिक नियमों के अनुसार चलती है, हमारे विचारो के अनुसार नही चलती, उसी प्रकार मानसिक जगत मे विचार विचारो के नियम के अनुसार ही चलने चाहिए, भले ही वस्तु जगत मे स्थिति उससे भिन्न ही क्यो न हो। इस प्रकार तादात्म्य का नियम विचार का नियम होने के कारण अटल और अनिवार्य है। जब जब हम किसी वस्तु को विचार के जगत मे लावेंगे अथवा उस पर विचार करेंगे तो भले ही प्रकृति मे वह क्षण-क्षण परिवर्तनशील रही हो विचार के जगत मे उसकी प्रकृति स्थिर हो जायेगी और तादात्म्य का नियम मानना आवश्यक होगा।

पर्याप्त कारण का नियम

पर्याप्त कारण के नियम की व्याख्या

पर्याप्त कारण के नियम को समझाते हुए लाइबनित्स ने लिखा है, "यदि किसी तथ्य अथवा उक्ति का कोई पर्याप्त कारण न हो कि वह जो है वही होनी चाहिये अन्य रूप मे नही, तो वह यथार्थ अस्तित्व में अथवा सत्य नही हो सकती।" इस प्रकार ससार मे प्रत्येक वस्तु का पर्याप्त कारण अवश्य होता है। लाइबनित्स ने पर्याप्त कारण को आध्यात्मशास्त्र और तर्कशास्त्र दोनो मे ही माना है। आध्यात्मशास्त्र मे जगत मे उपस्थित असख्य वस्तुओ का कोई न कोई तर्कयुक्त पर्याप्त कारण अवश्य होना चाहिये। जगत मे प्रत्येक घटना का कोई न कोई कारण अवश्य होता है और समस्त जगत का कारण ईश्वर है।

तर्कशास्त्र मे प्रत्येक निर्णय का कोई न कोई आधार अथवा निमित्त अवश्य होना चाहिये। इस आधार के बिना निर्णय तर्कयुक्त नही हो सकता। इस प्रकार भिन्न-भिन्न निर्णयो के आधार भिन्न-भिन्न होने चाहिये। जहाँ कही परिवर्तन है वहाँ उसका पर्याप्त कारण भी है।

तादात्म्य का नियम और पर्याप्त कारण का नियम

लाइबनित्स का पर्याप्त कारण का नियम वास्तव मे तादात्म्य के नियम का पूरक है। तादात्म्य के नियम के अनुसार प्रदत्तो को अपरिवर्तित रहना चाहिये। दूसरे शब्दो मे, वस्तु जैसी है वैसी ही है। पर्याप्त कारण का नियम यह बतलाता है यदि उस वस्तु मे कोई परिवर्तन होता है तो वह तभी हो सकता है जबकि उसका पर्याप्त कारण उपस्थित हो। कारण की अनुपस्थिति मे कोई भी परिवर्तन नही हो सकता। दूसरे शब्दो मे, यदि सब बाते एक सी रहे तो वस्तु जैसी है वैसी ही रहेगी। परिवर्तन तभी होगा जबकि उस परिवर्तन का पहले से कोई कारण उपस्थित हो। तादात्म्य के नियम का पूरक होने के कारण अनेक विद्वान पर्याप्त कारण नियम को उससे अलग नही मानते और विचार के केवल तीन ही मूल कारण ठहराते है।

व्याघात का नियम

व्याघात के नियम को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है कि अ 'ब' और 'अ-ब' नही हो सकता। जैसा कि गीता मे कहा गया है, जिस वस्तु का अभाव है उसका भाव नही हो सकता और जिसका भाव है उसका अभाव रूप नही हो सकता। दूसरे शब्दों मे, कोई भी वस्तु एक साथ भाव रूप और अभाव रूप नही हो सकती। यदि आप कहते है कि राम घर मे नही है तो मैं यह समझूगा कि राम घर से बाहर है। यह नहीं कहा जा सकता कि राम घर मे है और नही भी है जब तक कि 'है' और 'नही' को भिन्न अर्थो मे न लिया गया हो। यदि है का अर्थ शारीरिक उपस्थिति से ही है तो या तो उसकी शारीरिक उपस्थिति होगी या नही होगी, होगी और नही भी हो, यह सम्भव नही है क्योकि इस स्थिति मे व्याघात होता है।

अव्याघात का नियम

हैमिल्टिन ने व्याघात के नियम को अव्याघात का नियम कहा है। इसके अनुसार शुद्ध विचार का यह नियम है कि उसमे व्याघात नही होना चाहिए अर्थात् यदि कोई वस्तु श्वेत है तो वह अश्वेत नही हो सकती। यदि किसी वस्तु का अस्तित्व है तो उसका अभाव नही हो सकता और यदि किसी का अभाव है तो उसका अस्तित्व नही हो सकता। अन्य शब्दो मे, या तो अ 'ब' है या 'ब' नही है। वह ब हो भी और न भी हो यह एक साथ सम्भव नही है। किसी भी वस्तु मे एक ही देश काल मे परस्पर विरोधी गुण नही हो सकते। यह ठीक है कि ढाल श्वेत और अश्वेत दोनो है तथा उसका एक ही पहलू भी कभी अश्वेत और कभी श्वेत हो सकता है किन्तु एक ही समय मे ढाल का कोई पहलू एक ही साथ श्वेत भी हो और अश्वेत भी यह सम्भव नही है।

विचार के इस नियम को व्याघात का नियम न कहकर अव्याघात का नियम (Law of Non-Contradiction) कहना ही अधिक उपयुक्त होगा क्योकि कहने का तात्पर्य यह है कि शुद्ध विचार के लिए अव्याघात, एक शर्त है, व्याघात होने पर विचार अशुद्ध हो जाता है।

अव्याघात के नियम का महत्व

यहाँ पर भी यह बात ध्यान रखनी आवश्यक है कि प्रकृति मे भले ही वस्तुओ मे परस्पर विरोधी गुण दिखलाई पड़ें किन्तु विचार के जगत मे अव्याघात के नियम को माने बिना शुद्ध विचार नही किया जा सकता क्योंकि यदि किसी कथन का उल्टा भी सत्य है तो या तो वह कथन ही सही होगा या उसका उल्टा, दोनो को सही नही कहा जा सकता ।

मध्य दशा परिहार का नियम

इस नियम की व्याख्या

इस नियम का अर्थ, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, यह है कि किसी भी वस्तु की दो परस्पर विरुद्ध दशाओ मे से उस पर एक का ही आरोप किया जा सकता है, मध्य दशा सम्भव नही है । उदाहरण के लिये कागज का टुकड़ा या तो श्वेत है या अश्वेत, इन दोनो के मध्य की कोई स्थिति सम्भव नहीं है । इसीलिये जेवोस ने यह कहा है कि "मध्य दशा परिहार के नियम से यह सिद्ध होता है कि परस्पर विरोधी स्थितियों मे मध्यम मार्ग या तीसरा विकल्प सम्भव नही है ।"[1] यहाँ ध्यान रहे कि मध्य दशा परिहार परस्पर विरोधी गुणो मे ही होता है जैसे श्वेत अथवा अश्वेत । जो गुण परस्पर विरोधी नही है उनमे यह नियम लागू नही होगा । कोई भी वस्तु एक ही साथ कठोर और अकठोर, उपस्थित और अनु-पस्थित, श्वेत अथवा अश्वेत नही हो सकती और न इनमे से उसकी कोई मध्य की स्थिति हो सकती है ।

इस नियम का महत्व

इस प्रकार मध्य दशा परिहार का नियम परस्पर विरोधी गुणो मे मध्यावस्था का परिहार करता है। उदाहरण के लिए श्वेत और अश्वेत, कठोर और अकठोर, भाव और अभाव के मध्य कोई स्थिति नही हो सकती । ये पद व्याघातक पद है और एक दूसरे का निषेध करते हैं । मध्य दशा परिहार का नियम वहीं लागू होता है जहाँ किसी निर्णय मे विधेय पद व्याघातक होते है जिनमे मध्य की दशा सम्भव नही हो सकती । यह नियम यह दिखलाता है व्याघातक गुणो मे से किसी एक को मानना आवश्यक है ।

अव्याघात के नियम और मध्य दशा परिहार के नियम की तुलना

यूबरवेग ने व्याघात के नियम और मध्य दशा परिहार के नियम दोनो को ही व्याघातको के विकल्प के नियम के अन्तर्गत माना है जिसका अर्थ है कि या तो अ 'ब' है या 'अ-ब' है । दूसरे शब्दो मे, अ 'ब' और 'अ-ब' दोनो नही हो सकता । यह या तो 'ब' है या 'अ-ब' । यूबरवेग की मान्यता से इन दोनो नियमो का घनिष्ठ सम्बन्ध सिद्ध होता है । ये दोनों ही नियम यह सिद्ध करते है कि परस्पर व्याघातक वाक्यो मे एक की सत्यता दूसरे की असत्यता सिद्ध करती है । उदाहरण के लिये यदि मैं यह कहूँ कि मैं और आप मे से कोई न कोई झूठ बोल रहा है और मैं जानता हूँ कि मैं झूंठ नही बोल रहा तो इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि आप झूंठ बोल रहे हैं । कोई यह नही कह सकता कि न मैं झूठ बोल रहा हू और न आप झूठ बोल रहे है क्योकि मैं प्रारम्भ में यह मानकर चला हू कि मेरे और आपके विचारो मे व्याघात है, एक सत्य है तो दूसरा असत्य अवश्य है और व्याघात

---

1. "The very name of the law expresses the fact that there is no third or middle course .. " —Jevons

मान लेने के बाद मध्य दशा परिहार हो जाता है। परस्पर व्याघातक गुण एक ही साथ सत्य नही हो सकते। जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है, ये दोनों ही नियम तभी लागू होते है जबकि निर्णय के विधेय पद व्याघातक हो। यदि विधेय पद केवल विपरीत मात्र है तो ये नियम लागू नही हो सकते। दूसरे, इन नियमो के लागू होने के लिये यह भी आवश्यक है कि उद्देश्य पद विशिष्ट अथवा व्यक्ति-वाचक हो। उदाहरण के लिये जब मैं यह कहता हूँ कि यह कागज का टुकडा या तो श्वेत है या अश्वेत है तो मेरा यह निर्णय विशिष्ट कागज के टुकडे पर ही लागू होगा। सभी कागजो के विषय मे इस तरह का कोई भी निर्णय नही दिया जा सकता क्योकि भिन्न-भिन्न कागजो के भिन्न-भिन्न रग हो सकते है। इस प्रकार किसी भी जाति अथवा वर्ग की वस्तुओ अथवा जीवो पर अव्यावात अथवा मध्यदशा परिहार का नियम लागू नही किये जा सकते क्योकि जाति की विभिन्न वस्तुओ अथवा जीवो मे भिन्न गुण पाये जा सकते है। उदाहरण के लिये मनुष्य सभ्य भी होते है और असभ्य भी। इसलिये सभ्यता अथवा असभ्यता को मानव जाति मात्र पर लागू नही किया जा सकता। किन्तु यदि मै यह कहता हूँ कि आप सभ्य है तो निश्चय है कि मै आपको असभ्य नही मान सकता। विशिष्ट व्यक्ति अथवा वस्तु पर किसी एक गुण का आरोप करने से उसके विरोधी गुण का निषेध होता है और व्याघातक गुणो मे कोई मध्यदशा सम्भव नही है।

किन्तु उपरोक्त विवेचन से यह नही समझना चाहिये कि अव्याघात के नियम और मध्यदशा परिहार के नियम विल्कुल एक ही बात कहते है क्योकि ऐसा होने पर इन नियमो को अलग-अलग देने की कोई आवश्यकता नही थी। वास्तव मे जब कि अव्याघात का नियम यह वतलाता है कि किसी निर्णय मे दो व्याघातक पद होने पर दोनो ही सत्य नही हो सकते, मध्य दशा परिहार का नियम यह दिखलाता है कि दोनो व्याघातक पद असत्य नही हो सकते और उनमे से एक सत्य अवश्य होगा। पहले नियम के अनुसार कागज श्वेत है और कागज अश्वेत है ये दोनो ही पद एक साथ सत्य नही हो सकते। दूसरे नियम के अनुसार इन दोनो पदो मे से एक अवश्य सत्य है। कागज या तो श्वेत होगा या अश्वेत, वह दोनो ही न हो यह सम्भव नहीं है। जैसा कि पहले वतलाया जा चुका है, ये दोनो नियम वही लागू होते है जहाँ व्याघातक गुण दिये गये हो।

विचार के नियमों का परस्पर सम्बन्ध

विचार के उपरोक्त तीनो नियमो का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। तादात्म्य का नियम जो बात कहता है उसी को दूसरे ढग से व्याघात का नियम कहता है और व्याघात का नियम व्याघातक पदो मे से दोनो को सत्य नही मानता जब कि मध्य दशा परिहार का नियम यह मानता है कि दोनो असत्य नही हो सकते। इस प्रकार विचार के ये तीनो नियम परस्पर घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। फिर भी मौलिक रूप से ये परस्पर स्वतन्त्र है और समान रूप से मौलिक है। तीनो नियम विचार की भिन्न-भिन्न अवस्था पर जोर देते है। तादात्म्य का नियम विचार की भावात्मक दशा पर जोर देता है जबकि अव्याघात का नियम विचार की अभावात्मक या निषेधात्मक दशा पर जोर देता है। इसी तरह जबकि अव्याघात का नियम किसी पदार्थ मे व्याघातक गुणो के आरोप को असत्य मानता है, मध्यदशा परिहार का नियम यह दिखलाता है कि दो व्याघातक पदो मे दोनो असत्य नही हो सकते। इस प्रकार ये तीनो नियम अपनी-अपनी विशेषताये रखते है यद्यपि सभी भेद मे अभेद

पर जोर देते है। भेद मे अभेद समस्त विचार का आधार है। अभेद एकता दिखलाता है तो भेद भिन्नता दिखलाता है। एकता और अनेकता दोनों ही परस्पर पूरक है।

सारांश

तर्कशास्त्र भाषाभिव्यक्त विचारों का विज्ञान है। वह विचारों के नियमों का पता लगाता है। विचार के मूल नियमों की चार विशेषताएँ है—१. ये तर्कशास्त्र की मूल मान्यतायें हैं, २. ये अटल और अनिवार्य हैं, ३. ये औपचारिक है, ४. ये समान रूप से मौलिक है।

तादात्म्य का नियम—इस नियम के मुख्य रूप है—१. जो कुछ है, है, २. प्रत्येक वस्तु अपने बराबर है, ३. कोई वस्तु वही है जो वह है, ४. प्रत्येक वस्तु अपने अनुरूप है, ५. प्रत्येक वस्तु अपने स्वभाव के ही अनुसार है, ६. सत्य सदैव आत्मसंगत होता है। इस प्रकार तादात्म्य का नियम परिवर्तन में भी एकरूपता दिखलाता है जिसके कारण वस्तु में निरन्तरता बनी रहती है।

पर्याप्त कारण का नियम—इसके अनुसार यदि किसी तथ्य अथवा उक्ति का कोई पर्याप्त कारण हो कि वह जो है वही होनी चाहिए अन्य रूप में नहीं तो यह यथार्थ अस्तित्व में अथवा सत्य नहीं हो सकती। यह नियम लाइबनित्स ने बनाया था। यह तादात्म्य के नियम का पूरक है।

अव्याघात का नियम—इस नियम के अनुसार शुद्ध विचार से व्याघात नहीं होना चाहिए। अर्थात् एक ही देशकाल में किसी वस्तु में परस्पर विरोधी गुण नहीं हो सकते। इस नियम के अनुसार विचार के जगत में अव्याघात शुद्ध विचार की आवश्यक शर्त है।

मध्य दशा परिहार का नियम—इस नियम के अनुसार किसी भी वस्तु की दो परस्पर विरुद्ध दशाओं में से उस पर एक का ही आरोप किया जा सकता है, मध्य दशा सम्भव नहीं है। यह नियम परस्पर विरोधी गुणो में मध्यावस्था का परिहार करता है। यह नियम व्याघात के नियम का पूरक है।

विचार के उपरोक्त तीनों नियम परस्पर घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है और भेद में अभेद को भिन्न-भिन्न रूप में अभिव्यक्त करते हैं।

अभ्यास के लिये प्रश्न

प्रश्न १. विचार के नियम की समुचित उदाहरणो के साथ व्याख्या कीजिये।

(यू० पी० बोर्ड १९६३)

प्रश्न २. विचार के तीन मूल नियमो की प्रकृति तथा महत्व स्पष्ट कीजिये। यह भी प्रगट कीजिये कि ये नियम किस प्रकार सोचने के प्रत्येक रूप मे पूर्वकालीन होते हैं।

(यू० पी० बोर्ड १९६१)

प्रश्न ३. तादात्म्य के नियम का उदाहरण सहित वर्णन कीजिये। इसका और पर्याप्त कारण के नियम का न्यायशास्त्र मे क्या महत्व है? क्या तादात्म्य का नियम पुनरुक्ति मात्र है।

(आगरा १९७५)

प्रश्न ४ विचार के मूल नियम क्या है? उनकी प्रकृति स्पष्ट कीजिये तथा उनका एक दूसरे से सम्बन्ध भी बतलाइये। (यू० पी० बोर्ड १९६०)

प्रश्न ५. विचार के मूल नियमो की क्या विशेषतायें है? क्या ये नियम सिद्ध किये जा सकते हैं?

प्रश्न ६. विचार के मूल नियमो को लिखिये और समझाइये।

५

पद और उनका वर्गीकरण

(TERMS AND THEIR CLASSIFICATION)

तर्कशास्त्र भाषाभिव्यक्त विचारो का विज्ञान है। विचारो को भाषा मे अभिव्यक्त करने पर वे वाक्य (Sentences) कहलाते है। ये वाक्य अभिव्यक्त होने से पूर्व निर्णय के रूप मे मस्तिष्क मे रहते है। चूंकि तर्कशास्त्र का सम्बन्ध केवल निर्देशवाचक तर्कवाक्यो से है इसलिये तर्कशास्त्र मे भाषाभिव्यक्त विचार को केवल वाक्य न कहकर तर्कवाक्य (Propositions) कहते है। स्थूल रूप से तर्कवाक्य, वाक्य जैसा ही होता है। उसमे निम्नलिखित तीन अग पाये जाते है :—

तर्क वाक्य के अग

(१) **उद्देश्य** (Subject)—तर्कवाक्य मे जिसके विषय मे कुछ कहा जाता है उसे उद्देश्य कहते है। उद्देश्य के विषय मे किसी बात का विधान या निषेध किया जाता है। उदाहरण के लिये यदि यह वाक्य दिया जाये कि मनुष्य मरणशील है तो इसमे मनुष्य उद्देश्य है क्योकि उसी के विषय मे मरणशीलता की बात कही जा रही है। एक अन्य उदाहरण मे, यदि यह कहा जाये कि मनुष्य अमर नही है तो यह फिर मनुष्य के विषय मे निषेधात्मक बात कही जा रही है। इन दोनो ही तर्कवाक्यो मे मनुष्य उद्देश्य है क्योकि उसके विषय मे किसी बात का विधान अथवा निषेध किया गया है।

(२) **विधेय** (Predicate)—तर्कवाक्य मे उद्देश्य के विषय मे जो कुछ कहा जाता है वह विधेय कहलाता है। दूसरे शब्दो मे, उद्देश्य के बारे मे जो कुछ विधान या निषेध किया जाता है वह विधेय है। उपरोक्त उदाहरणो मे मनुष्य के विषय मे पहले तर्कवाक्य मे यह कहा गया है कि वह मरणशील है और दूसरे तर्कवाक्य मे यह कहा गया है कि वह अमर नही है। मनुष्य के विषय मे ये दोनो ही कथन उपरोक्त तर्कवाक्यो मे विधेय है। इस प्रकार 'मरणशील' अथवा 'अमर नही' ये विधेय है।

(३) **सयोजक** (Copula)—प्रत्येक तर्कवाक्य मे उद्देश्य और विधेय को जोडने की आवश्यकता होती है। यह कार्य सयोजक करता है। इस प्रकार सयोजक वह है जो कि उद्देश्य और विधेय को जोडता है। पीछे दिये हुये तर्कवाक्यो मे 'है' सयोजक 'मनुष्य' उद्देश्य को एक बार 'मरणशील' विधेय और दूसरी बार 'अमर नही' विधेय से जोडता है।

तर्कवाक्य मे उद्देश्य और विधेय पद (Terms) कहलाते है। पद एक शब्द

(Word) भी हो सकता है और शब्द समूह भी हो सकता है। वह उद्देश्य भी हो सकता है और विधेय भी हो सकता है। अंग्रेजी भाषा मे पद तर्कवाक्य मे दोनो किनारो पर होने के कारण Term कहलाता है। टर्म शब्द लैटिन के Terminus का संक्षिप्त रूप है जिसका अर्थ है सीमा अथवा छोर। इस प्रकार उद्देश्य और विधेय तर्कवाक्य की दो सीमाये अथवा दो छोर है। उद्देश्य प्रारम्भ मे होता है और विधेय अन्त मे होता है। तर्कवाक्यों के पीछे दिये गये उदाहरणों में 'मनुष्य', 'मरणशील' और 'अमर नही' ये पद हैं। 'है' शब्द पद नही है क्योकि वह तर्कवाक्य का उद्देश्य अथवा विधेय नही है। संक्षेप मे, पद शब्द की परिभाषा करते हुए यह कहा जा सकता है कि वह **एक शब्द अथवा शब्द समूह है जो अकेला किसी तर्कवाक्य का उद्देश्य अथवा विधेय बन जाता है।**

पद क्या है ?

जैसा कि पदो के पीछे दिये गये उदाहरण मे दिखलाया गया है, सभी पद शब्द होते है किन्तु दूसरी ओर सभी शब्द पद नही होते। पीछे दिये उदाहरणो मे 'है' शब्द पद नही है क्योकि उसमे तर्कवाक्य का उद्देश्य या विधेय बन सकने की योग्यता नही है। इस प्रकार तर्कशास्त्र की दृष्टि से शब्दो को निम्नलिखित तीन वर्गों मे बाँटा जा सकता है :—

शब्दों के वर्ग

(१) **पद योग्य शब्द** (Categorematic Words)—पद योग्य शब्द वह है जो अन्य शब्दो की सहायता के बिना अकेला ही पद के रूप मे प्रयोग किया जा सकता है। पद योग्य शब्द पद होते हैं। उदाहरण के लिये पीछे दिये गये तर्कवाक्यो मे 'मनुष्य', 'मरणशील' और 'अमर नही' शब्द पद योग्य शब्द हैं।

(२) **पद संयोज्य शब्द** (Syncategorematic Words)—ये वे शब्द हैं जो स्वयं पद नही हो सकते। ये पद योग्य शब्दो से जुड़कर ही पद बनते है। उदाहरण के लिये 'का' तथा 'और' इत्यादि शब्द अकेले पद नही बन सकते किन्तु पद योग्य शब्दो के साथ पद बन सकते है। उदाहरण के लिये, 'राम और श्याम' किसी तर्क वाक्य में उद्देश्य हो सकता है तथा 'गया और आया' विधेय हो सकते है।

(३) **पदायोग्य शब्द** (Acategorematic Words)—शब्दों के इस वर्ग मे वे शब्द आते हैं जो न तो अकेले और न पद योग्य शब्दो की सहायता से ही पद बन सकते हैं। इस प्रकार ये शब्द कभी भी पद नही बन सकते। इसका मुख्य कारण यह है कि ये अन्य शब्दो के साथ जुड ही नही सकते। इस प्रकार के शब्दो के उदाहरण विस्मयादि बोधक ध्वनियाँ हैं जैसे हाय, अरे, ओह, इत्यादि।

यहाँ पर नाम और पद मे अन्तर करना भी आवश्यक है क्योकि कुछ लोग नाम को ही पद मान लेते हैं। नाम की परिभाषा करते हुए हॉब्स ने लिखा है, "नाम एक शब्द है जिसको हम अपनी इच्छा से एक संकेत के लिये चुनते है· जो कि हमारे मन मे किसी ऐसे विचार को उत्पन्न कर सकता है जैसा विचार हमारे पास पहले रह चुका हो, और जो कि, दूसरो के प्रति उच्चारण किये जाने से उनके लिये बोलने

नाम क्या है ?

वाले के उस विचार का चिन्ह हो सकता है जो कि उसके मन मे था ।"[1] नाम की इस परिभाषा में उसके विषय मे दो बातें बतलाई गई हैं । एक तो यह है कि वह हमारे मन मे किसी विचार का प्रतिनिधि होता है और दूसरे यह कि बोले जाने पर वह सुनने वाले के लिये वक्ता के मानसिक विचार का प्रतिनिधि होता है । किन्तु यह नही कहा जा सकता कि नाम अपनी इच्छा से चुना जा सकता है क्योकि विभिन्न भाषाओ मे नाम के विषय मे निश्चित नियम है ।

नाम और पद

नाम पद नही है क्योकि पद कहलाने के लिये उसका तर्क वाक्य मे उद्देश्य या विधेय के रूप मे प्रयोग किया जाना आवश्यक है । तर्क वाक्य से बाहर भी नाम होता है परन्तु पद तर्क वाक्य से बाहर नही होते । एक ही नाम को अनेक अर्थो में प्रयोग किया जाता है जबकि पद को केवल एक ही अर्थ में प्रयोग किया जाता है । स्पष्ट है कि पद को नाम नही समझा जाना चाहिए । तर्कशास्त्र मे पदो पर अनिवार्य रूप से विचार किया जाता है क्योकि पद तर्क वाक्य के अनिवार्य अंग है और तर्कशास्त्र भाषाभिव्यक्त विचारो के विज्ञान के रूप मे तर्कवाक्यों का विज्ञान है ।

पदों के प्रकार

भिन्न-भिन्न तर्कशास्त्रियों ने पदो के भिन्न-भिन्न प्रकार से विभाग किये है । सक्षेप मे पदों को मुख्य रूप से निम्नलिखित विभागो मे बाँटा गया है—

(१) एक शब्दात्मक अथवा अनेक शब्दात्मक पद (Simple or Composite Terms)

(२) एकवाचक अथवा जातिवाचक पद (Singular or General Terms)

(३) समूहवाचक अथवा असमूहवाचक पद (Collective or Uncollective Terms)

(४) वस्तु वाचक या भावाचक पद (Concrete Or Abstract Terms)

(५) अस्तिवाचक, नास्ति वाचक अथवा राहित्यवाचक पद (Positive, Negative Or Privative Terms)

(६) निरपेक्ष अथवा सापेक्ष पद (Absolute Or Relative Terms)

(७) गुण वाचक अथवा अगुण वाचक पद (Connotative Or Non-Connotative Terms)

पदो के उपरोक्त विभागो के विवेचन से पूर्व यहाँ पर यह ध्यान रखना चाहिये कि कुछ तर्कशास्त्रियो ने पदो का जो एकार्थक (Univocal) और अनेकार्थक (Equivocal) विभाजन किया है वह अनुचित है । पदो को इन विभागो में बाँटते हुये जैवोन्स ने लिखा है, "पदो को एकार्थक कहा जाता है जब कि वे मन को एक अकेले निश्चित अर्थ से अधिक प्रस्तावित नही करते । वे अनेकार्थक कहलाते है अथवा अस्पष्ट कहलाते है जबकि उनके दो अथवा अधिक कार्य होते है ।" उदाहरण के लिये स्टीम एन्जिन, रेलगाडी इत्यादि एकार्थक शब्द है, दूसरी ओर स्पीलर, पाऊण्ट इत्यादि अनेकार्थक शब्द है । हिन्दी भाषा मे एकार्थक और अनेका-

1 "A name is a word taken at pleasure to serve for a mark, which may raise in our mind a thought like to some thought which we had before and which, being pronounced to others, may be to them sign of what thought the speaker had before in his mind" —Hobbes

र्थक शब्दो मे अन्तर किया गया है। वास्तव मे जैवोन्स का यह विभाजन पदो का विभाजन न होकर केवल शब्दो का विभाजन है। तर्कवाक्य मे किसी भी पद के एक से अधिक अर्थ नहीं होते। भले ही तर्कवाक्य मे बाहर किसी शब्द के कितने ही अर्थ होते हो किन्तु जब वह किसी तर्कवाक्य मे प्रयोग किया जाता है तो उससे एक ही अर्थ का तात्पर्य होता है। भिन्न-भिन्न प्रसगो मे एक ही शब्द के भिन्न-भिन्न अर्थ हो सकते है किन्तु एक प्रसग मे अथवा एक तर्कवाक्य के पद के रूप मे उसका एक ही अर्थ होता है। इसी कारण पदो के उपरोक्त विभागो मे जैवोन्स का पदो का विभाजन सम्मिलित नहीं किया गया है। अब पदो के उपरोक्त विभागो का विस्तार-पूर्वक विवेचन किया जा सकता है।

(१) **एक शब्दात्मक और अनेक शब्दात्मक पद**—एक शब्दात्मक पद, जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है, केवल एक शब्द से बनता है जैसे मनुष्य, स्त्री, पुरुष, घोड़ा, हाथी इत्यादि। दूसरी ओर अनेक शब्दात्मक पद, जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है, एक से अधिक शब्दो के योग से बनता है जैसे अरबी घोड़ा, अंग्रेज स्त्री, बुद्धिमान विद्यार्थी, मेरठ-कालिज, आगरा विश्वविद्यालय इत्यादि। अनेक शब्दात्मक पदो मे जो एक से अधिक शब्द होते है उनमे कुछ पद योग्य होते है और कुछ पद संयोज्य होते है। उदाहरण के लिये प्रयाग का विश्वविद्यालय पद मे प्रयाग और विश्वविद्यालय पदयोग्य शब्द है और 'का' पद सयोज्य शब्द है। पीछे दिये गये उदाहरणो मे मेरठ कालिज शब्द मे दोनो ही पदयोग्य शब्द है।

(२) **एकवाचक अथवा जातिवाचक पद**—एकवाचक पद, जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है, वह है जो कि केवल एक अकेली वस्तु, जीव अथवा पदार्थ का बोधक है। उदाहरण के लिये दिल्ली, कालिदास, यमुना, एवरेस्ट, मेरे उद्यान का वृक्ष इत्यादि एकवाचक पद है क्योकि इनका तात्पर्य किसी एक अकेले पदार्थ से है। दूसरी ओर जातिवाचक पद, जैसा कि उसके नाम मे स्पष्ट है, वह पद है जो कि किसी एक अकेली वस्तु का नही वल्कि किसी जाति की सभी वस्तुओ की ओर सकेत करता है। उदाहरण के मनुष्य, पुस्तक, पर्वत, उद्यान, विद्यार्थी, भारतीय इत्यादि विभिन्न पद जातिवाचक पद है क्योकि ये किसी एक वर्ग के समस्त व्यक्तियो के लिये प्रयोग किये जा सकते है। स्पष्ट है कि जातिवाचक पद जाति के वाचक होते है किन्तु विशेष तर्क वाक्य मे जातिवाचक पद वस्तुओ की एक वड़ी सख्या मे से किसी एक का ही बोधक होता है। वह जातिवाचक इसलिये बन जाता है कि उस जैसी बहुत सी वस्तुयें होती है जिनमे समान और आवश्यक गुण पाये जाते है। ये गुण ही विभिन्न वस्तुओ को एक जाति मे बाधे रहते है। एकवाचक पद को तर्कशास्त्रियो ने निम्नलिखित दो उपविभागो मे बाँटा है—

(अ) **सार्थक एकवाचक पद** (Significant Singular Terms)—इसमे किसी की ऐसी विशेषता की ओर सकेत किया जाता है जो कि अन्य वस्तुओ मे नही पायी जाती। उदाहरण के लिये ससार का सबसे ऊँचा पर्वत अथवा दिल्ली की सबसे ऊँची इमारत कहने से किसी पर्वत अथवा इमारत के ऐसे गुण का संकेत होता है जो अन्य पर्वतो अथवा इमारतो में नही पाया जाता और इस प्रकार का पर्वत और इमारत एक ही हो सकते है।

1 "Terms are said to be univocal when they suggest to the mind no more than one single definite meaning. They are called equivocal or ambiguous when they have two or more meanings." —Jevons.

(ब) **अर्थहीन, एकवाचक अथवा व्यक्तिवाचक** (Non-significant, Singular term or Proper names)—ये वे वाचक पद है जिनसे किसी व्यक्ति विशेष अथवा वस्तु के नाम का निर्देश होता है, उसके गुण का पता नही चलता। उदाहरण के लिए राम, मोहन, यमुना, दिल्ली, एवरेस्ट इत्यादि विशेष पदार्थ अथवा व्यक्ति के सूचक है किन्तु इनके नाम से उनके गुण का पता नही चलता।

(३) **समूहवाचक अथवा असमूहवाचक पद**—समूहवाचक पद, जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है, वह पद है जो कि परस्पर समानता रखने वाली वस्तुओ के समूह के लिए प्रयोग होता है। इस प्रकार समूहवाचक पद से समानता रखने वाली वस्तुओं के समूह का बोध होता है। उदाहरण के लिए सेना पद से अलग-अलग सिपाहियो का नही बल्कि सिपाहियों के समूह का बोध होता है। इसी प्रकार पुस्तकालय अलग-अलग पुस्तको को नही बल्कि पुस्तकों के समूह को कहते है। समूहवाचक पद एक-वाचक पद भी हो सकते हैं और जातिवाचक भी, दोनो स्थितियो मे वे समूह का बोध कराते है। उदाहरण के लिए हिन्दू राष्ट्र, राष्ट्रीय पुस्तकालय, काश्मीर रैंजीमेट इत्यादि समूह वाचक तो है परन्तु इनसे केवल एक ही समूह का बोध होता है। दूसरी ओर पुस्तकालय, रैंजीमेन्ट, सेना, नौसेना, इत्यादि ऐसे समूहवाचक पद है जो किसी विशिष्ट समूह का नही बल्कि समूह की जाति का बोध कराते है। उदाहरण के लिए ससार मे हजारो पुस्तकालय हैं कितनी ही सेनायें और रैंजीमेन्ट हैं। इस प्रकार समूहवाचक पद एकवाचक अथवा जातिवाचक होता है।

असमूहवाचक पद, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, वह पद है जो किसी समूह का बोध नही कराता। समूहवाचक पदो के अतिरिक्त सब पद इसी वर्ग मे आते हैं। कोफे (Coffey) ने असमूहवाचक पद को एकिक पद (Unitary term) भी कहा है। एकिक पद का अर्थ ऐसे पद से है जो किसी एक ही पदार्थ के लिए प्रयोग किया जाता है।

यहाँ पर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि समूहवाचक पद का प्रयोग समूह के लिए किया जाता है। समूहवाचक पद के उदाहरण है 'सब' अथवा 'सब इकट्ठे'। उदाहरण के लिए यदि यह कहा जाये कि कक्षा के सब विद्यार्थी इकट्ठे मिलकर पिकनिक के लिए चलेंगे तो यहाँ पर समष्टि के अर्थ मे विद्यार्थी सामूहिक पद का प्रयोग किया जा रहा है। दूसरी ओर कभी-कभी समूहवाचक पद व्यष्टि के अर्थ मे इस्तेमाल किया जाता है। उदाहरण के लिए कक्षा के सब विद्यार्थी पास हो गये, यहाँ पर एक-एक विद्यार्थी के लिये अलग न कहकर कहने का तात्पर्य यह है कि पूरी कक्षा पास हो गई। समूहवाचक शब्दो को व्यष्टि और समष्टि के रूप मे प्रयोग करने का एक उत्तम उदाहरण जूरी पद मे देखा जा सकता है। जब यह कहा जाता हे कि जूरी ने अभियुक्त को निरपराध घोषित किया तो यहाँ पर जूरी पद का प्रयोग समष्टि के अर्थ मे हुआ है। दूसरी ओर यदि यह कहा जाए कि निर्णय देने मे जूरी अपने मत मे विभाजित थी तो यहाँ पर तात्पर्य जूरी मे सम्मिलित भिन्न-भिन्न व्यक्तियों से है।

(४) **वस्तुवाचक अथवा भाववाचक पद**—वस्तुवाचक पद, जैसा कि उनके नाम से स्पष्ट है, वे पद है, जो किसी वस्तु का बोध कराते है जैसे पुस्तक, कॉलिज, वर्ग, स्त्री इत्यादि। दूसरी ओर भाववाचक अथवा गुणवाचक वे पद हैं, जो कि किसी भाव अथवा गुण का बोध कराते हैं जैसे कालिख, सफेदी, ईमानदारी, इत्यादि। यहाँ पर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि वास्तव मे प्रत्येक वस्तु में गुण होते है और

गुण वस्तुओ से अलग नही रह सकते । इसीलिए यथार्थ जगत मे गुण और वस्तु अलग-अलग नही होते । फिर भी विचार के जगत मे उनको एक दूसरे से अलग करके तर्कवाक्य वनाये जाते है ।

वहुधा वस्तुवाचक और गुणवाचक पद जोड़ों मे पाये जाते हैं क्योकि वस्तु और गुण साथ-साथ चलते है । उदाहरण के लिये मनुष्य, मनुष्यता, कंजूस, कंजूसी, वलवान-वलवत्ता, चेतन-चेतना, थका हुआ-थकावट इत्यादि । यहाँ पर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि विशेषणो का प्रयोग गुणवाचक न होकर पदवाचक पदों मे होता है । उदाहरण के लिए समान, अच्छा, वुरा, मूर्ख, वुद्धिमान, इत्यादि विशेषण वस्तुवाचक पद है जवकि दूसरी ओर अच्छाई, वुराई, मूर्खता, वुद्धिमत्ता इत्यादि गुण-वाचक पद हैं । वास्तव मे केवल विशेषण के आधार पर किसी पद के वर्ग का निर्णय नही किया जा सकता । उसके वर्ग का निर्णय तर्कवाक्य मे उसके प्रयोग के अनुसार किया जाना चाहिए ।

गुणवाचक पद को निम्नलिखित दो उपविभागो मे विभाजित किया जाता है—

(अ) **एकवाचक गुणवाचक पद**—ये वे गुणवाचक पद हैं जो एक सरल गुण का संकेत करते है जो कि अनेक वस्तुओ मे पाया जाता है । इस प्रकार वस्तुयें अनेक होते हुए भी गुण को एक ही माना जाता है । एकवाचक गुणवाचक पद के उदाहरण है, ईमानदारी, समानता, भ्रातृत्व इत्यादि ।

(व) **जातिवाचक गुणवाचक पद**—कुछ गुणवाचक पद ऐसे होते हैं जिनसे किसी एक विशेष गुण का नही वल्कि गुण के समूह का वोध होता है । ये जातिवाचक गुणवाचक पद है जैसे रंग और सद्‌गुण । यहाँ पर रंग अनेक प्रकार के होते हैं और इसी प्रकार सद्‌गुण मे भी वहुत से सद्‌गुणो का समावेश है ।

(५) **अस्तिवाचक, नास्तिवाचक और राहित्यवाचक पद**—अस्तिवाचक पद वह है जो कि किसी वस्तु या गुण की उपस्थिति का सकेत करता है । दूसरे शव्दों में, अस्तिवाचक पद से अस्तित्व का पता चलता है । इसके कुछ उदाहरण हैं मनुष्य, पीडा, पशु, सुख, दुःख इत्यादि । दूसरी ओर निषेधवाचक पद वे हैं जिनसे किसी वस्तु या गुण की अनुपस्थिति का वोध होता है जैसे अमानवीय, अप्रासगिक इत्यादि । राहित्यवाचक पद एक ओर किसी गुण की वर्तमान अनुपस्थिति दिखलाता है किन्तु दूसरी ओर उस वस्तु मे उस गुण के होने की सामर्थ्य भी वतलाता है । दूसरे शव्दों मे, इसमे ऐसे गुणो का अभाव वतलाया जाता है जो साधारणतया उस वस्तु मे रहते है जिसमे उसका अभाव वतलाया गया है । उदाहरण के लिए अंधा, वहरा, गूँगा, लंगडा, इत्यादि राहित्यवाचक पद है क्योकि इनसे यद्यपि किसी व्यक्ति मे विशेष गुण का अभाव दिखलाई पडता है परन्तु साथ ही यह भी कहा जाता है कि उसमे वह गुण होने की सामर्थ्य थी । अंधा पद मनुष्य के लिये ही प्रयोग किया जाता है, वृक्ष के लिये नही क्योकि देखने की शक्ति मनुष्य मे होती है वृक्ष मे नही होती । इस प्रकार जैवोन्स के शव्दो मे, "हम एक राहित्यवाचक पद किसी भी ऐसी वस्तु के लिए प्रयोग करते है जिसमे एक गुण नही होता जो कि उसमे होने की सामर्थ्य थी, हम किसी वस्तु के लिए एक निषेधात्मक पद का

प्रयोग करते है जिसमे कोई गुण नही है और न हो सकता था।"[1] इस प्रकार राहित्यवाचक पद अस्तिवाचक और नास्तिवाचक पदो के बीच की स्थिति है। एक ओर नास्तिवाचक पदो की तरह वे किसी वस्तु मे किसी गुण को रखने की सामर्थ्य बतलाते है तो दूसरी ओर नास्तिवाचक पदों की तरह वे किसी वस्तु मे किसी गुण का निषेध करते है। राहित्यवाचक पद उन वस्तुओ पर लागू होते है जिनमें किसी ऐसे गुण का अभाव है जो उनमे साधारणतया होता है। दूसरी ओर नास्तिवाचक पदों मे ऐसे गुण का निषेध होता है जो कि न कभी था और न कभी हो सकता है। तर्कशास्त्र मे राहित्यवाचक पद को कोई विशेष महत्व नही दिया जाता।

अस्तिवाचक और नास्तिवाचक पदों के प्रसग मे व्याघातक और विपरीत पदो का अन्तर जानना भी आवश्यक है। ये दोनों ही पद किसी भी एक वस्तु के बारे मे एक साथ सही नही हो सकते। दूसरी ओर जबकि व्याघातक पद एक वस्तु के बारे में एक साथ असत्य भी नही हो सकते विपरीत पद एक वस्तु के बारे मे एक साथ असत्य हो सकते है। व्याघातक पद वे है जो एक दूसरे का निषेध कर देते है, उदाहरण के लिये श्वेत और अश्वेत। कोई भी वस्तु एक साथ ही श्वेत और अश्वेत नही हो सकती और न उसमे इन दोनो का ही निषेध सम्भव है। दूसरी ओर विपरीत पद वे होते है जिनमें परस्पर अधिक से अधिक विषमता होती है उदाहरण के लिये काला और सफेद, सबल और निर्बल इत्यादि। ये दोनो ही एक साथ किसी वस्तु पर लागू नही किये जा सकते। कोई भी वस्तु एक साथ काली और सफेद नही हो सकती किन्तु यह हो सकता है कि वह न काली हो और न सफेद बल्कि किसी अन्य रग की ही हो। स्पष्ट है कि जब कि व्याघातक पदो के बीच कोई स्थिति सम्भव नही है, विपरीत पदो के बीच कई दशायें हो सकती है।

पदो के उपरोक्त वर्गीकरण के अनुसार कुछ पदो के वर्गीकरण के उदाहरण निम्नलिखित है :—

(१) **सेना**—साधारण, समूहवाचक, मूर्त्त, भावबोधक, निश्चयवाचक, निरपेक्ष, एकार्थक, गुणवाचक।

(२) **सफेदी**—साधारण, अमूर्त्त, भाव बोधक, निश्चयवाचक, जातिवाचक, एकार्थक, गुणवाचक।

(३) **अन्धा**—साधारण, जातिवाचक, अमूर्त्त, राहित्यबोधक, निश्चयवाचक, निरपेक्ष, एकार्थक, गुणवाचक।

(४) **मोहन**—साधारण, व्यक्तिवाचक, मूर्त्त, भावबोधक, निश्चयवाचक, निरपेक्ष, एकार्थक, अगुणवाचक।

(५) **मनुष्य**—साधारण, जातिवाचक, मूर्त्त, भाववोधक, निश्चयवाचक, निरपेक्ष, एकार्थक, गुणवाचक।

पदों के विरोध में होने वाले दोष
(Fallacies Incidental to Opposition of Terms)

एक ही उद्देश्य मे साथ-साथ न रह सकने वाले गुणो का बोध कराने वाले पद विरोधी पद कहलाते है। ये परस्पर असंगत होते है अर्थात् इनको एक ही साथ

[1] "We apply a privative term to anything which has not a quality which it was capable of having, we apply a negative term to anything which has not and could not have the quality" —Jevons

किसी उद्देश्य के विषय मे लागू नही किया जा सकता । विरोधी पद निम्नलिखित दो प्रकार के होते है :—

(१) **व्याघातक पद** (Contradictory terms)—व्याघातक पद वे है जो परस्पर व्यावर्तक होते हैं और जिनसे समस्त निर्देश समाप्त हो जाता है । उदाहरण के लिये श्वेत और अश्वेत, हिन्दू और अहिन्दू, भारतीय और अभारतीय ये परस्पर व्याघातक पद है और ये पदो के जोड़े किसी भी वस्तु के लिये एक साथ प्रयोग नही किये जा सकते । दूसरे, इनमें विशिष्ट वर्ग की सभी वस्तुयें आ जाती हैं । उदाहरण के लिये वस्तुओ के रंग या तो श्वेत होगे या अश्वेत । मनुष्यो को भारतीय और अभारतीय वर्गों मे बाँटा जा सकता है । धर्म के अनुसार मनुष्य या तो हिन्दू है या अहिन्दू ।

(२) **विपरीत पद** (Contrary terms)—ये वे पद हैं जिनके द्वारा निर्दिष्ट वस्तुओं मे अधिक से अधिक विषमता होती है जैसे काला और सफेद, बुद्धिमान और मूर्ख, सबल और निर्बल, सुखी और दुखी इत्यादि । वे विपरीत पदो के जोड़े हैं । ये पद साथ ही साथ किसी उद्देश्य के विषय मे लागू नही किये जा सकते ।

पदों के विरोध से होने वाले दोष—व्याघातक और विपरीत दोनो ही प्रकार के पद किसी उद्देश्य के विषय मे एक साथ लागू नही किये जा सकते क्योंकि किसी भी वस्तु मे एक साथ परस्पर व्याघातक अथवा परस्पर विपरीत पद नही हो सकते । व्याघातक पदों को एक ही उद्देश्य के विषय मे लागू करने से व्याघात के नियम (Law of Contradiction) का खण्डन होता है । इसलिये यह तार्किक दृष्टि से दोषपूर्ण माना जाता है । दूसरी ओर विपरीत पदो का एक ही उद्देश्य के विषय मे प्रयोग करने से मध्य दशा परिहार के नियम (Law of Excluded Middle) का उल्लंघन होता है । इस नियम के अनुसार परस्पर विपरीत गुणो मे कोई मध्य की स्थिति सम्भव नही है, किसी भी वस्तु मे उनमे से एक अथवा दूसरा गुण अवश्य होगा । इस प्रकार किसी भी उद्देश्य के विषय मे विपरीत पदो को लागू करने से तर्क की दृष्टि से दोष माना जाता है । इस प्रकार विरोधी पदो का एक ही उद्देश्य के विषय मे साथ-साथ प्रयोग नही किया जा सकता ।

पदों के प्रयोग में होने वाले दोष
(Fallacies Incidental to use of Terms)

तर्कशास्त्र मे पद के उचित प्रयोग पर जोर दिया जाता है । इसलिए पदो का प्रयोग करने मे पद सम्बन्धी दोषो से बचना आवश्यक है । सामान्य रूप से तर्क-शास्त्रियो ने पद के प्रयोग से सम्बन्धित निम्नलिखित दोषो का वर्णन किया है :—

(१) **भिन्नार्थक दोष** (Fallacy of Equivocation)—यह दोप तब होता है जब कि एक ही पद का अनेक अर्थों मे प्रयोग किया जाय । उदाहरण के लिये

गज एक माप दण्ड है ।
हाथी गज है ।
∴ हाथी मापदण्ड है ।

उपरोक्त उदाहरण मे गज पद का दो अर्थों मे प्रयोग किया गया है, एक तो लम्बाई नापने का पैमाना और दूसरे हाथी । एक ही पद को दो अर्थो मे प्रयोग करने से यहाँ पर भिन्नार्थक दोष है ।

(२) **सग्रह दोष** (Fallacy of Composition)—असमूहवाचक पदो का

समूह वाचक पदो के अर्थ मे प्रयोग करने से सग्रह दोप माना जाता है क्योकि जो बात किसी समूह के लिए सही होती है वही बात उस समूह के प्रत्येक व्यक्ति के विषय मे अलग-अलग नही कही जा सकती । इसके कुछ उदाहरण निम्नलिखित है :—

(अ) इस परिवार का प्रत्येक सदस्य साढे पाँच फिट लम्वा है । चूंकि इस परिवार में ६ सदस्य है, इसलिये इस परिवार के सदस्यो की ऊचाई ३३ फिट है ।

(ब) इन विद्यार्थियो मे से प्रत्येक आधा घण्टा पढता है । ये दस विद्यार्थी है इसलिए ये सब पाँच घण्टे पढ़ते हैं ।

(३) **विग्रह दोष** (Fallacy of division)—पदो के प्रयोग के सम्वन्ध मे विग्रह दोप तब माना जाता है जबकि जो बात किसी समुदाय के विषय मे सामूहिक रूप से सत्य हो उसे उस समुदाय के भिन्न-भिन्न व्यक्तियो या पदो के विषय मे अलग-अलग सत्य मान लिया जाय । स्पष्ट है कि विग्रह दोप संग्रह दोष के ठीक विरुद्ध है । इसके उदाहरण निम्नलिखित है :—

(अ) त्रिभुज के तीनो कोण मिलाकर दो समकोण के बराबर होते है । इसलिए अ ब स त्रिभुज का प्रत्येक कोण दो समकोण के बराबर है । इस उदाहरण मे जो बात त्रिभुज के विषय मे कही गयी है वही बात त्रिभुज के प्रत्येक कोण के विपय मे कही गयी है ।

(ब) भारतीय धार्मिक होते है । राम भारतवासी है इसलिए राम धार्मिक अवश्य है । यहाँ पर जो बात भारतवासी समूह के विषय मे सत्य है उसी बात को उसके सदस्य के विषय मे अनिवार्य रूप मे सत्य मान लिया गया है ।

सारांश

तर्क वाक्य के अंग—१. उद्देश्य, २. विधेय, ३ संयोजक ।

पद क्या है—पद एक शब्द अथवा समूह है जो अकेला किसी तर्कवाक्य का उद्देश्य अथवा विधेय बन जाता है ।

शब्दों के वर्ग—१. पद योग्य शब्द, २. पद संयोज्य शब्द, ३. पदायोग्य शब्द ।

नाम और पद—नाम एक शब्द है जिसको हम अपनी इच्छा से एक संकेत के लिये चुनते है, जोकि हमारे मन में किसी ऐसे विचार को उत्पन्न कर सकता है जैसा विचार हमारे पास पहले रह चुका हो और जो कि दूसरो के प्रति उच्चारण किये जाने से उनके लिये बोलने वाले के उस विचार का चिन्ह हो सकता है जो कि उसके मन में था । नाम तर्कवाक्य के बाहर भी हो सकता है किन्तु पद बाहर नहीं होते । नाम का प्रयोग अनेक अर्थो में होता है, पद का केवल एक अर्थ में होता है ।

पदों के प्रकार—१. एक शब्दात्मक अथवा अनेक शब्दात्मक पद, २. एक वाचक अथवा जातिवाचक पद, ३ समूहवाचक अथवा असमूहवाचक पद, ४. वस्तु-वाचक या भाववाचक पद, ५. अस्तिवाचक, नास्तिवाचक, तथा राहित्यवाचक पद, ६. निरपेक्ष अथवा सापेक्ष पद, ७ गुणवाचक अथवा अगुण वाचक पद ।

पदों के विरोध में होने वाले दोष—विरोधी पद दो प्रकार के होते हैं व्याघातक और विपरीत । ये दोनो किसी उद्देश्य या विधेय के विषय में एक साथ लागू नहीं हो सकते ।

पदों के प्रयोग के [illegible] ढंग हैं — १. [illegible] रीति, २. [illegible] रीति
३. विग्रह रीति।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

(क) [illegible]

(ख) [illegible]

[illegible]

[illegible]

(१) [illegible]

(२) [illegible]

(३) [illegible]

(४) [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

६

पदों का व्याप्त्यर्थ और गुणार्थ

(DENOTATION AND CONNOTATION OF TERMS)

प्रत्येक पद मे दो प्रकार का अर्थ निहित होता है एक तो पद की व्यापकता के द्वारा और दूसरा उसके गुण के द्वारा। व्यापकता उन व्यक्तियो, वस्तुओ अथवा जीवो का निर्देश करती है जिनके लिये वह पद प्रयोग किया जाता है। गुण का अर्थ उन विशेषताओ से है जो सामान्य रूप से उसके द्वारा निर्दिष्ट वस्तुओ, व्यक्तियो अथवा जीवधारियो मे पायी जाती है। पद का पहला अर्थ उसका व्याप्त्यर्थ और दूसरा अर्थ उसका गुणार्थ कहलाता है। पद का निर्देश उसकी व्याप्ति और गुण दोनो के समूह से बनता है। जहाँ वह किसी वस्तु अथवा जीव समूह का सकेत करता है वहाँ वह उनके गुणो का भी सकेत करता है। गुणो से उसके स्वभाव या अभिप्राय का पता चलता है, व्याप्ति से उसका विस्तार ज्ञात होता है। उदाहरण के लिए 'मनुष्य' पद का व्याप्त्यर्थ मनुष्य कहलाने वाले जीवधारियो को सम्मिलित करता है और उसका गुणार्थ ऐसे जीवधारियो का सकेत करता है जो विवेकशील हो क्योकि विवेकशील मनुष्य कहलाने वाले प्राणी का विशेष गुण है। इस इसी प्रकार 'सूर्य' पद सूर्य नामक एक वस्तु का निर्देश करता है जब कि वह उन सभी गुणो का भी सकेत करता है जो सूर्य मे होते है।

व्याप्त्यर्थ (Denotation)

व्याप्त्यर्थ से तात्पर्य विस्तार मे अर्थ से है। इसके लिये अग्रेजी मे जो शब्द प्रयोग किये गये है उनका हिन्दी के अर्थ विस्तार (Extension), सीमा (Limit) चौडाई (Breadth), क्षेत्र (Area) और राज्य (Kingdom) से है। इन सब शब्दों से यह स्पष्ट होता है कि किसी भी शब्द का व्याप्त्यर्थ यह बतलाता है कि उस पद से जाने-जाने वाले जीवधारी अथवा वस्तुओ के क्षेत्र, चौडाई, विस्तार, राज्य तथा सीमा मे कौन कौन आते है। व्याप्त्यर्थ वस्तु का सकेत करता है। न्यायशास्त्र के अनुसार वस्तु का अर्थ है "जो कुछ भी विचार का विषय हो।"

गुणार्थ (Connotation)

गुणार्थ का अर्थ उन गुणो से है जो किसी पद द्वारा निर्दिष्ट वस्तुओ अथवा जीवधारियो मे पाये जाते है। अग्रेजी भाषा मे गुणार्थ के लिये जो शब्द प्रयोग किये गये है उनके अर्थ अभिप्राय (Intention), उद्देश्य (Aim), गहराई (Depth) तथा परिवृत्त इत्यादि है। इससे यह स्पष्ट होता है कि गुणार्थ स्वभाव या अभिप्राय दिखलाता है। साधारणतया गुण के चार अर्थ माने गये है—

(१) पद को प्रयोग करने वाले के मन में उपस्थित पद की विशेषताये।
(२) पद की अभी तक ज्ञात विशेषताये।

(३) पद की ज्ञात और अज्ञात सभी विशेषताये ।
(४) पद की मुख्य विशेषतायें या मुख्य धर्म ।

गुण के विभिन्न उपरोक्त अर्थों में से पहला अर्थ आत्मगत है । इसलिये उसका कोई विशेष उपयोग नही है । पद का प्रयोग करने वाले के मन मे उसका जो अर्थ है उससे दूसरे व्यक्ति को तब तक कुछ भी ज्ञात नही हो सकता जब तक कि वह अर्थ स्पष्ट न कर दिया जाए । पद के विषय मे ज्ञात सभी गुणो को उनके गुणार्थ मे लेने से भी गलती होने की सम्भावना है क्योकि विभिन्न प्रसंग मे विभिन्न विशेषताये लागू की जाती है । तीसरे, पद के गुणार्थ के रूप मे ज्ञात अज्ञात सभी बातो को लेने से उसका अर्थ कभी भी स्पष्ट नही होगा और व्यर्थ में ही उसका गुण विस्तृत हो जायेगा । अतः गुणार्थ से तात्पर्य किसी पद से निर्दिष्ट वस्तुओं अथवा जीवधारियो के मुख्य धर्मो या मुख्य विशेषताओं से ही लिया जाना चाहिए । मैलोन के शब्दो में, "यदि गुणार्थ अनिवार्य विशेषताये सम्मिलित करता है तो यह पर्याप्त है और अनिवार्य विशेषताओं से हमारा तात्पर्य वे विशेषतायें है जिनके कारण वस्तु को विशिष्ट नाम दिया गया है और जिनकी अनुपस्थिति मे उसका निषेध किया जायेगा ।" इस प्रकार गुणार्थ से तात्पर्य उन गुणो से है जिनके कारण कोई वस्तु अथवा जीवधारी अपने नाम को सार्थक करता है और जिनकी अनुपस्थिति मे उसको वह नाम नहीं दिया जा सकता । उदाहरण के लिए चीनी में मिठास, नमक मे नमकीन स्वाद, मनुष्य में विवेकशीलता और जीवधारी में गति न हो तो इनको ये नाम नही दिये जा सकते । वैल्टन ने भी मैलोन के मत का समर्थन किया है ।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि यदि गुणार्थ को व्यक्तिगत, वस्तुगत और तार्किक गुणार्थ मे बांटा जाए तो इसमे से तार्किक गुणार्थ ही तर्कशास्त्र के काम का है । व्यक्तिगत गुणार्थ बहुत से व्यक्ति अपने दैनिक जीवन मे प्रयोग करते है । इसका तात्पर्य उन गुणो से है जो कि पद को प्रयोग करने वाले व्यक्ति के मन मे होते है किन्तु अन्य व्यक्ति को इनसे कोई सरोकार नही है । वस्तुगत गुणार्थ में वे सब गुण आते है जो ज्ञात अथवा अज्ञात हो । यह अर्थ भी तार्किक विवेचन के लिए व्यर्थ है । तार्किक गुणार्थ वह है जिसकी परिभाषा पीछे मैलोन के शब्दों मे की जा चुकी है और जिसको पीछे बतलाये हुए गुण के चार अर्थों मे चौथे क्रम मे रखा गया है । इस गुणार्थ मे वे मुख्य गुण आते हैं जो वैज्ञानिक और तर्कयुक्त खोज मे अनिवार्य गुण सिद्ध हो चुके है । इन गुणों मे व्यक्तिगत विभिन्नता से केवल मात्रा का परिवर्तन हो सकता है सर्वथा अभाव नहीं हो सकता । इन गुणो मे व्यक्तिगत विभिन्नताओ के रहते हुए भी विशेष वर्ग की वस्तुओं अथवा जीवधारियो का स्वभाव निश्चित होता है जो कि अपेक्षाकृत स्थायी होता है । इस प्रकार तार्किक गुणार्थ रूढ गुणार्थ होता है अर्थात् उसमे वे गुण आते हैं जो परम्परागत रूप से किसी विशेष पद से निर्दिष्ट वस्तुओं अथवा जीवधारियो में पाये जाते है ।

व्याप्त्यर्थ और गुणार्थ का सम्बन्ध

व्याप्त्यर्थ और गुणार्थ का सम्बन्ध बतलाते हुए यह कहा जाता है कि व्याप्त्यर्थ अथवा निर्देश और गुणार्थ अथवा गुण में प्रतिलोम परिवर्तन होता है । यहां पर इस सम्बन्ध की व्याख्या की जायेगी । विश्लेषण करने से यह पता चलता है कि इस सम्बन्ध से अग्रलिखित चार प्रकार के सम्बन्ध स्पष्ट होते हैं—

(१) **यदि व्याप्त्यर्थ बढ़ता है तो गुणार्थ कम होता है**—इसको स्पष्ट करने के लिये मनुष्य और जीवधारी दो पद लीजिये। जीवधारी पद का व्याप्त्यर्थ मनुष्य से अधिक है, इसलिये उसका गुणार्थ मनुष्य से कम है। केवल जीवनयुक्त होने से ही किसी को भी जीवधारी कहा जा सकता है किन्तु मनुष्य कहलाने के लिए केवल जीवनयुक्त होना मात्र काफी नही है वल्कि उसके साथ विवेकशीलता भी होनी चाहिये। इस प्रकार स्पष्ट है कि व्याप्त्यर्थ बढ़ने से गुणार्थ कम हो जाता है। उपरोक्त उदाहरण मे मनुष्यो के गुणो मे से विवेकशीलता निकाल देने से जो केवल प्राणित्व मात्र बचता है वह गुण जीवधारी का गुण है।

(२) **यदि व्याप्त्यर्थ घटता है तो गुणार्थ बढ़ता है**—उपरोक्त उदाहरण में यदि मनुष्य पद का व्याप्त्यर्थ कम कर दिया जाये अर्थात् असभ्य मनुष्यो को मनुष्य न माना जाये और केवल सभ्य मनुष्यों को ही मनुष्य समझा जाये तो मनुष्य पद का गुणार्थ बढ जायेगा क्योकि उसमे मनुष्य के स्वभाव के साथ-साथ सभ्य होने का गुण और लगाना पडेगा। इस प्रकार व्याप्त्यर्थ घटने से गुणार्थ बढता है।

(३) **यदि गुणार्थ बढ़ता है तो व्याप्त्यर्थ कम होता है**—यदि हम मनुष्य के आवश्यक गुण विवेकशीलता के साथ ईमानदारी और लगादे तो कम लोग मनुष्य पद के अधिकारी होगे। इसी तरह यदि इसके साथ सभ्यता के गुण को और जोड़ दिया जाये तो और भी कम लोग मनुष्य पद के अधिकारी होगे क्योकि ईमानदार, असभ्य व्यक्ति भी मनुष्य की सीमा से निकल जायेगे। इस प्रकार स्पष्ट है कि ज्यों-ज्यो किसी पद का गुणार्थ बढता है त्यो-त्यो व्याप्त्यर्थ कम होता जाता है।

(४) **यदि गुणार्थ घटता है तो व्याप्त्यर्थ बढ़ता है**—अव यदि मनुष्य कहलाने के लिये विवेकशीलता को भी हटा दिया जाये और गुणार्थ को कम करके केवल प्राणित्व को मनुष्य पद का अभिप्राय माना जाये तो ऐसी स्थिति मे अन्य पशु भी मनुष्य पद के अधिकारी हो जायेगे और मनुष्य पद का व्याप्त्यर्थ वढ़ जाएगा। इस प्रकार स्पष्ट है कि गुणार्थ घटने से व्याप्त्यर्थ वढता है।

गुणार्थ और व्याप्त्यर्थ के विलोम परिवर्तन सम्बन्ध को किसी भी ऐसे पदो की शृंखला मे देखा जा सकता है जिनमें अधिकतम व्याप्त्यर्थ से न्यूनतम व्याप्त्यर्थ तक चले गये हो। इनमे देखेंगे कि व्याप्त्यर्थ कम होने के साथ-साथ गुणार्थ वढ़ता जाता है। इसमे यदि उल्टे क्रम से अर्थात् अन्त से प्रारम्भ की ओर चला जाए तो गुणार्थ कम होते जाने से व्याप्त्यर्थ वढता जाता है। इस बात को समझने के लिये निम्नलिखित उदाहरण देखिये—

सत्व, भौतिक सत्व, शरीरी भौतिक सत्व, चेतन शरीरी भौतिक सत्व, विचारशील चेतन शरीरी भौतिक सत्व (मनुष्य), एशियाई, भारतवासी, पंजाबी, यह मनुष्य।

उपरोक्त उदाहरण मे क्रमश. व्याप्त्यर्थ कम होता गया है। सत्व का व्याप्त्यर्थ सवसे अधिक है और 'यह मनुष्य' का सवसे कम। दूसरी ओर सत्व का गुणार्थ सवसे कम है और 'यह मनुष्य' का गुणार्थ सवसे अधिक है। इससे व्याप्त्यर्थ और गुणार्थ में विलोम परिवर्तन सिद्ध होता है। एक अन्य उदाहरण अग्रलिखित है—

आकार, समतलाकार, समतलयुक्ताकार, चतुर्भुज, समानान्तर चतुर्भुज, सम्पूर्ण चतुर्भुज और वर्ग।

उपरोक्त उदाहरण में आकार का व्याप्त्यर्थ सबसे अधिक है और गुणार्थ सबसे कम। दूसरी ओर वर्ग का व्याप्त्यर्थ सबसे कम है और गुणार्थ सबसे अधिक। व्याप्त्यर्थ और गुणार्थ के विलोम सम्बन्ध को जाति और उपजाति के परस्पर सम्बन्ध मे देखा जा सकता है। प्रत्येक जाति का व्याप्त्यर्थ उपजाति के व्याप्त्यर्थ से अधिक होता है। दूसरी ओर उपजाति का गुणार्थ जाति के गुणार्थ से अधिक होता है। उदाहरण के लिये जीवधारी जाति की उपजातियाँ मनुष्य और पशु है, मनुष्य की उपजातिया, गोरी, काली, पीली आदि प्रजातियो के वर्ग है। इनमे जीवधारी का व्याप्त्यर्थ मनुष्य और मानव प्रजातियो से अधिक है क्योंकि उसमे मनुष्य के अलावा कोई भी जीव आ जाते है। मनुष्य का व्याप्त्यर्थ कम है और किसी भी मानव प्रजाति का व्याप्त्यर्थ मनुष्य पद से भी कम है। किन्तु दूसरी ओर जीवधारी कहलाने के लिये केवल प्राणित्व पर्याप्त है जबकि मनुष्य कहलाने के लिये प्राणी के साथ विवेकशीलता भी होनी चाहिये और गोरा मनुष्य कहलाने के लिये प्राणीत्व और विवेकशीलता के साथ-साथ गोर वर्ण तथा गोरी प्रजाति के अन्य लक्षण भी होने आवश्यक है। स्पष्ट है कि जैसे-जैसे व्याप्त्यर्थ कम होता जाता है वैसे-वैसे गुणार्थ बढता जाता है और ज्यो-ज्यो व्याप्त्यर्थ बढता है त्यों-त्यो गुणार्थ कम होता है।

व्याप्त्यर्थ और गुणार्थ के विलोम सम्बन्ध के विषय में नियम

व्याप्त्यर्थ और गुणार्थ के घटने बढने के उपरोक्त विलोम सम्बन्ध को निम्नलिखित रूपो से समझा जा सकता है—

(१) **व्याप्त्यर्थ अथवा गुणार्थ को घटाने बढाने से पद बदल जाता है**—जब किसी पद के गुणार्थ अथवा व्याप्त्यर्थ को घटाया बढाया जाता है तो वह पद वही न रहकर दूसरा पद बन जाता है। उदाहरण के लिये, यदि मनुष्य पद के गुणार्थ में ईमानदारी या सभ्यता बढायी जाती है तो केवल मनुष्य न कहकर ईमानदार मनुष्य अथवा सभ्य मनुष्य पद का प्रयोग करना आवश्यक होगा और ये नये पद है। इसी तरह यदि मनुष्य के गुणार्थ प्राणित्व और विवेकशीलता में से विवेकशीलता को निकाल दिया जाये अथवा उसके गुणार्थ को कम कर दिया जाए और इस प्रकार व्याप्त्यर्थ को बढा दिया जाए तो मनुष्य पद के स्थान पर पशु पद का प्रयोग करना पडेगा।

(२) **गुणार्थ और व्याप्त्यर्थ के घटने बढ़ने का नियम तभी लागू होता है जबकि उससे एक नया पद बन जाए**—उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि नया पद तभी बनता है जबकि गुणार्थ मे ऐसा कोई गुण जोड दिया जाय जो उस पद मे निर्दिष्ट सभी वस्तुओ मे सामान्य रूप से मिलता है। इससे पद को बदलने की कोई जरूरत नही पडती। उदाहरण के लिये मनुष्य का गुणार्थ विवेकशील प्राणी है। यदि विवेकशील प्राणी के साथ उसे दोपाया भी कहा जाये तो इससे मनुष्य समूह में किसी भी अन्य वर्ग के प्राणी सम्मिलित नही होते। त्रिभुज पद मे तीन रेखाओ से घिरी हुई समतलाकृति का गुण होता है। यदि इसमे तीन कोण होने की विशेषता और जोड़ दी जाए तो क्योंकि यह विशेषता सभी त्रिभुजों मे पायी जाती है इसलिये इसमे त्रिभुज पद के स्थान पर किसी अन्य पद का प्रयोग करने की आवश्यकता नही पडती।

(३) **गुणार्थ और व्याप्त्यर्थ के परिवर्तन से अनुपात या संख्या का परिवर्तन**

नही होता—गुणार्थ और व्याप्त्यर्थ के घटने बढने से गणित के अनुसार कोई प्रतिलोम अनुपात नही होता। उदाहरण के लिये यदि मनुष्य पद के स्वभाव मे काला गुण जोड़ दिया जाए तो उसके गुणार्थ मे भूमण्डल पर रहने वाले समस्त काले मनुष्य आ जायेंगे। किन्तु दूसरी ओर यदि मनुष्य के गुणार्थ मे अन्धापन गुण जोड दिया जाए तो इस पद का प्रयोग बहुत थोड़े से मनुष्यों के लिये होगा। इन दोनों ही उदाहरणो मे गुणार्थ बढा है और व्याप्त्यर्थ घटा है। किन्तु एक ही गुण के बढने से 'काला मनुष्य' के उदाहरण मे व्याप्त्यर्थ थोडा ही घटता है जबकि अन्धे मनुष्य के गुणार्थ मे व्याप्त्यर्थ बहुत अधिक घट जाता है। स्पष्ट है कि गुणार्थ और व्याप्त्यर्थ मे प्रतिलोम अनुपात तो होता है परन्तु इनके घटने बढने से परिवर्तन गणित के नियमों के अनुसार नही होता।

(४) **वर्ग की संख्या बढ़ने घटने मात्र से गुणार्थ नही बदलता**—यदि किसी पद से निर्दिष्ट वर्ग मे वस्तुओ अथवा जीवधारियो की सख्या घट बढ जाए तो इससे गुणार्थ मे कोई अन्तर नही आता। किसी समय मे योरुप में भेडियो की सख्या बहुत अधिक थीं, अब भेडिया पद से निर्दिष्ट वर्ग मे बहुत कम जीव रह गये है किन्तु इससे उसका गुणार्थ नही बदला। किसी विद्यालय मे विद्यार्थियो की सख्या घटने से उसका गुणार्थ नही बदलता। पृथ्वी पर मानव जाति के सदस्यो की सख्या बराबर बढती जा रही है परन्तु इससे मनुष्य का गुणार्थ नही बदलता। गुणार्थ के बढने से व्याप्त्यर्थ मे कमी तभी होती है जबकि किसी पद मे से पूरी उपजाति को निकाल कर गुणार्थ बढाया जाये। इसी प्रकार व्याप्त्यर्थ बढने से गुणार्थ मे कमी तभी होगी जबकि किसी पूरी उपजाति को शामिल कर लिया जाये। इसी तरह यदि किसी पूरी उपजाति को निकालकर व्याप्त्यर्थ कम कर दिया जाये तो गुणार्थ मे वृद्धि होगी।

(५) **गुणार्थ या व्याप्त्यर्थ के घटने बढ़ने से गुणार्थ नहीं घटता बढ़ता**—किसी भी पद के व्याप्त्यर्थ या गुणार्थ के घटने बढ़ने से उसके विषय मे हमारे ज्ञान का बढना आवश्यक नही है। उदाहरण के लिये जब कोलम्बस ने अमेरिका की खोज की तो महाद्वीप पद के बारे मे हमारा ज्ञान बढा परन्तु इससे महाद्वीप पद के व्याप्त्यर्थ अथवा गुणार्थ मे कोई अन्तर नही आया। इसी प्रकार यदि हमे किसी वर्ग की वस्तुओ, वनस्पति या जीवो मे भविष्य मे ऐसा नया गुण मिले जो उस वर्ग के सभी सदस्यो मे पाया जाता हो तो इससे हमारा ज्ञान बढेगा किन्तु पद के व्याप्त्यर्थ या गुणार्थ मे कोई अन्तर नही आएगा। विज्ञान की नयी-नयी खोजो से हमे मनुष्यो, पशुओ, वनस्पतियो तथा भिन्न-भिन्न पदार्थो के बारे मे नये-नये गुणो का पता चलता रहता है, परन्तु इससे उनकी परिभाषा नही बदलती। मनुष्य की जो परिभाषा हजारो साल पहले अरस्तु ने स्थापित की थी वह आज भी वैसी ही है यद्यपि मानव मनोविज्ञान के विषय मे अरस्तु के समय से आज तक कितनी ही नई बाते पता लगायी जा चुकी है।

गुणार्थ मुख्य और व्याप्त्यर्थ गौण है

कभी-कभी यह प्रश्न उठाया जाता है किसी पद के व्याप्त्यर्थ और गुणार्थ मे से कौन मुख्य और कौन गौण है। दूसरे शब्दो मे, किसी पद के अर्थ को पहले उसके गुण के द्वारा जाना जाता है या विस्तार के द्वारा। इसको समझने के लिये मनुष्य का उदाहरण लीजिये। मनुष्य को जानने मे हम पहले मनुष्य पद के अधि-

कारी जीवधारियों को जानते हैं और बाद मे बहुत से मनुष्यो का अनुभव करने के बाद मनुष्य के सामान्य गुणो को समझते है। इसलिये व्यवहार में पहले व्याप्त्यर्थ और फिर गुणार्थ जाना जाता है किन्तु तर्कशास्त्र की दृष्टि से जब तक कोई व्यक्ति मनुष्य पद के गुणार्थ को नही जानता तब तक वह यह कैसे जान सकता है कि इस पद के अधिकारी कौन-कौन जीवधारी हैं। स्पष्ट है कि मनुष्य के व्याप्त्यर्थ को समझने से पहले उसके गुणार्थ का ज्ञान आवश्यक है। यही बात ध्यान से देखने पर व्यावहारिक जीवन मे भी सत्य पाई जाएगी। यदि ध्यान दिया जाये तो जो व्यक्ति अन्य पशुओ से अलग मनुष्य पद मे आने वाले जीवधारियो को पहचानता है उसे चेतन या अचेतन रूप मे यह अवश्य पता है कि मनुष्य कहलाने के लिये कौन से गुणों की आवश्यकता है। स्पष्ट है कि तर्कशास्त्र की दृष्टि से गुणार्थ मुख्य है और व्याप्त्यर्थ गौण है क्योंकि गुणार्थ को जाने बिना व्याप्त्यर्थ का निश्चय नही किया जा सकता।

सारांश

प्रत्येक पद में दो प्रकार का अर्थ निहित होता है एक तो पद की व्यापकता के द्वारा और दूसरा उसके गुण के द्वारा। पहला अर्थ व्याप्त्यर्थ और दूसरा गुणार्थ कहलाता है। व्याप्त्यर्थ से तात्पर्य विस्तार, सीमा, चौड़ाई, क्षेत्र और राज्य से है। गुणार्थ से तात्पर्य अर्थ, अभिप्राय, उद्देश्य, गहराई अथवा परिवृत्ति से है। गुण चार प्रकार के होते हैं—१. पद को प्रयोग करने वाले के मन मे उपस्थित पद की विशेषतायें, २. पद की अभी तक ज्ञात विशेषतायें, ३. ज्ञात और अज्ञात सभी विशेषतायें, ४. मुख्य धर्म।

व्याप्त्यर्थ और गुणार्थ का सम्बन्ध—१. यदि व्याप्त्यर्थ बढ़ता है तो गुणार्थ कम होता है, २. यदि व्याप्त्यर्थ घटता है तो गुणार्थ बढ़ता है, ३. यदि गुणार्थ बढ़ता है तो व्याप्त्यर्थ कम होता है, ४. यदि गुणार्थ कम होता है तो व्याप्त्यर्थ बढ़ता है।

विलोम सम्बन्ध के विषय में नियम—१. व्याप्त्यर्थ अथवा गुणार्थ को घटाने बढ़ाने से पद बदल जाता है, २. गुणार्थ और व्याप्त्यर्थ के घटने बढ़ने का नियम तभी लागू होता है जबकि उससे एक नया पद बन जाए, ३. गुणार्थ और व्याप्त्यर्थ के परिवर्तन से अनुपात या संख्या का परिवर्तन नहीं होता, ४. वर्ग की संख्या घटने बढ़ने मात्र से गुणार्थ नहीं बदलता, ५ गुणार्थ या व्याप्त्यर्थ के घटने बढ़ने से ज्ञान नहीं घटता बढ़ता।

गुणार्थ मुख्य और व्याप्त्यर्थ गौण है।

अभ्यास के लिए प्रश्न

प्रश्न १. पद के निर्देश एव गुण की परिभाषा कीजिये और निर्देश व गुण के प्रतिलोम परिवर्तन सम्बन्ध की व्याख्या कीजिये।

२. सक्षिप्त टिप्पणी लिखिये—व्याप्त्यर्थ और गुणार्थ। (प्रयाग १९७५)

७

वाच्य धर्म

(The PREDICABLES)

उद्देश्यो के सम्बन्ध मे विधेयो के विभिन्न वर्गों के नाम वाच्य धर्म कहलाते है। प्रत्येक तार्किक वाक्य मे दो पद होते है—उद्देश्य (Subject) और विधेय (Predicate)। उद्देश्य वह है जिसके बारे मे विधान या निषेध किया जाता है। विधेय वह पद होता है जिसका उद्देश्य के बारे मे विधान या निषेध किया जाता है। इस विधेय पद का उद्देश्य से अनेक प्रकार का सम्बन्ध हो सकता है। इन्ही विभिन्न प्रकार के सम्बन्धो को वाच्य धर्म कहते हैं। अरस्तु ने यूनान में सबसे पहले वाच्य धर्मो को चार प्रकारो मे बाँटा यथा परिभाषा (Definition), सहजगुण (Proprium), जाति (Genus) और आकस्मिक गुण (Accidens)। इन विभिन्न प्रकार के वाच्य धर्मो की व्याख्या से भी वाच्य धर्म का अर्थ स्पष्ट होगा। यूनानी दार्शनिक पारफिरी (Porphyry) (सन् २३२–३०४) ने अरस्तु की पद्धति मे थोडा बहुत परिवर्तन किया जिसका विवरण आगे दिया जायेगा। यहाँ पर पहले अरस्तु के द्वारा बतलाये गए वाच्य धर्मो की व्याख्या दी जायेगी।

वाच्यधर्म क्या है ?

(१) **परिभाषा**—परिभाषा वह वाच्य धर्म है जिसमे विधेय पद का उद्देश्य पद से सम्बन्ध परिभाषा या लक्षण का है। उदाहरण के लिए मनुष्य एक विवेकशील प्राणी है। इसमे उद्देश्य और विधेय दोनो ही पदो के गुणार्थ और व्याप्त्यर्थ एक ही है अर्थात् सभी मनुष्य विवेकशील प्राणी है और सभी विवेकशील प्राणी मनुष्य हैं। इस प्रकार इस तर्कवाक्य मे विधेय का उद्देश्य से परिभाषा या लक्षण का सम्बन्ध है।

(२) **सहजगुण**—सहजगुण वह वाच्य धर्म है जिसमे विधेय उद्देश्य मे ऐसे गुण बतलाता है जो परिभाषा का अश नही है परन्तु जो परिभाषा मे बतलाये गये गुणो का सहज परिणाम है। सहजगुण स्वाभावसिद्ध गुण होते हैं। उदाहरण के लिए मनुष्य एक प्राणी है। इसमे उद्देश्य और विधेय दोनो का व्यापकत्व एक-सा है परन्तु गुण भिन्न-भिन्न है। प्राणी विधेय एक अधिक व्यापक वर्ग को बतलाता है जिसमे उद्देश्य द्वारा बतलाया गया वर्ग सम्मिलित है। प्राणित्व मनुष्य का सहज गुण है। इसलिए इस तर्कवाक्य मे सहज गुण वाच्य धर्म है। अब एक अन्य उदाहरण लीजिए, मनुष्यो मे बोलने की शक्ति है, इस तर्कवाक्य मे बोलने की शक्ति का गुण मनुष्य के मुख्य गुण अर्थात् विवेकशीलता का स्वाभाविक परिणाम है यद्यपि बोलने की शक्ति का गुण मनुष्य की परिभाषा नही करता। इस प्रकार इस तर्कवाक्य में विधेय पद

परिभाषा से अनुमेय है किन्तु परिभाषा का अंश नही है। दूसरे शब्दों में, वह परिभाषा का स्वाभाविक परिणाम है। इस प्रकार यहाँ पर वाच्य धर्म सहजगुण है। सहजगुण कारण से निकलने वाले कार्य के रूप मे हो सकता है अथवा आधार वाक्य से निकलने वाले निष्कर्ष के रूप मे हो सकता है। यह जाति के स्वभाव का परिणाम होता है।

सहजगुण दो प्रकार के होते है एक तो जाति का सहजगुण जिसे जाति सिद्ध (Generic) कहते है और दूसरे उपजाति का सहजगुण जो कि उपजाति सिद्ध (Specific) कहा जाता है। उदाहरण के लिए समद्विवाहु त्रिभुज के तीनो कोणों का योग दो समकोण के बरावर होता है। इसमे विधेय उद्देश्य समद्विवाहु त्रिभुज के स्वभाव का परिणाम नही वल्कि त्रिभुज के स्वभाव का परिणाम है। इस प्रकार यह जाति सिद्ध सहजगुण है। दूसरी ओर यदि यह कहा जाये कि समद्विवाहु त्रिभुज के दो कोण समान होते है तो इसमे विधेय जाति का नही वल्कि उपजाति अर्थात् समद्विवाहु त्रिभुज का स्वाभाविक परिणाम है। अस्तु यहाँ पर उप-जाति सहजगुण है।

(३) जाति—यह वाच्य धर्म उस पद में पाया जाता है जिसमे विधेय पद उद्देश्य पद की परिभाषा या मुख्य गुण का एक अंग होता है। दो वर्गों का आपस मे इस प्रकार का सम्वन्ध जिसमे कि एक पद का निर्देश दूसरे के निर्देश की अपेक्षा अधिक व्यापक हो जाति और उपजाति का सम्वन्ध दिखलाता है। उदाहरण के लिए प्राणी वर्ग के निर्देश मे मनुष्य वर्ग सम्मिलित है। मनुष्य वर्ग प्राणी वर्ग की उपजाति है और प्राणी वर्ग मनुष्य वर्ग की जाति है। दूसरे शव्दो मे, कम व्यापक निर्देश वाला वर्ग उपजाति और अधिक व्यापक निर्देश वाला वर्ग जाति कहलाता है। इस प्रकार जाति और उपजाति सापेक्ष पद है। उपजातियो से अलग जाति का कोई अर्थ नही है और न जाति से अलग उपजाति का ही कोई अर्थ है। उपजातियो की तुलना मे ही किसी वर्ग को जाति कहा जाता है। दूसरी ओर जाति की तुलना मे ही किसी वर्ग को उपजाति कहा जाता है। यदि कोई जाति वर्ग इतना अधिक व्यापक हो कि उससे अधिक व्यापक कोई वर्ग सम्भव न हो तो उसे सर्वोच्च जाति पद माना जाता है। यदि कोई वर्ग सम्भव न हो तो उसे सर्वोच्च जाति (Summum Genus) पद कहा जायेगा। सामान्य रूप से सत्ता को सर्वोच्च जाति पद माना जाता है। यह सर्वोच्च जाति कभी भी उपजाति नही वन सकती। दूसरी ओर यदि कोई उपजाति इतनी कम विस्तृत हो कि उसमे और अधिक वर्गीकरण सम्भव न हो अर्थात् उससे छोटा कोई वर्ग न वन सकता हो तो उसे निम्नतम उपजाति (Infima Species) कहा जाता है। निम्नतम उपजाति कभी भी जाति नही वन सकती क्योकि जाति बनने के लिये उसकी अन्य उपजातियो का होना आवश्यक है। सर्वोच्च जाति और निम्नतम उपजाति के मध्य अनेक वर्ग होते है। ये वर्ग अवर जाति या उपजाति (Subaltern genera or Species) कहे जा सकते है। किसी उपजाति के सबसे निकट रहने वाली जाति अभिन्नतम (Proximate) जाति कहलाती है। जाति और उपजाति के उपरोक्त विवेचन को समझने के लिए एक उदाहरण पर्याप्त होगा। सत्ता सर्वोच्च जाति है। इसकी उपजातियाँ है जीव और अजीव। जीव मे पशुओं और मनुष्यो को उपजाति कहा जायेगा। मनुष्यो मे गोरी, काली, पीली आदि अनेक प्रजातियाँ विभिन्न उपजातियाँ वनाती है। इनमे से प्रत्येक प्रजाति मे अनेक वर्ग है। अन्त मे 'यह मनुष्य' पद निम्नतम उपजाति है क्योंकि इसका

आगे कोई वर्गीकरण नही किया जा सकता ।

(४) **आकस्मिक गुण**—आकस्मिक गुण वह है जो न तो पद के स्वभाव का अग है और न उसका परिणाम है। स्वभाव और सहजगुण के अतिरिक्त अन्य गुण इसी वर्ग मे आते है। जिस तर्कवाक्य मे विधेय पद उद्देश्य पद की परिभाषा या मुख्य गुण का कोई अश नही होता अर्थात् आकस्मिक गुण होता है, उसमे आकस्मिक गुण वाच्य धर्म है । आकस्मिक होने के कारण इन गुणो को किसी व्यक्ति अथवा वर्ग मे हटा लेने से कोई आवश्यक परिवर्तन नही होता जब कि सहजगुण को हटा देने से वर्ग या व्यक्ति का स्वरूप बदल जाता है । आकस्मिक गुण दो प्रकार के गुण होते है वर्ग के आकस्मिक गुण और व्यक्ति के आकस्मिक गुण । वर्ग और व्यक्ति दोनो ही आकस्मिक गुण के दो प्रकार है अवियोज्य (Inseparable) और वियोज्य (Separable) । इस प्रकार सक्षेप मे, आकस्मिक गुण निम्नलिखित चार प्रकार के होते हें :—

(अ) **वर्ग का अवियोज्य-आकस्मिक गुण**—इस वर्ग मे वे गुण होते है जो किसी वर्ग के प्रत्येक सदस्य मे पाये जाते है । उदाहरण के लिए अग्रेज गोरे होते है । श्वेत वर्ण प्रत्येक अग्रेज मे पाया जाता है, कोई अग्रेज काला नही होता । कौवे काले होते है, कालापन कौवा वर्ग का अवियोज्य आकस्मिक गुण है अर्थात् वह कौवे से अलग नही किया जा सकता किन्तु कालापन कौवे की परिभाषा नही बनाता जिस प्रकार श्वेत वर्ण अग्रेज की परिभाषा नही बनाता । इसीलिये कुछ हिन्दुस्तानियो को काले अग्रेज कह दिया जाता है ।

(ब) **वर्ग का वियोज्य आकस्मिक गुण**—इसमे वे गुण सम्मिलित है जो कि किसी वर्ग के सब सदस्यो मे नही पाये जाते बल्कि कुछ सदस्यो मे पाये जाते है । इस कारण ये वर्ग के वे गुण है जो वियोज्य है, अर्थात् अलग किये जा सकते है । उदाहरण के लिये कुछ मनुष्य बुद्धिमान होते है । बुद्धिमत्ता मनुष्य वर्ग का वियोज्य गुण है । बुद्धिमान न होते हुए भी कोई व्यक्ति मनुष्य हो सकता है । बुद्धिमत्ता मनुष्य का सहज और अनिवार्य गुण नही है, इसलिए वह आकस्मिक गुण है ।

(स) **व्यक्ति का अवियोज्य आकस्मिक गुण**—प्रत्येक व्यक्ति मे कुछ ऐसे आकस्मिक गुण पाये जाते है जो कभी भी नही बदलते । उदाहरण के लिये प्रत्येक व्यक्ति के जन्म के स्थान और तिथि सदैव वही रहते है और उनमे कोई परिवर्तन नही होता । जन्म का स्थान और तिथि बदलने से व्यक्ति के स्वभाव मे विशेष परिवर्तन नही होता । अस्तु, ये आकस्मिक गुण है ।

(द) **व्यक्ति का वियोज्य आकस्मिक गुण**—इसमे वे गुण सम्मिलित है जो किसी व्यक्ति मे सदैव नही पाये जाते कभी पाये जाते है और कभी नही पाये जाते । दूसरे शब्दो मे, उनमे परिवर्तन होता रहता है । उदाहरण के लिये व्यक्ति की पोशाक, व्यवसाय, स्थिति, भावदशा आदि वियोज्य आकस्मिक गुण है ।

पारफिरी की वाच्य धर्मो की सूची

पीछे बतलाये गए चार वाच्य धर्म अरस्तु के अनुसार है । पारफिरी ने अरस्तु की पद्धति मे कुछ परिवर्तन किया । वह वाच्य धर्मो की सख्या चार न मानकर पाँच मानता है यथा जाति, उपजाति, व्यावर्तक गुण, सहजगुण और आकस्मिक गुण । इनमे व्यावर्तक गुण (Differentia) के अतिरिक्त अन्य चार की व्याख्या पीछे की जा चुकी

है । अस्तु, यहाँ पर पारफिरी के वाच्य धर्म के वर्गीकरण को समझाने के लिये केवल व्यावर्तक गुण की व्याख्या पर्याप्त होगी ।

व्यावर्तक गुण

व्यावर्तक गुण मे वे गुण आते है जो किसी जाति की एक उपजाति को दूसरी उपजाति से अलग करते है । उदाहरण के लिए विवेकशीलता मनुष्य का व्यावर्तक गुण है क्योकि इस गुण के कारण मानव जाति प्राणी वर्ग की अन्य जातियों से पृथक् पहचानी जाती है । इसी प्रकार मानव जाति में जो विभिन्न प्रजातियाँ है उनके प्रजातीय लक्षण उनके व्यावर्तक गुण है क्योकि उनके आधार पर वे एक दूसरे से भिन्न पहचानी जाती है । इस प्रकार व्यावर्तक गुण उपजाति की पहचान कराने वाला गुण है । वह उसके स्वभाव का अग है । व्यावर्तक गुण का व्याप्त्यर्थ जाति के गुण के व्याप्त्यर्थ से कम होता है । इसलिए उसका निर्देश जाति सूचक पद के निर्देश मे सम्मिलित होता है । उदाहरण के लिए मनुष्य का व्यावर्तक गुण विवेकशीलता प्राणी वर्ग के गुण प्राणित्व से कम व्यापक है । किसी उपजाति के स्वभाव मे से जाति का स्वभाव निकाल देने से जो गुण रह जाते है वे स्वाभाविक गुण उसके व्यावर्तक गुण है । मनुष्य एक विवेकशील प्राणी है । यहाँ पर प्राणित्व उसका जातिगत गुण है । विवेकशील प्राणी मे से प्राणी को निकाल देने से जो विवेकशीलता गुण बचता है वह मनुष्य जाति का व्यावर्तक गुण है ।

पारफिरी और अरस्तु की पद्धति की तुलना

पीछे बतलाया जा चुका है कि पारफिरी और अरस्तु मे वाच्य धर्मो को लेकर कुछ मतभेद है । सक्षेप मे, इन दोनो की पद्धतियो का अन्तर निम्नलिखित है :—

(१) **वाच्य धर्मों की संख्या**—जबकि अरस्तु ने चार वाच्य धर्म माने है पारफिरी ने इनकी सख्या पाँच मानी है । पारफिरी परिभाषा को वाच्य धर्म नही मानता और उपजाति तथा व्यावर्तक गुण को अलग-अलग वाच्य धर्म मानता है ।

(२) **वर्गीकरण का आधार**—अरस्तु और पारफिरी दोनों ने भिन्न-भिन्न आधारो पर वाच्य धर्मो का वर्गीकरण किया है । अरस्तु ने उद्देश्य पद की परिभाषा को विशेष रूप से ध्यान मे रखकर वाच्य धर्मो का वर्गीकरण किया । उसने उद्देश्य के भिन्न-भिन्न गुणो पर विचार किया और यह देखा कि ये गुण या तो मुख्य गुण होते है या सहजगुण अथवा आकस्मिक गुण होते है । दूसरी ओर पारफिरी ने वाच्य धर्मो का वर्गीकरण वर्ग के विभाग को ध्यान मे रखकर किया है । उसके अनुसार वर्ग के विभाग पाँच प्रकार से किये जा सकते है—जाति, उपजाति और व्यावर्तक गुण, सहजगुण और आकस्मिक गुण । चूँकि परिभाषा में जाति और व्यावर्तक गुण दोनों मिले होते है इसलिए पारफिरी उसको अलग नही मानता है । दूसरी ओर उपजाति को वाच्य धर्म न मानने के कारण अरस्तु परिभाषा को वाच्य धर्म मानता है ।

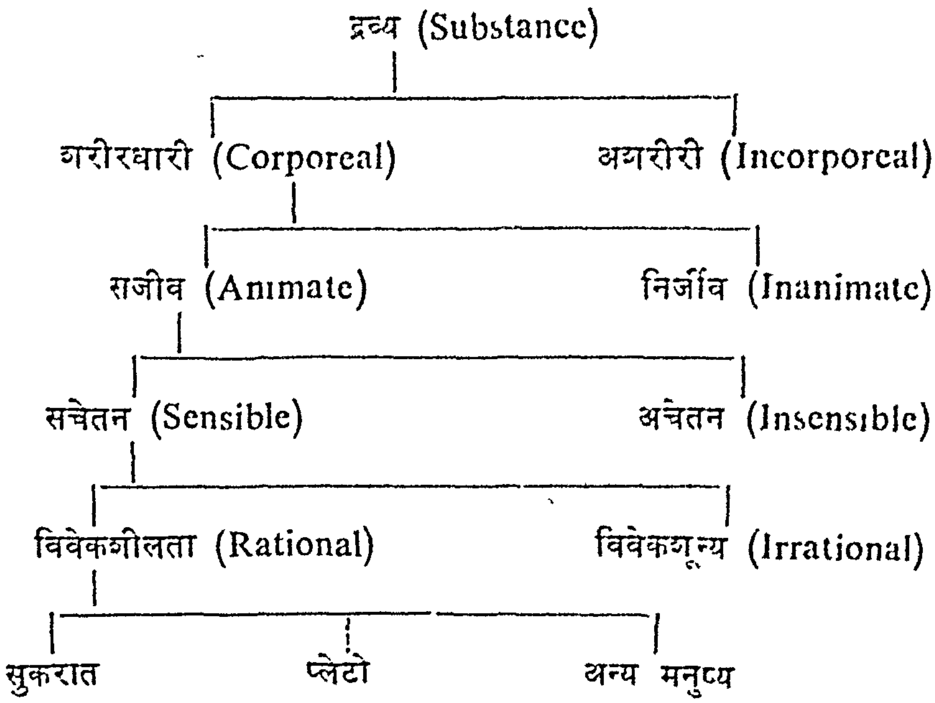
(३) **उपजाति वाच्य धर्म**—अरस्तु उपजाति को अलग वाच्य धर्म नही मानता जबकि पारफिरी उपजाति को अलग वाच्य धर्म मानता है। उपजाति केवल व्यक्ति का ही विधेय हो सकती है। उसको मानकर पारफिरी ने यह ध्यान दिया कि व्यक्तिवाचक उद्देश्य होने पर विधेय से उसके कितने प्रकार के सम्बन्ध हो सकते है। उपजाति को दृष्टि मे रक्खे बिना उद्देश्य व्यक्तिगत होने पर उसका व्यावर्तक अथवा सहजगुण नही बतलाया जा सकता।

(४) **वियोज्य और अवियोज्य में अन्तर**—पीछे जो आकस्मिक गुण में वियोज्य और अवियोज्य मे अन्तर किया गया है वह पारफिरी ने उपस्थित किया था। इससे कुछ कठिनाई उत्पन्न होती है। उदाहरण के लिये कालापन कौवे का अवियोज्य गुण नही कहा जा सकता भले ही हमने कभी ऐसा कौवा न देखा हो जो काला न हो क्योकि अवियोज्य होने से कालापन आकस्मिक गुण न होकर के अनिवार्य गुण हो जायेगा। वास्तव मे सभी आकस्मिक गुण वियोज्य ही होते हैं। इसीलिये उनको आकस्मिक कहा जाता है। अवियोज्य तो वह गुण है जिसके अभाव मे कोई उपजाति न रह सकती हो। इस प्रकार वह आकस्मिक गुण न रहकर स्वाभाविक गुण बन जाता है।

अरस्तु और पारफिरी के वाच्य धर्मों के वर्गीकरण के उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि तात्विक दृष्टि से अरस्तु की पद्धति पारफिरी की पद्धति से अधिक अच्छी है किन्तु दूसरी ओर उसमे भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणो का सम्मिश्रण नही हुआ है। वास्तव मे, जैसा कि पीछे वाच्य धर्म की व्याख्या मे बतलाया जा चुका है, वाच्य धर्म उद्देश्य और विधेय का सम्बन्ध बतलाता है। अरस्तु ने उद्देश्य और विधेय के प्रत्ययात्मक सम्बन्ध को ध्यान मे रखकर ही वाच्य धर्मों का वर्गीकरण किया है। अस्तु, यह कहा जा सकता है कि पारफिरी के वर्गीकरण की तुलना मे उसका वर्गीकरण अधिक श्रेष्ठ है।

पारफिरी का वृक्ष

पारफिरी ने सबसे पहले वाच्य धर्मो का क्रमबद्ध विन्यास उपस्थित किया। यह उसके नाम पर पारफिरी का वृक्ष कहलाता है। इसको रेमियस का वृक्ष (Ramean Tree) भी कहते है क्योकि १६वी शताब्दी मे रेमियस (Ramius) ने वाच्य धर्मो की क्रम बद्धता पर विशेप जोर दिया था। इस वृक्ष मे सबसे पहले सर्वोच्च जाति का उल्लेख किया जाता है, और फिर इस जाति को क्रमबद्ध रूप से विभिन्न उपजातियो मे विभाजित किया जाता है। सबसे अन्त मे निम्नतम जाति होती है। उच्चतम और निम्नतम जाति के मध्य मे अवर जातियाँ होती है। पारफिरी का वृक्ष अग्रलिखित है। इस वृक्ष मे द्रव्य सर्वोच्च जाति है और मनुष्य निम्नतम उपजाति है क्योकि मनुष्य को उपजातियो मे नहीं बल्कि वर्गो मे बाँटा गया है। शरीरी, सजीव इत्यादि अवर जातियाँ है जो कि व्यावर्तक गुणो के आधार पर अन्य जातियों से अलग पहचानी जाती है।



सारांश

वाच्य धर्म क्या है—उद्देश्यों के सम्बन्ध में विधेयों के विभिन्न वर्गों के नाम वाच्यधर्म कहलाते हैं।

अरस्तु की सूची—१. परिभाषा, २. सहज गुण, जाति और उपजाति के सहज गुण, ३. जाति, ४. आकस्मिक गुण, (अ) वर्ग का अवियोज्य आकस्मिक गुण, (ब) वर्ग का वियोज्य आकस्मिक गुण, (स) व्यक्ति का अवियोज्य आकस्मिक गुण, (द) व्यक्ति का वियोज्य आकस्मिक गुण।

पारफिरी की सूची—१ जाति, २. उपजाति, ३. व्यावर्तक गुण, ४. सहज गुण, ५. आकस्मिक गुण।

पारफिरी और अरस्तु की पद्धति में अन्तर—१. वाच्यधर्मों की संख्या २. वर्गीकरण का आधार, ३. उपजाति वाच्यधर्म, ४. वियोज्य और अवियोज्य में अन्तर।

अभ्यास के लिये प्रश्न

प्रश्न १. वाच्यधर्म से आप क्या समझते हैं? पारफिरी की वाच्यधर्मों की सूची की अरस्तु की वाच्यधर्मों की सूची से तुलना कीजिये। (यू० पी० बोर्ड १९७०)

प्रश्न २. वाच्यधर्म किसे कहते है? पारफिरी द्वारा दिये गये वाच्य धर्मों की स्पष्ट व्याख्या कीजिये। (यू० पी० बोर्ड १९६२)

८

तार्किक परिभाषा
(LOGICAL DEFINITION)

किसी पद या शब्द की परिभाषा करने में उसकी आसन्नतम जाति (Proximate Genus) और व्यावर्त्तक गुण (Differentia) का कथन किया जाता है।

परिभाषा क्या है ?

दूसरे शब्दो मे, परिभाषा वह वाक्य है जिसमे पद की आसन्नतम जाति और व्यावर्तक गुण का कथन किया गया हो। आसन्नतम जाति वह जाति है जिसमे विशिष्ट वस्तु, अथवा व्यक्ति सम्मिलित होता है। यह एक सामान्य बात है कि प्रत्येक व्यक्ति, वस्तु और जीव मे उसकी आसन्नतम जाति के गुण दिखलाई पडते है। उदाहरण के लिये मनुष्य आसन्नतम जाति 'प्राणी' का सदस्य है। इसीलिये उसमे प्राणित्व का गुण विद्यमान है। दूसरे शब्दो मे, यह कहा जा सकता है कि मनुष्य एक प्राणी है किन्तु केवल आसन्नतम जाति के स्वभाव की व्याख्या करने मात्र से परिभाषा नही हो जाती क्योकि मनुष्य को केवल 'प्राणी' कहने मात्र से यह पता नही चलता कि अन्य प्राणियो से वह किम प्रकार भिन्न है। मनुष्य को अन्य प्राणियो से भिन्न करने वाला अन्य गुण उसका व्यावर्तक गुण कहा जायेगा। यह व्यावर्तक गुण बुद्धिमत्ता अथवा विचारशीलता है। इस व्यावर्तक गुण को आसन्नतम जाति के स्वभाव के साथ जोड देने से मनुष्य पद की परिभाषा पूरी हो जाती है। इस प्रकार मनुष्य की परिभाषा के लिये यह कहा जायेगा कि मनुष्य एक विचारशील प्राणी है। यहाँ पर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि विचाशीलता सभी प्राणियो का गुण नही है। यह गुण एक विशेष प्रकार के मनुष्य मे पाया जाता है। जहाँ प्राणी वर्ग का सदस्य होने के कारण मनुष्य मे अन्य प्राणियो के सामान्य गुण देखे जा सकते है वहाँ विचारशील होने के कारण वह अन्य प्राणियो से अलग पहचाना जा सकता है। इस उदाहरण से स्पष्ट है कि किसी भी पद की परिभाषा करने मे उसकी आसन्नतम जाति के साथ-साथ उसके व्यावर्तक गुण का उल्लेख करना आवश्यक है।

तार्किक परिभाषा और वर्णन में अन्तर

किसी भी पद का वर्णन करने मे उसके सहज गुण, आकस्मिक गुण अथवा स्वभाव के किसी अश का बखान किया जाता है। किसी भी वस्तु अथवा जीव मे तीन प्रकार के गुण दिखलाई पडते है—एक तो वे गुण जो उसके स्वभाव से ही उसमे होते है, ये गुण सहज गुण कहलाते है। दूसरे वे गुण जो कि वस्तु अथवा जीव के स्वभाव मे शामिल नही होते, ये आकस्मिक गुण कहलाते है। सहज गुण और आकस्मिक गुण दोनो ही स्वभाव के अग है। वर्णन मे इनके अलावा कभी-कभी पद के स्वभाव के किसी अग का उल्लेख होता है। उदाहरण के लिये यदि यह कहा जाए कि घोडा वह पशु है जो बडा कीमती होता है तो इसमे कीमती होना उसका

एक आकस्मिक गुण मात्र है। परिभाषा की जो व्याख्या पीछे कही जा चुकी है, उससे वर्णन की तुलना करने पर तार्किक परिभाषा और वर्णन में निम्नलिखित अन्तर स्पष्ट होते हैं :—

(१) **परिभाषा सम्पूर्ण स्वभाव को बतलाती है**—जैसाकि कि पीछे बतलाया जा चुका है, परिभाषा में किसी विशेष गुण या स्वभाव के अंग मात्र का उल्लेख कर देना पर्याप्त नही होता। उदाहरण के लिये मनुष्य की परिभाषा करने में यह कहना काफी नही है कि मनुष्य एक प्राणी है। प्राणित्व मनुष्य के स्वभाव का एक अंग मात्र है किन्तु यह पद मनुष्य का वर्णन अवश्य हो सकता है क्योंकि जैसा कि पीछे बतलाया जा चुका है वर्णन मे सम्पूर्ण स्वभाव का उल्लेख आवश्यक नहीं है। इससे यह स्पष्ट होता है कि विभिन्न वर्णनों में अन्तर होता है। जबकि किसी वर्णन मे किसी वस्तु या जीव के बारे में बहुत थोड़ी बात मालूम होती है अन्य वर्णन से बहुत सी बातें मालूम हो सकती हैं।

(२) **परिभाषा वैज्ञानिक होती है**—सामान्य व्यक्ति विभिन्न वस्तुओं और जीवों का वर्णन तो कर सकते हैं परन्तु विशिष्ट पद की परिभाषा नही कर सकते। परिभाषा करना वैज्ञानिकों का कार्य है। अस्तु, जबकि परिभाषा वैज्ञानिक होती है वर्णन सामान्य होता है।

(३) **परिभाषा पदों की की जाती है**—किसी वस्तु या व्यक्ति की परिभाषा नही की जाती। उदाहरण के लिये राम, मोहन, राधा आदि की कोई परिभाषा नही हो सकती। परिभाषा मनुष्य की होगी। दूसरी ओर वस्तु अथवा व्यक्ति का वर्णन किया जा सकता है। आप अपने घोड़े की विशेषतायें बतला सकते हैं अथवा अपने मित्र के गुणो का वर्णन कर सकते हैं। इस प्रकार वर्णन किसी पद का नही होता जबकि परिभाषा पद की ही की जाती हैं।

(४) **परिभाषा का लक्ष्य वस्तु विषयक विचारों को स्पष्ट करना है**—परिभाषा और वर्णन के लक्ष्यों में अन्तर है। जबकि परिभाषा का लक्ष्य वस्तु विषयक विचारों को स्पष्ट करना होता है, वर्णन का लक्ष्य किसी वस्तु अथवा जीव की पहचान कराना मात्र होता है।

(५) **परिभाषा जातिवाचक पदों की होती है**—जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, व्यक्तिवाचक पदो की परिभाषा नहीं हो सकती, उनका केवल वर्णन हो सकता है। वर्णन व्यक्तिवाचक पद का ही होता है, दूसरी ओर परिभाषा केवल जातिवाचक पदों की की जाती है।

(६) **परिभाषा करने में बुद्धि की आवश्यकता होती है**—जैसा कि पीछे बतलाया जा चुका है, कोई भी व्यक्ति स्मरण शक्ति के आधार पर किसी भी वस्तु का वर्णन कर सकता है, किन्तु स्मरण शक्ति के आधार पर परिभाषा नहीं की जा सकती। परिभाषा करने या उसे समझने के लिये आसन्न जाति के स्वभाव और व्यावर्तक गुणों को समझना पडता है जिसके लिये बुद्धि की आवश्यकता होती है। अस्तु, जब कि एक बालक भी अनेक चीजों का वर्णन कर सकता है, वह पद की परिभाषा नही कर सकता। जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, परिभाषा वैज्ञानिक के द्वारा की जाती है।

परिभाषा के नियम

किसी पद की तार्किक परिभाषा करने मे अग्रलिखित नियमों का पालन किया जाना चाहिये:—

(१) **सम्पूर्ण स्वभाव का कथन**—किसी भी पद की परिभाषा करने में उसके सम्पूर्ण स्वभाव अथवा पूर्ण गुणार्थ का वर्णन किया जाना चाहिये। उदाहरण के लिये मनुष्य की परिभाषा करने मे उसे विचारशील और प्राणी कहना आवश्यक है। पूर्ण से कम अथवा अधिक कथन होने पर परिभाषा दोषपूर्ण हो जाती है। इस नियम का पालन न करने से निम्नलिखित दोष उत्पन्न होते हैं।

(अ) **स्वभाव से अधिक कथन करने से उत्पन्न दोष**—यदि किसी पद की परिभाषा करने मे स्वभाव से अधिक कथन किया गया है तो निम्नलिखित चार प्रकार की दोषपूर्ण परिभाषा होने की सम्भावना है।

(i) **व्यर्थ परिभाषा** (Redundant Definition)—यदि किसी परिभाषा में पूर्ण गुणार्थ के अतिरिक्त किसी ऐसे गुण का कथन किया गया है जो स्वभाव का अंग नहीं है बल्कि उसका परिणाम है तो इसमे व्यर्थ परिभाषा का दोष होता है। उदाहरण के लिए मनुष्य एक विचारशील प्राणी है इस पद वाक्य मे यदि यह जोड़ दिया जाये कि मनुष्य खेती करके अनाज उगाने वाला विचारशील प्राणी है तो इसमें खेती करके अनाज उगाना मनुष्य के गुणार्थ मे शामिल न होने के कारण अनावश्यक पदांश है।

(ii) **आकस्मिक परिभाषा** (Accidental Definition)—इस दोषपूर्ण परिभाषा मे, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, पूर्ण गुणार्थ के अलावा किसी आकस्मिक गुण को भी शामिल कर लिया गया है। उदाहरण के लिये यदि यह कहा जाये कि मनुष्य एक हँसने वाला प्राणी है तो चूँकि हँसना मनुष्य का एक आकस्मिक गुण है इसलिए यह परिभाषा आकस्मिक परिभाषा है।

(iii) **अव्याप्त परिभाषा** (Too narrow Definition)—यदि परिभाषा में पूर्ण गुणार्थ के अलावा किसी ऐसे गुण को शामिल किया गया है जो उस वर्ग के सभी जीवों मे नहीं पाया जाता तो इससे अव्याप्त परिभाषा का दोष होता है। उदाहरण के लिये यदि यह कहा जाए कि मनुष्य एक सभ्य बुद्धिमान प्राणी है तो चूँकि सभी मनुष्य सभ्य नही होते अर्थात् सभ्य होने का गुण सभी मनुष्यो मे नही पाया जाता इसलिए मनुष्य की यह परिभाषा सब मनुष्यो पर लागू नही होगी और अव्याप्त परिभाषा बन जाएगी।

(iv) **अतिव्याप्त परिभाषा** (Too wide definition)—पीछे बतलायी गई तीनो दूषित परिभाषाओ में स्वभाव से अधिक कथन किया गया है। यदि पूर्ण गुणार्थ न देकर उससे कम कथन किया जाये तो अतिव्याप्त परिभाषा का दोष होता है क्योकि उसमें पद के निर्देश मे सम्मिलित वस्तुओं अथवा जीवो से कही अधिक वस्तुयें अथवा जीव शामिल हो जायेगे। उदाहरण के लिए यदि यह कहा जाए कि मनुष्य एक प्राणी है तो इसमे स्वभाव से कम कथन होने के कारण यह अतिव्याप्त परिभाषा हो जायेगी क्योकि प्राणित्व केवल मनुष्यों मे ही नही होता वल्कि अन्य सब प्राणियों मे भी होता है।

(२) **परिभाष्य पद से अधिक स्पष्ट परिभाषा**—किसी भी पद की तार्किक परिभाषा वही पद हो सकता है जो कि परिभाष्य पद से अधिक स्पष्ट हो। उदाहरण के लिए मनुष्य की परिभाषा करने में यह कहना कि मनुष्य सृष्टि का शिरोमणि है मनुष्य पद को कुछ भी स्पष्ट नही करता। परिभाषा के इस नियम का पालन करने के लिए यह आवश्यक है कि परिभाषा करने वाले पद में अलंकार, अनेक

अर्थ या दुर्बोध भाषा का प्रयोग नही होना चाहिए। इस नियम का पालन न करने से निम्नलिखित दोषपूर्ण परिभाषायें उत्पन्न होती है :—

(अ) **आलकारिक परिभाषा** (Figurative Definition)—इस दोषपूर्ण परिभाषा मे, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, परिभाषा मे आलकारिक भाषा का प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए शेर की परिभाषा करने मे यह कहा जाए कि शेर जगल का राजा है तो इससे उसकी कुछ भी परिभाषा नही होती।

(ब) **दुर्बोध परिभाषा** (Obscure Definition)—ये वे परिभाषायें है जिनमे अनेकार्थक या दुर्बोध भाषा का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार की परिभाषा मे परिभाषा पढने से कुछ भी ज्ञान नही होता। उदाहरण के लिये यदि यह कहा जाये कि पेन्शन एक भत्ता है जो किसी को बिना काम के दिया जाता है तो चूंकि इस प्रकार के भत्ते अन्य भी हो सकते है इसलिए इससे पेन्शन की परिभाषा नहीं हो सकती यद्यपि यह ठीक है कि पेन्शन बिना काम के दी जाती है।

(३) **परिभाषा में परिभाष्य पद या उसका कोई पर्याय नहीं होना चाहिए**—किसी भी पद की परिभाषा करने मे यह ध्यान रखना आवश्यक है कि उसमे परिभाष्य पद या उसके पर्याय को सम्मिलित नही किया जाना चाहिये। उदाहरण के लिए मनुष्य की परिभाषा करने मे यह कहना ठीक नही है कि मनुष्य मनुष्य है अथवा कि मनुष्य मानवीय प्राणी है। पहली स्थिति मे परिभाषा मे परिभाष्य पद सम्मिलित है, दूसरे उदाहरण मे परिभाषा मे परिभाष्य पद का पर्याय सम्मिलित है। उपरोक्त नियम का पालन न करने से पर्यायोक्ति परिभाषा अथवा चक्रिक परिभाषा का दोष होता है। मनुष्य की उपरोक्त परिभाषा मे यह दोष है।

(४) **परिभाषा यथा सम्भव निषेधात्मक नहीं होनी चाहिए**—परिभाषा करने मे यह आवश्यक है कि यदि भावात्मक परिभाषा की जा सकती है तो निषेधात्मक परिभाषा नही की जानी चाहिये। इस नियम का पालन न करने से निषेधात्मक परिभाषा का दोष होता है। उदाहरण के लिए यदि सत्य की परिभाषा करने मे यह कहा जाये कि सत्य असत्य नही है तो इससे यह पता नही चलता कि सत्य क्या है, इससे केवल यही पता चलता है कि सत्य क्या नही है। किन्तु यदि किसी पद की भावात्मक परिभाषा सम्भव ही न हो तो उसकी निषेधात्मक परिभाषा की जा सकती है।

परिभाषा के उपरोक्त चारो नियमों को ध्यान मे रखते हुए यह कहा जा सकता है कि परिभाषा पर्याप्त, परिभाष्य पद से अधिक स्पष्ट, तथा पुनरुक्ति और निषेधात्मक दोष से मुक्त होनी चाहिये। इसी प्रकार की परिभाषा तार्किक कहलायेगी।

परिभाषा की सीमा

यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि सभी पदो की परिभाषा नही की जा सकती। दूसरे शब्दो मे, परिभाषा की कुछ सीमाये होती है। ये सीमायें निम्नलिखित है :—

(१) **सर्वोच्च जाति** (Summum Genus) **की परिभाषा नहीं हो सकती**—पीछे बतलाया जा चुका है कि किसी पद की परिभाषा करने मे उसकी आसन्नतम जाति का कथन आवश्यक है किन्तु यदि कोई पद सर्वोच्च जाति दिखलाता है तो उसकी आसन्नतम जाति न हो सकने के कारण उसकी परिभाषा नही की जा सकती।

उदाहरण के लिये 'सत्ता' शब्द की परिभाषा नही की जा सकती क्योंकि सत्ता से ऊँची कोई ऐसी जाति नही है जिसमे उसे रखा जा सके ।

(२) **एकवाचक, गुणवाचक नामों की परिभाषा नही हो सकती**—वे नाम जो ऐसे गुण दिखलाते है जो एक वाचक है और जिनसे अधिक सरल कोई गुण नही हो सकता उनकी परिभाषा नही की जा सकती । उदाहरण के लिए सुन्दरता, समानता इत्यादि की परिभाषा नही की जा सकती ।

(३) **व्यक्तिवाचक नामों और वस्तुओं की परिभाषा नहीं की जा सकती**—परिभाषा करने के लिये पूर्ण गुणार्थ का कथन आवश्यक है । व्यक्तिवाचक नामो का कोई गुण नही होता । अस्तु, मोहन, राम, सोहन आदि व्यक्तिवाचक नामों की परिभाषा नही की जा सकती । इसी प्रकार वस्तु मे अनन्त गुण होते है । अत· उनकी परिभाषा नही की जा सकती ।

तर्कशास्त्र में परिभाषा की उपयोगिता

बहुधा जब किसी पद के विषय मे वाद-विवाद हो रहा होता है तो हम यह देखते हैं कि वाद-विवाद करने वाले उस पद को भिन्न-भिन्न रूप मे लेने के कारण व्यर्थ वाद-विवाद कर रहे है । अस्तु, तार्किक विचार की दृष्टि से सबसे पहले यह आवश्यक है कि हम विचारणीय विषय की परिभाषा कर ले ताकि व्यर्थ वाद-विवाद न हो । उदाहरण के लिए भिन्न-भिन्न लोग ईश्वर पद के भिन्न-भिन्न अर्थ करते है और उसे लेकर व्यर्थ वाद-विवाद करते है । अब यदि ईश्वर पद का अर्थ निश्चित कर दिया जाये और उसकी परिभाषा कर दी जाए तो उसके विषय मे जो कुछ भी विचार विनिमय होगा वह लाभदायक होगा । तर्कशास्त्र विचारो की सत्यता का विज्ञान है । वह विचारो के सत्यासत्य की परख करता है । इसीलिए तर्कशास्त्र मे किसी भी पद पर विचार करने से पूर्व उसकी परिभाषा करना आवश्यक माना जाता है । परिभाषा करने से पूर्व परिभाषा की परिभाषा करना जरूरी है क्योकि यदि भिन्न-भिन्न लोग परिभाषा करने के भिन्न-भिन्न अर्थ लगायेगे तो विचारो की सत्यता असम्भव हो जायेगी । इसीलिए तर्कशास्त्र मे परिभाषा की परिभाषा की जाती है, उसके दोषो का विवेचन दिया जाता है और उसके नियमो को स्पष्ट किया जाता है ।

कुछ परिभाषाओं की परीक्षा

अब परिभाषा के पीछे बतलाये गये नियमो के आधार पर कुछ परिभाषाओ की तार्किक दृष्टि से परीक्षा की जा सकती है :—

(१) **तर्कशास्त्र सभी शास्त्रो का सम्राट है**—इस परिभाषा मे यह बतलाया गया है कि तर्कशास्त्र सभी शास्त्रो का सम्राट है । सभी शास्त्रो का सम्राट कहने से तर्कशास्त्र का आवश्यक गुण स्पष्ट नही होता । यदि इस परिभाषा को उल्टा जाये तो यह वाक्य प्राप्त होगा कि "सभी शास्त्रो के सम्राट को तर्कशास्त्र कहते है ।" यह वाक्य स्पष्ट रूप से गलत है । अस्तु, प्रस्तुत परिभाषा मे परिभाषा के इस नियम का उल्लघन किया गया है कि परिभाषा मे ऐसे पदो का प्रयोग होना चाहिये जिनको आपस मे परिवर्तित किया जा सके अर्थात् विधेय को उद्देश्य और उद्देश्य को विधेय के स्थान पर रखा जा सके ।

(२) **प्रकाश अन्धकार की अनुपस्थिति है**—यहाँ पर प्रकाश की परिभाषा करते हुए यह बतलाया गया है कि प्रकाश अन्धकार की अनुपस्थिति है । तर्कशास्त्र

की दृष्टि से यह परिभाषा अनुचित है क्योंकि परिभाषा का नियम यह है कि परिभाषा निषेधात्मक नहीं होनी चाहिए। चूँकि इस परिभाषा में यह बतलाया गया है कि प्रकाश अन्धकार की अनुपस्थिति है इसलिए इससे यह नहीं मालूम पड़ता कि प्रकाश क्या है केवल यह मालूम पड़ता है कि प्रकाश अन्धकार नहीं है।

(३) **मनुष्य दो पैरों वाला प्राणी है**—यहाँ पर मनुष्य की परिभाषा करते हुए कहा गया है कि मनुष्य दो पैरों वाला प्राणी है। दो पैरों वाला प्राणी होना मनुष्य की आवश्यक विशेषता नहीं है क्योंकि एक पैर न होने पर भी उसे मनुष्य ही कहा जाता है बल्कि कभी-कभी दोनों पैर कट जाने पर भी वह मनुष्य ही रहता है। अस्तु, पैर होना मनुष्य का अनिवार्य गुण नहीं है, उसके अभाव में भी मनुष्य होना सम्भव है। तर्कशास्त्र में किसी वस्तु की परिभाषा करने में यह आवश्यक होता है कि उसके अनिवार्य गुण का उल्लेख किया जाये जिसके अभाव में उसका अस्तित्व सम्भव नहीं है। इस नियम से यह परिभाषा अनुपयुक्त सिद्ध होती है। दूसरी ओर यदि इस परिभाषा के उद्देश्य और विधेय को आपस में बदल लिया जाये तो यह वाक्य मिलेगा कि "दो पैरों वाले प्राणी को मनुष्य कहते हैं।" इस वाक्य के अनुसार तो कौवा, तोता, मोर आदि सभी चिड़ियों को मनुष्य कहा जा सकेगा क्योंकि चिड़ियों के दो पैर होते हैं। अस्तु, यह परिभाषा दूषित है।

(४) **ज्ञानी वह व्यक्ति है जो ज्ञान रखता है**—यहाँ पर ज्ञानी मनुष्य की परिभाषा करते हुए कहा गया है कि ज्ञानी वह व्यक्ति है जो ज्ञान रखता है। यह परिभाषा दूषित है क्योंकि परिभाषा का एक नियम यह है कि उसमें परिभाष्य पद या उसका कोई पर्याय नहीं होना चाहिए। इसमें परिभाष्य पद की ही पुनरावृत्ति की गई है।

(५) **मनुष्य कविता लिखने वाला प्राणी है**—यहाँ पर मनुष्य की परिभाषा करते हुए कहा गया है कि मनुष्य कविता लिखने वाला प्राणी है। यह परिभाषा दूषित है क्योंकि ऐसे अनेक मनुष्य हैं जो कविता लिखना नहीं जानते। इस प्रकार कविता लिखना मनुष्य का अनिवार्य लक्षण नहीं है बल्कि केवल औपाधिक लक्षण है। अस्तु, यहाँ पर अव्याप्त परिभाषा का दोष पाया जाता है।

(६) **त्रिभुज वह आकृति है जिसमें तीन सरल रेखायें तथा तीन कोण होते हैं**—त्रिभुज की इस परिभाषा में आवश्यक तत्वों के साथ-साथ अनावश्यक तत्वों का भी समावेश किया गया है। अस्तु यह व्यर्थ परिभाषा हो जाती है। त्रिभुज वह आकृति है जिसमें तीन सरल रेखायें हैं, यह कहने के बाद तीन कोण होते हैं का उल्लेख करना व्यर्थ है क्योंकि तीन रेखायें होने पर तीन कोण ही बनते हैं।

(७) **साहस एक नैतिक गुण है जो कि मनुष्य को विपद का सामना करने के योग्य बनाता है**—साहस की इस परिभाषा में उसके पर्याय का उल्लेख करके परिभाषा की गयी है। विपद का सामना करना साहस का अर्थ है। अस्तु, साहस की परिभाषा करने के लिये यह कहना अनुचित है कि वह एक नैतिक गुण है जो कि मनुष्य को विपद का सामना करने योग्य बनाता है। परिभाषा के तीसरे नियम के अनुसार परिभाषा में परिभाष्य पद या उसका कोई पर्याय नहीं होना चाहिये।

(८) स्वतन्त्र व्यक्ति वह है **जो किसी का दास नहीं है**—इस परिभाषा में निषेधात्मक परिभाषा (Negative Definition) का दोष है। इसमें यह नहीं बतलाया गया कि स्वतन्त्रता क्या है बल्कि उसका निषेध बतलाया गया है।

(९) **प्रार्थना आत्मा की हार्दिक इच्छा है**—इस परिभाषा मे परिभाष्य पद के पूर्ण गुण का कथन नही किया गया है इसीलिये यह परिभाषा अशुद्ध है। प्रार्थना आत्मा की हार्दिक इच्छा है यह कहने से उसका पूरा गुण स्पष्ट नही होता। दूसरी ओर यदि इस परिभाषा मे उद्देश्य को विधेय और विधेय को उद्देश्य के स्थान पर रख दिया जाये तो यह वाक्य मिलेगा कि आत्मा की हार्दिक इच्छा प्रार्थना है। यह वाक्य गलत है क्योकि आत्मा की हार्दिक इच्छा प्रार्थना के अतिरिक्त भी हो सकती है। अस्तु, इस परिभाषा मे परिभाषा और परिभाष्य पद परिवर्तनीय नही है जिससे वह परिभाषा अशुद्ध हो जाती है।

(१०) **समय अनन्त का चचल प्रतिबिम्ब है**—परिभाषा का यह नियम है कि परिभाषा परिभाष्य पद की अपेक्षा अधिक स्पष्ट होनी चाहिये। प्रस्तुत परिभाषा मे परिभाषा परिभाष्य पद से अधिक स्पष्ट नही है। दूसरे, यहाँ यह परिभाषा करने मे अलकारो का प्रयोग किया है जिससे इस परिभाषा मे आलकारिक परिभाषा का दोष हो जाता है। चूँकि इस परिभाषा मे कठिन शब्दो का प्रयोग किया गया है इसलिये इसमे दुर्बोध परिभाषा का भी दोष है।

(११) **विश्वविद्यालय शिक्षा संस्था है**—विश्वविद्यालय शब्द मे दो शब्दो को जोडा गया है, विश्व और विद्यालय। विद्यालय का अर्थ शिक्षा सस्था होता है। अस्तु, विश्वविद्यालय की परिभाषा करने मे उसे शिक्षा सस्था कहने से पर्यायवाची परिभाषा का दोष हो जाता है। परिभाषा का यह नियम है कि परिभाषा परिभाष्य पद की पर्यायवाची नही होनी चाहिए। अस्तु, यह परिभाषा अशुद्ध है।

(१२) **जीवन मृत्यु का विपरीत है**—इस परिभाषा मे जीवन की पूर्ण गुण वाचकता का कथन नही किया गया। इसमे निषेधात्मक परिभाषा का दोष है। अस्तु, यह परिभाषा अनुचित है।

(१३) **मनुष्य गोरे रंग का जीव है**—परिभाषा का एक नियम यह है कि परिभाष्य पद मे सबमे मुख्य और आवश्यक गुणो का ही वर्णन होना चाहिये। चूँकि गोरे रग का जीव होना मनुष्य का आवश्यक गुण नही है इसलिए वह परिभाषा अशुद्ध है।

(१४) **मनुष्य आदतो की गठरी है**—परिभाषा का एक नियम यह है कि परिभाषा स्पष्ट होनी चाहिए और उसमे अलंकारो या अनेकार्थक शब्दो का प्रयोग नही होना चाहिए। मनुष्य आदतो की गठरी है यह परिभाषा स्पष्ट नही है और इसमे आलकारिक परिभाषा का दोष है।

(१५) **मनुष्य एक मनुष्यत्व पूर्ण जीव है**—परिभाषा का नियम यह है कि परिभाष्य पद परिभाषा का पर्यायवाची नही होना चाहिये। मनुष्य एक मनुष्यत्व पूर्ण जीव है यहाँ पर मनुष्य मनुष्यत्व पूर्ण जीव का पर्यायवाची है, अस्तु, यह परि-भाषा अशुद्ध है।

(१६) **मनुष्य वह जीव है जो पशु नही है**—परिभाषा का एक नियम यह है कि वह भावात्मक (Positive) होनी चाहिये और निषेधात्मक नहीं होनी चाहिये। मनुष्य वह जीव है जो पशु नही है यह मनुष्य की निषेधात्मक परिभाषा है। अस्तु, यह परिभाषा दूषित है।

सारांश

किसी भी पद की परिभाषा करने में उसकी आसन्नतम जाति के साथ-साथ उसके व्यावर्तक गुण का उल्लेख किया जाता है।

तार्किक परिभाषा और वर्णन में अन्तर—१. परिभाषा सम्पूर्ण स्वभाव को बतलाती है, २. परिभाषा वैज्ञानिक होती है, ३. परिभाषा पदों की जाती है, ४ परिभाषा का लक्ष्य वस्तु विषयक विचारों को स्पष्ट करना होता है, ५. परिभाषा जातिवाचक पदों की होती है, ६. परिभाषा करने में बुद्धि की आवश्यकता होती है। दूसरी ओर वर्णन में इन सब विशेषताओं के विपरीत विशेषतायें पायी जाती है।

परिभाषा के नियम—१. सम्पूर्ण स्वभाव का कथन—इसको न मानने से व्यर्थ परिभाषा, आकस्मिक परिभाषा, अव्याप्त परिभाषा तथा अतिव्याप्त परिभाषा के दोष होते है, २. परिभाष्य पद से अधिक स्पष्ट परिभाषा—इसको न मानने से परिभाषा आलंकारिक या दुर्बोध हो जाती है, ३ परिभाषा में परिभाष्य पद या उसका कोई पर्याय नही होना चाहिए, ४. परिभाषा यथासम्भव निषेधात्मक नहीं होनी चाहिए।

परिभाषा की सीमा—१. सर्वोच्च जाति की परिभाषा नहीं हो सकती, २. एकवाचक तथा गुणवाचक नामो की परिभाषा नहीं हो सकती, ३. व्यक्तिवाचक नामों और वस्तुओं की परिभाषा नहीं की जा सकती।

तार्किक दृष्टि से किसी भी प्रत्यय की परिभाषा किये बगैर उसका अर्थ समझ में नहीं आ सकता। तर्कशास्त्र में परिभाषा की भी परिभाषा की जाती है।

अभ्यास के लिये प्रश्न

प्रश्न १. तार्किक परिभाषा और वर्णन मे क्या अन्तर है? उदाहरण देकर समझाइये। तर्कशास्त्र मे परिभाषा की क्या उपयोगिता है? (यू० पी० बोर्ड १९६८)

प्रश्न २. तार्किक परिभाषा के नियमो का वर्णन करके उनकी व्याख्या कीजिये और उनके भग करने से उत्पन्न होने वाले दोषो को बतलाइये। (यू० पी० बोर्ड १९७०)

प्रश्न ३. परिभाषा की परिभाषा कीजिये और उसके नियम बतलाइये। (बुन्देलखण्ड १९७८)

प्रश्न ४. परिभाषा के तार्किक नियमो की व्याख्या, उसके उलघन से उत्पन्न दोषो को बतलाते हुए कीजिए। (गोरखपुर १९७६)

प्रश्न ५. जाति एव व्यवच्छेदक द्वारा परिभाषा क्या है? इस प्रकार की अच्छी परिभाषा की शर्तों की व्याख्या कीजिये। (गोरखपुर १९७६)

९

तार्किक विभाजन

(LOGICAL DIVISION)

तर्कशास्त्र शुद्ध विचार का विज्ञान है। यह वे नियम बतलाता है जिन पर चलकर हम किसी प्रश्न पर सही तरीके से विचार कर सकते है। ससार की विभिन्न वस्तुओ के बारे मे विचार करते समय हमे बहुधा उनको भिन्न-भिन्न वर्गो मे बाँटना पडता है। इसके बिना विचार सम्भव नही होता। किसी जाति या उच्च वर्ग को किसी एक सिद्धान्त के अनुसार उसकी उपजातियो या निम्न वर्गो मे तोडना ही तार्किक विभाजन है। इस प्रकार तार्किक विभाजन की प्रक्रिया मे बडे वर्ग को छोटे वर्गो मे बाँटा जाता है। स्पष्ट है कि तार्किक विभाजन का अर्थ वस्तुओ को गिनना नही है। इसमे हम किसी वस्तु को टुकडो मे नही बाँटते बल्कि जाति को उपजातियो मे अथवा वर्ग को उपवर्गो मे बाँटते है। इस प्रकार तार्किक विभाजन से जातिवाचक पदो की व्याप्ति का बोध होता है। दूसरे शब्दो में, इससे यह पता चलता है कि किसी जातिवाचक पद मे कौन-कौन से वर्ग के व्यक्तियो, जीवो अथवा वस्तुओ का समावेश है। उदाहरण के लिये मानव जाति को योरुपीय, भारतीय, अफ्रीकी, आस्ट्रेलियन आदि अनेक प्रजातियों मे बाँटा जा सकता है। इनमे प्रत्येक वर्ग मे भी अनेक उपवर्ग हैं। उदाहरण के लिये भारतवर्ष मे दर्जनो प्रजातियो के लोग पाये जाते है।

तार्किक विभाजन और भौतिक विभाजन में अन्तर

तार्किक विभाजन की उपरोक्त व्याख्या से भौतिक विभाजन (Physical Division) से उसका अन्तर स्पष्ट होता है। भौतिक विभाजन मे किसी वस्तु, जीव अथवा वनस्पति को उसके भिन्न-भिन्न भागो मे बाँटा जाता है। उदाहरण के लिये पेड़ मे जड, तना, शाखाये और पत्तियाँ होती है। ये इसके भौतिक विभाजन से अलग-अलग की जा सकती है। इसी तरह मानव शरीर मे पैर, हाथ, धड़ और सिर को अलग किया जा सकता है। एक त्रिभुज मे उसकी तीनो भुजाओ को अलग किया जा सकता है। ये सब भौतिक विभाजन के उदाहरण है। भौतिक विभाजन के विरुद्ध तार्किक विभाजन मे, जैसा कि पहले ही बतलाया जा चुका है, किसी वस्तु अथवा जीव का विभाजन न करके जाति का उपजातियो मे विभाजन किया जाता है। सक्षेप मे, तार्किक विभाजन और भौतिक विभाजन मे मुख्य अन्तर निम्नलिखित है :—

(१) तार्किक विभाजन जाति का उपजाति मे विभाजन है जबकि भौतिक विभाजन वस्तु अथवा जीव का उसके अगो मे विभाजन है।

(२) तार्किक विभाजन किसी मूल विभाजन धर्म पर आधारित होता है।

मानव प्रजाति को प्रजातीय लक्षणो के आधार पर ही तार्किक भागों मे बाँटा जाता है। किसी अन्य आधार पर ऐसा नही किया जा सकता। दूसरी ओर भौतिक विभाजन मे ऐसे किसी मूल विभाजक धर्म की आवश्यकता नही है। आप किसी वस्तु को चाहे जिस तरह टुकड़े-टुकडे कर सकते है, यह उसका भौतिक विभाजन होगा।

(३) तार्किक विभाजन विचार की दृष्टि से किया जाता है। उदाहरण के लिये प्रजातियो का विभाजन करने मे हम उनको विभिन्न मानसिक वर्गों मे बाँटते है, भौतिक रूप मे उन्हे अलग-अलग नही करते। तार्किक विभाजन पद से भी यही बात स्पष्ट होती है। दूसरी ओर भौतिक विभाजन मे, जैसा कि उसके शाब्दिक अर्थ मे स्पष्ट है, वस्तुओ को विचार की दृष्टि से नही बल्कि यथार्थ मे विभाजित कर दिया जाता है।

(४) तार्किक विभाजन क्रमबद्ध होता है। इसमे सबसे बडे वर्ग को उससे छोटे वर्ग मे और इससे छोटे वर्ग को उससे छोटे वर्ग मे इस प्रकार जाति को आसन्न उपजातियो मे विभाजित किया जाता है। भौतिक विभाजन मे ऐसा कोई नियम नही है।

(५) तार्किक विभाजन मे विभाजित पदों का एक दूसरे से सर्वथा पृथक् होना आवश्यक है। ऐसा न होने पर साच्छादन विभाजन का दोष हो जाता है। दूसरी ओर भौतिक विभाजन मे ऐसा कोई नियम नही है।

तार्किक विभाजन के नियम

तार्किक विभाजन और भौतिक विभाजन में उपरोक्त अन्तर से तार्किक विभाजन के नियम भी स्पष्ट होते है। संक्षेप मे तार्किक विभाजन के मुख्य नियम निम्नलिखित है —

(१) **तार्किक विभाजन सदैव किसी वर्ग का होता है**—जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, व्यक्ति अथवा वस्तु का भौतिक विभाजन किया जा सकता है किन्तु तार्किक विभाजन नही किया जा सकता। उदाहरण के लिये चन्द्रगुप्त, गाय, बैल या मेज, कुर्सी का तार्किक विभाजन नहीं किया जा सकता। तार्किक विभाजन मनुष्य जाति, पशु जाति या फर्नीचर का अवश्य किया जा सकता है क्योंकि ये जाति-बोधक पद है। इस प्रकार तार्किक विभाजन केवल जातिवाचक पदो का ही किया जाता है।

तार्किक विभाजन के इस नियम का उल्लघन करने से भौतिक विभाजन अथवा आध्यात्मिक विभाजन उपलब्ध होता है। आध्यात्मिक विभाजन मे किसी पदार्थ, व्यक्ति या जाति के धर्मो या लक्षणो का उल्लेख किया जाता है। इसलिए इसको आभिधर्मिक विभाजन भी कहा गया है। उदाहरण के लिये यदि किसी वृक्ष की ऊँचाई, सघनता, रूप, रंग, आदि मे विभाजन किया जाये तो यह आभिधर्मिक विभाजन का उदाहरण है। भौतिक विभाजन में व्यक्ति अथवा वस्तु का विभाजन किया जाता है। इस प्रकार यदि कोई पद जातिवाचक नही है तो उसका भौतिक या आभिधर्मिक विभाजन (Metaphysical Division) ही हो सकता है, तार्किक विभाजन नही हो सकता।

(२) **एक समय में एक विभाजक धर्म**—तार्किक विभाजन करने मे यह आवश्यक है कि एक समय मे विभाजन करने मे एक ही मुख्य विभाजक धर्म के आधार पर विभाजन किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए मानव प्रजाति को

प्रजातीय लक्षणो के आधार पर भिन्न-भिन्न उपप्रजातियो मे बाँटा जा सकता है। किन्तु उसी समय मनुष्यो को विभिन्न धर्मो, भाषाओ, राष्ट्रो आदि के आधार पर विभाजित नही किया जा सकता। भिन्न प्रसंग मे मनुष्यो का राष्ट्र के आधार पर अथवा भाषा या किसी अन्य आधार पर तार्किक विभाजन किया जा सकता है।

तार्किक विभाजन के उपरोक्त नियम को मानने से अर्थात् एक ही समय मे अनेक विभाजक धर्मो के आधार पर विभाजन करने से विभाजन सकरता का दोष (Fallacy of Cross Division) उत्पन्न होता है। उदाहरण के लिये मनुष्य को श्वेत, सभ्य, योरोपीय अथवा लम्बे वर्गो मे विभाजित करने मे चार विभाजक धर्मो का प्रयोग किया गया है। एक ही काल मे इस प्रकार का विभाजन अनुपयुक्त है क्योंकि इससे कोई वैज्ञानिक उद्देश्य प्राप्त नही होता बल्कि विचार करने मे अव्यवस्था उत्पन्न होती है।

(३) **उपवर्गों का परस्पर व्यावर्तक होना**—तार्किक विभाजन करने मे यह आवश्यक है कि उपजातियाँ अथवा उपवर्ग एक दूसरे से सर्वथा पृथक् हो। दूसरे शब्दो मे, कोई भी व्यक्ति अथवा वस्तु एक से अधिक वर्गो में शामिल नही हो सकनी चाहिये। उदाहरण के लिये यदि हम मनुष्यो को श्वेत, काली और पीली प्रजातियो मे बाँटे तो कोई भी व्यक्ति इनमे से किसी एक ही प्रजाति मे गिना जाएगा, वह एक ही साथ श्वेत अथवा काली या पीली प्रजाति का सदस्य नही हो सकता।

विभाजन के उपरोक्त नियम का पालन न करने से अर्थात् उपवर्गो के परस्पर व्यावर्तक न होने से परस्पर व्याप्त विभाजन अथवा साच्छादन विभाजन, (Overlapping Division) का दोष उत्पन्न होता है। उदाहरण के लिये यदि मनुष्य जाति को धनी, शिक्षित और हिन्दू आदि वर्गो मे बाँटा जाये तो कोई व्यक्ति एक ही साथ इन तीनो वर्गो का सदस्य भी हो सकता है क्योकि ये वर्ग एक दूसरे से सर्वथा पृथक नही है।

(४) **उपजातियों की वस्तुवाचकता विभाज्य जाति के बराबर होना**—तार्किक विभाजन के लिये यह आवश्यक है कि किसी जाति को ऐसी उपजातियो मे बाँटा जाये जिनका योग विभाज्य जाति के बराबर हो। उदाहरण के लिये भौतिक पदार्थों को ठोस, द्रव्य और गैस मे बाँटा जाता है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई भौतिक पदार्थ नही होता, इसलिये इसमे उपवर्ग विभाज्य वर्ग के बराबर है।

तार्किक विभाजन के इस नियम का दो प्रकार से उल्लघन किया जा सकता है, एक तो यदि उपजातियाँ मिलाकर विभाज्य जाति से कम बैठे तो इसे अव्याप्त अथवा अत्यधिक सकीर्ण विभाजन (Too narrow division) कहा जाता है क्योकि इसमे विभाज्य जाति की पूर्ण वस्तुवाचकता सम्मिलित नही होती। उदाहरण के लिये यदि मानव प्रजाति को केवल श्वेत और काली प्रजातियो मे बाँटा जाये तो यह सकीर्ण विभाजन है क्योकि कुछ ऐसी प्रजातियाँ छूट जाती है जो इनमे से किसी वर्ग मे नही आती। तार्किक विभाजन के उपरोक्त नियम को भंग करने का एक अन्य तरीका यह है कि जाति के विभाजन मे इतनी अधिक उपजातियो को सम्मिलित करने की कोशिश की जाये जो उसकी वस्तुवाचकता से अधिक हो। उदाहरण के लिये यदि सिक्को को सोने चादी, ताबे और पीतल के सिक्को के साथ साथ नोटो मे भी विभाजित किया जाये तो यह अति व्याप्त विभाजन है क्योकि वास्तव मे सिक्के की वस्तुवाचकता से नोटो का बोध नही होता। इसी प्रकार यह अत्यधिक व्याप्त विभाजन (Too wide division) है।

(५) विभाज्य वर्ग का नाम उसी अर्थ में सब उपवर्गों पर लागू होना—तार्किक विभाजन में यह आवश्यक है कि विभाजन करने से जितने भी उपवर्ग आयें उन सब को मुख्य वर्ग के नाम से पुकारा जा सके। उदाहरण के लिये श्वेत, काले, पीले सभी वर्णों के व्यक्तियों को मनुष्य कहा जा सकता है, इसलिये मानव को प्रजातीय वर्गों में विभाजित करना उपयुक्त है। किन्तु मनुष्य के सिर, पैर, हाथों आदि को मनुष्य नहीं कहा जा सकता इसलिये मानव का विभाजन इस प्रकार नहीं किया जा सकता। वास्तव में इस नियम को भंग करने से उपवर्गों का निर्देश मिलकर विभाज्य वर्ग के निर्देश से बड़ा हो जाता है, इसलिये इसमें अतिव्याप्ति का दोष होता है। पीछे मनुष्य को सिर, धड़, हाथ, पैर आदि में विभाजित करने का जो उदाहरण दिया गया है वह वास्तव में भौतिक विभाजन है। स्पष्ट है कि तार्किक विभाजन के इस पाँचवें नियम को न मानने से भौतिक विभाजन होता है। आभिधर्मिक विभाजन भी इसी प्रकार होता है। उदाहरण के लिये मनुष्य में बुद्धिमत्ता, प्राणित्व आदि जो गुण हैं उनमें से किसी को मनुष्य की संज्ञा नहीं दी जा सकती। इस प्रकार मनुष्य का इन गुणों में विभाजन तार्किक विभाजन न होकर आभिधर्मिक विभाजन होगा।

(६) क्रमबद्ध विभाजन—तार्किक विभाजन क्रमबद्ध विभाजन होता है। दूसरे शब्दों में, इसमें किसी भी प्रकार की छलाँग लगाना अनुचित होता है और विभिन्न वर्गों में निरन्तर क्रम बना रहता है। यह तभी हो सकता है जबकि जाति को आसन्न उपजातियों (Proximate Species) में और आसन्न उपवर्गों में बाँटा जाए। उदाहरण के लिये प्रजाति के आधार पर विभाजन में सबसे पहले मानव के बड़े-बड़े प्रजातीय वर्ग लिये जाने चाहियें और इसके बाद इनमें से प्रत्येक के उपवर्गों का उल्लेख किया जाना चाहिये। जीवधारी का विभाजन करने में हम उसे तुरन्त भारतीय और योरुपीय वर्गों में नहीं बाँट सकते। सबसे पहले उसे पशु, पक्षी और मनुष्य में बाँटना पड़ेगा और फिर इनमें से मनुष्यों को विभिन्न प्रजातियों में बाँटा जायेगा। इस प्रकार तार्किक विभाजन में किसी भी चरण को छोड़ा नहीं जाता और चरण उपचरण विभाजन किया जाता है। इस नियम का पालन न करने पर अव्याप्त विभाजन या क्रमहीन विभाजन का दोष होता है।

यदि ध्यान से देखा जाए तो विभाजन के उपरोक्त ६ नियम परस्पर सम्बन्धित हैं और इनमें से किसी एक के भंग होने पर अन्य नियम भी भंग होते हैं। इसलिये सही तार्किक विभाजन में इनमें से किसी भी नियम का उल्लंघन नहीं किया जा सकता।

तार्किक विभाजन और आभिधर्मिक विभाजन

आभिधर्मिक विभाजन अथवा गुणगत विभाजन, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, किसी वस्तु या जाति के गुणों या धर्मों का विभाजन है। उदाहरण के लिये मनुष्य में बुद्धिमत्ता, प्राणित्व आदि अनेक धर्म बतलाये जा सकते हैं। आभिधर्मिक विभाजन में विभाज्य पदार्थ उद्देश्य और विभाजित भाग उसके विधेय बनाये जा सकते हैं किन्तु धर्मों को उद्देश्य के स्थान पर नहीं रक्खा जा सकता। दूसरी ओर तार्किक विभाजन में विभाज्य जाति को उपजातियों का विधेय बनाया जा सकता है किन्तु उपजाति को जाति का विधेय नहीं बनाया जा सकता। इस प्रकार तार्किक विभाजन और आभिधर्मिक विभाजन में स्पष्ट अन्तर है। तार्किक विभाजन में हम

दिये हुए व्यक्ति अथवा वर्ग के विभिन्न गुणो के बारे मे नही सोचते बल्कि उसके किसी ऐसे मूल गुण की तलाश करते है जो कि उसके विभिन्न वर्गो मे समान रूप से पाया जाता हो ।

तार्किक विभाजन और परिभाषा

तार्किक विभाजन और परिभाषा मे बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है । इस घनिष्ठता के विषय मे कहा गया है कि "विभाजन करने मे हम परिभाषा करते हैं और परिभाषा करने मे हम विभाजन करते है ।" (In dividing we define, in defining we divide) इस प्रकार यदि हमे मानव का विभाजन करना है तो सबसे पहले यह देखना पडेगा कि मानव में कौनसा मूल गुण है जिसके आधार पर उसकी परिभाषा की जा सकती है । परिभाषा करने मे हम मानव के उसी मूल गुण का उल्लेख करते है जो कि उसको अन्य जीवधारियो से भिन्न दिखलाता है । यदि यह कहा जाता है कि मनुष्य विचारशील, चेतन जीवधारी है, तो परिभाषा मे विचार शीलता मनुष्य का व्यावर्तक धर्म है और इसी के आधार पर उसकी परिभाषा की जाती है । किसी भी पद की परिभाषा करने मे उसके व्यावर्तक धर्म के उल्लेख के साथ-साथ उसकी सामान्य जाति का उल्लेख आवश्यक होता है । विभाजन करने मे भी इन्ही दोनो को जानना आवश्यक है ।

उपरोक्त विवेचन से यह नही समझना चाहिये कि विभाजन और परिभाषा मे कोई अन्तर ही नही है । जबकि तार्किक विभाजन मे पद के व्याप्त्यर्थ से सम्बन्ध होता है, परिभाषा उसके गुणार्थ पर निर्भर होती है । वस्तुवाचकता अथवा व्याप्त्यर्थ और गुणार्थ ये दोनो ही जातिवाचक पदो मे पाये जाते है, किन्तु ये दोनो ही भिन्न-भिन्न है । दूसरी ओर व्यक्तिवाचक पदो मे केवल व्याप्त्यर्थ होता है, इसलिये उनका तार्किक विभाजन नही किया जा सकता । भाववाचक पदो मे केवल गुणार्थ पाया जाता है, इसलिये उनका भी तार्किक विभाजन नही होता । व्यक्तिवाचक और भाववाचक दोनो ही पदो की परिभाषा भी नही होती ।

तार्किक विभाजन की सीमा

तार्किक विभाजन की परिभाषा से यह स्पष्ट होता है कि कुछ परिस्थितियो मे तार्किक विभाजन सम्भव नही है । इस प्रकार की मुख्य परिस्थितियाँ निम्न-लिखित है —

(१) व्यक्ति विशेष या किसी अकेली वस्तु का भौतिक अथवा आभिधर्मिक विभाजन किया जा सकता है किन्तु तार्किक विभाजन नही किया जा सकता क्योकि तार्किक विभाजन केवल जातिवाचक पद का होता है ।

(२) तार्किक विभाजन के लिये यह आवश्यक है कि जातिवाचक पद मे उप-जातियो की सम्भावना हो । अन्त्य जाति (Infima Species) मे उपजातियाँ नही होती, इसलिये उनका तार्किक विभाजन नही किया जा सकता । उसे केवल व्यक्तियो मे बाटा जा सकता है ।

(३) आतरिक अनुभवो का तार्किक विभाजन नही किया जा सकता क्योकि उनका विश्लेषण सम्भव नही है ।

तार्किक विभाजन की परिभाषा करते हुए यह कहा जाता है कि उसमे विभाजक धर्म एक ही होना चाहिये और उपवर्ग परस्पर व्यावर्तक होने चाहिये । इसके अतिरिक्त विभाज्य वर्गो को मिलाकर मुख्य वर्ग के निर्देश के बराबर होना

चाहिए। द्विवर्गाश्रित विभाजन (Division by Dichotomy), जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है, ऐसा विभाजन है जिसमें किसी उच्च वर्ग को अस्तिवाचक और नास्तिवाचक दो वर्गों में बाटा जाता है। किसी भी वर्ग के अस्तिवाचक और नास्ति-वाचक उपवर्गों में कोई मध्य दशा सम्भव नहीं है। ये दोनों ही वर्ग मिलाकर विभाज्य वर्ग के निर्देश के बराबर होते है। इस प्रकार स्पष्ट है कि द्विवर्गाश्रित विभाजन तार्किक विभाजन के नियमों का पालन करता है। इसका एक उदाहरण इस प्रकार दिया जा सकता है कि मनुष्य जाति को एशियावासी वर्गों में बाटा जा सकता है। प्रत्येक मनुष्य इसमें से किसी न किसी वर्ग में अवश्य आएगा, तीसरी स्थिति नहीं हो सकती। इसी प्रकार एशियावासियों को भारतीय और अभारतीय वर्गों में बाँटा जा सकता है। भारतीय वर्ग को बंगाली और अबगाली वर्गों में बाटा जा सकता है।

द्विवर्गाश्रित विभाजन का विशेष लाभ यह है कि यह विभाजन पूर्ण होता है और इसमे कोई व्याघात अथवा मध्य दशा सम्भव नहीं होती। किन्तु, दूसरी ओर इसी विभाजन से वस्तुओं के विषय मे कुछ भी पता नहीं चलता। उदाहरण के लिये किसी व्यक्ति को अभारतीय कहने से यह तो मालूम होता है कि वह भारत का नहीं है किन्तु यह मालूम नहीं होता कि वह किस देश का है। यही बात अन्य द्विवर्गाश्रित विभाजनो के बारे में कही जा सकती है। वास्तव में द्विवर्गाश्रित विभाजन एक आकार विषयक (Formal) प्रक्रिया है। इसमें आकार मात्र का विभाजन होता है और विभाज्य वस्तुओ के बारे में कुछ भी ज्ञान नहीं होता। इस प्रकार यह विभाजन स्पष्ट और निश्चित ज्ञान नहीं देता। सच तो यह है कि इस विभाजन में बतलाई गई अभावात्मक जाति का कोई अस्तित्व नहीं होता।

सारांश

तार्किक विभाजन भौतिक और आभिधर्मिक विभाजन से भिन्न है। उसकी विशेषतायें हैं—(१) तार्किक विभाजन सदैव किसी वर्ग का होता है, (२) एक समय में एक विभाजक धर्म, (३) उपवर्गों का परस्पर व्यावर्तक होना, (४) उप-जातियों की वस्तुवाचकता विभाज्य जाति के बराबर होना, (५) विभाजक वर्ग का नाम उसी अर्थ में सभी उपवर्गो पर लागू होना, (६) क्रमबद्ध विभाजन होना। अस्तु तार्किक विभाजन सीमित है। वह परिभाजन पर आधारित है। द्विवर्गाश्रित विभाजन आकारगत विभाजन है।

अभ्यास के लिये प्रश्न

प्रश्न १ तार्किक विभाग किसे कहते हैं ? भौतिक विभाग से इसका अन्तर बतलाइये तथा तार्किक विभाग के नियमों का विवेचन कीजिये। (यू० पी० बोर्ड १९६४)

प्रश्न २. तार्किक विभाजन किसे कहते हैं ? तार्किक विभाजन क्रमगत विभाजन तथा गुणगत विभाजन से किस प्रकार भिन्न है ? (यू० पी० बोर्ड १९६२)

प्रश्न ३. तार्किक विभाग की प्रकृति तथा नियम समझाइये। तार्किक परिभाषा से उसका क्या सम्बन्ध है ? (यू० पी० बोर्ड १९६१)

प्रश्न ४. विभाग और परिभाषा का सम्बन्ध और उनमे अन्तर बतलाइये। (यू० पी० बोर्ड १९७१)

१०

निर्णय

(JUDGEMENT)

तर्कशास्त्र भाषाभिव्यक्त विचारो का विज्ञान है। विज्ञान के द्वारा हमे सत्य अथवा ज्ञान प्राप्त होता है। यह विचार अथवा चिन्तन एक प्रक्रिया है। निर्णय इस प्रक्रिया मे एक सोपान है।

निर्णय क्या है ?

निर्णय विचार की प्रक्रिया को प्रारम्भ करता है। उदाहरण के लिये जब कभी कोई बाह्य वस्तु हमारी चेतना के क्षेत्र मे आती है तो हमे निर्णय के द्वारा उसका ज्ञान होता है। इस प्रकार निर्णय प्रथम बौद्धिक क्रिया है। वह केवल क्रिया ही नही बल्कि उसका परिणाम भी है। निर्णय से हमे ज्ञान प्राप्त होता है। इस प्रकार ज्ञान निर्णय का परिणाम है और निर्णय ज्ञान तक पहुँचाने वाली प्रक्रिया है। दूसरे शब्दो मे, विचार निर्णय के माध्यम से चलता है। यही निर्णय जब भाषा मे अभिव्यक्त हो जाता है तब हम इसे तर्कवाक्य कहते है। इस प्रकार तर्कवाक्य निर्णय का बाह्य रूप है और निर्णय तर्कवाक्य का आन्तरिक रूप है।

निर्णय और प्रत्यय

कुछ तर्कशास्त्री निर्णय को नही बल्कि प्रत्यय को विचार की मूल इकाई मानते है। इसके अनुसार निर्णय प्रत्ययो को जोडने अथवा अलग करने की प्रक्रिया है। निर्णय प्रत्ययो से बनते है। उदाहरण के लिये लोहा एक धातु है, इसमे लोहा और धातु इन दो प्रत्ययो के जोडने से निर्णय बना है। किन्तु दूसरी ओर यदि ध्यान से देखा जाये तो प्रत्यय बनाने मे भी निर्णय करने की आवश्यकता होती है। दूसरे शब्दो मे, प्रत्यय निर्णय की इकाई नही है बल्कि निर्णय ही प्रत्यय की इकाई है। उदाहरण के लिये लोहा हमारे लिये कुछ निर्णय का प्रतिनिधि है। जैसे वह कडी धातु है, वह गलनशील है, वह कठोर है, उसके हथियार बनते है इत्यादि। जिस प्रत्यय मे जितना ही अधिक अर्थ अथवा महत्व होता है उसके मूल मे निर्णयो की उतनी ही अधिक सख्या होती है। निर्णय से अलग प्रत्यय केवल शब्द मात्र है। निर्णय प्रत्यय को विचार देता है। इस प्रकार प्रत्यय निर्णयो की एक शृ खला से बनता है। वह निर्णयो की शृ खला का प्रतिनिधि है। वह अनेक निर्णयो को सक्षेप मे अभिव्यक्त करता है।

निर्णय और तर्कवाक्य

प्रत्ययो को निर्णयो की इकाई मानने के मूल मे एक अन्य गलती निर्णय और तर्कवाक्य मे अन्तर न करना है। तर्कवाक्य मे उद्देश्य और विधेय तथा सयोजक

होते है। उनमे सयोजक, उद्देश्य और विधेय को सयुक्त करता है। उद्देश्य और विधेय शब्द है। इस प्रकार तर्कवाक्य शब्दो से बनता है। किन्तु दूसरी ओर निर्णय शब्दो से नही बल्कि विचारो से बनता है। उसमे तर्कवाक्य के समान उद्देश्य विधेय और सयोजक नही होते। वह तो बाह्य सवेदना के प्रति एक बौद्धिक प्रतिक्रिया है जिससे कि हम उसका कोई अर्थ या महत्व निश्चित करते हैं। अस्तु, यह नही कहा जा सकता कि निर्णय प्रत्ययो से बनता है। दूसरी ओर निर्णयो के बिना प्रत्ययो का कोई अर्थ नही होता। अस्तु, यह कहना अधिक उचित है कि निर्णय विचार की इकाई है। जब अनेक निर्णय एकत्रित हो जाते है तो वे प्रत्यय का रूप धारण कर लेते हैं। निर्णयो की शृंखला एक के बाद एक निर्णय के द्वारा चलती रहती है। इस शृंखला मे मूल की ओर चलते हुए किसी न किसी निरपेक्ष निर्णय पर पहुँचना अत्यन्त आवश्यक है जिससे पहले कोई निर्णय नही होता। इस प्रकार के निरपेक्ष निर्णय समस्त ज्ञान विज्ञान और दर्शन के मूलाधार हैं। इन्ही से समस्त विचार प्रारम्भ होता है। सक्षेप मे, निर्णय विचार की इकाई है। निर्णय से ही विचार की क्रिया का विकास प्रारम्भ होता है। शब्दो का रूप धारण करके निर्णय तर्कवाक्य बन जाता है।

निर्णय और अनुमान

अनुमान एक पूर्णतया विकसित निर्णय है। जैसे-जैसे हमारा चिन्तन सरल निर्णय के अनुमान की ओर बनता है वैसे-वैसे उसमें अधिकाधिक विभेदीकरण और संकलन हो जाता है। अस्तु, निर्णय और अनुमान मे निम्नलिखित दो भेद बतलाये जा सकते हैं :—

(१) **अनुमान से निर्णय अधिक जटिल है**—जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है, निर्णय एक पूर्ण, सरल क्रिया है, उसमे किसी प्रकार के टुकड़े या भाग नही होते। दूसरी ओर, अनुमान मे अनेक सोपान होते है।

(२) **अनुमान में निष्कर्ष के आधार बतलाये जाते हैं**—एक सरल निर्णय मे इन्द्रिय प्रत्यक्ष के आधार पर कुछ कहा जाता है जैसे—कल वर्षा हुयी अथवा बस छूट गयी है इत्यादि। इनमे से प्रत्येक कथन अकेला होता है उसे किसी अन्य तथ्य अथवा तथ्यो की सहायता की आवश्यकता नही पडती। दूसरी ओर अनुमान तथ्यो मे अनिवार्य सम्बन्ध स्थापित करता है, उसमे ज्ञात के आधार पर अज्ञात के विषय मे कथन होता है। उसमे उपस्थित वस्तुओ के आधार पर उनसे अनिवार्य रूप से सम्बन्धित अन्य वस्तुओ के विषय मे कथन होता है। यह आवश्यक नही है कि अनुमान मे किसी नवीन सत्य की ही स्थापना की जाये यद्यपि अनुमान से अनेक बार नवीन सत्यो पर पहुँचा जाता है। अनुमान मे कथन के आधार स्पष्ट करके यह दिखलाया जाता है कि कुछ तथ्यो के आधार पर कथन मे कही गयी बात अनिवार्य सिद्ध होती है। जबकि निर्णय को बिना किसी तर्क वितर्क के मान लिया जाता है अनुमान मे तर्क देना आवश्यक होता है और अनुमान के सत्य को उसके वाक्यो के सत्य पर ही आधारित माना जाता है। सच तो यह है कि जब कोई निर्णय अपने कारणों अथवा आधारो के प्रति चेतन है तो वह अनुमान का रूप ग्रहण कर लेता है। इस प्रकार निर्णय और अनुमान मे आधार की चेतना का अन्तर है।

निर्णय के मुख्य लक्षण

निर्णय के स्वरूप अथवा प्रकृति को भली प्रकार समझने के लिये उसके

लक्षणो को जानना आवश्यक है। तर्कशास्त्रियो ने निर्णय के निम्नलिखित मुख्य लक्षण माने है :—

(१) **सार्वभौमिकता** (Universality)—निर्णय का एक विशेष लक्षण सार्वभौमिकता है। निर्णय की सार्वभौमिकता से तात्पर्य यह है कि वह प्रत्येक के लिये सत्य होने का दावा करता है। भले ही उद्देश्य और विधेय कोई भी हो निर्णय प्रत्येक मस्तिष्क के लिये सत्य होना चाहिये। उदाहरण के लिये मनुष्य मरणशील है, यह निर्णय सार्वभौम सत्य है क्योकि यह प्रत्येक मनुष्य के विषय मे मरणशीलता का दावा करता है। इस निर्णय से हमे मनुष्य के विषय मे नवीन ज्ञान प्राप्त होता है। इस प्रकार निर्णय देने मे हम किसी विशेष व्यक्ति के बारे मे कुछ नही कहना चाहते वल्कि उस जैसे सभी व्यक्तियों के बारे मे कुछ निर्णय करते है। निर्णय के ये सत्य व्यक्तिगत मनस से सम्बन्ध की अपेक्षा नही रखते। इसीलिये निर्णय वस्तुगत कहा जाता है। यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति यथार्थ निर्णय पर पहुँचने के लिये व्यक्तिगत रूप से प्रयास करता है परन्तु जिस सत्य पर वह पहुँचता है उसको वस्तुगत माना जाता है क्योकि वह सभी व्यक्तियो के लिये एक सा है। इसीलिये दार्शनिको ने कहा है कि सत्य एक ही है यद्यपि सब उस तक भिन्न-भिन्न मार्गो से पहुँचते है।

यदि निर्णय मे सार्वभौमिकता न मानी जाए तो हम सन्देहवाद पर पहुँचते है क्योकि तब ज्ञान सम्भव नही होगा। प्रत्येक का निर्णय केवल उसी के लिये सत्य होगा जिससे ज्ञान आत्मगत् और व्यक्तिगत हो जायेगा। दूसरे शब्दो मे, यदि निर्णय सार्वभौम न हो तो सत्य की खोज का कोई अर्थ नही है अर्थात् सत्य की खोज नही की जा सकती क्योकि ऐसी स्थिति मे प्रत्येक व्यक्ति का निर्णय केवल उसी के लिए सत्य होगा और उसके लिए भी केवल उसी क्षण सत्य होगा। वह किसी स्थायी सत्य का वोधक नही होगा। ऐसा होने पर सत्य और असत्य मे कोई अन्तर नही रह जाएगा। अस्तु, निर्णय मे सार्वभौमिकता का लक्षण मानना आवश्यक है अन्यथा किसी भी प्रकार का ज्ञान सम्भव नही है। सार्वभौमिकता न मानने पर निर्णय मे सन्देह का निर्णय भी मिथ्या होगा। निर्णय मे सन्देह के निर्णय का कोई अर्थ तभी हो सकता है जब कि वह निर्णय करने वाले व्यक्ति के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियो के लिये भी सत्य हो और ऐसा होने पर निर्णय सार्वभौम हो जायेगा। अस्तु, निर्णय की सार्वभौमिकता को माने बिना निर्णय की सार्वभौमिकता मे सन्देह भी नही किया जा सकता। यह तार्किक दोष की स्थिति है। अस्तु, निर्णय की सार्वभौमिकता मानना आवश्यक है। सत्य वह है जिसमे सभी वौद्धिक प्राणी भाग ले सकते है और तर्कशास्त्र इसी प्रकार के सत्य की खोज करता है। अस्तु, निर्णय की सार्वभौमिकता के बिना तर्कशास्त्र असम्भव है।

(२) **अनिवार्यता** (Necessity)—निर्णय का दूसरा लक्षण अनिवार्यता है। अनिवार्यता का अर्थ यह है कि निर्णय करने वाला व्यक्ति चाहे जिस निर्णय पर नही पहुँच सकता बल्कि बौद्धिक प्राणी के रूप मे वह एक विशेष प्रकार के निर्णय पर पहुँचने के लिए बाध्य है। दूसरे अर्थो मे, हमारे निर्णय हमारे विश्वासो से नही बनते बल्कि हमारे विश्वास हमारे निर्णयो से बनते है। दैनिक जीवन के सामान्य अनुभवो से हम अपने निर्णयो के आधारो से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप मे परिचित होते है। हम यह अनुभव करते है कि हमारे निर्णय यथार्थ और निश्चित है। हमे लगता है कि यह असम्भव है कि हमारा निर्णय गलत हो। किन्तु निर्णय की

यथार्थता का यह अर्थ नहीं है। निर्णय की अनिवार्यता का आधार उसकी व्यक्तिगत् अनुभूति नहीं बल्कि उसके आधारों की चेतना है। सामान्य जीवन में बहुधा हम अपने निर्णयों के आधारों की विवेचना किये बिना ही उनको अनिवार्य मान लेते हैं। अशिक्षित और शिक्षित व्यक्ति, सामान्य व्यक्ति और वैज्ञानिक में यही अन्तर है। अशिक्षित और सामान्य व्यक्ति अपने निर्णयों के आधारों की विवेचना किये बिना केवल इस अनुभूति के आधार पर उन्हें सत्य मान लेता है कि वे उसे सत्य प्रतीत होते हैं। इसीलिये यदि कोई उसकी सत्यता में सन्देह उठाता है तो वह क्रुद्ध हो उठता है किन्तु इससे उसके निर्णयों की अनिवार्यता सिद्ध नहीं होती जब तक कि वह अनिवार्यता के आधारों को स्पष्ट न करे। विचार के विकास में हम क्रमशः उन आधारों की चेतना प्राप्त करते हैं जिन पर हमारे निर्णय आधारित हैं। यह विचार की प्रक्रिया सरल निर्णय से प्रारम्भ होती है किन्तु वही निर्णय जो प्रारम्भ में एकाकी प्रतीत होता था क्रमशः व्यापक होकर अपने अन्दर उन आधारों को सम्मिलित कर लेता है जिन पर वह आधारित है। इस प्रकार प्रत्येक निर्णय एक व्यापक विचार शृंखला का अंग है, उसकी अनिवार्यता की अनुभूति उसकी संयुक्तता और आधारों की सबलता का प्रमाण है किन्तु निर्णय की अनिवार्यता के लिए केवल आंतरिक अनुभूति ही पर्याप्त नहीं है। यह अनुभूति उन तर्कों से स्पष्ट होनी चाहिये जो निर्णय का औचित्य दिखलाते हैं। इसके लिए विशेष निर्णय के अन्य निर्णयों से सम्बन्ध की स्थापना करनी होगी। दूसरे शब्दों में, अनिवार्यता की स्थापना के लिए निर्णय का अनुमान में विकास होना चाहिये। स्पष्ट है कि निर्णय की अनिवार्यता प्रत्यक्ष न होकर परोक्ष होती है उसके लिए अन्य निर्णयों की आवश्यकता होती है। वह कोई ऐसा लक्षण नहीं है जो स्वयं निर्णय से ही लगा हुआ हो बल्कि निर्णय के अन्य निर्णयों पर आधारित होने से निकलता है। विभिन्न विज्ञानों में एक तथ्य की स्थापना दूसरे तथ्य से, दूसरे तथ्य की स्थापना तीसरे तथ्य से और तीसरे तथ्य की स्थापना चौथे तथ्य से की जाती है तथा इसी प्रकार तथ्यों की यह शृंखला बराबर चलती रहती है। उदाहरण के लिए एन्जिन के पिस्टन राड की गति की व्याख्या भाप के दबाव से की जाती है और भाप के दबाव की व्याख्या उष्णता की शक्ति से की जाती है तथा उष्णता की व्याख्या ईन्धन के जलने से की जाती है। इस प्रकार कारणों की खोज में हम एक निर्णय से दूसरे निर्णय की ओर जाते रहते हैं किन्तु यह प्रक्रिया असीम तक नहीं जा सकती, किसी न किसी स्थान पर हमें कुछ सर्वोच्च तथ्यों पर रुक जाना पड़ेगा जिनसे ऊँचे कोई तथ्य नहीं हैं। ये सर्वोच्च तथ्य अथवा सिद्धांत अनिवार्य और स्वयं सिद्ध माने जाते हैं। ये अनुभव—पूर्व सत्य हैं। ये प्रत्येक ज्ञान विज्ञान के मौलिक प्रथम सिद्धांत हैं। ये ज्ञान विज्ञान की मान्यतायें हैं। इन्हीं के आधार पर विभिन्न विज्ञानों के विशाल भवन खड़े किये जाते हैं। ये प्रत्यक्ष रूप में अनिवार्य माने जाते हैं और इन्हीं से प्रत्येक निर्णय की अन्तिम व्याख्या की जाती है। इस प्रकार बौद्धिक ज्ञान व्यवस्था की स्थापना करता है, बिना व्यवस्था (System) के ज्ञान सार्थक नहीं हो सकता। यह व्यवस्था दर्शन द्वारा प्रदान की जाती है। इसीलिये प्रत्येक दर्शन कुछ अन्तिम सत्यों, कुछ प्रथम सिद्धांतों, कुछ अनुभव—पूर्व और अनिवार्य सत्यों पर आधारित होता है जो कि उसकी पूर्व मान्यताएँ मानी जाती हैं।

(३) **निर्णय में विश्लेषण और संश्लेषण दोनों होते हैं**—यदि हम किसी यथार्थ निर्णय पर ध्यान दें तो हम यह देखेंगे कि उसमें विश्लेषण की प्रक्रिया निहित है। उदाहरण के लिये जब हम यह कहते है कि गुलाब मे काँटेदार पत्तियाँ होती हैं तो हम यह जानते है कि इस निर्णय के द्वारा गुलाब मे नवीन गुण की स्थापना की गई है। यह हम कैसे जानते हैं? इसके लिये विश्लेषण (Analysis) की क्रिया का सहारा लेना पडता है जिसमे हम गुलाब के भिन्न-भिन्न गुणो को एक दूसरे से अलग करते है।

किन्तु दूसरी ओर यदि इसी निर्णय पर फिर से गौर किया जाए तो हम यह देखेगे कि इसमे सश्लेषण (Synthesis) की प्रक्रिया भी विद्यमान है क्योकि इसमे यह विचार निहित है कि गुलाब के भिन्न-भिन्न गुणो मे केवल अन्तर ही नही वल्कि एक आन्तरिक सम्बन्ध भी है। इस प्रकार निर्णय मे विश्लेषण और सश्लेषण दोनो की प्रक्रियाये निहित होती है। यहाँ पर कुछ लोग यह शका करते है कि ये दोनो परस्पर विरोधी प्रक्रियाएँ निर्णय मे एक ही साथ कैसे हो सकती हैं। यह ठीक है कि जहाँ तक भौतिक वस्तुओ का प्रश्न है उनका विश्लेषण और सश्लेषण एक साथ नही किया जा सकता। किन्तु चूकि निर्णय मे ये दोनो प्रक्रियाये मानसिक रूप से की जाती है इसीलिये इनमे इस प्रकार की कोई कठिनाई नही है। उदाहरण के लिये गुलाब के फूल को जहाँ हम एक समग्र रूप मे देखते है वहाँ उसी समय उसकी पखडियो पर अलग-अलग विचार करने मे भी कोई असुविधा नही है। प्रत्येक वस्तु पूर्ण की दृष्टि मे सश्लेषित और अशों की दृष्टि से विश्लेषित होती है। इसलिये प्रत्येक निर्णय और विचार की प्रक्रिया मे ये दोनो क्रियाएँ साथ-साथ चल सकती है। सच तो यह है कि इनमे से किसी का भी दूसरे के विना कोई अर्थ नही है। फिर भी विशिष्ट अवसर पर निर्णय के प्रयोजन के अनुसार इनमे से एक अथवा दूसरी प्रक्रिया पर अधिक जोर दिया जा सकता है। कुछ निर्णयो मे विश्लेषण पर अधिक जोर दिया जाता है। उदाहरण के लिये पानी का विभाजन हाइड्रोजन और ऑक्सीजन मे किया जाता है। दूसरी ओर कुछ निर्णयो मे सश्लेषण पर विशेष जोर दिया जाता है। उदाहरण के लिये इमारत, ईंट, गारा, सीमेंट और चूना से वनती है।

कुछ तर्कशास्त्रियो ने विश्लेषणात्मक और सश्लेषणात्मक निर्णयो को एक दूसरे से सर्वथा भिन्न माना है। यह मत निर्णय के स्थान पर तर्कवाक्य को रख देता है। सश्लेषणात्मक और विश्लेषणात्मक तर्कवाक्यो मे अन्तर होता है, निर्णयों मे नही क्योकि निर्णय एक अकेली बौद्धिक क्रिया है जो कि किसी पूर्ण के विभिन्न अगो मे एक साथ ही अन्तर करती है और उनको परस्पर संयुक्त करती है। निर्णय एक पूर्ण प्रक्रिया है जिसका विभाजन नही किया जा सकता इसलिये इसमे अलग से विश्लेषण सम्भव नही है।

(४) **ज्ञान की व्यवस्था की रचना** (Construction of a system of Knowledge)—निर्णय का चौथा लक्षण यह है कि वह ज्ञान की व्यवस्था की रचना करता है। विश्लेषणात्मक और सश्लेषणात्मक दोनो ही विधियो से चलते हुए एक ओर वह नवीन अशो का पता लगाता है और दूसरी ओर इन विभिन्न अशो मे सम्बन्ध की स्थापना करके पूर्ण की रचना करता है। इस प्रकार चिन्तन की प्रक्रिया मे विभेदीकरण और सकलन दोनों की प्रक्रियाएँ देखी जा सकती हैं।

ज्ञान की व्यवस्था के निर्माण की प्रक्रिया मे प्रत्येक निर्णय एक सोपान है। व्यवस्था मे प्रत्येक अंग का पूर्ण से निश्चित् और अनिवार्य सम्बन्ध होता है। इस प्रकार व्यवस्था मे प्रत्येक अग का अन्य अगो से निश्चित और अनिवार्य सम्बन्ध होता है। इस तथ्य को जीव के शरीर की अवयवीय रचना के उदाहरण से समझा जा सकता है जिसमे पूर्ण अश पर और अश पूर्ण पर निर्भर होता है तथा विभिन्न अश परस्पर निर्भर होते है। निर्णय ज्ञात तथ्यो से नवीन तथ्यों का सम्बन्ध इस प्रकार जोड़ता है कि पूर्ण मे से प्रत्येक को दूसरो से परस्पर निर्भरता के सम्बन्ध में उपयुक्त स्थान मिल जाए। इस प्रकार निर्णय से अनुभव के विभिन्न तथ्यो मे परस्पर सम्बन्ध की स्थापना होती है। निर्णय वह प्रक्रिया है जिससे ज्ञान व्यवस्था के रूप मे विकसित होता है।

निर्णय के प्रकार

निर्णय के प्रकार से तात्पर्य विचार के उन मुख्य वर्गों (Categories) से है जिनके माध्यम से निर्णय किये जाते है। उदाहरण के लिए हम अपने भिन्न-भिन्न अनुभवों को गुण, मात्रा, सख्या, सम्बन्ध, कार्य-कारण इत्यादि भिन्न-भिन्न वर्गो मे विभाजित करते है। इस वर्गीकरण के बिना अनुभव का कोई अर्थ नही होता। ज्ञान के विश्लेषण मे जर्मन दार्शनिक कान्ट ने यह सिद्ध किया है कि विचार के ये वर्ग अनुभव-पूर्व है। इन वर्गो के विना वाह्य तथ्य अर्थहीन है। इनमे आकर ही उनका कोई अर्थ होता है। कान्ट का यह विश्लेपण सभी दार्शनिको को मान्य है। अस्तु, निर्णयो के प्रकार वास्तव मे विचार के वर्गो के प्रकार है। सक्षेप मे, निर्णयो के मुख्य प्रकार निम्नलिखित है :—

(१) **गुण के निर्णय** (Judgements of Quality)—चीनी सफेद है, चटनी खट्टी है, गुलाब लाल है इत्यादि दैनिक जीवन के अधिकतर सरल निर्णय गुणात्मक निर्णय होते है। गुणात्मक होने से तात्पर्य यह नही है कि उनमे सख्या अथवा सम्बन्ध की ओर कोई ध्यान ही नही दिया जाता किन्तु उनमे गुणात्मक पहलू की ओर अधिक ध्यान दिया जाता है तथा सख्यात्मक अथवा सम्बन्धात्मक पहलू की ओर कोई ध्यान नही दिया जाता। गुणात्मक निर्णय सरलतम निर्णय होते हैं। इसलिये वालको के अधिकतर निर्णय गुणात्मक होते है। उदाहरण के लिये वालक रग, रूप आदि को देखकर निर्णय कर लेते है। पिता जैसी वडी-वडी मूछे रखने वाले व्यक्ति को वालक पिता समान मान वैठता है। केवल वालको के चिन्तन मे ही नही बल्कि वयस्क चिन्तन के निम्न स्तर पर भी गुणात्मक निर्णय सवसे अधिक सरल निर्णय होते है। निर्णय मे चेतना के सम्मुख उपस्थित वस्तु की ओर मन की क्रिया निहित होती है। निर्णय के द्वारा हम उपस्थित सामग्री का महत्व और अर्थ पहचानते है जिससे कि वह हमारे ज्ञान का अनुभव वन जाए।

(१) **मात्रा सम्वन्धी निर्णय** (Judgements of Quantity)—किन्तु मानव विचार केवल वस्तुओ के गुणो के विचार से सन्तुष्ट नही हो सकता उसमे इसके अतिरिक्त भी विश्लेषण और सश्लेषण होता है। उसमे वस्तु के विभिन्न अगो की तुलना की जाती है और उनमे गुण के अतिरिक्त मात्रा का अन्तर भी जाना जाता है। इस प्रकार मात्रा सम्वन्धी निर्णय भी मानव विचार के मौलिक निर्णय है। इनमे किसी वस्तु के आकार प्रकार, सख्या, भार इत्यादि के विषय मे निर्णय दिया जाता है। उदाहरण के लिये यह एक वड़ा तरवूज है, सडक पर मनुष्यो की भीड

जमा है, खेत मे बकरियाँ घुस गयी है इत्यादि। मात्रा सम्वन्धी निर्णयो को निम्नलिखित दो वर्गो मे बांटा जा सकता है—

(अ) **संख्यात्मक निर्णय** (Judgements of Enumeration)—इन निर्णयो मे पूर्ण को उसके विभिन्न टुकडो मे बाटकर उनकी गिनती की जाती है। उदाहरण के लिये इस कक्षा मे पचास विद्यार्थी है। कभी-कभी जबकि पूर्ण के विभिन्न अग समान नही होते तो प्रत्येक अग को अलग-अलग गिना जाता है। उदाहरण के लिये पौधे मे जड़, तना, शाखे और पत्तियाँ होती है।

(ब) **माप के निर्णय** (Judgements of Measure)—इसमे नाप तौल सम्बन्धी निर्णय दिये जाते है। किसी भी वस्तु का माप तुलना से किया जाता है जिसमे कि हम विशेष इकाई की तुलना मे उसका स्थान निश्चित करते है। उदाहरण के लिये लम्बाई नापने की इकाई इंच या सेण्टीमीटर है। अस्तु, किसी भी वस्तु की लम्बाई वताने मे हम यह देखते है कि वह इच अथवा सेन्टीमीटर से कितना गुना बड़ी या छोटी है। इस प्रकार भार अथवा मात्रा के निर्णय किसी वस्तु का अन्य वस्तु मे सम्बन्ध दिखलाते हैं। समस्त भौतिक विज्ञानो और गणित मे इस प्रकार के अगणित निर्णय होते है। ये निर्णय सापेक्ष हैं। इनसे किसी वस्तु की वैयक्तिकता या पूर्णता का बोध न होकर अगो का बोध होता है।

(३) **कार्यकारण सम्बन्धी निर्णय** (Causal Judgments)—इन निर्णयो मे यह विचार किया जाता है कि वस्तुओ मे होने वाले विभिन्न प्रकार के परिवर्तन अन्य वस्तुओ अथवा घटनाओ से किस प्रकार का कार्यकारण सम्बन्ध रखते है। समस्त विज्ञानो मे तुलना के आधार पर कार्यकारण सम्बन्धो का पता लगाया जाता है। समस्त ज्ञान मन की निर्णयात्मक क्रिया का परिणाम है। कार्यकारण सम्बन्धी निर्णय यह दिखलाते है कि वस्तुओ मे आपस मे क्या सम्बन्ध है। ये निर्णय गुणात्मक अथवा मात्रा सम्बन्धी निर्णयो से अधिक स्पष्ट और चेतन होते है। मनुष्य मे कार्यकारण सम्बन्धी प्रत्यय का विकास भिन्न-भिन्न आयु मे भिन्न-भिन्न सोपानों से गुजरता है। प्रारम्भ मे इसमे सर्वमानववाद की अवस्था दिखलाई पडती है, इसके पश्चात् सर्वजीववाद दिखलाई पडता है, तब कही मनुष्य भौतिक घटनाओ और जैवकीय घटनाओ मे अन्तर करना सीखता है। दार्शनिक और तार्किक दृष्टि से कारण कार्य का अनिवार्य पूर्वगामी (Antecedant) है। इस रूप मे कारण कार्य मे अनिवार्य सम्बन्ध है। किन्तु कौनसी वस्तु किस वस्तु का कारण है इस विषय मे अनिवार्य रूप से कुछ भी नही कहा जा सकता। यहीं कारण है कि विज्ञान के कार्यकारण सम्बन्धी निर्णय सम्भावनाये मात्र होते है।

(४) **वैयक्तिकता के निर्णय** (Judgements of Individuality)—ये वे निर्णय है जो यथार्थ पूर्ण के रूप मे जटिल वस्तु के विषय मे होते हैं जिसकी कि अपनी निश्चित प्रकृति होती है। इस प्रकार के निर्णय प्रयोजन के निर्णय भी कहलाते है। ये निर्णय पूर्ण वस्तु के बारे मे दिये जाते हैं। वैयक्तिकता के निर्णय के लिये कार्यकारण सम्बन्ध का ज्ञान आवश्यक होता है जिस प्रकार से कार्यकारण सम्बन्ध सम्बन्धी निर्णयो के लिये मात्रात्मक निर्णय आवश्यक होते है।

सारांश

निर्णय क्या है—निर्णय चिन्तन की प्रक्रिया में एक सोपान है। प्रत्यय

निर्णयों की शृंखला से बनता है। शब्दों का रूप ग्रहण करके निर्णय तर्कवाक्य बन जाता है। अनुमान निर्णय से अधिक जटिल है। उसमें निष्कर्ष के आधार बतलाये जाते हैं।

निर्णय के मुख्य लक्षण—१. सार्वभौमिकता २. अनिवार्यता ३. विश्लेषण और संश्लेषण ४. ज्ञान की व्यवस्था की रचना।

निर्णय के प्रकार—१. गुण के निर्णय २. मात्रा सम्बन्धी निर्णय ३ संख्यात्मक निर्णय ४. कार्य कारण सम्बन्धी निर्णय ५. वैयक्तिकता के निर्णय।

अभ्यास के लिये प्रश्न

प्रश्न १—निर्णय क्या है ? उसके मुख्य लक्षण बतलाइये।

प्रश्न २—निर्णय के मुख्य प्रकारों की विवेचना कीजिये।

११

तर्कवाक्य : तर्कवाक्यों का वर्गीकरण

(THE PROPOSITION : CLASSIFICATION OF PROPOSITIONS)

तर्कवाक्य विचार की इकाई है

तर्कशास्त्र विचारो का विज्ञान है। ये विचार तर्कवाक्यो के रूप मे उपस्थित किये जाते है। तर्कवाक्य भाषाभिव्यक्त विभावना है। जब हम किसी वस्तु के विषय मे विचार करते है और उसमे दो या अधिक प्रयत्यो मे सम्बन्ध स्थापित करते है तो यह विभावना (Judgement) कहलाता है। इस विभावना को भाषा मे अभिव्यक्त कर देने से तर्कवाक्य बन जाता है। स्पष्ट है कि विभावना आन्तरिक प्रक्रिया है और तर्कवाक्य उसी का बाहरी रूप है। अनभिव्यक्त रूप विभावना है और व्यक्त रूप तर्कवाक्य है। उदाहरण के लिये जब मै फूल सूंघता हूँ और मेरे मन मे यह विचार होता है कि फूल सुगन्धित है तो यह विभावना है और जब मै यह कहता हूं कि यह एक सुगन्धित फूल है तो यह एक तर्कवाक्य है। यह तर्कवाक्य ही विचार की इकाई है। तर्कशास्त्र मे इसी की तर्कशीलता का विवेचन किया जाता है क्योकि हम अव्यक्त विचारो अर्थात् विभावनाओ का विवेचन नही कर सकते। अस्तु, तर्कशास्त्र की इकाई विभावना को न मानकर तर्कवाक्य को ही माना जाना चाहिये। दूसरी ओर पद (Term) को भी विचार की इकाई नही माना जा सकता क्योकि अकेले पद से कोई अर्थ स्पष्ट नही होता। केवल बिल्ली कहने का कोई अर्थ नही है जब तक कि पूरा तर्कवाक्य न कहा जाए जैसे बिल्ली आई, बिल्ली गयी इत्यादि। अस्तु, सक्षेप मे, विभावना अथवा पद नही बल्कि तर्कवाक्य ही विचार की इकाई है।

तर्कवाक्य का विश्लेषण

तर्कवाक्य दो पदो के मध्य किसी सम्बन्ध का कथन है। उदाहरण के लिये अरस्तु विद्वान् व्यक्ति था, इस तर्कवाक्य मे अरस्तु और विद्वत्ता के बीच सम्बन्ध बतलाया गया है। इस प्रकार तर्कवाक्य मे अग्रलिखित तीन अग पाये जाते है—

(१) **उद्देश्य** (Subject)—उद्देश्य वह पद है जिसके विषय मे कुछ कहा जाता है। यह कथन अस्तिवाचक या निषेधात्मक कैसा भी हो सकता है। उपरोक्त उदाहरण मे, 'अरस्तु' उद्देश्य पद है।

(२) **विधेय** (Predicate)—विधेय वह पद है जिसका उद्देश्य के विषय मे विधान या निषेध किया जाता है। पीछे दिये गये उदाहरण मे अरस्तु के विषय मे

'विद्वान व्यक्ति' का विधान किया गया है। इस प्रकार 'विद्वान व्यक्ति' विधेय पद है।

(३) **संयोजक** (Copula)—सयोजक वह पद है जो उद्देश्य और विधेय मे सम्बन्ध बतलाता है। यह सम्बन्ध अस्तिवाचक (Positive) और नास्तिवाचक (Negative) किसी भी प्रकार का हो सकता है। पीछे दिये गये उदाहरण मे 'था' पद अस्तिवाचक सयोजक है। यदि यह कहा जाये कि अरस्तु विद्वान व्यक्ति नही था तो इसमें निषेधात्मक सयोजक उद्देश्य और विधेय को सम्बन्धित करता है। यहाँ पर यह ध्यान रखना चाहिये कि सयोजक को होना क्रिया का वर्तमानकालिक रूप होना चाहिये भले ही वह अस्तिवाचक हो या नास्तिवाचक। तर्कशास्त्रियो के अनुसार सयोजक सदैव वर्तमान काल मे होता है। पीछे दिये गये उदाहरण मे अरस्तु विद्वान व्यक्ति था न कहकर तार्किक दृष्टि से यह कहा जाना चाहिये कि 'अरस्तु वह व्यक्ति है जो विद्वान था।' यहाँ पर 'है' सयोजक होगा और 'विद्वान था' विधेय पद होगा। इसी तरह यदि यह कहना है कि ट्रेन प्रातःकाल जायेगी तो यह कहा जाएगा कि 'ट्रेन वह वस्तु है जो प्रातःकाल जाएगी।' इस प्रकार प्रत्येक स्थिति मे सयोजक को होना क्रिया का वर्तमानकालिक रूप होना चाहिये जैसे है, हैं, हूँ या हो।

सयोजक के विषय मे एक दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि वह अस्तिवाचक अथवा नास्तिवाचक दोनो मे से कोई भी हो सकता है यद्यपि तर्कशास्त्रियो मे कुछ लोग यह भी मानते रहे है कि सयोजक को सदैव अस्तिवाचक होना चाहिये। इस प्रकार सयोजक है, नही है, है या नही है, हूँ या नही हूं, हो या नही हो, कोई भी हो सकता है।

संयोजक के विषय मे तीसरी स्मरणीय बात यह है कि वह उद्देश्य और विधेय मे सम्बन्ध दिखलाता है, अस्तित्व का सूचक नही होता। वह सम्बन्ध का विधान या निषेध करता है, उद्देश्य या विधेय के अस्तित्व का विधान या निषेध नही करता। उदाहरण के लिये जब हम कहते है कि अरस्तु यह व्यक्ति है जो विद्वान् था तो इसमे हम अरस्तु और विद्वत्ता मे सम्बन्ध स्थापित करते है उसके अस्तित्व के बारे मे कुछ नही कह सकते। वास्तव मे होना क्रिया कभी भी अस्तित्व की सूचक नही होती। तार्किक दृष्टि से संयोजक को अस्तित्व का सूचक नही माना जाता, उसका कार्य उद्देश्य और विधेय मे सम्बन्ध स्थापित करना है, सत्ता की सूचना देना नही है।

व्याकरण के वाक्य और तर्कवाक्य में अन्तर

यहाँ पर तर्कवाक्य को ठीक प्रकार से समझने के लिये व्याकरण के वाक्य (Sentence) से उसका अन्तर बतलाना उपयुक्त होगा क्योकि इन दोनो मे बहुत-सी समानताये है। ये दोनो ही सत्य का प्रतिपादन करते है और दोनो ही उद्देश्य तथा विधेय होते है। उपरोक्त समानताओ के होते हुये भी व्याकरण के वाक्य अर्थात् लौकिक वाक्य और तर्कवाक्य मे निम्नलिखित महत्वपूर्ण अन्तर है—

(१) व्याकरण के वाक्य प्रश्नवाचक, आज्ञा सूचक, इच्छावाचक, विस्मयादि बोधक अथवा यथार्थवाचक हो सकते है। इनमे से केवल यथार्थवाचक अथवा तथ्य सूचक वाक्य को ही न्यायशास्त्र मे स्थान दिया जाता है। अन्य प्रकार के वाक्यो को

कोई स्थान नही दिया जाता क्योकि तर्कशास्त्र का लक्ष्य सत्यासत्य की विवेचना करना है। यदि प्रश्नवाचक, आज्ञा सूचक या इच्छावाचक वाक्य किसी सत्य की पुष्टि या खण्डन करते हो तो उन्हे भी तर्कशास्त्र मे स्थान दिया जा सकता है किन्तु साधारणतया ऐसा नही हो सकता। उदाहरण के लिये जब हम कहते हैं कि क्या अरस्तु मूर्ख था तो यहाँ पर हमारा तात्पर्य यह कहना होता है कि अरस्तु मूर्ख नही था। इसलिए अरस्तु के विषय मे कुछ विधान किये जाने के कारण इस वाक्य को तर्कवाक्य मे रखा जा सकता है।

व्याकरण के वाक्य मे कभी-कभी दो या दो से अधिक उद्देश्य या विधेय होते है जैसे राम और लक्ष्मण दशरथ के पुत्र थे। दूसरी ओर तार्किक वाक्य मे सदैव एक ही उद्देश्य और विधेय होता है।

(३) जबकि व्याकरण के वाक्य मे उद्देश्य और विधेय दो ही भाग किये जाते है, तर्कवाक्य को उद्देश्य, विधेय और सयोजक इन तीन भागो मे बाँटा जा सकता है। तर्कवाक्य का सयोजक व्याकरण के वाक्य मे विधेय मे ही शामिल कर लिया जाता है।

(४) जबकि व्याकरण के वाक्य मे भूत, भविष्य और वर्तमान कोई भी काल हो सकता है, तर्कवाक्य मे सयोजक सदैव वर्तमान काल मे रहता है।

जबकि व्याकरण के वाक्य मे उद्देश्य का परिमाण और वाक्य का गुण व्यक्त करना आवश्यक नही है, तार्किक वाक्य मे गुण और परिमाण व्यक्त करना अत्यन्त आवश्यक है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि व्याकरण का वाक्य अर्थात् लौकिक वाक्य तर्कवाक्य के समान होते हुए भी तर्कवाक्य से भिन्न है। कोई वाक्य व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध हो सकता है परन्तु तार्किक दृष्टि से उसे उसी रूप मे शुद्ध नही माना जा सकता। उदाहरण के लिए पीछे दिया हुआ वाक्य 'अरस्तु एक विद्वान व्यक्ति था' व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध है परन्तु तर्कवाक्य बनाने के लिये यह कहा जायेगा कि 'अरस्तु वह व्यक्ति है जो विद्वान था।'

तर्कवाक्यों के भेद

तर्कशास्त्रियो ने विभिन्न दृष्टिकोणो से तर्कवाक्यो के भिन्न-भिन्न भेद बतलाये है। तर्कवाक्यो का विभाजन रचना (Construction) की दृष्टि से, सम्बन्ध (Relation) की दृष्टि से, गुण (Quality) की दृष्टि से और परिमाण (Quantity) की दृष्टि से किया गया है। इनके अतिरिक्त तर्कवाक्यो को विधि (Mobility) की दृष्टि से और तात्पर्य (Import) की दृष्टि से भी विभिन्न वर्गो मे बाँटा गया है। यहाँ पर तर्कवाक्य के इन विभिन्न प्रकारो का सक्षेप मे वर्णन किया जायेगा।

रचना की दृष्टि से तर्कवाक्यों के भेद

रचना की दृष्टि से तर्कवाक्यो को निम्नलिखित दो वर्गो मे बाँटा गया है :—

(१) **सरल तर्कवाक्य** (Simple Proposition)—ये वे तर्कवाक्य हैं जिनमे केवल एक ही उद्देश्य और एक ही विधेय होता है। सरल तर्कवाक्य एक विभावना को व्यक्त करता है, उदाहरण के लिये मनुष्य मरणशील है, यह एक सरल तर्कवाक्य है इसमे एक ही उद्देश्य और एक ही विधेय है।

(२) **मिश्रित तर्कवाक्य** (Compound Proposition)—मिश्रित तर्कवाक्य

मे उद्देश्य अथवा विधेय अथवा दोनो ही एक से अधिक होते है इसलिए इसको एक से अधिक सरल तर्कवाक्यो मे तोड़ा जा सकता है जैसे 'राम और मोहन दोनों धनी है,' इस तर्कवाक्य को इन दो सरल तर्कवाक्यों मे तोड़ा जा सकता है कि 'राम धनी है' और 'मोहन धनी है,' मिश्रित तर्कवाक्य को निम्नलिखित दो उपवर्गो मे बाँटा गया है :—

(अ) **सन्निकृष्ट मिश्रित तर्कवाक्य** (Copulative Compound Proposition)—इनमे एक से अधिक अस्तिवाचक तर्कवाक्य सम्मिलित होते हैं जैसे मोहन विद्वान और धनी है। इनमे 'मोहन विद्वान् है' और 'मोहन धनी है' ये दोनो ही अस्तिवाचक तर्कवाक्य सम्मिलित है।

(ब) **विप्रकृष्ट मिश्रित तर्कवाक्य** (Remotive Compound Proposition)—इनमे एक से अधिक निषेधात्मक वाक्य होते है जैसे 'न मोहन विद्वान् है न धनी' इस तर्कवाक्य मे 'मोहन विद्वान् नही है' और 'मोहन धनी नही है' ये दो निषेधात्मक तर्कवाक्य सम्मिलित है।

सम्बन्ध की दृष्टि से तर्कवाक्यों का विभाजन

सम्बन्ध की दृष्टि से तर्कवाक्यो को निम्नलिखित दो वर्गो मे विभाजित किया गया है :—

(१) **निरपेक्ष तर्कवाक्य** (Categorical Proposition)—इस तर्कवाक्य मे, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, उद्देश्य और विधेय के मध्य निरपेक्ष सम्बन्ध होता है अर्थात् उद्देश्य के बारे मे विधेय का विधान या निषेध बिना किसी प्रतिबन्ध के किया जाता है। उदाहरण के लिए सब मनुष्य मरणशील है, इस तर्कवाक्य मे मनुष्य के साथ मरणशीलता का निरपेक्ष रूप से विधान किया गया है।

(२) **सापेक्ष तर्कवाक्य** (Conditional Proposition)—यह तर्कवाक्य, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, उद्देश्य और विधेय में कुछ विशेष परिस्थितियो, हेतुओ, शर्तो अथवा प्रतिबन्धो मे ही सम्बन्ध स्थापित करता है। जैसे यह कहा जाये कि 'यदि बादल आयेंगे तो वर्षा होगी', 'यदि मै विद्वान होता तो सुखी रहता' तो इन उदाहरणों मे किसी शर्त पर ही विधेय का उद्देश्य मे विधान किया गया है। सापेक्ष तर्कवाक्य निम्नलिखित दो उपवर्गो मे विभाजित किये जाते हैं :—

(अ) **हेतु फलाश्रित सापेक्ष तर्कवाक्य** (Hypothetical Conditional Proposition)—हेतु फलाश्रित अथवा सोपाधिक तर्कवाक्य वह है जिसमे दी हुयी शर्त का उल्लेख 'यदि' शब्द या उसके किसी पर्यायवाची शब्द से किया जाता है। उदाहरण के लिए 'यदि समय पर वर्षा हुई तो फसल अच्छी होगी।'

(ब) **वैकल्पिक सापेक्ष तर्कवाक्य** (Disjunctive Conditional Proposition)—इस तर्कवाक्य मे, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, विकल्प दिये जाते है जिसका रूप 'या यह या वह' इस प्रकार का होता है। उदाहरण के लिये 'या तो वह धूर्त है या मूर्ख' वैकल्पिक तर्कवाक्य मे दिये हुए विकल्पो मे से किसी एक का उद्देश्य पर लागू होना अनिवार्य होता है।

गुण के अनुसार तर्कवाक्यों का विभाजन

तर्कवाक्य के गुण से तात्पर्य उसके अस्तिवाचक या नास्तिवाचक होने से है, अस्तु, गुण की दृष्टि से तर्कवाक्यो को अग्रलिखित दो वर्गो मे विभाजित किया जा सकता है :—

(१) **अस्तिवाचक तर्कवाक्य** (Affirmative Proposition)—इस तर्कवाक्य के उद्देश्य और विधेय मे किसी प्रकार के अस्तिवाचक सम्बन्ध का विधान किया जाता है। उदाहरण के लिये 'मनुष्य मरणशील है', 'भारतवासी मनुष्य है' इत्यादि अस्तिवाची तर्कवाक्य मे सयोजक सदैव अस्तिवाचक होता है।

(२) **नास्तिवाचक तर्कवाक्य** (Negative Proposition)—इन तर्कवाक्यो में उद्देश्य के विपय मे विधेय का निपेध किया जाता है जैसे 'मनुष्य ईश्वर नही है' 'मै विद्वान् नही हूँ' इत्यादि। नास्तिवाचक तर्कवाक्यों मे सयोजक नास्तित्वसूचक होता है। वैकल्पिक तर्कवाक्य नास्तिवाचक नही हो सकते। सोपाधिक तर्कवाक्य अस्तिवाचक या नास्तिवाचक दोनो ही हो सकते है।

परिमाण की दृष्टि से तर्कवाक्यों का विभाजन

परिमाण से तात्पर्य यह है कि तर्कवाक्य सामान्य है अथवा विशेष। इस प्रकार परिमाण की दृष्टि से तर्कवाक्यों को निम्नलिखित दो वर्गो मे विभाजित किया जा सकता है :—

(१) **सामान्य तर्कवाक्य** (Universal Proposition)—सामान्य तर्कवाक्य वह है जिसमे विधेय सम्पूर्ण उद्देश्य के विषय मे होता है। जैसे 'सब मनुष्य मरणशील है' 'कोई देशभक्त स्वार्थी नही है' इत्यादि। सामान्य तर्कवाक्यो मे 'सब' 'प्रत्येक' 'कोई भी' 'जो कुछ भी' 'जब कभी भी' इत्यादि शब्द जोडकर परिमाण दिखलाया जाता है।

(२) **विशेष तर्कवाक्य** (Particular Proposition)—इन तर्कवाक्यो मे उद्देश्य का विधान या निषेध सम्पूर्ण उद्देश्य पर नही बल्कि उसके किसी विशेष अग के बारे मे किया जाता है। उदाहरण के लिए 'कुछ मनुष्य स्वार्थी है' अथवा 'कुछ मनुष्य सतोपी नही हैं' इत्यादि। इस प्रकार विशेष अथवा विशेपवाचक तर्कवाक्य मे 'कुछ' का अर्थ सामान्य 'कुछ' से भिन्न है। तर्कशास्त्र मे इसका अर्थ किसी भी अनिश्चित परिमाण से है यहाँ तक कि यदि सौ मे से निन्यानवे व्यक्तियो के बारे मे कोई बात सत्य है तो भी 'कुछ' शब्द का प्रयोग किया जाएगा। इस प्रकार कुछ का अर्थ 'कम से कम एक' होता है और दूसरी ओर उसका अर्थ 'पूर्ण से कम' होता है। इसके अतिरिक्त कुछ शब्द का प्रयोग उस स्थिति मे किया जाता है जबकि विधेय उद्देश्य मे सम्मिलित सभी के बारे मे निश्चित नही होता। यहाँ पर कुछ का अर्थ 'कम से कम' होता है। साधारणतया एकवचनात्मक तर्कवाक्य सामान्य तर्कवाक्य होते है। निरपेक्ष वाक्य का परिमाण उद्देश्य के परिमाण से प्रकट होता है। यदि उद्देश्य पूर्ण है तो तर्कवाक्य सामान्य है और यदि उद्देश्य व्यक्ति है तो तर्कवाक्य विशेष है। जब कभी किसी वाक्य का परिमाण अव्यक्त होता है तो वह अव्यक्त परिमाण (Indesignate) तर्कवाक्य कहलाता है जैसे 'पुस्तके उपयोगी है' इसमे यह स्पष्ट नही है कि कितनी पुस्तके उपयोगी है। दूसरी ओर जिन तर्कवाक्यो मे परिमाण स्पष्ट रहता है उन्हे व्यक्त परिमाण (Predesignate) तर्कवाक्य कहते है। तर्कशास्त्र मे अव्यक्त परिमाण तर्कवाक्य सही नही माने जाते। तार्किक दृष्टि से ठीक होने के लिए तर्कवाक्य का अर्थ बिल्कुल स्पष्ट होना चाहिए। इसलिए तर्कवाक्य व्यक्त परिमाण होता है। एकवाचक (Singular) वाक्य अर्थात् जिसमे उद्देश्य एकवाचक पद होता है सामान्य और विशेप से भिन्न पाया गया है किन्तु अधिकतर तर्कशास्त्री यह मानते है कि परिमाण की दृष्टि से सामान्य और विशेप दो ही वर्ग मानना

पर्याप्त है। यदि एकवाचक वाक्य का उद्देश्य निश्चित है तो वह सामान्य समझा जाता है। इसके विपरीत यदि उसका उद्देश्य अनिश्चित है तो वह 'विशेष' समझा जाता है। हेतुफलाश्रित तर्कवाक्यो का परिमाण उनके हेतुओ पर आधारित माना जाता है। वैकल्पिक वाक्य का परिमाण सामान्य या विशेष कुछ भी हो सकता है, उसका परिमाण उसके उद्देश्य पर निर्भर होता है। यदि उद्देश्य पद का परिमाण सामान्य है तो वैकल्पिक तर्कवाक्य सामान्य तर्कवाक्य कहलायेगा और यदि वह विशेष है तो विशेष तर्कवाक्य कहलाएगा।

गुण और परिमाण दोनों के अनुसार तर्कवाक्यों के भेद

तर्कशास्त्रियों मे गुण और परिमाण दोनों की दृष्टि से तर्कवाक्यों को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया गया है :—

(१) **सामान्य अस्तिवाचक तर्कवाक्य** (Universal Affirmative Proposition)—इस वर्ग मे वे तर्कवाक्य आते है जो एक ओर सामान्य है और दूसरी ओर अस्तिवाचक है। उदाहरण के लिए 'सब बालक नटखट है' 'सभी भारतीय मनुष्य है' इत्यादि। तर्कशास्त्र मे इस वर्ग के तर्कवाक्यो के लिए 'ए' (A) शब्द निश्चित किया गया है।

(२) **सामान्य नास्तिवाचक तर्कवाक्य** (Universal Negative Proposition)—तर्कवाक्यो के इस वर्ग मे वे तर्कवाक्य आते हैं जो एक ओर सामान्य हैं और दूसरी ओर निषेधात्मक है जैसे 'कोई भी बालक नटखट नही है' 'कोई भी मनुष्य पूर्ण नही है' इत्यादि। इस वर्ग के तर्कवाक्यो के लिए तर्कशास्त्र मे साकेतिक नाम 'इ' (E) प्रयोग किया जाता है।

(३) **विशेष अस्तिवाचक तर्कवाक्य** (Particular Affirmative Proposition)—इनमे वे तर्कवाक्य सम्मिलित है जो एक ओर विशेष है और दूसरी ओर अस्तिवाचक है जैसे 'कुछ मनुष्य ईमानदार है' 'कुछ मनुष्य देशभक्त है' इत्यादि। इस वर्ग के तर्कवाक्यो के लिए साकेतिक नाम 'ऐ' (I) का प्रयोग किया जाता है।

(४) **विशेष नास्तिवाचक तर्कवाक्य** (Particular Negative Proposition)—इस वर्ग मे वे तर्कवाक्य गिने जाते है जो विशेष होने के साथ-साथ विधेधात्मक भी है जैसे 'कुछ मनुष्य ईमानदार नही है', 'कुछ भारतीय धार्मिक नही है' इत्यादि। इस वर्ग के तर्कवाक्यो के लिए साकेतिक नाम 'ओ' (O) का प्रयोग किया जाता है।

गुण और परिमाण की दृष्टि से तर्कवाक्यो के उपरोक्त भेदो को देखने से स्पष्ट होता है कि किसी भी तर्कवाक्य को आसानी से दूसरे प्रकार के तर्कवाक्यो मे बदला जा सकता है। उदाहरण के लिये 'सब मनुष्य ईमानदार है' यह एक सामान्य अस्तिवाचक तर्कवाक्य है इसको 'कोई मनुष्य ईमानदार नही है' इस रूप मे रखने से यह 'इ' रूप अथवा सामान्य निषेधात्मक बन जाता है। इसे विशेष अस्तिवाचक बनाने के लिये यह कहा जाएगा कि 'कुछ मनुष्य ईमानदार है'। इस तर्कवाक्य को इस प्रकार बदल कर कि 'कुछ मनुष्य ईमानदार नही है', इसका 'ओ' वाक्य बनाया जा सकता है।

विधि के अनुसार तर्कवाक्यों का विभाजन

विधि का तात्पर्य तर्कवाक्य की सम्भावना या निश्चयात्मकता से है जो कि उद्देश्य के वारे मे विधेय मे पाई जाती है। इस प्रकार विधि सम्भावना की मात्रा है। विधि की दृष्टि से तर्कवाक्यो को निम्नलिखित प्रकारो मे बाँटा जा सकता है :—

(१) **अनिवार्य तर्कवाक्य** (Necessary Proposition)—इस तर्कवाक्य को आवश्यक या निश्चित तर्कवाक्य भी कहते है। इसमे, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, विधेय उद्देश्य के वारे मे जो कुछ कहता है, वह सभी देशकाल मे सत्य होता है। दूसरे शब्दो मे, अनिवार्य तर्कवाक्य के विरुद्ध तर्कवाक्य सदैव असत्य होता है। इस प्रकार के तर्कवाक्यो के कुछ उदाहरण है—'जो जन्म लेता है उसका मरण अनिवार्य है।' 'त्रिभुज के तीनो कोण दो समकोण के वरावर होते है।' 'वर्ग की चारो भुजाये समान लम्बाई की होती है', इत्यादि। यहाँ पर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि अनिवार्य तर्कवाक्य मे विधेय उद्देश्य के विषय मे कोई ऐसी वात कहता है जो उसकी प्रकृति का अनिवार्य अग होती है अर्थात् जिसकी अनुपस्थिति मे उस वस्तु का होना सम्भव ही नही है। इस प्रकार अनिवार्य तर्कवाक्य मे विधेय उद्देश्य के मूल धर्म को वतलाता है।

(२) **प्रतिज्ञात तर्कवाक्य** (Assertory Proposition)—तर्कवाक्य के इस वर्ग मे वे तर्कवाक्य आते है जो न तो निश्चय प्रकट करते है और न सन्देह, किन्तु हमारे अनुभव की सीमा मे सत्य होते है। न तो ये अनिवार्य तर्कवाक्य के समान देश-कालातीत तथ्य की स्थापना करते है और न सदिग्ध तर्कवाक्य के समान सदेह-युक्त वात कहते है। इनमे उद्देश्य के विपय मे विधेय किसी ऐसी वात की स्थापना करता है जो अनुभव से सिद्ध होती है जैसे 'सव कौवे काले होते है' 'कोयल का स्वर मीठा होता है', 'पानी से प्यास वुझती है' इत्यादि। चूँकि प्रतिज्ञात तर्कवाक्य अनिवार्य नही होता, इसलिये कुछ परिस्थितियो मे उसके विरुद्ध तर्कवाक्य के सत्य होने की भी सम्भावना होती है।

(३) **संदिग्ध तर्कवाक्य** (Problematic Proposition)—सदिग्ध तर्कवाक्य वह है जिसमे उद्देश्य और विधेय मे सम्भावना मात्र का सम्वन्ध हो। दूसरे शब्दो मे, उद्देश्य के वारे मे विधेय जिस तथ्य का प्रतिपादन करता है वह कुछ परिस्थितियो मे सत्य और अन्य परिस्थितियो मे असत्य सिद्ध होता है जैसे 'सम्भव है आज वर्षा हो जाये', 'कदाचित् वह कल आयेगा', 'मुझे कल तक रुपया मिलने की सम्भावना है', इत्यादि।

तात्पर्य की दृष्टि से तर्कवाक्य का विभाजन

तर्कशास्त्रियो ने तात्पर्य की दृष्टि से तर्कवाक्यो को अग्रलिखित दो वर्गो मे विभाजित किया है .—

(१) **शाब्दिक तर्कवाक्य** (Verbal Proposition)—शाब्दिक तर्कवाक्य विश्लेषणात्मक (Analytic) होता है अर्थात् इसमे विधेय उद्देश्य के स्वभाव या स्वभाव के किसी अशमात्र का कथन करता है जैसे सव मनुष्य मरणशील हे अथवा मनुष्य विचारवान प्राणी है इत्यादि। इस प्रकार के तर्कवाक्य अनिवार्य रूप से सत्य होते है क्योकि इनमे विधेय कोई नई वात नही कहता वल्कि उद्देश्य का विश्लेपण

करके उसके स्वभाव को प्रकट करता है। इसीलिए ये तत्वसूचक तर्कवाक्य (Essential Propositions) भी कहलाते है। इनको स्फोटक तर्कवाक्य (Explicative Propositions) भी कहते है क्योकि इनमे विधेय उद्देश्य के स्वभाव को स्पष्ट अथवा प्रगट करता है।

(२) **यथार्थ तर्कवाक्य** (Real Proposition)—यह सश्लेपणात्मक तर्कवाक्य (Synthetic Proposition) है अर्थात् इसमे विधेय उद्देश्य के विपय मे किसी ऐसे कथन का प्रतिपादन करता है जो कि उद्देश्य के विश्लेपण से नही निकाला जा सकता। उदाहरण के लिये 'गाय दूध देती है' 'कुत्ता पालतू जानवर है' 'मनुष्य हँसने वाला प्राणी है' इत्यादि। इन तर्कवाक्यो मे विधेय का कथन विश्लेपण के द्वारा उद्देश्य से नही निकाला जा सकता। गाय के विश्लेपण से दूध देने का गुण नही निकलता। हँसना मनुष्य का अनिवार्य गुण नही है और न पालतू होना कुत्ते के लिए आवश्यक है। इस प्रकार यथार्थ तर्कवाक्य में विधेय उद्देश्य के वारे मे किसी नयी बात की स्थापना करता है जो कि उसकी गुणवाचकता मे सम्मिलित नही हो सकती इसलिये इसको ज्ञापक तर्कवाक्य (Ampliative Proposition) भी कहते है। सश्लेपण पर आधारित होने के कारण यह सश्लेपणात्मक तर्कवाक्य भी कहलाता है। चूंकि इसमे उद्देश्य के विपय मे किसी ऐसे गुण का कथन होता है जिसका उसमे होना अनिवार्य नही है इसलिये यह आकस्मिक तर्कवाक्य (Accidental Proposition) भी कहलाता है।

सारांश

तर्कवाक्य की व्याख्या—तर्कवाक्य विचार की इकाई है। इसमें तीन पद होते हैं—उद्देश्य, विधेय और संयोजक। तर्कवाक्य व्याकरण के वाक्य से भिन्न होता है।

तर्कवाक्यों के भेद—(अ) रचना की दृष्टि से भेद—१. सरल, २. मिश्रित-सन्निकृष्ट और विप्रकृष्ट, (ब) सम्बन्ध की दृष्टि से भेद—१. निरपेक्ष, २. सापेक्ष-हेतु-फलाश्रित और वैकल्पिक, (स) गुण के अनुसार भेद —१. अस्तिवाचक, २. नास्तिवाचक। (द) परिमाण के अनुसार भेद—१ सामान्य, २. विशेष, (इ) गुण और परिमाण दोनो के अनुसार भेद—१. सामान्य अस्तिवाचक, २. सामान्य नास्तिवाचक, ३. विशेष अस्तिवाचक, ४. विशेष नास्तिवाचक, (उ) विधि के अनुसार भेद—१. अनिवार्य, २. प्रतिज्ञात, ३ संदिग्ध, (फ) तात्पर्य की दृष्टि से भेद—१. शाब्दिक, २. यथार्थ।

अभ्यास के लिये प्रश्न

प्रश्न १. निम्नाकित मे भेद वतलाइये :—

हेतु फलाश्रित तथा वैकल्पिक वाक्य, शाब्दिक तथा वास्तविक वाक्य आवश्यक, प्रतिज्ञात तथा सम्भावित वाक्य। (यू० पी० बोर्ड १९६२)

२. तर्कवाक्य का विश्लेपण कीजिये और उसके घटको की सोदाहरण व्याख्या कीजिये। (बुन्देलखण्ड १९७८)

३. तर्कवाक्य का क्या स्वरूप है ? सरल तथा मिश्रित तर्कवाक्यो मे उपयुक्त दृष्टान्तो सहित भेद कीजिये। (मेरठ १९७८)

४ तर्कवाक्य तथा तर्कवाक्यीय फलन में अन्तर कीजिये। (गोरखपुर १९७७)

५ तार्किक वाक्य का सम्बन्ध के आधार पर वर्गीकरण कीजिये। हेत्वाश्रित वाक्यो का गुण तथा परिमाण कैसे निश्चय किया जाता है ? (आगरा १९७६)

६ सक्षिप्त टिप्पणी लिखिये—तर्कवाक्यो का सज्ञात्मक तात्पर्य। (प्रयाग १९७५)

७ व्याकरण के वाक्य एव तार्किक वाक्य मे क्या अन्तर है ? सामान्य वाक्य का तार्किक रूपान्तरण किस प्रकार सम्भव है ? (आगरा १९७५)

८. निरूपाधिक तर्कवाक्यो से आप क्या समझते हैं ? परम्परा विरोध वर्ग की व्याख्या कीजिये। (गोरखपुर १९७५)

९. तर्कवाक्य क्या है ? निरूपाधिक, नियोजक तथा हेत्वाश्रित तर्कवाक्यो के भेद को स्पष्ट कीजिये। क्या तर्कवाक्यो की सत्यता-असत्यता और उनसे निर्मित युक्ति की वैधता अवैधता मे कोई सम्बन्ध है ? (प्रयाग १९७४)

१२

कथनों को तार्किक रूपों में घटाना

(REDUCTION OF STATEMENTS TO LOGICAL FORMS)

साधारण वाक्यों को तर्कवाक्यो के रूप मे रखने या उनका रूपान्तरकरण करने के लिए निम्नलिखित नियमो का पालन करना आवश्यक है :—

रूपान्तरकरण के नियम

(१) **संयोजक को अलग रखना**—किसी कथन को तार्किक रूप देने के लिये सबसे पहले उसमे सयोजक का पता लगाना चाहिए। संयोजक 'होना' क्रिया का वर्तमान कालिक रूप होता है। यदि कथन मे सयोजक को अलग न दिया गया हो तो उन्हे अलग कर लिया जाना चाहिये। उदाहरण के लिए 'अरस्तु विद्वान व्यक्ति था' इस कथन को तार्किक रूप मे इस प्रकार रखा जायेगा कि 'अरस्तु वह व्यक्ति है जो विद्वान था।' राम को सफलता नही मिलनी चाहिए इस कथन का तार्किक रूप यह होगा कि राम वह व्यक्ति नही है जिसे सफलता मिलनी चाहिए।

(२) **उद्देश्य को पहले रखना**—तार्किक दृष्टि से सही तर्कवाक्य मे उद्देश्य को सबसे पहले रक्खा जाना चाहिए। अस्तु, जिन कथनो मे उद्देश्य पहले न हो उनमे उद्देश्य पहले कर लिया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए 'महान् है वह देश जिसने गाँधी को जन्म दिया' इस कथन को तार्किक रूप देने के लिये कहा जाना चाहिए कि 'गाँधी को जन्म देने वाला देश ऐसा है जो महान् था'।

(३) **उद्देश्य की विशेषता बतलाने वाला वाक्यांश विधेय नहीं होता**—कुछ कथन इस प्रकार के होते है जिनमे जो वाक्याश बाद मे दिया जाता है उसके विधेय होने का भ्रम होता है। उदाहरण के लिये 'वह दूसरो की पीड़ा को नही समझ सकता जिसे स्वयं कभी पीड़ा नही हुई' इसमें 'जिसे स्वयं कभी पीड़ा नही हुई' यह वाक्याश 'वह' की विशेषता बतलाता है जो उद्देश्य है। तार्किक रूप मे यह कथन इस प्रकार रक्खा जाएगा कि 'सब व्यक्ति जिन्हे कभी पीड़ा नही हुई, वे व्यक्ति है जो दूसरो की पीडा को नही समझते।'

(४) **सब, प्रत्येक, हरएक, कोई, इत्यादि शब्दों का प्रयोग करने वाले कथन सामान्य तर्कवाक्य होते हैं**—उपरोक्त प्रकार के कथनो को तार्किक रूप देने के लिये उन्हे सामान्य तर्कवाक्य के रूप मे रक्खा जाना चाहिये जैसे 'प्रत्येक मनुष्य मरण-शील है' इसका तार्किक रूप यह होगा 'सब मनुष्य वे है जो मरणशील है।' प्रत्येक भारतीय ने युद्ध मे योगदान दिया, इसका तार्किक रूप यह होगा कि सब भारतीय वे व्यक्ति है जिन्होने युद्ध मे योगदान दिया इत्यादि। सब, प्रत्येक, हरएक, कोई इत्यादि

शव्दो के साथ निषेध का चिन्ह् लगा होने पर वे विशेष निषेधात्मक तर्कवाक्य होते हैं। उदाहरण के लिए 'प्रत्येक व्यक्ति महान् नही हो सकता' इसका तार्किक रूप यह होगा कि 'कुछ व्यक्ति महान् नही है।' इसी प्रकार सव चमकने वाली चीजे सोना नही है।

(५) अधिकतर, थोड़े से, कुछ, वहुत से, लगभग सव, एक को छोड़कर सव, कई, इत्यादि का प्रयोग करने वाले कथन विशेष होते हैं—इस प्रकार के कथनो मे यदि निषेध का चिन्ह् नही होता तो वे अस्तिवाचक होते है और यदि निषेध का चिन्ह् होता है तो वे नास्तिवाचक होते है। तर्कशास्त्र मे प्रत्येक अनिश्चित सख्या को 'कुछ' शव्द से व्यक्त किया जाता है। इसलिए अधिकाश, थोडे से, वहुत से, लगभग सव, अधिकतर कुछ, एक को छोड़कर सव, कई, इत्यादि शव्दो के स्थान पर तार्किक रूप मे 'कुछ' शव्द का प्रयोग किया जाता है। जैसे 'अधिकतर लोगो ने प्रस्ताव के पक्ष मे मत दिया।' इसका तार्किक रूप यह होगा कि 'कुछ लोग वे व्यक्ति है जिन्होने प्रस्ताव के पक्ष मे मत दिया।' थोड़े से भारतीय सभा मे उपस्थित है, इसका तार्किक रूप यह होगा कि कुछ भारतीय वे व्यक्ति है जो सभा मे उपस्थित है। वहुत से विद्यार्थी शोर मचा रहे है, इसका तार्किक रूप यह होगा कि कुछ विद्यार्थी वे व्यक्ति है जो शोर मचा रहे है इत्यादि।

(६) अधिकांशतर, प्रायः, सामान्यतया, वहुधा, आम तौर पर, शायद, लगभग सदैव, कभी-कभी, इत्यादि शव्द विशेष तर्कवाक्य में होते हैं—इन सव शव्दो के स्थान पर तार्किक वाक्यो मे 'कुछ' शव्द का प्रयोग किया जायेगा क्योकि ये शव्द अनिश्चित मात्रा दिखलाते है। उदाहरण के लिए 'सामान्य रूप से भारतीय व्यक्ति धार्मिक होते है' इसका तार्किक रूप यह होगा कि 'कुछ भारतीय वे व्यक्ति हैं जो धार्मिक है।' इन कथनो मे यदि निषेध का चिन्ह् हो तो वे 'ओ' वाक्य होते हैं जैसे प्राय. भारतीय विद्यार्थी अध्यापको का अनादर नही करते इसका 'ओ' वाक्य यह होगा कि कुछ भारतीय वे व्यक्ति नही है जो अध्यापको का अनादर करते है। उपरोक्त प्रकार के कथन मे यदि निषेध का चिन्ह् न हो तो 'इ' वाक्य होता है। उदाहरण के लिये धार्मिक व्यक्ति लगभग सदैव सुखी रहते है इसका तार्किक रूप यह होगा कि कुछ धार्मिक व्यक्ति वे है जो सुखी है।

(७) कम ही, विरले ही, करीव करीव कोई भी नहीं, का तार्किक रूप 'कुछ नहीं' है—यदि किसी कथन मे कम ही, विरले ही, करीव-करीव कोई नही, इत्यादि शव्दो का प्रयोग किया गया हो तो उसको तार्किक रूप देने के लिए इन शव्दो के स्थान पर 'कुछ नहीं' का प्रयोग किया जाना चाहिये, जैसे 'विरले ही व्यक्ति प्रलोभन से वच जाते हैं' यहाँ पर यह कहना चाहिए कि 'कुछ व्यक्ति प्रलोभन से वच सकने वाले नही हैं।' इन कथनो मे निषेध का चिन्ह् न होने पर ये 'ओ' वाक्य होते है जैसा कि पीछे दिये गये उदाहरण मे दिखलाया गया है। निषेध का चिन्ह् लगाने पर यह 'इ' वाक्य होता है क्योकि निषेध का निषेध विधानात्मक हो जाता है। उदाहरण के लिए विरले ही व्यक्ति स्वार्थी नही होते इसमे 'विरले' और 'स्वार्थी नहीं' ये दो निषेध होने के कारण इसका तार्किक रूप यह होगा कि 'कुछ व्यक्ति स्वार्थी नही है।'

(८) मुश्किल से, शायद ही कभी, का तार्किक रूप निषेधात्मक होता है—जिन कथनो मे मुश्किल से, अथवा शायद ही कोई या शायद ही कभी इत्यादि शव्दो का प्रयोग हो वे तार्किक रूप मे निषेधात्मक समझे जाते है किन्तु यदि इनके साथ

निषेध का चिन्ह भी है तो निषेध मिल जाने से ये 'इ' वाक्य होते है। उदाहरण के लिए 'स्वार्थी व्यक्ति, शायद ही कभी, दूसरे की दिक्कत समझता हो' इसका तार्किक रूप यह होगा कि 'स्वार्थी व्यक्ति वह नही है जो दूसरे की दिक्कत समझता हो।' इसी प्रकार मुश्किल से ही कोई सम्पन्न व्यापारी ईमानदार न होगा, इसका तार्किक रूप यह होगा कि कुछ सम्पन्न व्यापारी ईमानदार है।

(९) **केवल, अकेले के अलावा कोई नहीं. शब्दो के कथन एकांतिक वाक्य होते हैं**—इन कथनो को तार्किक रूप देने का उपाय यह है कि दिए हुए वाक्य के उद्देश्य और विधेय को परस्पर बदल दिया जाये। उदाहरण के लिए 'इस घर के सदस्य केवल बौद्ध धर्म को मानते है' इसका तार्किक रूप यह होगा कि 'इस घर के सब सदस्य बौद्ध धर्म को मानते हैं'। यहाँ पर यह ध्यान देने की बात है कि तार्किक रूप देने से वाक्य का अर्थ नही बदलना चाहिये। उपरोक्त कथन मे यह तात्पर्य है कि जो लोग बौद्ध धर्म के अलावा अन्य धर्म मानते है उनमे से कोई भी इस परिवार का सदस्य नही है।

एकांतिक वाक्य को बदलने का एक अन्य तरीका यह है कि उद्देश्य का व्याघातक पद उद्देश्य बना दिया जाय और विधेय नही रखा जाय। उदाहरण के लिए उपरोक्त तर्कवाक्य को इस प्रकार रक्खा जा सकता है कि कोई भी अबौद्ध व्यक्ति इस परिवार का सदस्य नही है।

एकांतिक वाक्य बनाने का एक अन्य तरीका उसे 'इ' रूप देना है। उदाहरण के लिए 'कुछ बौद्ध धर्म को मानने वाले लोग इस परिवार के सदस्य है।'

(१०) **अपवादात्मक कथन निश्चित होने पर सामान्य और अनिश्चित होने पर विशेष तर्कवाक्य होते हैं**—उदाहरण के लिए 'राम के अलावा सब विद्यार्थी पास हो गए' इसमे अपवाद निश्चित होने के कारण यह सामान्य तर्कवाक्य के रूप में रक्खा जायेगा किन्तु यदि यह कहा जाए कि एक विद्यार्थी के अलावा सब विद्यार्थी पास हो गये तो इसमे अपवाद अनिश्चित होने के कारण यह 'इ' वाक्य है जिसका तार्किक रूप है 'कुछ विद्यार्थी वह व्यक्ति है जो पास है।'

(११) **जिन एकवाचक वाक्यों के उद्देश्य निश्चित हैं वे सामान्य और जिनके अनिश्चित हैं वे विशेष होते हैं**—उदाहरण के लिए 'राम कक्षा से भाग गया है' इसमें उद्देश्य निश्चित है और 'एक विद्यार्थी कक्षा से भाग गया है' इसमे उद्देश्य अनिश्चित है। निश्चित उद्देश्य की स्थिति मे तर्कवाक्य' (A) या ऐ (I) रूप मे होगा और अनिश्चित उद्देश्य की स्थिति मे वह इ (E) या ओ (O) के रूप मे रक्खा जायेगा।

(१२) **उत्तर का सुझाव देने वाले प्रश्नवाचक वाक्य तार्किक रूप में रक्खे जा सकते हैं**—कुछ प्रश्नवाचक वाक्य ऐसे होते है जिनमे उनका उत्तर भी छिपा रहता है। ऐसे प्रश्नवाचक वाक्यो को तार्किक रूप दिया जा सकता है। उदाहरण के लिए यदि कहा जाए कि 'क्या ऐसा कोई भी मनुष्य है जिसे देश का गौरव न हो?' तो इसका तार्किक रूप यह होगा कि 'कोई भी व्यक्ति ऐसा नही है जिसको देश का गौरव न हो।'

साधारण कथनो को तर्कवाक्यों का रूप देने के लिए ऊपर जो नियम बतलाये गए है उनमे सभी नियम नही आते। वास्तव मे कथन इतने अधिक प्रकार के हो सकते है कि उन सबको तार्किक रूप देने के नियमो का वर्णन करना अत्यन्त कठिन है। इस सम्बन्ध मे उपरोक्त नियम मुख्य नियम कहे जा सकते है। अस्तु, तर्कशास्त्रियो ने केवल इन्ही का विवेचन करना आवश्यक माना है।

सारांश

तकशास्त्र में रूपान्तरकरण के कुछ मुख्य नियम माने जाते है—१. संयोजक को अलग रखना, २. उद्देश्य को पहले रखना, ३. उद्देश्य की विशेषता बतलाने वाला वाक्यांश विधेय नहीं होता, ४. सब, प्रत्येक, हरएक, कोई इत्यादि शब्दो का प्रयोग करने वाले कथन सामान्य तर्क वाक्य होते हैं। ५. अधिकतर थोड़े से, कुछ, बहुत से, लगभग एक को छोड़कर सब, कई इत्यादि का प्रयोग करने वाले कथन विशेष होते हैं। ६. अधिकांश तर्क प्राय, सामान्यतया, बहुधा, आमतौर पर, शायद, लगभग सदैव, कभी-कभी इत्यादि शब्द विशेष तर्कवाक्य में होते हैं, ७. कम ही, विरले ही, करीब करीब कोई भी नहीं का तार्किक रूप 'कुछ नहीं' है। ८ मुश्किल से, शायद ही कभी, का तार्किक रूप निषेधात्मक होता है। ९ केवल, अकेले के अलावा कोई नहीं शब्दो के कथन, एकांतिक वाक्य होते है। १०. अवपादात्मक कथन निश्चित होने पर सामान्य और अनिश्चित होने पर विशेष तर्कवाक्य होते हैं। ११. जिन एकवाचक वाक्यो के उद्देश्य निश्चित है वे सामान्य और जिनके अनिश्चित है वे विशेष होते है। १२. उत्तर का सुझाव देने वाले प्रश्नवाचक वाक्य तार्किक रूप में रक्खे जा सकते हैं।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१. रूपान्तरकरण किसे कहते हैं ? नैगमनिक तर्कशास्त्र मे इसका क्या महत्व है ?

२ रूपान्तरकरण से आप क्या समझते हैं ? उसके कितमे प्रकार हैं ? उदाहरण देकर समझाइये ?

१३

अनन्तरानुमान की प्रकृति और प्रकार

(THE NATURE AND FORMS OF IMMEDIATE INFERENCE)

अनुमान वह प्रक्रिया है जिसमे एक या एक से अधिक तर्कवाक्यो से कोई नवीन तर्कवाक्य निकाला जाता है, जिसका सत्य दिए हुए तर्कवाक्यों मे निहित होता है। अनुमान एक मानसिक प्रक्रिया है। जब इसको भाषा मे व्यक्त कर दिया जाता है तब यह 'युक्ति' (Argument) कहलाता है। युक्ति मे एक से अधिक तर्कवाक्य होते है और दिये हुए तर्कवाक्यो से कोई नवीन तर्कवाक्य निकाला जाता है। दिया हुआ तर्कवाक्य आधार वाक्य (Premise) कहलाता है और उससे जो तर्कवाक्य निकाला जाता है उसे निष्कर्ष (Conclusion) कहते हैं। यद्यपि नया तर्कवाक्य दिए हुए तर्कवाक्य मे गुप्त रूप से निहित होता है परन्तु वाह्य रूप मे वह नवीन होता है। इस प्रकार अनुमान की प्रक्रिया मे ज्ञात तथ्यों से अज्ञात तथ्यो का पता लगाया जाता है। भारतीय तर्कशास्त्र मे अनुमान वह प्रक्रिया मानी गयी है जिससे नवीन ज्ञान प्राप्त होता है। अग्रेजी के शब्द इन्फ्रेस (Inference) से तात्पर्य अनुमान की प्रक्रिया और अनुमान से ज्ञान दोनो से ही है।

अनुमान क्या है ?

तर्कशास्त्रियो ने अनुमान के निम्नलिखित दो भेद माने है :—

(१) **निगमनात्मक अनुमान** (Deductive Inference)—अनुमान के इस प्रकार मे निष्कर्ष वाक्य आधार वाक्य से कम व्यापक होता हैं और कभी-कभी उसके समान व्यापक होता है। इस प्रकार इस अनुमान मे अधिक व्यापक आधार वाक्य से कम व्यापक निष्कर्ष वाक्य की ओर बढ़ते हैं।

अनुमान के भेद

दूसरे शब्दो मे, इसमे सामान्य तर्कवाक्य से विशेष तर्कवाक्य निकाला जाता है जैसे :—

सब मनुष्य मरणशील हैं।
सब भारतवासी मनुष्य हैं।
∴ सब भारतवासी मरणशील है।

उपरोक्त अनुमान मे प्रथम आधार वाक्य अन्तिम निष्कर्ष वाक्य से अधिक व्यापक है। निगमनात्मक अनुमान को भी निम्नलिखित दो वर्गो मे बाँटा गया है :—

(१) **अनन्तरानुमान** (Immediate Inference)—अनन्तरानुमान निगमनात्मक अनुमान की वह विधि है जिसमे केवल एक ही तर्कवाक्य से निष्कर्ष निकाला जाता है। इसमे आधारवाक्य मे निहित सत्य को निष्कर्ष वाक्य मे व्यक्त कर दिया

जाता है जैसे सव मनुष्य मरणशील हैं, इस वाक्य के आधार पर कहा जा सकता है कि कुछ मरणशील जीव मनुष्य है।

(२) **परम्परानुमान या सांतरानुमान** (Mediate Inference)—निगमनात्मक अनुमान के इस रूप मे आधारवाक्य दो होते हैं और उन दोनो के सम्मिलित परिणाम से निष्कर्ष वाक्य निकलता है जैसे—

सव मनुष्य मरणशील है।
राम मनुष्य है।
∴ राम मरणशील है।

उपरोक्त उदाहरण मे राम मरणशील है यह निष्कर्ष वाक्य दिये हुए दोनों वाक्यों का परिणाम है। आधार वाक्य मे दिया हुआ 'मनुष्य' पद 'राम' और 'मरणशील' मे सम्वन्ध स्थापित करता है। इसलिए इस प्रकार के अनुमान को सातरानुमान कहा जाता है क्योकि इसमे आधारवाक्य और निष्कर्ष वाक्य के मध्य तीसरा तर्कवाक्य होता है।

(३) **उदगमनात्मक अनुमान** (Inductive Inference)—अनुमान का दूसरा भेद उद्गमात्मक अनुमान है। इसकी प्रक्रिया निगमनात्मक अनुमान के विपरीत है। जहाँ निगमनात्मक अनुमान मे सामान्य से विशेष तर्कवाक्य निकाला जाता है, वहाँ उद्गमनात्मक तर्कवाक्य मे निष्कर्ष आधार वाक्य की अपेक्षा अधिक व्यापक होता है और इस प्रकार विशेष से सामान्य तर्कवाक्य निकाला जाता है। उदाहरण के लिये—

राम, मोहन, श्याम मरणशील हैं।
राम, मोहन, श्याम मनुष्य हे।
∴ सव मनुष्य मरणशील हे।

विज्ञान के क्षेत्र मे अधिकतर अनुमान उद्गमनात्मक होते है क्योकि विशेष अध्ययनो और विशेष प्रयोगो से कुछ सामान्य सिद्धान्त निकाले जा सकते है।

क्या अनन्तरानुमान अनुमान नहीं है ?

मिल, वेन इत्यादि तर्कशास्त्रियो का कहना है कि अनन्तरानुमान को अनुमान नही माना जाना चाहिए। मिल ने लिखा है, "इन सव मामलो मे वास्तव मे कोई अनुमान नही है। निष्कर्ष मे कोई भी नवीन सत्य नही है, जो कुछ आधार वाक्य मे है उसके अतिरिक्त अन्य कुछ नही है। निष्कर्ष मे प्रतिपादित तथ्य या तो वही तथ्य है अथवा उस तथ्य का अश है जो कि मूल वाक्य मे प्रतिपादित किया गया है।"[1] वेन के अनुसार "अनन्तरानुमान मे दिये हुए तथ्य से किसी नवीन तथ्य का प्रतिपादन नही होता वल्कि आधार वाक्य और निष्कर्ष वाक्य मे केवल हेर-फेर मात्र होता है।"[2] उदाहरण के लिए सव मनुष्य मरणशील हैं, इससे यह तर्कवाक्य

---

1 "In all these cases there is not realy one inference, there is in the conclusion no new truth, nothing but what was already asserted in the premises The fact asserted in the conclusion is either the very same fact or part of the fact, asserted in the original proposition" —Mill in *System of Logic.*

2 "In none of these cases (of immediate inference) is there inference properly so called, that is to say, the transition from a fact to some different fact, there is merely the transition from one working to another working of the same fact" —Bain, *Deductive Logic*, p 198.

निकालना कि कोई मनुष्य अमर नही है वास्तव मे किसी नवीन सत्य का प्रतिपादन न होकर पहले तर्कवाक्यो को ही भिन्न शब्दो मे रखना है ।

मिल और बेन का मत तर्कयुक्त नही है क्योकि यद्यपि अनन्तरानुमान मे निष्कर्ष वाक्य आधार वाक्य से निकाला जा सकता है परन्तु यह नही कहा जा सकता कि उसमे किसी सत्य का प्रतिपादन ही नही किया गया है, वास्तव मे अनुमान का कार्य पूर्णतया नवीन सत्य का प्रतिपादन नही है, उसमे दिये हुये आधार वाक्य मे अन्तर्निहित अर्थात् छिपे हुए सत्य को प्रकट कर दिया जाता है। यही बात अनन्तरानुमान मे दिखलाई पडती है । जब यह कहा जाता है कि 'सब मनुष्य मरणशील है' तो इसमे यह बात निहित है 'कि कोई मनुष्य अमर नही है' किन्तु केवल पहले तर्कवाक्य को देखने मात्र से दूसरे तर्कवाक्य में प्रतिपादित सत्य का पता नहीं चलता क्योकि वह छिपा होता है । अनन्तरानुमान मे अनुमान के अन्य प्रकारो के समान दिए हुए वाक्य मे छिपे हुए अर्थ को स्पष्ट किया जाता है । अस्तु, यह कहना उचित है कि अनन्तरानुमान अनुमान नही है। उसमे निष्कर्ष वाक्य आधारवाक्य की तुलना मे नवीन होता है । यह ठीक है कि यह निष्कर्ष वाक्य आधारवाक्य से ही निकलता है और इसमे पूर्ण नवीनता नही होती किन्तु तर्कशास्त्र का उद्देश्य नवीन सत्य निकालना न होकर दिए हुए तर्कवाक्यो मे निहित अथवा छिपे हुए सत्य को अभिव्यक्त कर देना है । नये सत्यो का विज्ञान की सहायता से पता लगता है, अनुमान उनका साधन नही है । अनुमान तो किसी भी कथन या तर्क वाक्य मे निहित अव्यक्त सत्यो को व्यक्त करता है । इसमे ज्ञात से अज्ञात की ओर चलते हैं, जो होता आया है उसके आधार पर जो होगा उसके सम्बन्ध मे भविष्यवाणी करते है । स्पष्ट है कि अनन्तरानुमान अत्यन्त महत्वपूर्ण अनुमान कहा जाना चाहिये ।

अनन्तरानुमान के रूप : निष्कर्षण

अनन्तरानुमान के विभिन्न रूपो मे सबसे मुख्य निष्कर्षण (Eduction) है । निष्कर्षण अनन्तरानुमान के वे रूप है जिनमे दिए हुए तर्कवाक्यो को सत्य मानते हुए उनमे अन्तर्भूत तर्कवाक्य निकाले जाते है जो कि उद्देश्य अथवा विधेय अथवा दोनो की दृष्टि से मूल तर्कवाक्यो से भिन्न होते है । इस प्रकार निष्कर्षण के चार मुख्य रूप माने गये हैं—परिवर्तन (Conversion), प्रतिवर्तन (Obversion), परिवर्तित प्रतिवर्तन (Contraposition), विपर्यय (Inversion) । इनमे से यहाँ पर परिवर्तन पर विचार किया जाएगा ।

(१) परिवर्तन

जैसा कि पीछे बतलाया जा चुका है, परिवर्तन अनन्तरानुमान का एक प्रकार है और निष्कर्षण का एक रूप है । इसमे तर्कशास्त्र के नियमो का उल्लंघन न करते हुए उद्देश्य और विधेय का स्थान परस्पर बदल

(१) परिवर्तन क्या है ?

दिया जाता है अर्थात् उद्देश्य के स्थान पर विधेय और विधेय के स्थान पर उद्देश्य को रख दिया जाता है जैसे कुछ भारतवासी विद्वान है, इसका परिवर्तित वाक्य यह होगा कि कुछ विद्वान भारतवासी है ।

परिवर्तन के उपरोक्त उदाहरण मे दिया हुआ वाक्य परिवर्त्य (Convertend)

कहलाता है अर्थात् उसका परिवर्तन किया जाना है। दूसरा वाक्य परिवर्तित (Converse) वाक्य कहलाता है अर्थात् वह दिये हुए वाक्य का परिवर्तित रूप है। पीछे दिये गये उदाहरण मे 'कुछ भारतवासी विद्वान है', यह परिवर्त्य वाक्य है और कुछ विद्वान भारतवासी हैं, यह परिवर्तित वाक्य है।

परिवर्त्य वाक्य को परिवर्तित वाक्य मे वदलने के लिये निम्नलिखित परिवर्तन के नियमो का पालन करना आवश्यक है—

परिवर्तन के नियम

(१) **परिवर्त्य का उद्देश्य परिवर्तित का विधेय वन जाता है**—जैसा कि पीछे दिये हुये उदाहरण मे दिखलाया गया हैं, परिवर्त्य वाक्य मे 'भारतवासी' उद्देश्य है जो कि परिवर्तित वाक्य मे विधेय वन जाता है।

(२) **परिवर्त्य का विधेय परिवर्तित का उद्देश्य बन जाता है**—पीछे दिए गए उदाहरण मे परिवर्त्य का विधेय 'विद्वान' है, यह परिवर्तित मे उद्देश्य वन जाता है।

(३) **वाक्य का गुण नहीं बदलता**—परिवर्त्य को परिवर्तित मे बदलने के लिये यह ध्यान रखा जाना चाहिये कि परिवर्तित का गुण वही रहे जो परिवर्त्य का था अर्थात् यदि परिवर्त्य विधानात्मक है तो परिवर्तित भी विधानात्मक हो और यदि परिवर्त्य निषेधात्मक है तो परिवर्तित भी निषेधात्मक हो। पीछे दिये गये उदाहरण मे परिवर्त्य वाक्य विधानात्मक है इसलिये परिवर्तित वाक्य भी विधानात्मक रखा गया है।

(४) **अव्याप्त पद व्याप्त नहीं होना चाहिये**—परिवर्तित मे कोई भी पद व्याप्त नही हो सकता जव तक कि वह परिवर्त्य मे भी व्याप्य न हो। दूसरे शब्दो मे, यदि कोई पद परिवर्त्य वाक्य मे अव्याप्त है तो वह परिवर्तित वाक्य मे भी अव्याप्त रहेगा। इसका कारण यह है कि जो वात किसी जाति के कुछ व्यक्तियो के वारे मे सच होती है वह उस जाति के सभी व्यक्तियो के वारे मे सच नही कही जा सकती। उदाहरण के लिए यदि हम कुछ भारतवासियो को विद्वान कहते हैं तो सव भारतवासियो को विद्वान नही कहा जा सकता। पीछे दिये गये उदाहरण मे विद्वान पद कुछ भारतवासियो पर ही लागू किया गया है, इसलिये परिवर्तित रूप मे भी विद्वान पद को कुछ भारतवासियो तक ही सीमित रखा गया है।

(५) **'ओ' वाक्य का परिवर्तन नहीं होता**—यदि परिवर्त्य वाक्य 'ओ' है तो उसका परिवर्तित वाक्य नही बनाया जा सकता। इसका कारण यह है कि 'ओ' वाक्य को परिवर्तित करने से परिवर्तित वाक्य निषेधात्मक ही होना चाहिये विधानात्मक नही। किन्तु निषेधात्मक वाक्यो मे विधेय पद व्याप्त होता है। अस्तु, 'ओ' वाक्य का परिवर्तन करने से उद्देश्य का परिवर्तित वाक्य मे विधेय वन जाने से वह अव्याप्त न रहकर व्याप्त वन जाता है जो कि परिवर्तन के नियमो के अनुसार उचित नही है। कुछ तर्कशास्त्रियो ने 'ओ' वाक्य का परिवर्तन करने का प्रयास किया है जैसे 'कुछ भारतवासी विद्वान नही है,' यह 'ओ' वाक्य है, इसका परिवर्तित वाक्य यह बनाया गया कि कोई भी विद्वान कुछ भारतवासी नही है। इस परिवर्तित वाक्य मे उद्देश्य के विधेय पद पर आ जाने से उसकी व्याप्ति वढ जाती है और चूँकि परिवर्तन मे किसी भी पद की व्याप्ति वढनी नही चाहिये इसलिये यह अनुचित है। अस्तु, यही कहना उचित होगा कि 'ओ' वाक्य का

परिवर्तन नही किया जा सकता । 'ओ' के अतिरिक्त 'A' 'I' 'E' का परिवर्तन होता है । A का परिवर्तन I मे होता है जैसा कि निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्ट होगा—

सब मनुष्य भारतवासी है ।
कुछ मनुष्य भारतवासी है ।

उपरोक्त उदाहरण मे परिवर्तित और परिवर्त्य दोनो ही तर्कवाक्य विधानात्मक है और परिवर्त्य वाक्य के उद्देश्य और विधेय पदों की व्याप्ति परिवर्तित वाक्य मे भी वही रहती है ।

E वाक्य का परिवर्तित रूप E वाक्य ही होता है जैसा कि निम्नलिखित उदाहरण मे देखा जा सकता है—

कोई भी भारतवासी देशद्रोही नही है ।
कोई भी देशद्रोही भारतवासी नही है ।

उपरोक्त उदाहरण मे परिवर्त्य और परिवर्तित दोनों ही वाक्य निषेधात्मक हैं और दोनो ही पदो की व्याप्ति मे अन्तर नही है ।

'I' वाक्य का परिवर्तित रूप 'I' होता है जैसा कि निम्नलिखित उदाहरण मे देखा जा सकता है—

कुछ अग्रेज विद्वान है ।
कुछ विद्वान अग्रेज है ।

उपरोक्त उदाहरण मे परिवर्त्य और परिवर्तित वाक्य दोनो ही विधानात्मक है और उन दोनो मे ही पदों की व्याप्ति मे अन्तर नही हे ।

उपरोक्त उदाहरणो से स्पष्ट है कि परिवतन उन्ही वाक्यों का हो सकता है जिनमे परिवर्तन के पीछे दिये गये नियमो का पालन करते हुए परिवर्त्य का वाक्य वनाया जा सके ।

तर्कशास्त्रियो ने परिवर्तन के निम्नलिखित दो प्रकार माने है—

परिवर्तन के प्रकार

(१) **साधारण परिवर्तन** (Simple Conversion)—साधारण परिवर्तन मे परिवर्तित का परिमाण वही रहता है जो कि परिवर्त्य का परिमाण है । दूसरे शब्दो मे, यदि परिवर्त्य सामान्य है तो परिवर्तित भी सामान्य होगा और यदि परिवर्त्य विशेष है तो परिवर्तित भी विशेष होगा । इस प्रकार केवल A और E वाक्यों में ही साधारण परिवर्तन होता है । A और I वाक्यो के परिवर्तन के पीछे दिए गए उदाहरण साधारण परिवर्तन के उदाहरण है ।

(२) **संकुचित परिवर्तन** (Conversion by Limitation)—परिवर्तन के इस प्रकार मे परिवर्त्य वाक्य का परिमाण परिवर्तित वाक्य से कम हो जाता है, इसीलिये इसको सकुचित अथवा सीमित परिवर्तन कहा गया है । दूसरे शब्दो मे, यदि परिवर्त्य सामान्य होता है तो परिवर्तन विशेष हो जाता है । सीमित परिवर्तन A वाक्य का I मे परिवर्तन के रूप मे होता है । पीछे A वाक्य के I मे परिवर्तन का जो उदाहरण दिया गया है उससे सकुचित परिवर्तन का उदाहरण स्पष्ट होता है । क्योकि 'O' वाक्य का परिवर्तन नही हो सकता इसलिये वह परिवर्तन के इन दोनो प्रकारो मे से किसी मे भी नही आता ।

यहा पर यह प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या अ अथवा ए (A) वाक्य का

साधारण परिवर्तन नही हो सकता, इस सम्बन्ध मे तर्कशास्त्रियो मे कुछ मतभेद है। सामान्य रूप से A वाक्य का साधारण परिवर्तन नही होता किन्तु यदि उद्देश्य और विधेय का निर्देश एक ही हो तो A वाक्य का साधारण परिवर्तन हो सकता है। दूसरे शब्दो मे, यदि किसी वाक्य मे उद्देश्य और विधेय दोनो ही निश्चित एक वाचक पद है तो उसका साधारण परिवर्तन किया जा सकता है। यह बात परिभाषा मे ही पाई जाती है। A वाक्य के परिवर्तन का एक उदाहरण निम्नलिखित है—

गगा भारतवर्ष मे सबसे प्रसिद्ध नदी है।
भारतवर्ष मे सबसे प्रसिद्ध नदी गगा है।

उपरोक्त उदाहरण मे परिवर्त्य वाक्य के उद्देश्य और विधेय सामान्य निर्देश वाले है इसलिये साधारण परिवर्तन सम्भव हो सका है।

सक्षेप मे, किसी भी वाक्य का परिवर्तन तभी हो सकता है जबकि परिवर्तन के पीछे दिये गये नियमो का पालन करते हुए परिवर्तन किया जा सकता हो। उद्देश्य और विधेय पद सापेक्ष होने पर भी परिवर्तन सम्भव होता है जैसे—

राम, सीता के पति थे।
सीता राम की पत्नी थी।

उपरोक्त उदाहरण मे पति और पत्नी सापेक्ष पद है इसीलिये उद्देश्य और विधेय बदलकर सम्बन्ध बतलाने वाले पद के स्थान पर सापेक्ष पद रख दिया गया है। यह परिवर्तित सम्बन्ध के द्वारा अनुमान कहलाता है। यहाँ पर यह भी याद रखना आवश्यक है कि कुछ तर्कशास्त्रियो ने निषेध के द्वारा 'ओ' वाक्य का परिवर्तन करने का प्रयास किया है अर्थात् उन्होने निषेध के चिन्ह को विधेयगत मानकर परिवर्तित करना चाहा है किन्तु इस प्रकार का परिवर्तन तर्कशास्त्र की दृष्टि से सर्वथा अनुचित है।

परिवर्तन का आधार

वास्तव मे परिवर्तन का आधार तादात्म्य का नियम है। इस नियम के अनुसार A सदैव A रहता है। अस्तु, परिवर्तन करने मे कोई ऐसी बात नही कही जा सकती है जो मूल वाक्य से भिन्न हो जाये। जो वस्तु जैसी है वैसी ही रहनी चाहिये। उद्देश्य और विधेय का जो सम्बन्ध है वह नही बदलना चाहिये। किसी भी पद की जो व्याप्ति है उसमे परिवर्तन नही होना चाहिये। इस प्रकार परिवर्तन मे परिवर्तित वाक्य उसी बात को बदल कर कहता है जो परिवर्त्य वाक्य मे कही गयी है। दूसरे शब्दो में, मूल वाक्य मे जो बात अव्यक्त और अकथित होती है वही परिवर्तित वाक्य मे व्यक्त हो जाती है अथवा कह दी जाती है।

(२) प्रतिवर्तन

प्रतिवर्तन क्या है ?

प्रतिवर्तन अनन्तरानुमान का वह प्रकार है जिसमे दिये हुए वाक्य का गुण बदल दिया जाता है, जबकि उसका अर्थ नही बदलता। इस प्रकार यदि दिया हुआ वाक्य विधानात्मक है तो प्रतिवर्तन मे उसका निषेधात्मक वाक्य बना दिया जाता है और यदि यह निषेधात्मक है तो उसका विधानात्मक वाक्य बना दिया जाता है। दोनो स्थितियो मे वाक्य का अर्थ नही बदलता अर्थात वाक्य समानार्थक रहते है। प्रतिवर्तन निष्कर्षण का वह रूप है जिसमे बदल कर वही बात कही जाती

है जो कि दिये हुए वाक्य मे कही गयी है । जैसे कोई मनुष्य पूर्ण नही है इसका प्रतिवर्तित रूप यह होगा कि सब मनुष्य अपूर्ण है । इन दोनों ही वाक्यो मे अर्थ का कोई भेद नही है यद्यपि पहला वाक्य निषेधात्मक और दूसरा वाक्य विधानात्मक है । पहले वाक्य को प्रतिवर्त्य कहा जाता है क्योंकि उसका प्रतिवर्तन होना है । दूसरे वाक्य को प्रतिवर्तित वाक्य कहते है क्योकि वह दिये हुये वाक्य का प्रतिवर्तन द्वारा निकाला गया रूप है ।

तर्कशास्त्रियो ने प्रतिवर्तन की क्रिया मे निम्नलिखित नियमो को आवश्यक माना है ।

प्रतिवर्तन के नियम

(१) प्रतिवर्तित का उद्देश्य वही रहता है जो प्रतिवर्त्य का है—पीछे दिये गये उदाहरण मे प्रतिवर्त्य का उद्देश्य 'मनुष्य' है जो कि प्रतिवर्तित का भी उद्देश्य है ।

(२) प्रतिवर्तित का विधेय प्रतिवर्त्य के विधेय का व्याघात पद होता है—पीछे दिये गये उदाहरण मे प्रतिवर्त्य का विधेय 'पूर्ण' है और प्रतिवर्तित का विधेय 'अपूर्ण' है जो कि पूर्ण का व्याघातक पद है ।

(३) गुण बदल जाता है—प्रतिवर्तन मे वाक्य का गुण बदल जाता है । पीछे दिये गये उदाहरण मे प्रतिवर्त्य वाक्य निषेधात्मक है जबकि प्रतिवर्तित वाक्य विधानात्मक है ।

(४) परिमाण वही रहता है—प्रतिवर्तन मे वाक्यो का परिमाण नही बदलता अर्थात यदि प्रतिवर्त्य सामान्य है तो प्रतिवर्तित भी सामान्य होगा और यदि प्रतिवर्त्य विशेष है तो प्रतिवर्तित भी विशेष होगा । पीछे दिये गये उदाहरण मे प्रतिवर्त्य वाक्य सामान्य है इसलिये प्रतिवर्तित वाक्य भी सामान्य ही रक्खा गया है ।

तर्कशास्त्र मे वाक्य चार प्रकार के माने गये है A, B, I, और O यहाँ पर इन चारो ही प्रकार के वाक्यो के प्रतिवर्तन के उदाहरण दिये जायेंगे ।

वाक्यो के प्रतिवर्तन

(१) A वाक्य का प्रतिवर्तन—A का प्रतिवर्तित रूप I है । उदाहरण के लिये सब मनुष्य मरणशील है यह A वाक्य है । इसका प्रतिवर्तित रूप यह होगा कि कोई मनुष्य अमरणशील नहीं है । इस उदाहरण ने प्रतिवर्तन विधानात्मक और प्रतिवर्तित निषेधात्मक है । दोनो वाक्यो मे परिमाण नही बदला है जबकि गुण बदल गया है । प्रतिवर्तित वाक्य मे विधेय पद परिवर्त्य वाक्य का व्याघातक है ।

(२) E वाक्य का प्रतिवर्तन—E वाक्य का प्रतिवर्तन करने से A वाक्य मिलता है जैसा कि निम्नलिखित उदाहरण मे देखा जा सकता है ।

कुछ भारतवासी मनुष्य है ।
कुछ भारतवासी अमनुष्य नही है ।

उपरोक्त उदाहरण मे प्रतिवर्तन के पीछे दिये गये नियमो का पालन किया गया हे ।

(३) I वाक्य का प्रतिवर्तन—I वाक्य का प्रतिवर्तन करने से O वाक्य मिलता है जैसे—कुछ भारतवासी मनुष्य है ।

कुछ भारतवासी अमनुष्य नही है ।

(४) **O वाक्य का प्रतिवर्तन**—O वाक्य का प्रतिवर्तन करने से E वाक्य मिलता है जैसे—

कुछ भारतवासी देशभक्त नही है।
कुछ भारतवासी अदेशभक्त है।

उपरोक्त उदाहरणो से स्पष्ट है कि A का प्रतिवर्तित रूप E, E का प्रतिवर्तित रूप A, I का प्रतिवर्तित रूप O तथा O का प्रतिवर्तित रूप I होता है।

भौतिक प्रतिवर्तन

तर्कशास्त्री वेन ने उपरोक्त प्रतिवर्तन को आकार विपयक (Formal) कहते हुये उसके अतिरिक्त भौतिक (Material) प्रतिवर्तन की कल्पना उपस्थित की है। भौतिक प्रतिवर्तन मे प्रतिवर्तित वाक्य की सत्यता प्रतिवर्त्य वाक्य के सत्य की जाँच से सिद्ध होती है जैसे गर्मी अच्छी लगती है इसकी जाँच से यह सिद्ध होता है कि सर्दी बुरी लगती है। इस प्रतिवर्तन मे प्रतिवर्तन के पीछे बतलाये गये नियमो मे से किसी का भी पालन नही किया जाता। अस्तु, इनको निगमन के क्षेत्र में नही रक्खा जाना चाहिये। वास्तविक जीवन मे अनुभव के आधार पर भले ही इस प्रकार के अनुमान पाये जाते है परन्तु तर्कशास्त्र की दृष्टि से इस प्रकार के अनुमानो का कोई महत्व नही है क्योकि इनमे पीछे दिये गये प्रतिवर्तन के नियमो का पालन नही किया जाता।

सोपाधिक वाक्यो के प्रतिवर्तन मे प्रतिवर्तित वाक्य मे विधेय का व्याघातक पद प्रयोग किया जाता है और वाक्य के दूसरे अग के गुण को वदल दिया जाता है। वाक्य का पूर्वांग ज्यो का त्यो रहने दिया जाता है। इसको समझने के लिये निम्नलिखित उदाहरण देखिये—

सोपाधिक वाक्यों का प्रतिवर्तन

यदि मनुष्य परिश्रम करता है तो उसे सफलता प्राप्त होती है।

यदि मनुष्य परिश्रम करता है तो उसे सफलता प्राप्त नही होती।

एक अन्य उदाहरण इस प्रकार है—

यदि किसी देश मे कुछ व्यक्ति देशभक्त होते है तो वह पराधीन नही होता।

यदि किसी देश मे कुछ व्यक्ति देशभक्त होते है तो वह अपराधीन होता है।

प्रतिवर्तन का आधार अव्याघात का नियम तथा मध्य दशा परिहार का नियम है। अव्याघात के नियम के अनुसार एक ही समय मे किसी उद्देश्य के विषय एक पद और उसका अव्याघात पद दोनो ही नही हो सकते। स एक ही समय 'द' और 'अ द' नही हो सकता। वह इनमे से कोई एक ही होगा। मध्यदशा परिहार के नियम के अनुसार उद्देश्य को विधेय और उसके व्याघातक पद दोनो मे से एक से अवश्य सम्वन्धित होना चाहिये। उदाहरण के लिये स को 'द' और 'अ द' मे से एक अवश्य होना चाहिये।

प्रतिवर्तन का आधार

उपरोक्त नियमो के अतिरिक्त प्रतिवर्तन मे यह सिद्धान्त भी काम करता है कि सव वाक्य विधानात्मक और निषेधात्मक दोनो ही रूपो मे प्रकट किये जा सकते है। इसी प्रतिवर्तन मे वाक्यो के गुणो को वदल दिया जाता है।

(३) परिर्वातित प्रतिवर्तन—

परिर्वातित प्रतिवर्तन अनन्तरानुमान का वह प्रकार है जिसमे दिये हुए वाक्य से ऐसा वाक्य बनाया जाता है जिसमे उद्देश्य पद दिये हुए वाक्य के विधेय का व्याघातक पद होता है। उदाहरण के लिये

परिर्वातित प्रतिवर्तन क्या है ?

(१) सब प्राणी मरणशील है।
कोई अमरणशील वस्तु प्राणी नही है।

(२) कोई मनुष्य पूर्ण नही है।
कोई पूर्ण वस्तु मनुष्य नही है।

तर्कशास्त्रियो ने परिर्वातित प्रतिवर्तन के निम्नलिखित नियम माने हैं—

परिर्वातित प्रतिवर्तन के नियम

(१) **निष्कर्ष का उद्देश्य दिए हुए वाक्य के विधेय का व्याघातक पद होता है**—उपरोक्त उदाहरण में दिये हुयें वाक्य मे विधेय मरणशील है। परिर्वातित प्रतिवर्तन में इसके स्थान पर अमरणशील पद का प्रयोग किया गया है।

(२) **दिये हुए वाक्य का उद्देश्य निष्कर्ष का विधेय होता है**—पीछे दिये गये उदाहरण मे प्राणी उद्देश्य है जो कि निष्कर्ष मे विधेय बन जाता है।

(३) **वाक्य का गुण बदल जाता है**—यदि दिया हुआ वाक्य विधानात्मक है तो निष्कर्ष निषेधात्मक होता है और यदि दिया हुआ वाक्य निषेधात्मक है तो निष्कर्ष विधानात्मक होता है। पीछे दिये गये उदाहरण मे पहले दिया हुआ वाक्य विधानात्मक है इसलिये निष्कर्ष निषेधात्मक बनाया गया है। दूसरा दिया हुआ वाक्य निषेधात्मक है इसलिये निष्कर्ष विधानात्मक बनाया गया है।

(४) **यदि कोई पद दिये हुये वाक्य में नहीं है तो निष्कर्ष में व्याप्त नहीं हो सकता**—परिर्वातित प्रतिवर्तन के पीछे दिये गये दोनो उदाहरणो मे नया वाक्य बनाने मे पदो की व्याप्ति मे कोई परिवर्तन नही किया गया है।

परिर्वातित प्रतिवर्तन की क्रिया

परिर्वातित प्रतिवर्तन मे, जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है, दो क्रियायें शामिल हैं—परिवर्तन और प्रतिवर्तन। इस प्रकार यह उन दोनो का मिश्रित रूप है, किन्तु यह वाक्य बनाने मे पहले प्रतिवर्तन किया जाता है और फिर परिवर्तन किया जाता है। जिस वाक्य का परिर्वातित प्रतिवर्तन करना हो उसको प्रतिवर्तनाश्रित परिवर्तन (Contraposition) कहते है। इसके द्वारा प्राप्त वाक्य को परिर्वातित प्रतिवर्तन (Contraposition) वाक्य कहते है। विभिन्न प्रकार के तर्कवाक्य निम्नलिखित रूप से परिर्वातित प्रतिवर्तन किये जा सकते है।

(१) **A वाक्य का परिर्वातित प्रतिवर्तन**—A का प्रतिवर्तन करने से E वाक्य मिलता है और E का परिवर्तन करने से E ही मिलता है इसलिये A का परिर्वातित प्रतिवर्तन रूप E होता है जैसे—

सब प्राणी मरणशील है।

प्रतिवर्तन—कोई भी प्राणी अमरणशील नही है।
परिवर्तन—कोई भी अमरणशील वस्तु प्राणी नही है।

(२) **E वाक्य का परिर्वातित प्रतिवर्तन**—E वाक्य का प्रतिवर्तन करने से

मे विधेय 'स्वार्थी नही है' विपर्येय वाक्य मे विधेय पद इसका व्याघातक हे अर्थात् 'अस्वार्थी' नही है ।

(३) **परिमाण में परिवर्तन**—विपर्यय की क्रिया मे निष्कर्ष वाक्य का परिमाण मूल वाक्य से भिन्न हो जाता है । जबकि विपर्येय का परिमाण सामान्य होता है, विपर्यस्त का परिमाण विशेष होता है । यह स्थिति प्रत्येक दशा में आवश्यक है अर्थात् केवल सामान्य वाक्यो का ही विपर्यय हो सकता है और विपर्यस्त का सदैव विशेष वाक्य ही होना चाहिये । पीछे दिये गये उदाहरण मे मूल वाक्य सामान्य वाक्य है जबकि उसका विपर्यय विशेष वाक्य है ।

(४) **पूर्ण विपर्यय में विपर्यस्त का गुण वही होता है किन्तु अपूर्ण विपर्यय में गुण बदल जाता है**—गुण की दृष्टि से वाक्यो को निषेधात्मक और विधानात्मक वाक्यो मे बाँटा जाता है । पूर्ण विपर्यय मे दोनो वाक्यो का गुण एक ही रहता है । जैसा कि पीछे दिए गये उदाहरण मे दिखलाया गया है, इसमे विपर्यस्त और विपर्येय दोनो ही वाक्य निषेधात्मक है । अपूर्ण विपर्यय मे विपर्येय का गुण विपर्यस्त से भिन्न होता है जैसे सब देशभक्त प्रतिष्ठा के पात्र हैं, इसका अपूर्ण विपर्यय यह होगा कि कुछ अदेशभक्त प्रतिष्ठा के पात्र नही है । इसमे मूल वाक्य विधानात्मक है और निष्कर्ष वाक्य निषेधात्मक है ।

(५) **विपर्यय करने मे सबसे पहले मूल वाक्य का प्रतिवर्तन किया जाता है**—विपर्यय करने मे परिवर्तन और प्रतिवतन की ऐसी प्रक्रिया अपनाई जाती है कि पीछे दिये गये नियमो के अनुसार निष्कर्ष वाक्य प्राप्त हो सके । उदाहरण के लिए E वाक्य मे पहले प्रतिवर्तन फिर परिवर्तन फिर प्रतिवर्तन और फिर परिवर्तन करने मे मूल वाक्य का पूर्ण विपर्यय प्राप्त होता है । इसका प्रतिवर्तन करने से मूल वाक्य का आंशिक विपर्यय मिलता है । इसका उदाहरण निम्नलिखित है :—

(१) देशभक्त प्रतिष्ठा के पात्र है ।
(२) कोई भी देशभक्त प्रतिष्ठा का अपात्र नही है ।
(३) कोई भी प्रतिष्ठा का अपात्र व्यक्ति देशभक्त नही है ।
(४) सब प्रतिष्ठा के अपात्र व्यक्ति अदेशभक्त हैं ।
(५) कुछ अदेशभक्त प्रतिष्ठा के पात्र नही हैं—पूर्ण विपर्यय ।
(६) कुछ देशभक्त प्रतिष्ठा के पात्र नही हैं—आंशिक विपर्यय ।

अब यहाँ पर विभिन्न वाक्यो के विपर्यय की प्रक्रिया समझने के लिये कुछ उदाहरण दिये जायेगे :—

विभिन्न वाक्यों का विपर्यय

(१) **A वाक्य का विपर्यय**—A वाक्य मे सबसे पहले परिवर्तन से प्रारम्भ किया जाता है । A वाक्य में पूर्ण विपर्यय से I वाक्य निकलता है और अपूर्ण विपर्यय मे O वाक्य निकलता है । उदाहरण के लिए :—

(१) सब भारतीय मनुष्य विद्वान् है ।
(२) कोई भारतीय मनुष्य अविद्वान् नही है—प्रतिवर्तन ।
(३) कोई अविद्वान् व्यक्ति भारतीय मनुष्य नही है ।
(४) सब अविद्वान् व्यक्ति अभारतीय है ।
(५) कुछ अभारतीय व्यक्ति अविद्वान् है—अपूर्ण विपर्यय ।
(६) कुछ भारतीय व्यक्ति विद्वान् नही है—पूर्ण विपर्यय ।

(२) **E वाक्य का विपर्यय**—मूल वाक्य E होने पर उसका अपूर्ण विपर्यय करके I वाक्य मिलता है और उसका पूर्ण विपर्यस्त O वाक्य है। इसका उदाहरण पीछे 'सब देशभक्त प्रतिष्ठा के पात्र है' इस वाक्य के विपर्यय मे दिया गया है।

(३) **I वाक्य का विपर्यय**—I वाक्य का विपर्यय करने मे प्रतिवर्तन और परिवर्तन दोनो से ही शुरू करने मे कठिनाई है और किसी भी स्थिति मे विपर्यस्त प्राप्त नही होता। इसलिए I वाक्य का विपर्यय नही किया जाता।

(४) **O वाक्य का विपर्यय**—O वाक्य का विपयर्य करने मे भी प्रतिवर्तन अथवा परिवर्तन किसी से भी शुरू करके विपर्यय नही किया जा सकता इसलिये O वाक्य का विपर्यय भी नही हो सकता।

संक्षेप मे विपर्यय केवल A और E वाक्यो का किया जाता है, I और O का विपर्यय नही होता। विपर्यय का मूलाधार परिवर्तन और प्रतिवर्तन के आधार भूत नियम है। ये आधारभूत नियम तादात्म्य का नियम, अव्याघात का नियम और मध्यदशा परिहार के नियम है।

अनन्तरानुमान के रूप : प्रतिमुखता

अनन्तरानुमान एक प्रकार का विरोध (Opposition) है। विरोध शब्द का प्रयोग वाक्य के विरोधी अर्थ के लिये भी किया जाता है। यह विरोध निम्नलिखित चार प्रकार का होता है।

(१) उपाश्रितता (Sub-Alteration)।
(२) व्याघातकता (Contradiction)।
(३) विपरीतता (Contrariety)।
(४) अनुविपरीतता (Sub-Contrariety)।

अनन्तरानुमान के रूप मे विरोध का अर्थ एक वाक्य के आधार पर दूसरे वाक्य का निष्कर्ष निकालना है। यह प्रक्रिया उपरोक्त चारो प्रकार के सम्बन्धो मे से किसी एक सम्बन्ध के अनुसार की जा सकती है। अनन्तरानुमान के रूप मे विरोध का विवेचन उपरोक्त चारो प्रकार के सम्बन्धो मे किया जायेगा।

(१) उपाश्रितता

उपाश्रितता क्या है ?

यह दो ऐसे वाक्यो के बीच विरोध सूचक सम्बन्ध है जिनके उद्देश्य और विधेय एक ही है परन्तु उनके परिमाण मे भिन्नता है। उदाहरण के लिये सब मनुष्य मरणशील है तथा कुछ मनुष्य मरणशील है, इन दोनो ही वाक्यो मे उपाश्रितता का सम्बन्ध है क्योकि दोनो मे उद्देश्य और विधेय एक ही है किन्तु परिमाण भिन्न है, पहला वाक्य सामान्य है और दूसरा वाक्य विशेष है। उपाश्रितता का सम्बन्ध A और I के मध्य तथा E और O वाक्य के मध्य देखा जाता है।

उपाश्रितता मे अग्रलिखित नियमो का पालन किया जाता है।

उपाश्रितता के नियम

(१) **यदि सामान्य वाक्य सत्य है तो विशेष वाक्य भी सत्य होता है**—उपाश्रितता मे यदि मामान्य वाक्य सत्य होता है तो उसकी सत्यता से उसी गुण वाले विशेप वाक्य की सत्यता का अनुमान किया जा सकता है। किन्तु विशेप वाक्य की सत्यता से सामान्य की सत्यता का अनुमान नही किया जा सकता। दूसरे शब्दो

मे उपरोक्त नियम का उल्टा सत्य नही है। इसी प्रकार विशेष की असत्यता से उसी गुण वाले सामान्य की असत्यता का अनुमान होता है। किन्तु सामान्य की असत्यता से विशेष की असत्यता का अनुमान नही होता। यदि सामान्य सत्य है तो विशेष भी सत्य होता है। उदाहरण के लिए सब मनुष्य मरणशील है, इस सामान्य वाक्य की सत्यता मे इस विशेष वाक्य की सत्यता निहित है कि कुछ मनुष्य मरणशील है किन्तु कुछ मनुष्य मरणशील है इस वाक्य की सत्यता मे इस वाक्य की सत्यता निहित नही है कि सब मनुष्य मरणशील है। इस प्रकार विशेष वाक्य की सत्यता से सामान्य वाक्य की सत्यता नही निकलती। वह सत्य भी हो सकता है और असत्य भी हो सकता है। दूसरे शब्दो मे, विशेष वाक्य सत्य होने पर सामान्य वाक्य सदिग्ध रहता है।

(२) **यदि विशेष असत्य है तो सामान्य भी असत्य होगा**—यदि विशेष वाक्य असत्य होता है तो उसके समान सामान्य वाक्य भी असत्य होता है। उदाहरण के लिये यदि यह वाक्य असत्य हे कि मनुष्य मरणशील है तो यह वाक्य भी असत्य होगा कि सब मनुष्य मरणशील है। जो बात कुछ के बारे मे नही कही जा सकती, वह सबके बारे मे कैसे कही जा सकती है? किन्तु दूसरी ओर यदि सामान्य वाक्य असत्य होता है तो विशेष वाक्य का सत्य होना आवश्यक नही है। कुछ बाते ऐसी है जो सब लोगो के बारे मे नही कही जा सकती परन्तु फिर भी कुछ लोगो के बारे मे वे सत्य होती है। उदाहरण के लिए सब मनुष्य विद्वान् है, इस वाक्य के असत्य होने से यह वाक्य असत्य नही होता कि कुछ मनुष्य विद्वान् है, इसी प्रकार यह कहना गलत है कि सब मनुष्य भले है किन्तु यह कहना सही है कि कुछ मनुष्य भले है। इस प्रकार उपरोक्त नियम का उल्टा सत्य नही है। यदि I वाक्य असत्य है तो A वाक्य अवश्य असत्य होगा। इसी प्रकार यदि O वाक्य असत्य है तो E वाक्य अवश्य असत्य होगा किन्तु यदि I वाक्य सत्य है तो A सदिग्ध होगा और यदि O वाक्य सत्य है तो E वाक्य सदिग्ध होगा।

उपरोक्त प्रश्न मे यह वाक्य दिया गया है कि कुछ धातुएं मुलायम नही होती है। यह विशेष निषेधात्मक वाक्य है, इसकी सत्यता मे सामान्य विधानात्मक वाक्य की सत्यता स्थापित नही होती अर्थात् यह नही कहा जा सकता कि सब धातुएँ मुलायम होती है। किन्तु दूसरी ओर यदि यह ठीक है कि कुछ धातुएँ मुलायम नही होती तो यह भी ठीक है कि सब धातुएँ मुलायम नही होती।

(२) विपरीतता

विपरीतता क्या है?

विपरीतता दो वाक्यो मे वह सम्बन्ध है जिसमे उनके उद्देश्य और विधेय एक ही होते है किन्तु गुण मे अन्तर होता है। विपरीतता का सम्बन्ध A और E वाक्यो मे पाया जाता है। उदाहरण के लिये सब मनुष्य मरणशील है यह A वाक्य है और कोई मनुष्य मरणशील नही है यह E वाक्य है। इन दोनो मे ही उद्देश्य और विधेय एक ही है किन्तु जब कि पहला विधानात्मक वाक्य है दूसरा वाक्य निषेधात्मक है। दोनो ही वाक्य सामान्य है।

उपरोक्त उदाहरण से यह पता चलता है कि विपरीतता किन नियमो पर आधारित होती है। इस सम्बन्ध मे मुख्य नियम लिम्नलिखित है :—

विपरीतता के नियम

(१) **यदि A वाक्य सत्य है तो E वाक्य असत्य होगा**— उपरोक्त उदाहरण मे सब मनुष्य मरणशील है, यह A वाक्य है और यह सत्य है, दूसरी ओर इसके सत्य होने से इसका विपरीत वाक्य असत्य होता है।

(२) **यदि E वाक्य सत्य है तो A वाक्य असत्य होगा**—विपरीत वाक्यो मे यदि E वाक्य सत्य है तो A वाक्य असत्य होना चाहिये। पीछे दिये गये उदाहरण मे यदि यह सत्य है कि कोई मनुष्य मरणशील नही है तो यह असत्य है कि सब मनुष्य मरणशील है।

(३) **किन्तु इसका उल्टा ठीक नहीं है**—A वाक्य की असत्यता से E वाक्य की असत्यता सिद्ध नही होती। उदाहरण के लिये सब मनुष्य विद्वान है यह असत्य A वाक्य है किन्तु इसका विपरीत कोई मनुष्य विद्वान नही है यह E वाक्य भी असत्य है, विपरीत होने से वह सत्य नही हो जाता। इस प्रकार विपरीतता मे एक वाक्य की असत्यता से दूसरे की सत्यता सिद्ध होती है, किन्तु एक वाक्य के मिथ्या होने से दूसरा वाक्य सत्य नही होता।

(३) अनुविपरीतता

अनुविपरीतता मे दो विशेप वाक्यो मे विरोध सम्बन्ध होता है जिनके उद्देश्य और विधेय एक ही होते है लेकिन गुण मे अन्तर पाया जाता है। विशेप वाक्य I और O होते है। इसलिये अनुविपरीतता का सम्बन्ध I और O वाक्य मे मिलता है। उदाहरण के लिये कुछ मनुष्य पूर्ण है इसका अनुविपरीत वाक्य यह होगा कि कुछ मनुष्य पूर्ण नही है। इन दोनो ही वाक्यो मे उद्देश्य और विधेय एक ही है, लेकिन गुण मे अन्तर है। अनुविपरीतता निम्नलिखित नियमो के अनुसार स्थापित की जाती है .—

(१) **एक वाक्य की असत्यता दूसरे की सत्यता सिद्ध करती है**—यदि I वाक्य असत्य है तो O वाक्य सत्य होगा और यदि O वाक्य असत्य है तो I वाक्य सत्य होगा। पीछे दिये गये उदाहरण मे यदि यह ठीक नही है कि कुछ मनुष्य पूर्ण है तो इसका अनुविपरीत वाक्य कि कुछ मनुष्य पूर्ण नही है सत्य होगा। दूसरी ओर यदि यह असत्य है कि कुछ मनुष्य पूर्ण नही है तो यह सत्य होगा कि कुछ मनुष्य पूर्ण है।

(२) **एक की सत्यता दूसरे की असत्यता को सिद्ध नहीं करती**—पहले नियम का उल्टा ठीक नही है अर्थात् यदि I वाक्य सत्य है तो उससे उसके अनुविपरीत वाक्य का असत्य होना आवश्यक नही है। वह असत्य हो भी सकता है और नही भी हो सकता। इसलिये I वाक्य के सत्य होने पर उसका अनुविपरीत वाक्य सदिग्ध होता है। इसी तरह यदि O वाक्य सत्य है तो I वाक्य सदिग्ध होगा। उदाहरण के लिये कुछ मनुष्य पूर्ण है यह I वाक्य है इसके सत्य होने से इसका अनुविपरीत वाक्य कुछ मनुष्य पूर्ण नही है असत्य सिद्ध नही होता वल्कि वह भी समान रूप से सत्य है। दूमरी ओर कुछ मनुष्य मरणशील है यह सत्य I वाक्य है किन्तु इसका अनुविपरीत O वाक्य कि कुछ मनुष्य मरणशील नही है असत्य है। इस प्रकार I वाक्य के सत्य होने से O वाक्य सत्य अथवा असत्य कुछ भी हो सकता है।

(४) व्याघातकता

विरोध का चौथा रूप व्याघातकता है। यह उन दो वाक्यो मे पाया जाता है जिनके उद्देश्य और विधेय दोनो एक ही होते है किन्तु गुण और परिमाण दोनो भिन्न होते है। इस प्रकार यह सम्बन्ध A और O में तथा E और I में पाया जाता है। उदाहरण के लिये सब मनुष्य मरणशील है यह A वाक्य है। दूसरी ओर कुछ मनुष्य मरणशील नही है यह O वाक्य है। इन दोनो मे व्याघातकता का सम्बन्ध है। इनमे उद्देश्य और विधेय एक ही है किन्तु जबकि पहला विधानात्मक है दूसरा निषेधात्मक है। इस प्रकार दोनो मे गुण भिन्न है। दूसरी ओर जबकि पहला सामान्य है दूसरा विशेष है। इस प्रकार दोनो मे परिमाण भी भिन्न है।

व्याघातकता का सम्बन्ध विरोध का पूर्णरूप दिखलाता है। व्याघातक वाक्यो मे एक के सत्य होने से दूसरा असत्य सिद्ध होता है और एक के असत्य होने से दूसरे की सत्यता सिद्ध होती है। दोनो ही न तो सत्य हो सकते है और न असत्य दोनो मे से एक अवश्य सत्य होना चाहिये और दूसरा अवश्य असत्य होना चाहिये। इस प्रकार सब मनुष्य मरणशील है तथा कुछ मनुष्य मरणशील नही है, ये दोनो ही वाक्य एक साथ सत्य और असत्य नही हो सकते। यदि इनमे से एक सत्य है तो दूसरा असत्य अवश्य है। व्याघातकता का सम्बन्ध मध्य दशा परिहार के नियम पर आधारित है जिसके अनुसार व्याघातक वाक्यों मे से एक अवश्य सत्य होना चाहिये। पीछे दिये गये विरोध के तीनो प्रकारो मे इस प्रकार का परस्पर विरोधी सम्बन्ध नही मिलता। अस्तु, जैसा कि पीछे कहा जा चुका है व्याघातकता तार्किक विरोध का पूर्ण रूप है। ऊपर दिये गये उदाहरण मे यदि A सत्य है तो O असत्य होगा और यदि A असत्य है तो O सत्य होगा। दूसरी ओर यदि O सत्य है तो A असत्य होगा और यदि O असत्य है तो A सत्य होगा। इसी प्रकार का सम्बन्ध E और I वाक्यो के मध्य होगा अर्थात् यदि E सत्य है तो I असत्य होगा। यदि E असत्य है तो I सत्य होगा। यदि I सत्य है तो E असत्य होगा और यदि I असत्य है तो E सत्य होगा।

अनन्तरानुमान में दोष
(Fallacies in Immediate Inference)

अब अनन्तरानुमान को समझाने के लिये कुछ दोषपूर्ण अनन्तरानुमानो की परीक्षा की जायेगी—

(१) यदि यह युक्तिपूर्वक कहा जा सकता है कि "चूंकि राम श्याम का भाई है, इसलिये श्याम अवश्य ही राम का भाई है" तो इसी तर्क के अनुसार यह भी कहा जा सकता है कि चूंकि राम श्याम से बड़ा है इसीलिये श्याम राम से अवश्य ही बड़ा होगा। (१९६२)

उपरोक्त तर्क दूषित है क्योकि जबकि भाई का सम्बन्ध परस्पर सापेक्ष है, छोटे बडे का सम्बन्ध उसी अर्थ मे सापेक्ष नही है। राम श्याम का भाई है इसलिये श्याम अवश्य ही राम का भाई है क्योकि भ्रातृत्व का सम्बन्ध दोनो ओर से ही होता है किन्तु राम श्याम से बडा है इससे यह नही कहा जा सकता कि श्याम राम से बडा होगा क्योकि छोटे बड़े का सम्बन्ध व्याघातक सम्बन्ध होता है, यदि एक बड़ा है तो दूसरा बड़ा नही हो सकता।

(२) जैसा कि "चूंकि छात्रगण मनुष्य है इसलिये छात्र को हानि पहुँचना मनुष्य को हानि पहुँचना है," इसी तरह चूंकि छात्र मनुष्य है इसलिये छात्रो का संख्याधिक अंश मनुष्यो का संख्याधिक अंश है । (१९६२)

इस तर्क मे यह कहा गया है कि चूंकि छात्रगण मनुष्य है इसलिये छात्रो को हानि पहुँचना मनुष्य को हानि पहुँचना है। इस वाक्य के आधार पर यह कहा गया है कि छात्रो का सख्याधिक अश मनुष्यो का सख्याधिक अश है। इसमे विग्रह दोप है क्योकि छात्रो का सख्याधिक अश मनुष्यो का सख्याधिक अश नही होता। इसमे असम्बद्धता दोप भी है ।

(३) खटमल एक प्राणी है, अतः एक बड़ा खटमल एक बड़ा प्राणी है । (१९६५)

यह तर्क दूपित है क्योंकि खटमल और प्राणित्व मे सम सम्बन्ध नही है और खटमल बडा होने से बडा प्राणी नही बन जाता। इसमे खटमल के साथ बडा विशेषण जोडकर प्राणी के साथ भी वही विशेपण जोड दिया गया है। जो बात प्राणी के लिये कही गयी है वही बात बडे प्राणी के लिये कही गयी है। अतः इसमे सग्रह दोप (Fallacy of Composition) है ।

(४) स्नातक मनुष्य हैं, स्नातकों का संख्याधिक अंश मनुष्यो का सख्याधिक अश है । (१९६५)

इस तर्क को इस प्रकार लिखा जा सकता है—

स्नातक मनुष्य है ।

∴ स्नातको का सख्याधिक अश मनुष्यो का सख्याधिक अश है ।

इस तर्क मे जो बात स्नातको के लिये कही गई है वही बात स्नातको के अश के लिये कही गई है इसलिये इसमे विग्रह दोप पाया जाता है। स्नातको का सख्याधिक अश मनुष्यो का संख्याधिक अश नही हैं क्योकि स्नातको के अलावा भी मनुष्य होते है। इसलिये इसमे असम्बद्धता दोप भी पाया जाता है ।

(५) क्योंकि हवाई जहाज मोटर गाड़ी नही है, इसलिये हवाई जहाज का मालिक मोटर गाड़ी का मालिक नहीं है । (१९६६)

इस तर्क मे यह बतलाया गया है कि हवाई जहाज और मोटर गाडी पृथक् वस्तुये है। इसलिये हवाई जहाज का मालिक मोटर गाड़ी का मालिक नहीं हो सकता। इस तर्क मे असम्बद्धता का दोप है क्योकि मोटर गाडी और हवाई जहाज भिन्न होने से उनके मालिक का भिन्न होना सिद्ध नही होता बल्कि एक ही मालिक मोटर गाडी और हवाई जहाज दोनो रख सकता है ।

(६) रसोईया मनुष्य है अतएव एक खराब रसोईया खराब मनुष्य है । (१९६६)

इस तर्क को इस प्रकार लिखा जा सकता है—

सब रसोईये मनुष्य है ।

वह एक खराब रसोईया है ।

∴ वह एक खराब मनुष्य है ।

उपरोक्त तर्क मे असम्बद्धता दोप है क्योकि दिये हुए वाक्यो से निष्कर्ष नही निकलता। दूसरे, यहाँ पर खराब रसोईये का अर्थ वह व्यक्ति है जिसे ठीक प्रकार

से भोजन बनाना न आता हो। दूसरी ओर, खराब मनुष्य वह है जिसकी आदतें खराब हो। स्पष्ट है कि खराब रसोईये का खराब मनुष्य होना अनिवार्य नहीं है।

(७) कम से कम कुछ भारतीय ईमानदार हैं परन्तु कोई भी वकील ईमानदार नहीं है इसलिये कोई वकील भारतीय नहीं है। (१९६३)

इस तर्क को निम्नलिखित रूप मे लिखा जा सकता है—
कोई भी वकील ईमानदार नही है।
कुछ भारतीय ईमानदार है।
∴ कोई वकील भारतीय नही है।

उपरोक्त तर्क मे प्रथम और अन्तिम वाक्य E और मध्य वाक्य I है इसलिये यह दूसरे आकार मे होने के कारण दोपपूर्ण है। पक्ष वाक्य I होने से निष्कर्ष पूर्ण व्यापी नही हो सकता इसलिये इसमे निष्कर्ष दोपपूर्ण है। तीसरे, निष्कर्ष मे भारतीय पद व्याप्त है जो कि पक्ष वाक्य मे अव्याप्त है। अस्तु इस तर्क मे अव्याप्त पक्ष पद दोप है।

(८) प्रत्येक व्यक्ति को दानी होना चाहिये क्योंकि दान देना कर्त्तव्य है। (१९६३)

इस तर्क को निम्नलिखित रूप मे लिखा जा सकता है—
दान देना मनुष्य का कर्त्तव्य है।
∴ प्रत्येक व्यक्ति को दानी होना चाहिये।

उपरोक्त तर्क मे आत्माश्रय दोष है क्योंकि इसमे जो बात सिद्ध करनी है उसे सिद्ध करने से पूर्व ही मान लिया गया है। जब यह कहा जाता है कि दान देना हमारा कर्त्तव्य है तो इसमे जो बात सिद्ध करनी है वही मान ली गई है।

(९) जो व्यक्ति सबसे अधिक भूखा है वह सबसे अधिक खाता है परन्तु वह व्यक्ति जो सबसे कम खाता है सबसे अधिक भूखा है। अतः वह व्यक्ति जो सबसे कम खाता है सबसे अधिक खाता है। (१९६३)

इस तर्क को निम्नलिखित रूप मे लिखा जा सकता है—
सबसे अधिक भूखा व्यक्ति सबसे अधिक खाने वाला है।
सबसे कम खाने वाला व्यक्ति अधिक भूखा है।
∴ सबसे कम खाने वाला व्यक्ति सबसे अधिक खाने वाला है।

उपरोक्त तर्क मे चार पद है सबसे अधिक भूखा, सबसे अधिक खाने वाला, सबसे कम खाने वाला और सबसे अधिक भूखा का दूसरा अर्थ। इस प्रकार यहा पर चतुष्पदी दोप है।

(१०) यदि तुम्हारे भाग्य में निरोग होना निर्धारित है तो डाक्टर को बुलाना व्यर्थ है और यदि तुम्हारे भाग्य में निरोग होना निर्धारित नही है तो डाक्टर को बुलाना व्यर्थ है। तुम्हारे भाग्य में इन्ही दो में से कोई एक बात निर्धारित है। अतः दोनों अवस्थाओं में डाक्टर बुलाना व्यर्थ है। (१९६३)

यह तर्क उभयतोपाश पर आधारित होने के कारण दोपपूर्ण है। विपरीत उभयतोपाश के द्वारा इसका खण्डन किया जा सकता है। यह विपरीत उभयतोपाश निम्नलिखित रूप मे होगा—

यदि तुम्हारे भाग्य मे निरोग होना है तो डाक्टर को बुलाना व्यर्थ नही है और यदि तुम्हारे भाग्य में निरोग होना नही है तो डाक्टर को बुलाना व्यर्थ नही

है। तुम्हारे भाग्य मे या तो निरोग होना है या निरोग होना नही है इसलिये डाक्टर को बुलाना व्यर्थ नही है।

(११) प्राणी एक जाति है। यह गाय एक प्राणी है और इसलिये गाय एक जाति है। (१९६३)

इस तर्क को निम्नलिखित रूप मे लिखा जा सकता है—

प्राणी एक जाति है।

यह गाय एक प्राणी है।

∴ यह एक गाय एक जाति है।

उपरोक्त तर्क मे चतुष्पदी दोष है।

(१२) सभी मनुष्य परिश्रमी नहीं हैं परन्तु राम परिश्रमी है। अत. राम मनुष्य नहीं है। (१९६३)

इस तर्क को निम्नलिखित रूप मे लिखा जा सकता है—

कुछ मनुष्य परिश्रमी नही है।

राम परिश्रमी है।

∴ राम मनुष्य नही है।

उपरोक्त तर्क मे अव्याप्त साध्य पद दोप है। जव कि मनुष्य पद निष्कर्ष मे व्याप्त है यह पद प्रथम वाक्य मे व्याप्त नही है।

(१३) यदि वह स्वस्थ है तो वह आवेगा परन्तु वह स्वस्थ नहीं है अत वह नहीं आवेगा। (१९६३)

इस तर्क को निम्नलिखित रूप मे लिखा जा सकता है—

यदि वह स्वस्थ है तो आवेगा।

वह स्वस्थ नही है।

वह नही आवेगा।

उपरोक्त तर्क मे हेतु निपेध का दोष है क्योकि इसमे शर्त प्रगट करने वाले निरपेक्ष न्याय वाक्य के हेतु का निपेध किया गया है।

सारांश

अनुमान क्या है—अनुमान वह मानसिक प्रक्रिया है जिसमें एक या एक से अधिक तर्कवाक्यो से कोई नवीन तर्कवाक्य निकाला जाता है जिसका सत्य दिये हुये तर्कवाक्यो में निहित होता है।

अनुमान के भेद—१. निगमनात्मक अनुमान—(अ) अनन्तरानुमान, (व) सान्तरानुमान, २. आगमनात्मक अनुमान। कुछ तर्कशास्त्रियों के अनुसार अनन्तरानुमान अनुमान नहीं है, यह मत दोषपूर्ण है।

निष्कर्षण—यह अनन्तरानुमान का सबसे मुख्य रूप है, इसके चार प्रकार हैं—परिवर्तन, प्रतिवर्तन, परिवर्तित प्रतिवर्तन, विपर्यय।

परिवर्तन—इसमें उद्देश्य और विधेय का स्थान परस्पर वदल दिया जाता है। इसके मुख्य नियम हैं—१ परिवर्त्य का उद्देश्य परिवर्तित का विधेय वन जाता है। २ परिवर्त्य का विधेय परिवर्तित का उद्देश्य वन जाता है। ३. वाक्य का गुण नही वदलता। ४. अव्याप्त पद व्याप्त नहीं होना चाहिये। ५ ओ वाक्य का परि-

वर्तन नहीं होता। परिवर्तन दो प्रकार के होते हैं–साधारण और संकुचित। परिवर्तन का आधार तादात्म्य का नियम है।

प्रतिवर्तन—इसमें वाक्य का गुण बदल जाता है जबकि उसका अर्थ नहीं बदलता। इसके चार नियम हैं—१. प्रतिवर्तित का उद्देश्य वही रहता है जो प्रतिवर्त्य का है। २. प्रतिवर्तित का विधेय प्रतिवर्त्य के विधेय का व्याघातक पद होता है। ३. गुण बदल जाता है। ४. परिमाण वही रहता है। ए, इ, आइ और ओ वाक्यों के प्रतिवर्तन आकारगत प्रतिवर्तन कहलाते हैं। दूसरी ओर, भौतिक प्रतिवर्तन में प्रतिवर्तन के उपरोक्त नियमों का पालन नही होता इसलिये इसे सभी तर्कशास्त्री नहीं मानते। प्रतिवर्तन का आधार अव्याघात का नियम तथा मध्य दशा का नियम हैं।

परिवर्तित प्रतिवर्तन—इसमें ऐसा वाक्य बनाया जाता है जिसमें उद्देश्य पद दिये हुये वाक्य के विधेय का व्याघातक पद होता है। इसके चार नियम हैं—१. निष्कर्ष का उद्देश्य दिये हुये वाक्य के विधेय का व्याघातक पद होना है। २. दिये हुये वाक्य का उद्देश्य निष्कर्ष का विधेय होता है। ३. वाक्य का गुण बदल जाता है। ४. यदि कोई पद दिये हुये वाक्य में व्याप्त नहीं है तो निष्कर्ष में व्याप्त नहीं हो सकता।

विपर्यय—इसमें दिये हुये वाक्य से ऐसा वाक्य निकाला जाता है जिसका उद्देश्य दिये हुये वाक्य के उद्देश्य का व्याघातक पद होता है। इसमें पाँच नियमों का पालन आवश्यक है—१. विपर्यस्त का उद्देश्य विपर्यय के उद्देश्य का व्याघातक पद होना चाहिये, २. पूर्ण विपर्यस्त का विधेय विपर्यय के विधेय का व्याघातक पद होता है, ३. परिमाण में परिवर्तन, ४. पूर्ण विपर्यय में विपर्यस्त का गुण वही होता है किन्तु अपूर्ण विपर्यय में गुण कुछ बदल जाता है, ५. विपर्यय करने में सबसे पहले मूल वाक्य का प्रतिवर्तन किया जाता है।

वाक्य प्रतिमुखता—विरोध अथवा वाक्य प्रतिमुखता में एक वाक्य के आधार पर विरोधी वाक्य का निष्कर्ष निकाला जाता है। विरोध के चार प्रकार हैं—१. उपाश्रितता, २. व्याघातकता, ३. विपरीतता, ४. अनुविपरीतता।

(१) **उपाश्रितता**—इसमें दो वाक्यो में उद्देश्य और विधेय एक ही होते हैं किन्तु परिमाण में भिन्नता पाई जाती है। इसके दो नियम हैं—क. यदि सामान्य वाक्य सत्य है तो विशेष वाक्य भी सत्य होता है। ख. यदि विशेष वाक्य असत्य है तो सामान्य भी असत्य होगा।

(२) **विपरीतता**—इसमें दो वाक्यों के उद्देश्य और विधेय एक ही होते हैं किन्तु गुण में अन्तर होता है। इसके तीन नियम हैं—१ यदि ए वाक्य सत्य है तो इ वाक्य असत्य होगा, २ यदि इ वाक्य सत्य है तो ए वाक्य असत्य होगा, ३. किन्तु इसका उल्टा ठीक नहीं है।

(३) **अनुविपरीतता**—इसमें दो विशेष वाक्यो में विरोध सम्बन्ध होता है। इसके दो नियम हैं—१. एक वाक्य की असत्यता दूसरे की सत्यता सिद्ध करती है। २ एक की सत्यता दूसरे की असत्यता को सिद्ध नहीं करती।

(४) **व्याघातकता**—इसमें दो वाक्यो में उद्देश्य और विधेय एक ही होते हैं किन्तु गुण और परिमाण दोनों भिन्न होते हैं। यह विरोध का पूर्ण रूप है।

अभ्यास के लिये प्रश्न

प्रश्न १. निष्कर्षण किसे कहते हैं ? उदाहरण सहित इसके विभिन्न प्रकारो की व्याख्या कीजिये ।

प्रश्न २. निगमनात्मक अनुमान के भेद बतलाइये । क्या अनन्तरानुमान अनुमान नही है ? इसकी आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये । (यू० पी० बोर्ड १९६८)

प्रश्न ३. परिवर्तन से आप क्या समझते हैं ? उसके नियम क्या हैं ? वह कितने प्रकार का होता है ? निम्नलिखित वाक्य का परिवर्तित प्रतिवर्तन क्या होगा, कोई गाय मासाहारी पशु नही है ? (यू० पी० बोर्ड १९६८)

प्रश्न ४. प्रतिवर्तन किसे कहते हैं ? विभिन्न निरपेक्ष वाक्यो के प्रतिवर्तन बतलाइये । (यू० पी० बोर्ड १९६४)

प्रश्न ५. निष्कर्षण से आप क्या समझते हैं । निम्नलिखित वाक्यो का परिवर्तित प्रतिवर्तित तथा विपर्यय रूप दीजिये—(क) सब प्राणी मरणशील हैं—(ख) कोई मनुष्य पूर्ण नही है । (यू० पी० बोर्ड १९६०)

प्रश्न ६. तर्कशास्त्र मे वाक्य प्रतिमुखता का क्या अर्थ है । उपाश्रित विरोध वाक्यो के नियम बताइये । यदि निम्न वाक्य सत्य अथवा असत्य हो तो इस की सत्यता अथवा असत्यता के बारे मे आप क्या कहेंगे—कुछ धातुयें मुलायम नहीं होती हैं । (यू० पी० बोर्ड १९६८)

प्रश्न ७. व्यवहित और अव्यवहित अनुमान का अन्तर स्पष्ट कीजिये । "अव्यवहित अनुमान वास्तव मे अनुमान नही है ।" इसकी विवेचना कीजिये । (यू० पी० बोर्ड १९७०)

प्रश्न ८. उदाहरण देते हुये मान्तरानुमान और अनन्तरानुमान अनुमानो मे अन्तर बतलाइये। क्या अनन्तरानुमान को शुद्ध अनुमान कहा जा सकता है । (यू० पी० बोर्ड १९७१)

प्रश्न ९. अव्यवहित अनुमान क्या है ? व्यवहित अनुमान से वह किस प्रकार भिन्न है उदाहरणो से स्पष्ट कीजिये । (आगरा १९७५)

प्रश्न १०. अनन्तरानुमान क्या है ? उसके भेदो की विवेचना कीजिये । (बुन्देलखण्ड १९७८)

प्रश्न ११. अव्यवहित तथा व्यवहित अनुमानो मे क्या भेद है ? अव्यवहित अनुमान के विभिन्न प्रकारो की सक्षेप मे व्याख्या कीजिये । (मेरठ १९७८)

प्रश्न १२. व्याख्यात्मक टिप्पणी लिखिये—प्रतिवर्तन (गोरखपुर १९७७)

प्रश्न १३. अनुमान का क्या अर्थ है ? अनुमान के कितने प्रकार हैं ? (आगरा १९७६)

प्रश्न १४. विरोधाश्रित अनुमान के नियमो की व्याख्या करें । (आगरा १९७६)

प्रश्न १५. आवर्तन, प्रतिवर्तन, प्रत्यावर्तन और विवर्तन के बीच के अन्तर की व्याख्या कीजिये । (गोरखपुर १९७६)

१४

भारतीय तर्कशास्त्र में अनुमान की प्रकृति और प्रकार

(THE NATURE AND FORMS OF ANUMAN IN INDIAN LOGIC)

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारतीय दर्शनो मे तर्कशास्त्र का सबसे अधिक प्रामाणिक विकास न्याय दर्शन में हुआ यहाँ तक कि भारतवर्ष मे न्याय का अर्थ तर्कशास्त्र के रूप मे ही किया जाता है। न्याय-दर्शन के मूल ग्रन्थ न्याय सूत्र की रचना गौतम ने की थी। गौतम सूत्र का अध्ययन करने से पता चलता है कि यह विशेष रूप से विपक्षियो के मत के खण्डन के लिए बनाया गया था। यद्यपि इसका लक्ष्य भी दुःखो से छुटकारा और मोक्ष प्राप्त करना है परन्तु इसका मुख्य उद्देश्य बौद्धो के मत का खण्डन करना था। इसी कारण बौद्ध धर्मानुयायियो ने गौतम सूत्र को नष्ट करने का नाना प्रकार से प्रयास किया। दूसरी ओर आस्तिक विद्वानो ने इस ग्रन्थ की रक्षा करने का भरसक प्रयास किया। इसका सबसे शुद्ध रूप वाचस्पति मिश्र द्वारा लिखित "न्याय सूची निबन्ध" मे मिलता है। यही वर्तमान उपलब्ध न्यायशास्त्र या न्याय सूत्र का रूप है। इस ग्रन्थ पर लिखी हुई टीकाओं मे सबसे प्रसिद्ध टीका वात्स्यायन की है जो कि ई० पू० दूसरी शताब्दी मे लिखी गयी थी। इसके बाद न्याय सूत्र पर दर्जनो टीकाएँ लिखी गयी। बारहवी शताब्दी में मिथिला के विद्वान गणेश उपाध्याय के ग्रन्थ "तत्व चिन्तामणि" की रचना के साथ नव्य न्याय का जन्म हुआ। इसके बाद से बारहवी शताब्दी के पूर्व के न्याय ग्रन्थ प्राचीन न्याय कहलाने लगे। जब कि प्राचीन न्याय का मुख्य लक्ष्य मुक्ति प्राप्त करना था, नव्य न्याय का मुख्य उद्देश्य तर्क करना ही बन गया। इस प्रकार जो साधन था, वही साध्य बन गया। भारतीय दर्शन मे तर्क करने की विद्या के रूप मे ही न्याय दर्शन का सम्मान होता रहा है।

न्याय दर्शन, भारतीय दर्शनो की मणिमाला की एक प्राचीन मणि है। न्याय दर्शन का विषय, जैसा कि इसके नाम से ही व्यक्त होता है, न्याय है। वात्स्यायन ने न्याय भाष्य मे न्याय को व्यापक अर्थो मे प्रमाणो की सहायता से अर्थ अर्थात् वस्तु-तत्त्व की परीक्षा[1] कह दिया है। अतः स्पष्ट है कि न्याय मे प्रमाणों की प्रकृति का वर्णन किया गया है और उन प्रमाणो की परीक्षा प्रणाली का व्यावहारिक रूप प्रकट

---

१. प्रमाणैरर्थपरीक्षण न्याय ।

किया गया है। इस दर्शन को विभिन्न नामो से अभिहित किया गया है जैसे—आन्वीक्षिकी, हेतुविद्या या हेतुशास्त्र, वादविद्या या तर्कविद्या, प्रमाणशास्त्र आदि। न्याय दर्शन अपने साहित्य मे विशालकाय है। विभिन्न दर्शनो के साहित्य की तुलना मे इसका दूसरा स्थान है। न्याय दर्शन का आदि ग्रन्थ गौतम का 'न्यायशास्त्र' है। गौतम ही इस दर्शन के आदि प्रवर्तक माने जाते हैं।

प्रमाण विचार

अन्य भारतीय दर्शनो के समान न्याय दर्शन मे भी प्रमाण विचार ही तत्व विचार का आधार है। अत. न्याय दर्शन के तत्व विचार को जानने से पहले उसमे ज्ञान और प्रमाण का स्वरूप समझ लेना आवश्यक है।

ज्ञान और उसके भेद

ज्ञान वस्तुओ की अभिव्यक्ति को कहते हैं। वह दीपक के समान अपने विषयो को प्रकाशित करता है। ज्ञान के दो भेद हैं—प्रमा (प्रमिति) तथा अप्रमा। न्याय के अनुसार प्रमा का अर्थ 'निश्चित ज्ञान' अथवा 'यथार्थ ज्ञान' है। यथार्थ ज्ञान, जैसी वस्तु हो उसको उसी प्रकार, अर्थात् सर्प को सर्प और घट को घट जानना है। प्रमा यथार्थ अनुभव है। वह स्मृति से भिन्न ज्ञानेन्द्रिय तथा वस्तु के सयोग से साक्षात् या परम्परा रूप मे उत्पन्न ज्ञान है। प्रमा वस्तु का असंदिग्ध अनुभव है। इसमे स्मृति नही आती क्योकि वह बीती वस्तु अथवा घटना पर आधारित है। इसमे सशयात्मक ज्ञान अथवा भ्रम भी नही आता क्योकि उसका ज्ञान असन्दिग्ध नही होता। रस्सी मे सर्प का ज्ञान प्रत्यक्ष होते हुए भी यथार्थ नही है, अतः वह प्रमा नही है। न्याय के अनुसार जो ज्ञान ज्ञेय वस्तु के यथार्थ धर्म का प्रकाशक हो वह सत्य होता है और जो ऐसा नही होता वह अयथार्थ अथवा भ्रम होता है।[1] यथार्थ ज्ञान के अनुसार व्यवहार करनेपर सफलता मिलती है। अतः इसे 'अनुकूल-प्रवृत्ति-सामर्थ्य' कहते है। भ्रम अथवा मिथ्या ज्ञान के अनुसार कार्य करने से विफलता मिलती है। अतः यह प्रवृत्तिसवाद कहलाता है। इस प्रकार प्रमा और भ्रम सर्वथा विरुद्ध है। प्रमा मे तर्क भी नही आता क्योकि केवल तर्क के आधार पर निश्चित ज्ञान नही हो सकता है। युक्ति किसी वस्तु का यथार्थ अनुभव नही है। प्रमा के चार भेद हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान तथा शब्द। इनके अतिरिक्त ज्ञान अप्रमा कहलाता है। अप्रमा अयथार्थ अनुभव पर आधारित है। यह अनिश्चित अथवा अयथार्थ ज्ञान है। जो वस्तु जैसी हो उसको उसी रूप मे न जानना दूसरे रूप मे जानना 'यथार्थ ज्ञान' है, जैसे अंधेरे मे रस्सी को सर्प समझना, सीपी को चाँदी या शरीर को आत्मा समझना आदि अप्रमा भ्रम हैं। न्याय के अनुसार स्मृति, संशय, भ्रम और तर्क अप्रमा माने जाते है। अव हम पहले प्रमा का विचार करेगे।

प्रत्यक्ष

जिससे यथार्थानुभव प्राप्त हो उसे प्रमाण कहते है। प्रमाण शब्द की व्युत्पत्ति करने पर भी हमे यही अर्थ प्राप्त होता है—'प्रमीयते अनेनेति प्रमाणम्'। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है प्रमा चार प्रकार की होती है। उसी के अनुसार प्रमाण भी चार प्रकार का होता है। प्रमाण यथार्थ ज्ञान का साधन है और प्रमा परिणति। प्रत्यक्ष प्रमा के करण को प्रत्यक्ष-प्रमाण, अनुमति प्रमा के करण को अनुमान प्रमाण, उपमिति प्रमा के करण को उपमान और शब्द प्रमा के करण को शब्द प्रमाण कहते

---

१. तद्वति तत्प्रकारक ज्ञान यथार्थम्। तदभाववति तत्प्रकारक ज्ञान भ्रम.।

है। गौतम के अनुसार—"प्रत्यक्ष एक अव्यभिचारी ज्ञान है जो इन्द्रिय और अर्थ के सन्निकर्ष से उत्पन्न होता है, जो स्पष्ट है और किसी नाम के साथ सम्बन्धित नही है।"[1] इस मत के अनुसार प्रत्यक्ष ज्ञानेन्द्रिय तथा वस्तु के सन्निकर्ष से उत्पन्न साक्षात् और यथार्थ ज्ञान है। उदाहरण के लिए जब कोई वस्तु मेरी आँख के इतने निकट सम्पर्क में है कि मुझे उसकी यथार्थता में कोई सन्देह नही है तब वह प्रत्यक्ष ज्ञान है। यदि मै किसी दूर की वस्तु के विषय में यह सदेह करता हूँ कि यह स्थाणु है अथवा पुरुष, तो मेरे इस सन्देह मे इन्द्रिय के साथ वस्तु का साक्षात् सन्निकर्ष होने पर भी असदिग्ध ज्ञान नही होता। इसी प्रकार रस्सी को सर्प समझने मे ज्ञान असदिग्ध होते हुए भी यथार्थ नही होता। अतः भ्रमात्मक ज्ञान को भी प्रत्यक्ष मे सम्मिलित नही कर सकते। नैयायिको ने छ: प्रकार के सन्निकर्ष माने है—'संयोग', 'सयुक्त-समवाय', 'सयुक्त-समवेत-समवाय' तथा 'विशेषण-विशेष्य भाव'। विस्तार के भय से यहाँ इनका विस्तृत वर्णन नही किया जा रहा है।

प्रत्यक्ष की इस व्याख्या में अलौकिक और योगज प्रत्यक्ष नही आते क्योकि इनका ज्ञान इन्द्रिय-सयोग के बिना होता है। सुख-दुःख आदि विषयो का प्रत्यक्ष इन्द्रिय सयोग के बिना ही होता है। अतः प्रत्यक्षो का सामान्य लक्षण इन्द्रिय-सयोग नही बल्कि साक्षात् प्रतीति है। किसी वस्तु का साक्षात्कार होने पर ही उसका प्रत्यक्ष ज्ञान होता है अर्थात् प्रत्यक्ष में ज्ञान किसी पुराने अनुभव अथवा किसी अनुमान के बिना होता है। अतः कुछ नैयायिको के अनुसार प्रत्यक्ष साक्षात् प्रतीति है अर्थात् प्रत्यक्ष एक ऐसा ज्ञान है जो ज्ञान के प्रत्यक्ष साधनों को छोड़कर किसी अन्य ज्ञान के करण से न प्राप्त हुआ हो।[2]

प्रत्यक्ष के भेद लौकिक तथा अलौकिक

प्रत्यक्ष के भेद कई प्रकार से किये गये है। एक प्रकार से प्रत्यक्ष के दो भेद हैं—लौकिक तथा अलौकिक। लौकिक प्रत्यक्ष मे ज्ञान इन्द्रिय सयोग से होता है। अलौकिक प्रत्यक्ष मे इन्द्रियो के बिना ही साक्षात् ज्ञान होता है। लौकिक प्रत्यक्ष के भी दो भेद है—वाह्य तथा मानस। भिन्न-भिन्न इन्द्रियों के द्वारा होने से बाह्य प्रत्यक्ष के पांच भेद है—'चाक्षुष', 'रासन', 'घ्राणज', 'स्पर्शज' तथा 'श्रावण' प्रत्यक्ष। मानस प्रत्यक्ष मे मन और वस्तु के साक्षात् सम्बन्ध से सुख, दुःख, ज्ञान, द्वेष, धर्म तथा अधर्म आदि का ज्ञान होता है। इस प्रकार बाह्य और मानस दो प्रकार के लौकिक प्रत्यक्ष के छः भेद होते है। अन्य दृष्टि से लौकिक प्रत्यक्ष के अन्य दो भेद होते है—निर्विकल्प तथा सविकल्प। इनके अतिरिक्त एक और प्रकार का भी प्रत्यक्ष माना गया है जिसे प्रत्यभिज्ञा कहते है। अतः इस दृष्टि से लौकिक प्रत्यक्ष के तीन भेद है—सविकल्प, निर्विकल्प और प्रत्यभिज्ञा। प्रत्यक्ष के इन तीन भेदो को बौद्ध तथा अद्वैत वेदान्ती नही मानते है। दूसरी ओर अलौकिक प्रत्यक्ष भी तीन प्रकार का होता है यथा सामान्य लक्षण, ज्ञान-लक्षण तथा योगज।

(१) **निर्विकल्प प्रत्यक्ष**—गौतम ने अपने सूत्र मे इसी को प्रत्यक्ष माना है। बाह्य इन्द्रिय का विषय के साथ सन्निकर्ष होने पर सबसे पहले आत्मा मे एक ज्ञान

---

१. इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारि व्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम्।
—न्यायसूत्र, १, १, ४।

२. ज्ञानाकरणनम् प्रत्यक्षम्।

उत्पन्न होता है जिसे न्याय दर्शन मे 'सम्मुग्ध' या 'अव्याकृत' ज्ञान कहा जाता है। इसमें केवल वस्तु के अस्तित्व का भान होता है, उसके गुण, नाम इत्यादि किसी विशेष धर्म का ज्ञान नही होता। गुण आदि विकल्पो से रहित होने के कारण यह 'निर्विकल्प प्रत्यक्ष' कहलाता है। यह प्रत्यक्ष का प्रथम अविकसित रूप है। इसका अस्तित्व प्रत्यक्ष नहीं वल्कि अनुमान से सिद्ध किया जाता है। नैयायिको के अनुसार सविकल्प ज्ञान से पहले निर्विकल्प ज्ञान होना चाहिए। सविकल्प ज्ञान विशेष्य-विशेषण रूप और निर्विकल्प ज्ञान विशेष्य और विशेषण का पृथक्-पृथक् ज्ञान है। प्रत्यक्ष की इन दो अवस्थाओ का इसलिए अनुमान किया जाता है क्योकि विशेष्य तथा विशेषण को पृथक्-पृथक् जाने विना उन दोनों का सम्वन्ध नही स्थापित किया जा सकता।

लौकिक प्रत्यक्ष के तीन भेद

(२) **सविकल्प प्रत्यक्ष**—निर्विकल्प प्रत्यक्ष से व्यवहार मे कोई भी काम नही चल सकता। निर्विकल्प प्रत्यक्ष मे वस्तु के विषय मे 'यह क्या है' यह मनुष्य है या पशु इत्यादि विकल्प नही उठते। न्याय मत के अनुसार उत्पन्न होने के पहले क्षण मे तो प्रत्येक वस्तु का 'ज्ञान' नाम, जाति, गुण आदि विकल्पो से रहित होना है परन्तु वाद मे दूसरे क्षण उसी ज्ञान मे वस्तु के नाम, जाति, आकृति, गुण आदि विकल्पो का भी भाग होता है और वही निर्विकल्प ज्ञान वाक्यो के द्वारा व्यवहार के लिए प्रकट किया जाता है। यही सविकल्प ज्ञान है। इस प्रकार सविकल्प प्रत्यक्ष मे यह ज्ञान होता है कि 'यह मनुष्य है', 'यह काला है' 'यह स्थिर है' इत्यादि। यह प्रत्यक्ष का विकसित रूप है और इसी से जगत् के व्यवहार चलते हैं।

(३) **प्रत्यभिज्ञा**—प्रत्यभिज्ञा का अर्थ पहचान (Recognition) है। इसमे किसी वस्तु को देखने से ही यह भान होता है कि उसे पहले भी देखा था। उदाहरण के लिए यदि एक वर्ष पहले जिस व्यक्ति से आपका परिचय कराया गया था उससे अव मिलने पर आपको यह आभास होता है कि यह वही व्यक्ति है जिसे आपने एक वर्ष पूर्व देखा था तो इस ज्ञान को प्रत्यभिज्ञा कहेगे। इसमे प्रत्यक्ष अनुभव का भाव सदा वर्तमान रहता है।

(१) **सामान्य लक्षण**—सामान्य धर्म के द्वारा जो प्रत्यक्ष होता है वह साधारण प्रत्यक्ष से भिन्न है। अतः वह अलौकिक सामान्य-लक्षण प्रत्यक्ष कहलाता है। जव हम यह कहते है कि मनुष्य-मात्र मरणशील है तो यह वाक्य सामान्य-लक्षण प्रत्यक्ष द्वारा सभी मनुष्यों के मरणशील होने के ज्ञान पर आधारित है। जव हम किसी को देखकर यह कहते है कि यह मनुष्य है तो हमे उसके मनुष्यत्व का प्रत्यक्ष होता है अर्थात् नैयायिको के अनुसार मनुष्य का ज्ञान उसके सामान्य धर्म 'मनुष्यत्व' के प्रत्यक्ष से होता है। इसी प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर हम मनुष्यत्व धर्म विशिष्ट सभी व्यक्तियो को जानते हैं और यह कहते हे कि मनुष्य मरणशील है क्योकि मरणशीलता मनुष्य का धर्म है।

अलौकिक प्रत्यक्ष के तीन भेद

(२) **ज्ञान-लक्षण प्रत्यक्ष**—इसमे इस प्रकार के प्रत्यक्ष आते है जिन्हे हम नित्यप्रति के व्यवहार मे प्रयोग करते है—जैसे कि वर्फ ठण्डा पत्थर ठोस और घास मुलायम दिखाई पडती है। यहाँ पर ठण्डापन, ठोसपन तथा मुलायमियत आदि स्पर्शज-प्रत्यक्ष के विषय है, फिर वे आँखो से कैसे दिखलाई पडते हे ? नैयायिक इसको इस

प्रकार समझाते है—अतीत काल मे हमने कई वार चन्दन काष्ठ को देखा है। उसको देखने के साथ उसको सूँघने से हमारे मन मे उसके रंग तथा गन्ध मे एक सम्वन्ध स्थापित हो जाता है। इसी कारण चन्दन को देखने से ही उसकी गन्ध का भी प्रत्यक्ष हो जाता है। इस उदाहरण मे वर्तमान गन्ध का अनुभव अतीत के गन्ध के स्मरण पर आधारित है। अतीत ज्ञान पर आधारित होने कारण इसे ज्ञान-लक्षण प्रत्यक्ष कहते है। यह अलौकिक है क्योकि साधारणतः एक इन्द्रिय दूसरे विषय का अनुभव नही कर सकती जबकि इनमें ऐसा ही होता है।

(३) **योगज प्रत्यक्ष**—सिद्धि के प्रभाव से योगियो को प्रत्यक्ष रूप मे जो ज्ञान, साधारण अथवा असाधारण प्रत्यक्ष के विना होता है वह योगज प्रत्यक्ष कहलाता है। यह अनुभव उन्ही लोगो को हो सकता है जिन्होने योगाभ्यास द्वारा अलौकिक शक्ति प्राप्त की है। इस शक्ति से उन्हे भूत तथा भविष्य, सूक्ष्म तथा गूढ़, निकट तथा दूरस्थ, सभी प्रकार की वस्तुओ का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। यह शक्ति योग मे सिद्धि से स्वतः प्राप्त हो जाती है तथा इसका कभी नाश नही होता। योगज प्रत्यक्ष को अन्य भारतीय दार्शनिक भी मानते है।

(२) उपमान

उपमान को उपमिति भी कहते है। न्याय के अनुसार संज्ञा-संज्ञि-सम्वन्ध के ज्ञान को उपमान कहते है।[1] इसके द्वारा किसी नाम और उसके नामी के सम्वन्ध का ज्ञान होता है। यह दो मुख्य वस्तुओ के बीच मे विद्यमान साधारण-धर्म अथवा सादृश्य के ज्ञान पर आधारित है। इसके लिये यह आवश्यक है कि किसी परिचित वस्तु के साथ ज्ञातव्य वस्तु के सादृश्यो का ज्ञान प्राप्त रहे और आगे चलकर इन्ही सादृश्यो का प्रत्यक्षीकरण हो। उदाहरण के लिए मान लीजिए कि आपने गवय अर्थात् नीलगाय को भी नही देखा। कोई जगल का रहने वाला आपसे यह वतलाता है कि 'गवय' गाय से मिलती जुलती और उसी के आकार-प्रकार की होती है। अव यदि आप गाय के समान कोई पशु जंगल मे देखते है और यह समझते है कि 'यही गवय नाम का जन्तु है' तो यह ज्ञान आपको उपमान के द्वारा प्राप्त हुआ है। यहाँ पर नाम और नामी मे सम्वन्ध है अर्थात् गवय कहलाने वाला पशु, जैसा कि उसका नाम है, गाय के समान है। उपमान की इस क्रिया मे जव हम गवय मे गौ के सादृश्य को देखते हैं और पहले सुनी हुई उस वात का स्मरण करते है कि गवय गाय के समान ही है तभी हम जानते हैं कि इसका नाम गवय है।

उपमान क्या है ?

चार्वाक उपमान को प्रमाण नही मानते क्योकि उनके मतानुसार इसके नामी का यथार्थ ज्ञान नही मिल सकता। बौद्ध दार्शनिको के अनुसार उपमान कोई स्वतन्त्र प्रमाण नही है, वल्कि प्रत्यक्ष और शब्द का ही एक परिवर्तित रूप है। वैशेषिक तथा सांख्य दर्शनो के अनुसार उपमान न तो कोई स्वतन्त्र प्रमाण है और न कोई विशेष प्रकार का ज्ञान है वल्कि एक प्रकार का अनुमा नही है। जैन दर्शन के अनुसार उपमान प्रत्यभिज्ञा है। मीमासक और वेदान्ती न्याय के समान उपमान को एक स्वतन्त्र प्रमाण मानते है परन्तु इसका कुछ भिन्न अर्थ करते हैं।

उपमान पर अन्य दर्शनों के विचार

---

1 सज्ञासंज्ञिसम्वन्धज्ञानमुपमिति'। तत्कारण सादृश्यज्ञानम्।

(३) शब्द

न्याय दर्शन के अनुसार शब्द आप्तवाक्य है और आप्त वह है जो कि वस्तु को यथार्थ रूप मे कहता है। वाक्य पदो का समूह है और पद वह है जिसमे अर्थ को अभिव्यक्त करने की शक्ति है। शक्ति से ईश्वर का सकेत है।[1] शास्त्रो के निर्माताओ की उक्ति है कि कौन-से शब्द से कौन-सा अर्थ समझना चाहिए यह सकेत ईश्वरकृत है। प्रमाण सभी शब्द नही बल्कि यथार्थवादी अथवा आप्त व्यक्तियो के ही शब्द है। यदि किसी व्यक्ति को यथार्थ ज्ञान रहे और वह उस ज्ञान को परोपकार के लिए प्रकट करे तो उसके वचन सत्य समझे जाते है। ज्ञान शब्द मात्र से नही बल्कि उसका अर्थ समझ लेने से होता है। अतः शब्द प्रमाण आप्त व्यक्तियो के वचन के अर्थ का ज्ञान है।

दृष्टार्थ और अदृष्टार्थ शब्द

अर्थ के विषय की दृष्टि से शब्द के दो भेद किये गए हैं—दृष्टार्थ तथा अदृष्टार्थ। दृष्टार्थ शब्द वे है जिनसे ऐसी वस्तुओ का ज्ञान होता है जिनका प्रत्यक्ष हो सके, जैसे साधारण मनुष्यो तथा महात्माओ के विश्वसनीय वचन, धर्मग्रन्थो की दृष्ट पदार्थो के सम्बन्ध मे उक्तियाँ, न्यायालय मे साक्षियो के वचन, विश्वस्त कृषको की कृषि सम्बन्धी उक्तियाँ तथा धर्मग्रन्थों मे वर्षा के लिये बतलाये हुए यज्ञो के विधान आदि। अदृष्ट शब्द वे है जिनसे अदृष्ट वस्तुओ का ज्ञान प्राप्त हो; जैसे—साधारण मनुष्यो, महात्माओ, धर्म-गुरुओ और धर्मग्रन्थो के विश्वसनीय वचन, परमाणु आदि विषयो के सम्बन्ध मे वैज्ञानिकों के वचन, पाप और पुण्य के सम्बन्ध मे धर्म-गुरुओ के वचन और ईश्वर, जीव की नित्यता आदि के सम्बन्ध मे धर्म-ग्रन्थ की उक्तियाँ इत्यादि।

वैदिक और लौकिक शब्द

शब्द की उत्पत्ति की दृष्टि से उसके दो भेद किये गये है—वैदिक और लौकिक। नैयायिको के अनुसार शब्द की उत्पत्ति किसी व्यक्ति से ही होती है चाहे वह व्यक्ति कोई मनुष्य हो या स्वय भगवान् हो। वैदिक शब्द स्वय ईश्वर के वचन है। लौकिक शब्द मनुष्यो के वचन हैं। अत. वैदिक शब्द पूर्णतः निर्दोष और भ्रान्तिहीन है। लौकिक शब्द सत्य भी हो सकते है और मिथ्या भी हो सकते हैं। इनमें सत्य वे होते है जो विश्वास योग्य व्यक्तियो के वचन होते है।

वाक्य विवेचन

वाक्य का लक्षण

शब्द विश्वसनीय व्यक्तियों के लिखित अथवा कथित वाक्यो के अर्थ का ज्ञान है। वाक्य क्या है? वह ऐसे पदो का समूह है जो एक विशेष ढग से क्रमबद्ध रहते है। पद ऐसे अक्षरो का समूह है जो विशेष प्रकार से क्रमबद्ध रहते है। पद की विशेषता उसके अर्थ मे ही है। उसका किसी विषय के साथ निश्चित सम्बन्ध रहता है। अतः सुने जाने या पढे जाने पर वह उस विषय का ज्ञान उत्पन्न कर देता है। इस प्रकार शब्द अर्थ का प्रतीक है। उसमे अर्थ बोध कराने की क्षमता ईश्वर के कारण है क्योकि ईश्वर ही ससार मे सब प्रकार की व्यवस्था अथवा एकरूपता का विधायक है।

---

१. आप्तवाक्य शब्दः। आप्तस्तुयथार्थवक्ता। वाक्यं पदसमूह। शक्त पदम् ईश्वरसकेत. शक्ति।

वाक्यार्थ बोध के नियम

वाक्य पदो का समूह है। पदसमूह वह है जिससे कोई अर्थ निकले। किसी भी प्रकार का पदसमूह अर्थपूर्ण वाक्य नही कहा जा सकता। वाक्य के अर्थ के ज्ञान (वाक्यार्थबोध) के लिये वाक्य मे आकाक्षा, योग्यता, सन्निधि तथा तात्पर्य इन चार बातो की आवश्यकता है। ये ही वाक्यार्थ बोध के चार कारण हैं।

(१) **आकांक्षा**—दूसरे पद के उच्चारण हुए बिना जब किसी पद का अभिप्राय समझ मे न आये, तो इन पदो के परस्पर सम्बन्ध को आकाक्षा कहते है। सामान्यत: किसी एक पद से ही पूर्ण अर्थबोध नही हो सकता। वाक्य पूरा करने के लिए पद का दूसरे पदो के साथ सम्बन्ध स्थापित करना अत्यन्त आवश्यक है। उदाहरण के लिए यदि कोई कहे 'देवदत्त' तो यह सुनकर मन मे देवदत्त के सम्बन्ध मे अधिक सुनने की इच्छा होती है जिसकी तृप्ति अन्य शब्दो को सुने बिना नही हो सकती। अब यदि कहा जाय 'जाता है' तो इसे सुनकर 'आकाक्षा' निवृत्त हो जाती है क्योकि 'देवदत्त' और 'जाता है' इन दोनो पदो के मिलने से एक सम्बद्ध ज्ञान उत्पन्न होता है। अत: ये पद 'आकांक्षा' है।

(२) **योग्यता**—पदो मे परस्पर अर्थ का बोध कराने की शक्ति योग्यता कही जाती है। 'आग से सीचो' इस वाक्य के पदो मे योग्यता का अभाव है क्योकि 'आग' और 'सीचना' मे परस्पर विरोधी है। बिना योग्यता से युक्त वाक्य से शब्द बोध नही हो सकता। अत: योग्यता, पदो मे परस्पर विरोध का अभाव है।

(३) **सन्निधि**—समीप पदो को एक साथ अथवा बिना अधिक विलम्ब किये उच्चारण करना 'सन्निधि' कही जाती है। इसे ही आसक्ति भी कहते हैं। वाक्य अर्थसूचक तभी हो सकता है जबकि समय और स्थान की दृष्टि से उसके पद परस्पर निकट हो। पदो के बीच मे स्थान अथवा समय का बहुत अन्तर होने पर वाक्य नही बन सकता। देवदत्त—एक गाय—लाता—है, यदि ये पाँच पद पाँच दिनो मे बोले जाये अथवा पाँच स्थानो पर लिखे जाये तो उनमे आकांक्षा और योग्यता रहने पर भी उनसे वाक्य नही बन सकता। अत: शब्दबोध मे 'सन्निधि' भी अत्यन्त आवश्यक है।

(४) **तात्पर्य ज्ञान**—वाक्यार्थ बोध के लिए उपरोक्त तीनो बातो के अतिरिक्त वक्ता अथवा लेखक के तात्पर्य अथवा अभिप्राय का ज्ञान भी अत्यन्त आवश्यक है। जैसे यदि भोजन करते हुए कोई व्यक्ति 'सैन्धव ले आओ' ऐसा कहे तो जब तक सुनने वाले को उन शब्दो का तात्पर्य न मालूम हो तब तक वह यह नही समझ सकता कि बोलने वाला 'नमक' चाहता है या 'सिन्धु देश का घोड़ा' क्योकि 'सैन्धव' शब्द के दोनो ही अर्थ होते है। वर्तमान प्रसग मे दाल मे नमक की कमी भी हो सकती है और भोजन करके शीघ्र किसी आवश्यक काम से जाने के लिए घोडे की भी आवश्यकता पड़ सकती हैं। अत: यहाँ पर वाक्यार्थ बोध के लिए वक्ता का 'तात्पर्य' जानना अनिवार्य है। साधारण मनुष्यो के वाक्यो को प्रकरण के अनुसार समझा जा सकता है परन्तु वैदिक मन्त्रो को समझने के लिए मीमासा के नियमो की सहायता लेनी पड़ती है।

ज्ञान के प्रामाण्य के विषय मे नैयायिक परत: प्रामाण्यवादी है अर्थात् उनके अनुसार प्रमाण स्वयं अपने प्रामाण्य का निर्णय नही करता बल्कि अपने प्रामाण्य के

लिए अन्य प्रमाण पर निर्भर रहता है। उदाहरण के लिए यदि हमें दूर से कही जलाशय दिखलाई पडता है और हम जल लेने को चल पडते है तो यह ज्ञान प्रामाणिक तभी होगा जबकि वहाँ जाकर हमे जल मिले। न्याय के विरुद्ध मीमासा दर्शन इस विषय मे 'स्वतः प्रामाण्यवादी' है। अतः दोनों मे परस्पर काफी तर्क-वितर्क हुआ है। इस तर्क-वितर्क का वर्णन मीमासा दर्शन के विवरण के प्रसग मे किया गया है।

न्याय परतः प्रामाण्यवादी है

(४) अनुमान

अनुमान क्या है ?

अनुमान अनुमा ज्ञान का साधन है। वह एक ऐसा ज्ञान है जिसके पूर्व अन्य ज्ञान हो चुका है। यह परोक्ष है और हेतु अथवा लिंग से होता है जो कि साध्य से अनिवार्य रूप से सम्बन्धित है। अनुमान का शाब्दिक अर्थ पूर्व ज्ञान के पश्चात् (अनु) होने वाला ज्ञान (मान) है। व्याप्ति अथवा अविनाभाव नियम अनुमान का आधार है। हेतु और साध्य का अनिवार्य सम्बन्ध व्याप्ति कहलाता है। व्याप्ति के द्वारा पक्षधर्मता का ज्ञान परामर्श कहलाता है। अतः अनुमान को परामर्श द्वारा प्राप्त ज्ञान कहा गया है।

परामर्शजन्य ज्ञानमनुमितिः।
व्याप्ति विशिष्टपक्षधर्मताज्ञान परामर्शः ॥

अर्थात् अनुमान परामर्श द्वारा प्राप्त ज्ञान है। वह लिंग के द्वारा साध्य की पक्ष मे उपस्थिति का ज्ञान है जो कि पक्षधर्मता मे है और व्याप्ति से अनिवार्य रूप से सम्बन्धित है। उदाहरण के लिये पहाड मे आग है क्योकि वहाँ धुआँ है क्योकि जहा धुआँ है वहाँ आग है। इस उदाहरण मे धुआँ और आग मे व्याप्ति सम्बन्ध है। अत. पहाड़ से उठते हुए धुएँ को देखकर व्याप्ति के कारण पहाड़ मे आग का अनुमान किया जाता है क्योकि पहले देखा गया है कि जहाँ धुआँ है वहाँ आग भी है।

धुआँ आग का चिन्ह अथवा लिंग कहलाता है और आग लिंगी कहलाती है क्योकि धुआँ उसका लिंग है। इन दृष्टि से अनुमान की यह परिभाषा दी गयी है "मितेर्नलिंगेन लिंगीनोर्यस्य पश्चात् मान अनुमानम्" अर्थात् अनुमान वह ज्ञान है जो लिग के ज्ञान के पश्चात् लिंगी का ज्ञान होता है। लिंग और लिंगी के लिए अन्य नाम भी प्रचलित है। लिंगी को साध्य कहते है क्योकि अनुमान की क्रिया का लक्ष्य उसका अस्तित्व सिद्ध करना है। लिंग साधन अथवा हेतु कहलाता है क्योकि उसकी सहायता से साध्य का अस्तित्व सिद्ध होता है। पीछे दिये गये उदाहरण मे आग साध्य और धुआँ साधन अथवा हेतु है। पक्ष उसे कहते है जिस स्थान पर साधन देखा जाता है और साध्य का अनुमान किया जाता है। उपरोक्त उदाहरण मे पहाड़ साधन है क्योकि वहाँ पर धुआँ देखा गया है और आग का अनुमान किया गया है। अब यहाँ पर अनुमान के भिन्न-भिन्न अगो पर विचार कर लेना उचित होगा।

(१) **व्याप्ति**—पीछे कहा गया है कि परामर्श व्याप्ति विशिष्ट पक्ष धर्मता का ज्ञान है। व्याप्ति मे एक वस्तु से दूसरी वस्तु का साहचर्य सम्बन्ध होता है।

उपरोक्त उदाहरण मे जहाँ-जहाँ धुआँ है वहाँ-वहाँ आग है। इस प्रकार धुयें और आग मे व्याप्ति सम्बन्ध है। इसी प्रकार धुयें को देखकर आग का अनुमान कर लिया जाता है। धुयें और आग मे यह व्याप्ति सम्वन्ध वर्तमान उदाहरण मे ही हो ऐसी वात नही है। व्याप्ति सम्वन्ध तभी हो सकता है जवकि जहाँ-जहाँ धुआँ हो वहाँ-वहाँ आग दिखलाई पडे। हम देखते है कि रेल के इन्जन मे, रसोईघर मे, यज्ञ की वेदी मे, जहाँ-जहाँ भी धुआँ उठता है वहाँ-वहाँ आग भी होती है। दूसरी ओर हम कही भी इस नियम का अपवाद नही देखते अर्थात् हमने ऐसा कही नही देखा है कि धुआँ हो और आग न हो। इस प्रकार अन्वय और व्यतिरेक दोनों से ही यह सिद्ध होता है कि आग और धुये मे व्याप्ति सम्वन्ध है।

प्रसिद्ध भारतीय ग्रन्थ 'तर्क सग्रह' मे व्याप्ति की परिभाषा कहते हुये लिखा गया है, "यत्र-यत्र धूमस्तत्र तत्र वह्निः इति साहचर्य-नियमो व्याप्तिः" अर्थात् जहाँ जहाँ धुआँ रहता है वहाँ-वहाँ आग रहती है, इस प्रकार के साहचर्य नियम को व्याप्ति कहा जाता है। साहचर्य का अर्थ एक साथ रहना है। अस्तु, व्याप्ति दो वस्तुओ का वह सम्वन्ध है जिससे वे दोनो साथ-साथ रहती हैं। उदाहरण के लिये चिड़िया और हवा का साहचर्य, मछली और पानी का साहचर्य तथा गाय और जमीन का साहचर्य है। चिड़िया हवा के विना नही रह सकती और मछली पानी के विना नही रह सकती किन्तु इनमे साहचर्य सम्वन्ध व्याप्ति नही कहा जा सकता क्योकि यह सम्वन्ध एक तरफा है अर्थात् पानी मे मछली होना आवश्यक नही है और न हवा मे चिड़िया का होना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त मछली पानी के विना भी रह सकती है और चिड़िया भी हवा से अलग रह सकती है। यह अपवाद व्यभिचार कहलाता है। व्याप्ति अव्यभिचारी सम्वन्ध है अर्थात् उसमे ऐसा साहचर्य सम्वन्ध होता है जिसमे व्यभिचार अथवा अपवाद नही होता। इस प्रकार का साहचर्य सम्वन्ध धुआँ और आग मे देखा जा सकता है। जहाँ धुआँ होता है वहाँ आग होती है और ऐसा नही है कि कही धुआँ हो परन्तु आग न हो। अस्तु, धुआँ और आग मे व्याप्ति सम्वन्ध है आग के विना धुआँ नही रह सकता। इस सम्वन्ध को अविनाभाव अर्थात् ऐसा सम्वन्ध कहते हैं जिसमे एक वस्तु दूसरी वस्तु के विना न रह सकती हो। यह अविनाभाव सम्वन्ध ही व्याप्ति है। इसको नियत साहचर्य भी कहा जाता है।

उपरोक्त व्याप्ति सम्वन्ध में यह देखना है कि कौन किस में व्यापक है। व्याप्ति सम्वन्ध जिन दो वस्तुओ मे होता है उनमे एक व्यापक और दूसरी व्याप्त कहलाती है। व्यापक वह है जिसकी व्याप्ति है और व्याप्त वह है जिसमें व्याप्ति रहती है। उपरोक्त उदाहरण में अग्नि व्यापक है और धुआँ व्याप्त है। धुआँ आग के विना नही रह सकता किन्तु आग धुये के विना भी हो सकती है जैसे कि जलते हुए लोहे में आग होती है परन्तु धुआँ नही। अस्तु, धुआँ आग मे सीमित है किन्तु आग धुयें मे सीमित नही है। अर्थात् धुआं तो वही होगा जहाँ आग होगी किन्तु आग धुएँ के अतिरिक्त भी हो सकती है। दूसरे शव्दो मे, प्रत्येक प्रकार की आग मे धुआं नही होता।

अव प्रश्न यह है कि हमने धुएँ और आग मे व्याप्ति सम्वन्ध कैसे स्थापित किया। दूसरे शव्दो मे, व्याप्ति का ज्ञान कैसे रहता है ? इसकी व्याख्या करते हुए नैयायिकों ने लिखा है, "भूयोदर्शनात्" अर्थात् वार-वार दो वस्तुओ को एक साथ

देखने से व्याप्ति का बोध होता है। इस प्रकार व्याप्ति अनुभव पर आधारित होती है। जब बहुत से लोगो ने हजारो बार जहाँ कही धुआ देखा वहाँ आग देखी तो धुएँ और आग मे व्याप्ति सम्वन्ध मान लिया गया। किन्तु अन्वय सम्वन्ध ही पर्याप्त नही है। यदि कही भी एक वार भी व्यतिरेक हो जाए अर्थात् आग के विना धुआ मिल जाए तो धुएँ और आग मे व्याप्ति सम्वन्ध नही हो सकता। इसलिए व्याप्ति सम्वन्ध की स्थापना के लिये साहचर्य के ज्ञान के साथ-साथ व्यभिचार के अभाव का ज्ञान भी होना चाहिये।

(२) **पक्षधर्मता**—पक्षधर्मता का अर्थ है पक्ष अर्थात् स्थान विशेष मे धर्म लिंग विशेष का पाया जाना। पीछे दिये गये उदाहरण मे पहाड़ पर धुएँ का पाया जाना पक्षधर्मता है। पक्षधर्मता के अभाव मे व्याप्ति होने पर भी अनुमान नही हो सकता। उदाहरण के लिये यदि हम पहाड़ पर धुआ न देखे तो यह जानते हुए भी कि जहाँ धुआं होता है वहाँ आग होती है हम पहाड़ पर आग का अनुमान नही कर सकते। इसलिये व्याप्ति के साथ-साथ अनुमान के पीछे पक्षधर्मता का ज्ञान भी आवश्यक होता है। पक्ष उस पदार्थ, व्यक्ति, स्थान या वस्तु को कहते है जिसके विषय मे किसी साध्य को सिद्ध करना है। वर्तमान उदाहरण मे यदि आग साध्य है तो पर्वत पक्ष कहलाएगा क्योकि पर्वत पर आग का होना सिद्ध करना है।

(३) **लिंग परामर्श**—परामर्श वह ज्ञान है जो पक्षधर्मता और व्याप्ति दोनों के ज्ञान के सम्मिलित होने से विशिष्ट ज्ञान के रूप मे उत्पन्न होता है। इसीलिये कहा गया है "व्याप्ति-विशिष्ट पक्षधर्मता ज्ञानम् परामर्शः।" परामर्श ज्ञान मे पक्ष और साध्य के अलावा लिंग की आवश्यकता होती है। उपरोक्त उदाहरण मे पहाड़ पक्ष है, आग और धुये मे व्याप्ति सम्वन्ध है और धुआ लिंग है। लिंग साधक, साधन और हेतु भी कहलाता है। लिंग वह है जो किसी ऐसी वस्तु का चिह्न है जो प्रत्यक्ष न हो। दूसरे शव्दो मे, वह साध्य के प्रत्यक्ष का साधन है। धुआ आग की उपस्थिति का चिह्न है। धुये के द्वारा आग का प्रत्यक्ष किया जा सकता है। धुआ आग को सिद्ध करता है इसलिये वह साधक है। वह व्याप्ति है क्योकि उसके साथ आग सदैव रहती है।

जहाँ पर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि व्याप्ति के विना केवल धुआ मात्र लिंग नही है। धुआ लिंग तभी होता है जवकि हमे धुआ और आग के व्याप्ति सम्वन्ध का ज्ञान है अन्यथा केवल धुआ देखने से आग का अनुमान नही लगाया जा सकता। व्याप्ति ज्ञान से धुआ केवल धुआ नही रहता वल्कि आग की उपस्थिति का चिह्न वन जाता है। इस प्रकार वह विशिष्ट ज्ञान हो जाता है। यह विशिष्ट ज्ञान ही लिंग परामर्श कहलाता है। लिंग का सम्वन्ध सबसे पहले पक्ष से होता है। प्रस्तुत उदाहरण मे अनुमान मे सवसे पहले पहाड पर धुआ देखा गया। इसलिये पहाड़ धुये वाला है, यह पहला लिंग परामर्श हुआ। अव यह विचार आया कि धुआ आग का व्याप्य है। इस प्रकार यह दूसरा लिंग परामर्श हुआ। इसके वाद पक्ष मे साध्य सहित लिंग का सम्वन्ध देखा गया। अर्थात् यह ज्ञान हुआ कि पहाड़ आग मे व्याप्त धुये वाला है। इस तृतीय लिंग परामर्श से ही अनुमिति निकलती है। अनुमिति अनुमान का निष्कर्ष है। अन्नम्भट्ट के शव्दो मे, "परामर्श जन्यम् ज्ञानम् अनुमितिः" अर्थात् अनुमिति परामर्श से उत्पन्न ज्ञान है।

अनुमान के भेद

भारतीय तर्कशास्त्रियो ने अनुमान के तीन प्रकार से भेद किये है—प्रयोजन के अनुसार अनुमान के भेद और व्याप्ति के अनुसार अनुमान के भेद और व्याप्ति स्थापन प्रणाली के अनुसार अनुमान के भेद। यहाँ पर अनुमान के इन दोनो ही भेदो का वर्णन किया जाएगा :—

(अ) प्रयोजन के अनुसार अनुमान के भेद

अनुमान का प्रयोजन या तो स्वय किसी बात को देखकर किसी अन्य बात का अनुमान द्वारा ज्ञान प्राप्त करना है या किसी दूसरे व्यक्ति को किसी ऐसे ज्ञान को सिद्ध करना है जो प्रत्यक्ष का विषय नही है। इस प्रकार प्रयोजन के अनुसार अनुमान के निम्नलिखित दो भेद किये गये है—

(अ) **स्वार्थानुमान**—स्वार्थानुमान की परिभाषा करते हुए कहा गया है "स्वीयसशयनिवृत्तिप्रयोजनकमनुमानम् स्वार्थानुमानम्।" अर्थात् स्वार्थानुमान वह अनुमान है जो अपनी शका को दूर करने के लिये किया जाता है। इस प्रकार इसका उद्देश्य किसी बात के विषय मे तथ्य का निश्चय करना है। इसमे केवल हेतु को देखकर साध्य का निश्चय कर लिया जाता है। इसमे अनुमान के विभिन्न वाक्यो को क्रमबद्ध रखने की आवश्यकता नही होती। चूंकि यह अनुमान किसी को सिद्ध करना नही है अस्तु, इसमे प्रतिज्ञा या उदाहरण की जरूरत नही पडती। जैसे यदि मैंने बार-बार अपने अनुभव मे यह देखा है कि जहाँ-जहाँ धुआँ दिखलाई दिया है वहाँ आग भी अवश्य मिली है तो मै सामने के पहाड़ से उठते हुए धुये को देखकर यह अनुमान लगा लेता हूँ कि उस पहाड पर आग है। इसमे मुझे किसी उदाहरण या प्रतिज्ञा की आवश्यकता नही है, यह स्वार्थानुमान है। स्वार्थानुमान मे सबसे पहले व्याप्ति का निश्चय किया जाता है। यह निश्चय अनुभव से होता है। जब हम दो चीजे बराबर एक साथ देखते है तो उनमे अन्वय सम्बन्ध मान लेते है और जब हम यह देखते है कि जहाँ उनमे से एक का अभाव हो वहाँ दूसरे का भी अभाव है तो उनमे व्यतिरेक सम्बन्ध स्थापित होता हे। अन्यय और व्यतिरेक दोनो होने पर नियत साहचर्य सम्बन्ध की स्थापना होती है। प्रस्तुत उदाहरण मे हमने जहाँ धुआँ देखा है वहाँ आग देखी है और जहाँ आग का अभाव देखा है वहाँ धुआँ भी नही देखा अर्थात् उसका भी अभाव देखा। यहाँ पर कुछ लोगो ने यह प्रश्न उठाया है कि चू कि कोई भी व्यक्ति सब धुये और सब आग के नियत साहचर्य को नही देख सकता इसलिये नैयानिको ने यह दिखलाया है कि धुआँ और आग के सामान्य गुण धूमत्व और अग्नित्व मे सम्बन्ध स्थापित हो जाने के बाद यह सम्बन्ध सभी धुये और आग के विषय मे लागू किया जा सकता है। व्याप्ति के निश्चय के बाद स्वार्थानुमान मे पहाड़ पर धुआँ देखा गया जिसके साथ आग बराबर रहती है। इसके बाद यह विचार आया कि जहाँ धुआँ है वहाँ आग है। इससे यह विचार उत्पन्न हुआ कि पहाड़ में जो धुआ देख रहे है वहाँ आग अवश्य होगी। यह अनुमिति है।

(ब) **परार्थानुमान**—परार्थानुमान की परिभाषा करते हुए कहा गया है
'परसशयनिवृत्तप्रयोजनकनमनुमानम् परार्थानुमानम्'

अर्थात् परार्थानुमान वह अनुमान है जो कि दूसरे के सशय को दूर करने के प्रयोजन से किया जाता है। इसके लिये वह आवश्यक है कि अनुमान मे प्रत्येक पद

को क्रमानुसार उपस्थित किया जाए। महर्षि गौतम ने परार्थानुमान में निम्नलिखित पाच अवयव आवश्यक माने है—

(१) **प्रतिज्ञा**—प्रतिज्ञा का उद्देश्य जिस विषय पर विचार हो रहा है उसको पहले ही स्पष्ट कह देना है। प्रतिज्ञा की परिभाषा करते हुए कहा गया है 'साध्यनिर्देशः प्रतिज्ञा' अर्थात् जो साध्य का निर्देश करे वह प्रतिज्ञा है। इस प्रकार प्रतिज्ञा वह वाक्य है जिसमे उस बात का कथन किया जाता है जो अनुमान के द्वारा सिद्ध की जानी है। आग और धुये के उदाहरण मे प्रतिज्ञा है पहाड़ पर आग है।

(२) **हेतु**—हेतु प्रतिज्ञा का कारण दिखलाता है। उसकी परिभाषा करते हुए कहा गया है 'साध्य साधनम् हेतु' अर्थात् हेतु वह है जो साध्य का साधन है। उदाहरण के लिये आग का अस्तित्व धुएँ से सिद्ध होता है इसलिए हम कह सकते है पहाड मे आग है क्योकि पहाड मे धुआ है। इसमे 'क्योकि पहाड़ मे धुआ है' हेतु वाक्य है।

(३) **उदाहरण**—उदाहरण अथवा दृष्टान्त एक पूर्ण व्यापक वाक्य है जो उदाहरण सहित साध्य और हेतु मे अविछिन्न सम्बन्ध दिखलाता है। उदाहरण की परिभाषा करते हुए कहा गया है "साध्यसाध्यत्तिम्दावो दृष्टान्त उदाहरणम्।" अर्थात् साध्य के विषय मे सिद्ध करने के लिए दिया हुआ दृष्टान्त उदाहरण कहलाता है। धुये और आग के अनुमान मे दृष्टान्त के रूप में यह कहा जाएगा, "जहाँ धुआँ है वहाँ आग है जैसे रसोई मे।" यहाँ पर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि उदाहरण व्याप्ति का सूचक होने के कारण ही अनुमान को सिद्ध करता है अन्यथा केवल उदाहरण मात्र से कोई बात सिद्ध नही होती। उदाहरण हेतु के बाद दिया जाता है और इसलिए उसका प्रयोजन हेतु और साध्य के व्याप्ति सम्बन्ध की पुष्टि करना है।

(४) **उपनय**—उपनय यह बतलाता है कि दृष्टान्त वाक्य प्रस्तुत विवेच्य विषय पर भी लागू होता है। उपनय की परिभाषा करते हुए लिखा गया है "उदाहरणापेक्षस्तथेत्युपसहारी साध्यस्योपनयः" अर्थात् हेतु और साध्य के विषय मे उदाहरण देने के उपरान्त उसे अपने पक्ष मे खीचना उपनय है। उपनय मे यह बतलाया जाता है कि साध्य सम्बन्ध स्थापित करने वाला चिह्न वर्तमान पक्ष मे उपस्थित है। प्रस्तुत उदाहरण मे धुये और आग की व्याप्ति का उदाहरण रसोई मे दिखलाने के बाद उपनय मे यह कहा जाएगा कि इस पर्वत मे धुआ है अर्थात् इस पहाड पर भी अग्निसूचक धुआ विद्यमान है।

(५) **निगमन**—निगमन वह है जो कि पहले के वाक्यो से निकलता है। निगमन की परिभाषा करते हुए कहा गया हे "हेत्वपदेशात्प्रतिज्ञाया पुनर्वचन निगमनम्" अर्थात् प्रतिज्ञा की सिद्धि करने वाला वाक्य निगमन है। निगमन मे साध्य को फिर से दोहराया जाता है। वर्तमान उदाहरण मे निगमन होगा, "अत. इस पहाड मे आग है।"

कुछ नैयानिको ने परार्थानुमान मे उपरोक्त पाँच अवयव देना आवश्यक नही माना है। इसके अनुसार परार्थानुमान मे प्रतिज्ञा, हेतु और उदाहरण ही पर्याप्त है। उपनय और निगमन की कोई आवश्यकता नही है। पूर्व मीमासा और उत्तर मीमासा के दार्शनिको ने इसी बात का समर्थन किया है। बौद्ध दार्शनिक तो

उदाहरण को भी आवश्यक नही मानते, उनके अनुसार केवल प्रतिज्ञा और हेतु से ही अनुमान किया जा सकता है। दूसरी ओर कुछ दार्शनिकों ने पंचावयव अनुमान के स्थान पर दशावयव अनुमान की स्थापना की है और इस प्रकार अनुमान के दस अवयव माने है। जैन दार्शनिक भद्रवाहु ने परार्थानुमान के दस अवयव माने हैं यथा प्रतिज्ञा, प्रतिज्ञा विभक्ति, हेतु, हेतु विभक्ति, विपक्ष, विपक्ष प्रतिषेध, दृष्टांत आशका, आशका प्रतिषेध तथा निगमन। वात्स्यायन ने नैयायिकों द्वारा दिये गये पाच अवयवो के अलावा पाच अन्य अवयव माने है यथा जिज्ञासा, संशय, शक्य प्राप्ति, प्रयोजन, और सशय व्युदास। किन्तु अधिकतर भारतीय दार्शनिक परार्थानुमान मे नैयानिको द्वारा वतलाये गए पाच अवयव ही मानते है। पंचावयव परार्थानुमान का उदाहरण निम्नलिखित है—

(१) **प्रतिज्ञा**—पहाड़ पर आग है।
(२) **हेतु**—क्योकि पहाड़ पर धुआँ है।
(३) **उदाहरण**—जहाँ-जहाँ आग होती है वहाँ धुआँ अवश्य होता है जैसे रसोई घर में।
(४) **उपनय**—इस पहाड़ पर उसी प्रकार का धुआँ है जो आग के साथ रहता है।
(५) **निगमन**—इसलिये पहाड़ पर आग है।

(व) व्याप्ति के प्रकार के अनुस र भेद

व्याप्ति के प्रकारो के अनुसार गौतम ने प्राचीन न्याय मे अनुमान के निम्नलिखित तीन भेद वतलाये है—

पूर्ववत्, शेषवत् और सामान्यतोदृष्ट। इनमे पहले दो कार्य-कारण के नियत सम्वन्ध के द्वारा होते है। सामान्यतोदृष्ट कार्य-कारण द्वारा नही होता। न्याय के अनुसार कार्य के अव्यवहित नियत पूर्ववर्ती घटना को कार्य कहते है और कारण के नित्य, अव्यवहित परवर्ती घटना को कार्य कहते है।

(१) **पूर्ववत्**—'पूर्व' का अर्थ है पहले अथवा कारण और वत् का अर्थ है 'जैसा' या अनुसार। इस प्रकार पूर्ववत् अनुमान वह है जो पहले के जैसा हो अर्थात् जिसमे कारण के अनुसार कार्य का अनुमान लगाया गया हो। इस प्रकार पूर्ववत् अनुमान में वर्तमान कारण से भविष्यत् कार्य का अनुमान लगा लिया जाता है जैसे मेघ को देखकर 'वर्षा होगी' यह अनुमान पूर्ववत् अनुमान है। पूर्ववत् अनुमान मे साधन और साध्य मे कार्य-कारण सम्वन्ध है।

(२) **शेषवत्**—न्याय मे 'शेष' का अर्थ है कार्य और 'वत्' का अर्थ है अनुसार। इस प्रकार कार्य के अनुसार कारण के अनुमान को शेपवत् अनुमान कहते है। पूर्ववत् अनुमान के विरुद्ध यहाँ पर व्याप्ति मे साधन तथा साध्य के वीच कार्य-कारण सम्वन्ध है। इसमे वर्तमान कार्य से विगत कारण का अनुमान किया जाता है—जैसे नदी में जल की अधिकता वेग अथवा गदलेपन को देखकर 'कही वर्षा हुई होगी' यह अनुमान शेपवत् है। किसी वस्तु के एक अश को परख कर शेष भाग मे उसी गुण का अनुमान करना भी शेपवत् अनुमान है—जैसे एक लोटे समुद्र के जल मे नमक पाकर समुद्र के शेष जल मे भी नमक का अनुमान शेपवत् अनमान है। शास्त्रकारो ने शेपवत् का एक अन्य भी अर्थ किया है। जव 'प्रसक्त' अथवा सम्भावितों का प्रतिषेध हो जाय और अन्य कोई सम्भावित पदार्थ न रह जाय तो जो वचता है उसे 'शेप' कहेगे। इस शेष के द्वारा अनुमान शेपवत् अनुमान कहा जायेगा।

जैसे—विशेष गुण होने के कारण 'शब्द' काल दिग् अथवा मन मे नही है। कानो से सुना जाने के कारण वह पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु अथवा आत्मा का भी विशेष गुण नही हो सकता। शेष बचा आकाश। दसवा द्रव्य कोई दूसरा है नही। अतः 'शब्द' आकाश का गुण है यह शेषवत् अनुमान से सिद्ध हुआ।

(३) **सामान्यतोदृष्ट**—साधारण रूप से परोक्ष वस्तु का जिसके द्वारा ज्ञान हो उसे 'सामान्यतोदृष्ट' अनुमान कहते है जैसे सूर्य को प्रात.काल पूर्व दिशा मे और सायकाल पश्चिम दिशा मे देखकर सूर्य मे गति का अनुमान लगाया जाता है किन्तु दिशा सूर्य मे गति का न कारण है और न कार्य ही है। इसमे एक से दूसरे का अनुमान कारण-कार्य सम्बन्ध के आधार पर नही वल्कि इस आधार पर होता है कि साधन और साध्य वरावर एक दूसरे के साथ पाये जाते हैं। उपरोक्त उदाहरण में सूर्य के दिशा परिवर्तन के साथ उसकी गति का अनुमान इसलिए लगा लिया गया क्योकि अन्यान्य वस्तुओ मे स्थान-परिवर्तन के साथ उनकी गतिया भी दिखलाई पड़ती है। अत सूर्य की गति न देखने पर भी स्थान परिवर्तन के आधार पर उसकी गति का अनुमान कर लिया गया। इस प्रकार ये अनुमान सामान्य सादृश्य के अनुभवो के द्वारा ही होते है। अत· सामान्यतोदृष्ट अनुमान उपमान से मिलता जुलता है।

(स) कार्य स्थापन प्रणाली के अनुसार भेद

व्याप्ति-स्थापन प्रणाली के प्रकार भेद के अनुसार नव्य न्याय ने अनुमान के तीन भेद किये है—केवलान्वयी, केवल व्यतिरेकी तथा अन्वय व्यतिरेकी। जहा

केवलान्वयी

साधन और साध्य मे नियत साहचर्य हो अर्थात् जहा व्याप्ति केवल अन्वय के द्वारा स्थापित होती है और जिसमे व्यतिरेक का सर्वथा अभाव रहता है, उसे केवलान्वयी अनुमान कहते हे जैसे—

सभी प्रमेय अभिधेय (नाम से पुकारने योग्य) है।
घट प्रमेय (ज्ञेय) है।
अत. घट अभिधेय है।

इस अनुमान के प्रथम वाक्य मे उद्देश्य और विधेय के वीच व्याप्ति सम्वन्ध है। इससे विधेय और उद्देश्य के किसी भी अश मे व्यतिक्रम नही हो सकता क्योंकि यह संभव नही है कि किसी भी ज्ञेय पदार्थ का नाम न दिया जाये। यहाँ व्याप्ति सिद्ध करने के लिए कोई व्यतिरेकी दृष्टान्त अर्थात् 'जो अभिधेय नही है वह अज्ञेय है' ऐसे दृष्टान्त नहीं है क्योकि यह पहले ही कहा जा चुका है कि ऐसी कोई वस्तु हम नही वता सकते जिसका कोई नाम न रखा जा सकता हो। इसलिये इस प्रकार की व्याप्ति का नाम केवलान्वयी है।

जहा साधन और साध्य की अन्वयमूलक व्याप्ति से नही वल्कि साध्य के अभाव के साथ साधन के अभाव की व्याप्ति के ज्ञान से अनुमान होता है उसे केवल

(२) केवल व्यतिरेकी

व्यतिरेकी अनुमान कहते है। इसमे पक्ष के अतिरिक्त साधन का ऐसा कोई दृटान्त नही जिसमे उसका साध्य के साथ अन्वय देखा जाय, अतः इस व्याप्ति की स्थापना व्यतिरेकी प्रणाली से ही हो सकती है। इस अनुमान का उदाहरण यो दिया जा सकता है—

अन्य भूतों से जो भिन्न नहीं है उसमे गन्ध नही है ।
पृथ्वी मे गन्ध है ।
अत. पृथ्वी अन्य भूतो से भिन्न है ।

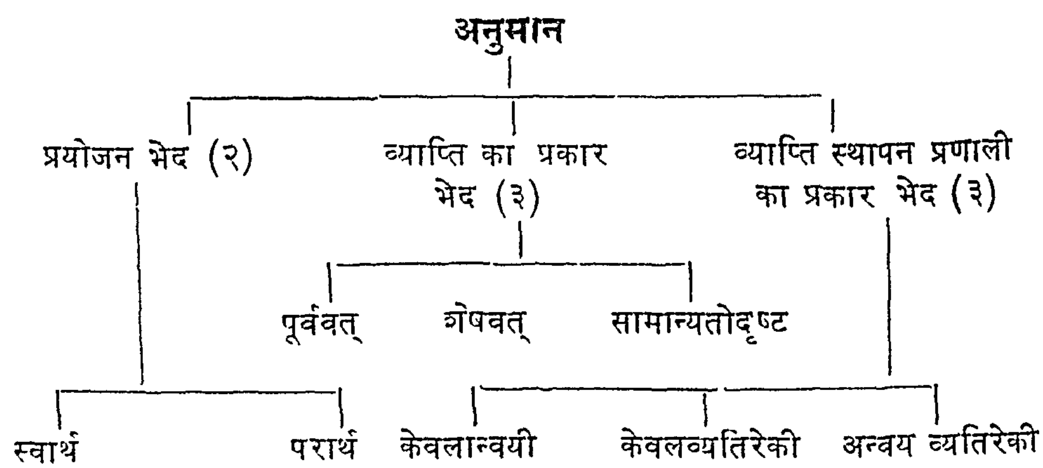
इस अनुमान मे प्रथम वाक्य मे साध्य के अभाव के साथ साधन के अभाव की व्याप्ति दिखलाई गई है। साधन 'गन्ध' को पक्ष 'पृथ्वी' के अतिरिक्त कही देखना सम्भव नही है । अतः साधन और साध्य मे अन्वयमूलक व्याप्ति नही स्थापित हो सकती । इस प्रकार यहाँ अनुमान केवल व्यतिरेकमूलक व्याप्ति के आधार पर किया गया है।

(३) अन्वय व्यतिरेकी

जहाँ साधन और साध्य का सम्बन्ध अन्वय तथा व्यतिरेक दोनों के द्वारा स्थापित किया गया हो वहाँ अन्वय-व्यतिरेकी अनुमान होता है । इसमे व्याप्ति का ज्ञान अन्वय और व्यतिरेक दोनों की सम्मिलित प्रणाली पर निर्भर करता है—साधन के उपस्थित रहने पर साध्य भी उपस्थित रहता है । साध्य के अनुपस्थित रहने पर साधन भी अनुपस्थित रहता है । अन्वयव्यतिरेकी अनुमान का उदाहरण निम्नलिखित युग्म अनुमान से दिया जा सकता है—

(१) सभी धूम्रवान् पदार्थ वह्निवान है,
पर्वत धूम्रवान् है,
अत· पर्वत वह्निमान् है ।

(२) सभी वह्निहीन पदार्थ धूम्रहीन है,
पर्वत धूम्रवान् है,
अत पर्वत वह्निमान् है ।



पाश्चात्य न्याय और भारतीय न्याय में अन्तर

(१) **तार्किक वाक्य के प्रकारों में अन्तर**—पाश्चात्य तर्कशास्त्रियो ने तार्किक वाक्य तीन प्रकार के माने है निरपेक्ष, हेतु फलाश्रित और वैकल्पिक । दूसरी ओर भारतीय तर्कशास्त्रियो ने तार्किक वाक्य केवल निरपेक्ष वाक्य माने है ।

(२) **अनुमान की प्रक्रिया के सोपान**—जैसा कि पीछे बतलाया जा चुका है, पाश्चात्य तर्कशास्त्री अनुमान की प्रक्रिया मे केवल तीन सोपान मानते है जबकि दूसरी ओर भारतीय तर्कशास्त्रियो ने परार्थानुमान मे पाँच अवयव माने है ।

(३) **उपनय**—पाश्चात्य न्यायशास्त्र मे उपनय जैसा कोई पद नही है। भारतीय तर्कशास्त्र मे उपनय हेतु वाक्य और उदाहरण का समन्वय करता है जो कि अनुमान के लिये अत्यन्त आवश्यक है। इस दृष्टि से प्राचीन भारतीय न्यायशास्त्र प्राचीन पाश्चात्य न्याय से कही अधिक श्रेष्ठ है।

(४) **आकार और द्रव्य विषयक सत्यता**—प्राचीन पाश्चात्य तर्कशास्त्र मे केवल आकार विषयक सत्यता सिद्ध की जाती थी किन्तु भारतीय तर्कशास्त्रियो ने आकार विषयक सत्यता के साथ-साथ द्रव्य विषयक सत्यता को सिद्ध करना भी आवश्यक माना है।

(५) **प्रयोजन के अनुसार अनुमान का भेद**—भारतीय तर्कशास्त्री प्रयोजन के अनुसार स्वार्थानुमान और परार्थानुमान मे भेद करते है। इस प्रकार का भेद पाश्चात्य तर्कशास्त्र मे नही किया गया है।

(६) **सामान्य और विशेष वाक्यों का भेद**—पाश्चात्य तर्कशास्त्र मे सामान्य और विशेष वाक्यो मे भेद किया गया है। भारतीय तर्कशास्त्री इस प्रकार का कोई भेद नही करते। यह भारतीय अनुमान पद्धति मे कमी है।

(७) **आकार और सयोग का विवेचन**—पाश्चात्य तर्कशास्त्रियो ने हेतु के विवेचन मे आकार और सयोग पर भी ध्यान दिया है। भारतीय न्यायशास्त्रियो ने इस ओर कोई ध्यान नही दिया है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जहाँ भारतीय और पाश्चात्य न्यायशास्त्र मे अनुमान के विषय मे कुछ समानतायें है वहाँ उनमे भेद भी है। इन भेदो से कही तो भारतीय न्यायशास्त्र आगे बढ गया है और कही वह पाश्चात्य तर्कशास्त्र से पीछे रह गया है।

सारांश

प्रमाण विचार—वस्तुओ की अभिव्यक्ति को ज्ञान कहते है। ज्ञान के दो भेद है—(१) प्रमा, (२) अप्रमा। प्रमा के चार भेद है—(१) प्रत्यक्ष, (२) अनुमान, (३) उपमान, (४) शब्द।

प्रत्यक्ष—प्रत्यक्ष इन्द्रिय और अर्थ के सन्निकर्ष से उत्पन्न होता है। प्रत्यक्ष के दो भेद है—(१) लौकिक, (२) अलौकिक। लौकिक के दो भेद है—(१) बाह्य पाँच प्रकार का, (२) मानस अथवा (१) सविकल्प, (२) निर्विकल्प और (३) प्रत्यभिज्ञा। अलौकिक प्रत्यक्ष के तीन भेद हैं—(१) सामान्य लक्षण, (२) ज्ञान लक्षण, (३) योगज।

उपमान—संज्ञा-संज्ञि सम्बन्ध के ज्ञान को उपमान कहते है।

शब्द—शब्द आप्तवाक्य है। अर्थ के विषय की दृष्टि से शब्द के दो भेद हैं—(१) दृष्टार्थ, (२) अदृष्टार्थ। शब्द की उत्पत्ति की दृष्टि से शब्द के दो भेद हैं—(१) वैदिक, (२) लौकिक।

वाक्य विवेचन—वाक्य क्रमबद्ध पदों का समूह है। वाक्यार्थ बोध के चार कारण है—(१) आकाक्षा, (२) योग्यता, (३) सन्निधि, (४) तात्पर्य ज्ञान। न्याय परतः प्रामाण्यवादी हैं।

अभ्यास के लिये प्रश्न

प्रश्न १. भारतीय अनुमान की प्रकृति समझाकर लिखो और उसकी पाश्चात्य न्याय से तुलना करो। (यू० पी० बोर्ड १९६१)

प्रश्न २. भारतीय तर्कशास्त्र मे अनुमान की प्रकृति क्या है और वह कितने प्रकार का होता है ? (यू० पी० बोर्ड १९६०)

प्रश्न ३. भारतीय तर्कशास्त्र के अनुसार अनुमान का स्वरूप और उसके दो भेद—स्वार्थानुमान और परार्थानुमान विस्तारपूर्वक समझाइये । (यू० पी० बोर्ड १९६९)

प्रश्न ४. भारतीय अनुमान मे व्याप्ति किसे कहते हैं और वह किस प्रकार प्राप्त होती है ? (यू० पी० बोर्ड १९७१)

प्रश्न ५ प्रमा और अप्रमा का अन्तर स्पष्ट कीजिये । प्रमा के विभिन्न प्रकारो की सक्षिप्त व्याख्या कीजिये । (प्रयाग १९७४, ७५)

प्रश्न ६. न्याय दर्शन के अनुसार विभिन्न प्रमाण कौन से हैं ? विवेचना कीजिये । (प्रयाग १९७५)

प्रश्न ७. स्वार्थानुमान और परार्थानुमान का अन्तर स्पष्ट कीजिये । परार्थानुमान के अवयवो का उदाहरण सहित वर्णन कीजिये । (प्रयाग १९७५)

प्रश्न ८. व्याप्ति क्या है ? अन्वय व्याप्ति और व्यतिरेक व्याप्ति का अन्तर स्पष्ट कीजिये । (प्रयाग १९७४, १९७५)

प्रश्न ९. अनुमान के विभिन्न प्रकारो का वर्णन कीजिये । (प्रयाग १९७४)

प्रश्न १०. भारतीय तर्कशास्त्र मे अनुम न प्रक्रिया का वर्णन कीजिये । तर्कशास्त्र की अनमान प्रक्रिया से यह किम प्रकार भिन्न है ? (प्रयाग १९७३)

१५

परोक्ष अनुमान : न्याय वाक्य

(MEDIATE INFERENCE : SYLLOGISM)

तर्कशास्त्रियो ने अनुमान के दो प्रकार माने है—अनन्तरानुमान (Immediate Inference) और सान्तरानुमान (Mediate Inference) । इनमे अन्तरानुमान का विवरण पीछे अध्याय १३ मे दिया जा चुका है प्रस्तुत अध्याय मे सान्तरानुमान का विवरण दिया जायेगा

न्याय वाक्य की परिभाषा

न्याय वाक्य सान्तरानुमान का वह प्रकार है जिसमे दिये हुए दो वाक्यो से हेतु नामक किसी मध्यम पद के द्वारा ऐसा निष्कर्ष निकाला जाता है जो आधार वाक्यों की अपेक्षा अधिक व्यापक नही होता । इसका कारण यह है कि न्याय वाक्य निगमनात्मक अनुमान का एक रूप है । निगमन की प्रक्रिया मे एक सामान्य तर्कवाक्य से विशेष निष्कर्ष निकाला जाता है और इस प्रकार अनुमान आधार वाक्य से अधिक व्यापक नही होता । न्याय वाक्य का स्वरूप निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्ट होता है —

सब मनुष्य मरणशील है ।
सब भारतवासी मनुष्य है ।
∴ सब भारतवासी मरणशील है ।

उपरोक्त उदाहरण मे अन्तिम तर्कवाक्य अर्थात् निष्कर्ष प्रथम आधार वाक्य से कम व्यापक है । उपरोक्त न्याय वाक्य मे बीच का वाक्य हेतु है क्योकि उसी के आधार पर दिये हुए तर्कवाक्य से निष्कर्ष निकाला गया है । सम्पूर्ण न्याय वाक्य में तीन पद है मनुष्य, भारतीय और मरणशील । प्रत्येक न्याय वाक्य मे ये तीन पद होते है ।

न्याय वाक्य की रचना

न्याय वाक्य के तीन वाक्यो मे से जिससे निष्कर्ष निकाला जाता है वह आधार वाक्य (Premise) कहलाता है और जो निष्कर्ष निकाला जाता है वह निगमन (Conclusion) कहलाता है । निगमन का उद्देश्य आश्रय या पक्ष पद (Minor Term) कहा जाता है और विधेय साध्य या साध्य पद (Major Term) कहा जाता है । उपरोक्त उदाहरण मे भारतीय पक्ष पद है और मरणशील साध्य पद है । आधार वाक्यो मे दो वार आने वाला और अन्य दो पदो मे सम्वन्ध स्थापित करने वाला पद हेतु पद (Middle Term) कहलाता है । उपरोक्त उदाहरण मे मनुष्य हेतु पद है । मनुष्य होने के कारण ही समस्त भारतीयो की मरणशीलता का अनुमान लगाया गया है । साध्य और पक्ष पद अन्त्य पद भी कहे जाते है क्योकि ये तर्कवाक्य

के दोनो अन्तिम सिरो पर होते हैं। मध्य में होने के कारण अंग्रेजी मे हेतु पद को मध्यम पद कहा जाता है। मध्यम पद अन्त्य अथवा चरम पदो (Extremes) को अलग करता है। यह दोनों आधार वाक्यो में आता है और दोनों मे समान रूप से होता है। मध्यम पद प्रथम पद और अन्तिम पद मे सम्बन्ध स्थापित करता है। इस प्रकार उसका कार्य मध्यस्थ पद जैसा है, इसलिये भी यह मध्यम पद कहलाता है। दीर्घ वाक्य मे अथवा साध्य वाक्य मे दीर्घ पद की मध्यम पद से तुलना की जाती है और पक्ष वाक्य में पक्ष पद की मध्यम पद से तुलना की जाती है। इससे आश्रय पद और पक्ष पद में सम्बन्ध स्थापित होता है। मध्यम पद के कारण ही आधार वाक्यो से कोई निष्कर्ष निकाला जाता है। अस्तु निष्कर्ष पर पहुँचने के लिये मध्यम पद अत्यन्त आवश्यक है। पीछे दिये हुये वाक्यो मे 'मरणशील' दीर्घ पद है क्योकि यह निष्कर्ष का विधेय है। 'भारतीय' पक्ष पद अथवा ह्रस्व पद है क्योकि यह निष्कर्ष का उद्देश्य है। 'मनुष्य' मध्यम पद है क्योंकि वह दोनों आधार वाक्यों मे उपस्थित है और उसी के कारण निष्कर्ष निकाला गया है। पहला वाक्य दीर्घ वाक्य है क्योंकि उसमे दीर्घ पद का प्रयोग किया गया है। दूसरा आधार वाक्य पक्ष वाक्य अथवा ह्रस्व वाक्य है क्योकि उसमे पक्ष पद अथवा ह्रस्व पद का प्रयोग किया गया है। न्याय वाक्य के तार्किक रूप मे दीर्घ वाक्य सबसे पहले आता है और उसके बाद ह्रस्व वाक्य तथा अन्त मे निष्कर्ष वाक्य आता है।

न्याय वाक्यों के विभिन्न अंगों की विशेषतायें

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि न्याय वाक्य के तीन अंग दीर्घ वाक्य, ह्रस्व वाक्य और निगमन अथवा निष्कर्ष वाक्य की मुख्य विशेषतायें निम्नलिखित हैं :—

(१) **दीर्घ वाक्य**—यह वह वाक्य है जिसमें दीर्घ पद का प्रयोग किया जाता है और दीर्घ पद की मध्यम पद से तुलना की जाती है। यह न्याय वाक्य मे सबसे पहले आता है।

(२) **ह्रस्व वाक्य**—इसमे ह्रस्व पद का प्रयोग किया जाता है और उसकी मध्यम पद से तुलना की जाती है तथा यह दीर्घ वाक्य के बाद आता है।

(३) **निष्कर्ष**—आधार वाक्यो के अनुमान के आधार पर निकले हुए वाक्य को निष्कर्ष कहा जाता है।

न्याय वाक्य की विशेषतायें

न्याय वाक्य की निम्नलिखित विशेषतायें उसे अनुमान के अन्य प्रकारो से भिन्न दिखलाती है—

(१) **दो आधार वाक्यो से निष्कर्ष**—न्याय वाक्य मे दो आधार वाक्य होते हैं और इनमे से किसी एक से नही बल्कि दोनो से मिलाकर निष्कर्ष निकाला जाता है। यह निष्कर्ष दोनो वाक्यों का योग नही होता बल्कि उनके मेल के आवश्यक परिमाण से निकलता है। न्याय वाक्य के पीछे दिये गये उदाहरण मे 'सब भारतीय मनुष्य हैं' यह निष्कर्ष पहले और दूसरे दोनो ही तर्कवाक्यों का सम्मिलित परिणाम है। यहाँ पर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि अनन्तरानुमान मे एक ही आधार वाक्य से निष्कर्ष निकाला जाता है और दूसरी ओर न्याय वाक्य मे दो से अधिक आधार वाक्यो से निष्कर्ष निकाला जाता है। इस प्रकार दो आधार वाक्यो से निष्कर्ष

निकालने की विशेषता के कारण न्याय वाक्य अनन्तरानुमान और न्यायमाला से अलग पहचाना जा सकता है।

(२) **निगमन आधार वाक्यो से अधिक व्यापक नहीं होता**—न्याय वाक्य मे अनुमान से जो निष्कर्ष निकाला जाता है वह आधार वाक्यो से अधिक व्यापक नही हो सकता क्योकि निगमनात्मक विधि मे निष्कर्ष आधार वाक्य से कम सामान्य होता है। पीछे दिये गये उदाहरण मे 'सब भारतीय मरणशील हैं' यह निष्कर्ष 'सब मनुष्य मरणशील हैं' से कम सामान्य है क्योकि भारतीय कुछ थोडे से मनुष्यो को कहा जाता है, मनुष्यो की सख्या भारतीयो से कही अधिक है। न्याय वाक्य की यह विशेषता उसको अन्य प्रकार के निगमनात्मक और आगमनात्मक अनुमानो से अलग करती है क्योकि आगमन मे निष्कर्ष आधार वाक्यों से अधिक व्यापक होता है।

(३) **निष्कर्ष का सत्य आधार वाक्यों के सत्य पर निर्भर है**—न्याय वाक्य मे यदि आधार वाक्य सत्य है तो निगमन भी सत्य होगा। इस प्रकार निष्कर्ष की सत्यता आधार वाक्यों के सत्य पर निर्भर होती है किन्तु दूसरी ओर आधार वाक्यो के असत्य होने से निष्कर्ष का असत्य होना आवश्यक नही है। न्याय वाक्य की इस विशेषता के कारण वह आकार विषयक (Formal) सत्यता रखता है द्रव्य विषयक (Material) सत्यता नही रखता। उसका सत्य होना आधार वाक्यो के सत्य होने पर निर्भर है। पीछे दिये गये उदाहरण मे यदि यह ठीक है कि सभी मनुष्य मरणशील होते है और सभी भारतीय मनुष्य है तो यह कहा जा सकता है कि सभी भारतीय मरणशील है।

न्याय वाक्य के प्रकार

तर्कशास्त्रियो ने विभिन्न दृष्टियो से न्याय वाक्य के भिन्न-भिन्न प्रकार बतलाये है। शुद्धता की दृष्टि से न्याय वाक्यो को दो वर्गो मे बाँटा गया है—शुद्ध (Pure) और मिश्रित (Mixed)। शुद्ध न्याय वाक्य मे सभी वाक्य एक ही प्रकार के होते है, मिश्रित न्याय वाक्य मे वे एक ही प्रकार के नही होते। सम्बन्ध की दृष्टि से शुद्ध न्याय वाक्यो को निम्नलिखित तीन प्रकारो मे बाटा गया है—

(१) **शुद्ध निरपेक्ष न्याय वाक्य** (Pure Categorical Syllogism)—जिस न्याय वाक्य मे तीनो ही वाक्य निरपेक्ष होते है वह शुद्ध निरपेक्ष न्याय वाक्य कहलाता है।

(२) **शुद्ध हेतु फलाश्रित न्याय वाक्य** (Pure Hypothetical Syllogism)—यदि किसी न्याय वाक्य मे सभी वाक्य हेतु फलाश्रित है तो वह शुद्ध हेतु फलाश्रित न्याय वाक्य कहलाता है।

(३) **शुद्ध वैकल्पिक न्याय वाक्य** (Pure Disjunctive Syllogism)—यदि किसी न्याय वाक्य मे सभी वाक्य हेतु फलाश्रित है तो वह शुद्ध हेतु फलाश्रित न्याय वाक्य कहलाता है।

मिश्रित न्याय वाक्य को निम्नलिखित तीन प्रकारो मे बाँटा गया है :—

(१) **हेतु फलाश्रित निरपेक्ष न्याय वाक्य** (Hypothetical Categorical Syllogism)—इसमे दीर्घ वाक्य हेतु फलाश्रित होता है और ह्रस्व वाक्य तथा निष्कर्ष निरपेक्ष होते है। इसलिए इसको हेतु फलाश्रित निरपेक्ष न्याय कहा जाता है।

(२) **वैकल्पिक निरपेक्ष न्याय वाक्य** (Disjunctive Categorical Syllo-

gism)—जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, इसमे दीर्घ वाक्य वैकल्पिक होता है और ह्रस्व वाक्य तथा निष्कर्ष निरपेक्ष वाक्य होता है।

(३) **उभयतोपाश** (Dilemma)—इसमे दीर्घ वाक्य मिश्रित हेतु फलाश्रित वाक्य होता है, ह्रस्व वाक्य वैकल्पिक होता है तथा निष्कर्ष वाक्य वैकल्पिक अथवा निरपेक्ष होता है।

न्याय वाक्य की यथार्थता के आधार

तर्कशास्त्रियों ने कुछ ऐसे नियमो को पता लगाया है जिनका पालन करने से यथार्थ न्याय वाक्य पर पहुँचा जा सकता है। दूसरे शब्दों मे, न्याय वाक्य की यथार्थता इन नियमों पर आधारित है। न्याय वाक्य की यथार्थता के ये आधार निम्नलिखित है :—

(१) **तीन पद**—जैसा कि पीछे बतलाया जा चुका है, यथार्थ न्याय वाक्य मे केवल तीन ही पद होने चाहिये, न तीन से कम और न तीन से अधिक। ये तीन पद दीर्घ पद, ह्रस्व पद और मध्य पद हैं। न्याय वाक्य मे इनमे से प्रत्येक का दो बार प्रयोग किया जाता है किन्तु इनके अतिरिक्त किसी अन्य पद का प्रयोग नही किया जाता। यदि न्याय वाक्य मे केवल दो पद है तो उससे अनन्तरानुमान की उपलब्धि होती है। तीन से अधिक पद होने पर अनुमानमाला प्राप्त होती है। अस्तु, निरपेक्ष न्याय वाक्य मे केवल तीन पद होते हैं।

चतुष्पदी दोष

उपरोक्त नियम का उल्लघन करने से चतुष्पदी दोष (Fallacy of Four Terms) उत्पन्न होता है जिसका उदाहरण निम्नलिखित है :—

राम मेरा मित्र है।
मोहन राम का मित्र है।
∴ मोहन मेरा मित्र है।

इस न्याय वाक्य मे चार पद हैं राम, मोहन का मित्र, मोहन और मेरा मित्र। इसलिये यह यथार्थ न्याय वाक्य नही है। पहले दो आधार वाक्यो से तीसरा निष्कर्ष नही निकलता।

भिन्नार्थकता

न्याय वाक्य के यथार्थ होने के लिये प्रत्येक पद का अर्थ निश्चित होता है। यदि कोई पद एक से अधिक अर्थ रखता है तो भिन्नार्थकता (Ambiguity) का दोष उत्पन्न हो जाता है। तर्कशास्त्र के अनुसार भिन्नार्थक शब्द एक पद नही होता बल्कि उसके जितने अर्थ होते हैं वह उतने ही पद के बराबर माना जाता है क्योकि हरएक अर्थ एक स्वतन्त्र पद होता है। दीर्घ, ह्रस्व अथवा मध्यम पद मे से कोई भी भिन्नार्थक हो सकता है, निम्नलिखित उदाहरण देखिये।

(अ) **भिन्नार्थक दीर्घ पद** (Ambiguous Major)—

कोई धैर्यवान् मनुष्य भागता नही है।
राम धैर्यवान् मनुष्य है।
∴ राम भागता नही है।

उपरोक्त उदाहरण में दीर्घ वाक्य मे भागने का अर्थ डर से भागना है जब कि निष्कर्ष वाक्य मे उसका अर्थ साधारण तरीके से भागना अर्थात् दौड़ना है। इस प्रकार इस न्याय वाक्य में दीर्घ पद भिन्नार्थक है।

(ब) **भिन्नार्थक ह्रस्व पद** (Ambiguous Minor)—यह दोष उस न्याय वाक्य मे पाया जाता है कि जिसमे ह्रस्व पद भिन्नार्थक होता है। उदाहरण के लिये—

कोई मनुष्य उड़ने वाला नही है।
कोई द्विज उड़ने वाला नही है।
∴ सब द्विज मनुष्य है।

इस न्याय वाक्य मे ह्रस्व वाक्य मे द्विज का अर्थ ब्राह्मण और निष्कर्ष मे पक्षी है इसलिये यह नया वाक्य अयथार्थ हो गया है।

(स) **भिन्नार्थक मध्यम पद** (Ambiguous Middle)—

नीला एक रंग है।
आकाश नीला है।
∴ आकाश एक रग है।

इस उदाहरण मे मध्यम पद का दो अर्थो मे प्रयोग हुआ है। इसलिये यहाँ पर भिन्नार्थक मध्यम पद दोष (Fallacy of Ambiguous Middle) है।

(२) **तीन वाक्य**—यथार्थ न्याय वाक्य मे तीन वाक्य होते है। इससे अधिक अथवा इससे कम न्याय वाक्य होने से वह अयथार्थ हो जाता है। यदि न्याय वाक्य तीन से अधिक होते है तो युक्ति माला बन जाती है और यदि तीन से कम अर्थात् दो होते है तो अनन्तरानुमान होता है। अस्तु, तीन वाक्यो का होना न्याय वाक्य को इन दोनो से अलग करता है।

(३) **मध्य पद कम से कम एक बार व्याप्त**—न्याय वाक्य के यथार्थ होने के लिये यह आवश्यक है कि मध्यम पद अथवा हेतु पद कम से कम एक बार आधार वाक्यो मे अवश्य व्याप्त हो। इसके बिना पहले और अन्तिम पद मे कोई सम्बन्ध स्थापित नही हो सकता। मध्यम पद ही इन दोनो मे सम्बन्ध स्थापित करता है। यदि मध्यम पद अव्याप्त है तो आधार वाक्यो से कोई निष्कर्ष नही निकाला जा सकता। उदाहरण के लिए—

सब मनुष्य मरणशील हैं।
सब कौवे मरणशील है।

इससे कोई निष्कर्ष नही निकल सकता। इस नियम को भग करने से अव्याप्त मध्यम पद दोष (Fallacy of Undistributed Middle) उत्पन्न होता है। उपरोक्त उदाहरण मे यदि यह निष्कर्ष निकाला जाये कि—

सब मनुष्य मरणशील हैं।
सब कुत्ते मरणशील है।
∴ सब कुत्ते मनुष्य है।

तो यह न्याय वाक्य अव्याप्त मध्यम पद दोष के कारण अयथार्थ न्याय वाक्य बन जाता है।

(४) **आधार वाक्यों में अव्याप्त पद निष्कर्ष में व्याप्त नही हो सकता**—न्याय वाक्य मे निष्कर्ष का सत्य आधार वाक्यो के सत्य पर निर्भर करता है। इसलिए जो पद आधार वाक्यो मे व्याप्त नही है वह निष्कर्ष मे व्याप्त नही हो सकता निष्कर्ष वाक्य आधार वाक्य से अधिक सामान्य नही हो सकता। इस नियम को भग

करने से अनियमित दीर्घ पद दोष (Fallacy of Illicit Major) और अनियमित ह्रस्व पद दोष (Fallacy of Illicit Minor) उत्पन्न होता है।

(अ) **अनियमित दीर्घ पद दोष**—सब हिन्दू आर्य हैं।
कोई मुसलमान हिन्दू नहीं है।
∴ कोई मुसलमान आर्य नहीं हैं।

(ब) **अनियमित ह्रस्व पद दोष**—इस दोष का उदाहरण निम्नलिखित न्याय वाक्य से स्पष्ट होता है—

सब मनुष्य मरणशील हैं।
सब मनुष्य बुद्धिमान् हैं।
∴ सब बुद्धिमान् प्राणी मरणशील हैं।

(स) **दो निषेध वाचक वाक्यों से कोई निष्कर्ष नहीं निकल सकता**—निषेध वाचक वाक्य मे विधेय का उद्देश्य के विषय में निषेध किया जाता है। यदि किसी न्याय वाक्य मे दोनों आधार वाक्य निषेध वाचक हैं तो मध्यम पद से दीर्घ पद और ह्रस्व पद का कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं होता। अस्तु, आधार वाक्यों से कोई निष्कर्ष नहीं निकल सकता क्योंकि निष्कर्ष निकालने के लिए दीर्घ पद और ह्रस्व पद का मध्यम पद से सम्बन्ध होना अत्यन्त आवश्यक है। उदाहरण के लिये निम्नलिखित वाक्य देखिये :—

कोई भारतीय पशु नहीं है।
कोई योरुपीय पशु नहीं है।

उपरोक्त वाक्यो से कोई निष्कर्ष नहीं निकल सकता। इस नियम का उल्लंघन करने में निषेधात्मक आधार वाक्यों का दोष (Fallacy of Negative Premises) उत्पन्न होता है। जैसे—

कोई भी मनुष्य देश के अपमान को नहीं सह सकता।
राम देश के अपमान को नहीं सह सकता।
∴ राम मनुष्य है।

उपरोक्त निष्कर्ष आधार वाक्यो से नहीं निकलता।

(६) **एक आधार वाक्य निषेधात्मक होने पर निष्कर्ष अवश्य निषेधात्मक होगा**—न्याय वाक्य मे दोनो आधार वाक्य निषेधात्मक नहीं हो सकते। परन्तु आधार वाक्यों मे से एक के निषेधात्मक होने से निष्कर्ष निकाला जा सकता है किन्तु यह निष्कर्ष निषेधात्मक होगा। अस्तु, यदि निषेधात्मक निष्कर्ष निकालना है तो आधार वाक्यो मे कम से कम एक निषेधात्मक अवश्य होना चाहिये। उदाहरण के लिए—

कोई भी 'अ' 'ब' नहीं हैं।
सब 'ब' 'इ' हैं।
∴ कुछ 'इ' 'अ' नहीं हैं।

(७) **दो अस्तिवाचक आधार वाक्यों का निष्कर्ष भी अस्तिवाचक होगा**—यदि किसी न्याय वाक्य मे दोनो आधार वाक्य अस्तिवाचक हैं तो निष्कर्ष भी अस्तिवाचक होगा क्योंकि अस्तिवाचक साध्यवाक्य साध्यपद और हेतु पद में होगा और अस्तिवाचक पक्षवाक्य पक्षपद और हेतु पद में अस्तिवाचक ही होगा। इस नियम

से स्पष्ट है कि इनसे निकला हुआ निष्कर्ष अस्तिवाचक ही होगा। इस नियम का विलोम भी सत्य है अर्थात् यदि निष्कर्ष अस्तिवाचक है तो उसके आधार वाक्यों मे से दोनो को अवश्य अस्तिवाचक होना चाहिये। यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि यदि आधार वाक्य मे से एक भी निषेधवाचक होगा तो निगमन भी निषेधवाचक होता है।

(८) दो विशेष वाक्यों से कोई निष्कर्ष नहीं निकलता—यदि किसी न्याय वाक्य मे दोनो आधार वाक्य विशेष हो तो उससे कोई निष्कर्ष नही निकल सकता विशेष आधार वाक्य II, IO, OI और OO हो सकते है। इन वाक्यो के सयोगो की परीक्षा करने से यह मालूम होता है कि इनमे कोई निष्कर्ष नही निकल सकता। सबसे पहले II आधार वाक्यो को लीजिये। I वाक्य मे उद्देश्य और विधेय मे से कोई भी व्याप्त नही होता। यदि दोनो आधार वाक्य I है तो उनमे कोई भी पद व्याप्त नही होगा। न्याय वाक्य के तीसरे नियम के अनुसार मध्यम पद को भी कम से कम एक बार व्याप्त होना चाहिए। अस्तु, यदि दोनो आधार वाक्य I है तो उनसे कोई निष्कर्ष नही निकल सकता।

IO तथा OI आधार वाक्य होने पर एक आधार वाक्य निषेधात्मक होता है और इसलिये केवल एक पद व्याप्त होता है। तीसरे नियम के अनुसार यह पद मध्यम पद होना चाहिए अन्यथा अव्याप्त मध्यम पद का दोष हो जाता है। चूँकि आधार वाक्य मे से एक निषेधात्मक है इसलिये निष्कर्ष भी निषेधात्मक होगा। निष्कर्ष के निषेधात्मक होने से उसका दीर्घ पद व्याप्त होगा जो कि दीर्घ वाक्य मे अव्याप्त है। इससे अव्याप्त मध्यम पद अथवा अनियमित दीर्घ पद का दोष हुए विना आधार वाक्यो से कोई निष्कर्ष नही निकाला जा सकता। अस्तु, स्पष्ट है कि आधार वाक्य IO अथवा OI होने पर निष्कर्ष निकलना सम्भव नही है। अब यदि आधार वाक्य OO है जो कि दोनो निषेधात्मक वाक्य होगे तो न्याय वाक्य के पाँचवे नियम के अनुसार उनसे कोई निष्कर्ष नही निकल सकता। दो निषेधात्मक वाक्यो से कोई निष्कप नही निकलता।

(९) एक आधार वाक्य विशेष होने से निष्कर्ष विशेष निकलता है—यदि किसी न्याय वाक्य मे दो मे से एक आधार वाक्य विशेष है तो निष्कर्ष भी विशेष ही होता है। एक आधार वाक्य विशेष होने का अर्थ यह है कि दूसरा आधार वाक्य सामान्य होगा। इस प्रकार के आठ वाक्यो के सयोग बन सकते है AI, IA, AO, OA, EI, IE, EO, OE, इन आठ प्रकार के सयोगो मे से अन्तिम दोनो निषेधात्मक होने के कारण कोई निष्कर्ष नही दे सकते। इसलिए इनको तुरन्त छोड़ा जा सकता है। अन्य सयोगो को अलग-अलग परीक्षा करके यह देखा जाना चाहिए कि उनसे किस प्रकार निष्कर्ष निकलेगा।

(अ) AI तथा IA आधार वाक्य—इस प्रकार के आधार वाक्यो के सयोग मे दोनो आधार वाक्यो मे केवल एक पद व्याप्त होगा जिसे मध्यम पद होना चाहिए अन्यथा अव्याप्त मध्यम पद दोष हो जाता है। इस प्रकार यदि कोई निष्कर्ष निकल सकता है तो वह केवल I हो सकता है जो कि विशेष वाक्य है। अस्तु, जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, यदि न्याय वाक्य मे एक आधार वाक्य विशेष है तो निष्कर्ष भी विशेष होगा।

(ब) AO तथा OA आधार वाक्य—इन आधार वाक्यो मे केवल दो ही पद व्याप्त मिलते है क्योकि A वाक्य का उद्देश्य और O वाक्य का विधेय व्याप्त होते है। इनमे से एक को मध्यम पद होना चाहिये। अब चूंकि आधार वाक्यो मे से एक निषेधात्मक है इसलिये निष्कर्ष भी निषेधात्मक होगा। दूसरे, चूंकि आधार वाक्यों मे मध्यम पद के अतिरिक्त केवल एक ही पद व्याप्त है अतः निष्कर्ष मे भी एक ही पद व्याप्त हो सकता है और यह उसका विधेय होगा। उद्देश्य व्याप्त न होने से निष्कर्ष वाक्य विशेष वाक्य बन जायेगा। इससे उपरोक्त नवे नियम का समर्थन होता है।

(स) EI और IE वाक्य—इन दोनो आधार वाक्यो में भी केवल दो ही पद व्याप्त होते है क्योकि E वाक्य का उद्देश्य और विधेय व्याप्त पद होते है। इन दोनो व्याप्त पदो मे से एक को मध्यम पद और दूसरे को दीर्घ पद होना चाहिये क्योकि निष्कर्ष के निषेधात्मक होने से उसका विधेय व्याप्त हो जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि निष्कर्ष का उद्देश्य व्याप्त नही होता और इस तरह यह सिद्ध होता है कि यदि आधार वाक्य विशेष है तो निष्कर्ष भी विशेष होगा। दूसरी ओर IE सयोग से कोई निष्कर्ष नही निकल सकता। यह बात आगे दसवे नियम मे समझाई गई है।

उपरोक्त उदाहरणो से स्पष्ट है कि यदि आधार वाक्यो मे से कोई विशेष है तो निष्कर्ष भी अवश्य विशेष होगा। यहाँ यह स्मरणीय है कि इस नियम का विलोम सत्य नही है अर्थात् यदि निष्कर्ष विशेष है तो आधार वाक्यो मे से एक का विशेष होना अनिवार्य नही है। दोनो आधार वाक्य सामान्य होने पर भी निष्कर्ष विशेष हो सकता है।

(१०) दीर्घवाक्य विशेष और ह्रस्व वाक्य निषेधात्मक होने से कोई निष्कर्ष नहीं निकल सकता—यदि किसी न्याय वाक्य मे दीर्घ वाक्य विशेष है और ह्रस्व वाक्य निषेधात्मक है तो इससे निष्कर्ष निकालने पर अनियमित दीर्घ पद का दोष हो जाएगा क्योकि दीर्घ पद आधार वाक्य मे व्याप्त नही है।

न्याय वाक्य के पीछे दिये गये दस नियमो मे से पहले ६ मुख्य नियम कहलाते है और अन्तिम चार नियम गौण नियम कहलाते है क्योकि ये पहले छः नियमो के उपनियम है तथा इनका उल्लघन करने से मुख्य नियमो मे से किसी न किसी का उल्लघन होता है। न्याय वाक्य के उपरोक्त दस नियमो मे से पहला और दूसरा न्याय वाक्य की रचना से सम्बन्धित है अर्थात् वे यह बतलाते है कि न्याय वाक्य की रचना किस प्रकार होनी चाहिये। पहले नियम के अनुसार प्रत्येक न्याय वाक्य मे केवल तीन पद होने चाहिये। न्याय वाक्य का तीसरा और चौथा नियम यथार्थ न्याय वाक्यो मे पदो की व्याप्ति दिखलाते है। तीसरे नियम के अनुसार यथार्थ न्याय वाक्य मे आधार वाक्यों मे मध्यम पद कम से कम एक बार अवश्य व्याप्त होना चाहिये। चौथे नियम के अनुसार जो पद आधार वाक्यो मे व्याप्त नही है वह निष्कर्ष मे भी व्याप्त नही हो सकता। न्याय वाक्य के पांचवे नियम के अनुसार दो निषेधात्मक वाक्यो से कोई निष्कर्ष नही निकल सकता। छठे नियम के अनुसार यदि एक आधार वाक्य निषेधात्मक है तो निष्कर्ष भी निषेधात्मक होगा। सातवे नियम के अनुसार यदि दोनो आधार वाक्य अस्तिवाचक है तो निष्कर्ष भी अस्तिवाचक होगा। न्याय वाक्य का आठवां और नवां नियम वाक्यो के परिमाण से

सम्बन्ध रखता है। आठवे नियम के अनुसार यदि दोनों आधार वाक्य विशेष है तो उनसे कोई निष्कर्ष नही निकल सकता। नवे नियम के अनुसार यदि एक आधार वाक्य विशेष है तो निष्कर्ष भी विशेष होगा। न्याय वाक्य का दसवां नियम वाक्यों के गुण और परिमाण दोनो के विषय मे यह बतलाता है कि दीर्घ वाक्य के विशेष और ह्रस्व वाक्य के निषेधात्मक होने से कोई निष्कर्ष नही निकल सकता।

कुछ तर्कों की परीक्षा

अब कुछ तर्कों को न्याय वाक्यों मे रखकर उनके तार्किक दोषों की परीक्षा जा सकती है।

(१) कोई भी दार्शनिक सिद्धान्त सत्य नहीं हो सकता, क्योंकि सब दार्शनिक एक दूसरे की आलोचना करते हैं।

इस वाक्य को तर्क के रूप मे इस प्रकार लिखा जा सकता है —

सब दार्शनिक सिद्धान्त एक दूसरे की आलोचना करते है।
सब आलोचना किये जाने वाले सिद्धान्त असत्य होते है।
∴ कोई भी दार्शनिक सिद्धान्त सत्य नही है।

यह न्याय वाक्य अशुद्ध है क्योकि इसमे A A A वाक्यो का सयोग है जो कि न्याय वाक्य के चतुर्थ आकार के अनुसार अशुद्ध है। इस न्याय वाक्य का तार्किक रूपान्तर निम्नलिखित होगा :—

सब दार्शनिक सिद्धान्त एक दूसरे की आलोचना करने वाले है।
सब आलोचना करने वाले सिद्धान्त सत्य है।
सब सत्य वस्तुये अदार्शनिक सिद्धान्त नही है।
∴ सब सत्य वस्तुये अदार्शनिक सिद्धान्त है।

उपरोक्त न्याय वाक्य मे पहले तीनो वाक्य A है।

(२) यदि कोई छात्र असाधारण बुद्धिमान है तो वह प्रथम श्रेणी में परीक्षा [illegible] बुद्धिमान अवश्य होगा।

इस तर्क को निम्नलिखित रूप मे लिखा जा सकता है:—

सब असाधारण बुद्धिमान छात्र प्रथम श्रेणी मे पास होने वाले है।
राम प्रथम श्रेणी मे पास होने वाला है।
∴ राम असाधारण बुद्धिमान है।

उपरोक्त न्याय वाक्य मे तीनो वाक्य A वाक्य है। इसमे मध्यम पद अव्याप्त है अस्तु, यहाँ पर अव्याप्त मध्यम पद दोष है।

(३) दासता बुरी नही हो सकती क्योंकि अफलातून और अरस्तु जैसे दार्शनिक उसके पक्ष में थे।

दासता बुरी नही हो सकती क्योकि अफलातून और अरस्तू जैसे दार्शनिक उसके पक्ष मे थे, इस तर्क मे श्रद्धा उत्पन्न करने वाला दोष (Arguementem Advere Cundium) पाया जाता है। केवल अरस्तु और अफलातून जैसे प्रसिद्ध दार्शनिको के मत से पुष्ट होने के कारण ही दासता को अच्छा नही कहा जा सकता।

(४) केवल गुणी ही सुखी होते है। क्योकि राम सुखी नहीं है इसलिये वह गुणी नहीं है।

इस तर्क को निम्नलिखित रूप में लिखा जा सकता है :—

केवल गुणी ही सुखी हैं ।
राम सुखी नही है ।
∴ राम गुणी नही है ।

इस तर्क का रूपान्तर निम्नलिखित प्रकार से किया जायेगा :—

सब सुखी मनुष्य गुणी है ।
राम सुखी नही है ।
∴ राम गुणी है ।

उपरोक्त न्याय वाक्य मे चतुष्पदी दोष (Fallacy of Four Terms) है क्योकि इसमे मनुष्य, गुणी, राम और सुखी ये चार पद उपस्थित है ।

५. हमारी भारतीय सेना शूरवीरता के लिये प्रसिद्ध रही है । क्योंकि 'अ' भारतीय सेना का सैनिक है इसलिये 'अ' शूरवीर अवश्य है ।

इस तर्क को इस प्रकार लिखा जा सकता है :—

भारतीय सैनिक शूरवीर है :—
'अ' भारतीय सैनिक है ।
∴ 'अ' शूरवीर है ।

उपरोक्त न्याय वाक्य मे चतुष्पदी दोष है क्योकि इसमे भारतीय, सैनिक, शूरवीर और 'अ' ये चार पद उपस्थित है । इसमे विग्रह दोष (Fallacy of Division) भी है क्योकि समूह वाचक पद को असमूह वाचक पद के अर्थ मे प्रयोग किया गया है । सेना समूह वाचक शब्द है । सेना की शूरवीरता सब सैनिको के मिले-जुले प्रयास का परिणाम होती है । दूसरी ओर किसी विशेष सैनिक की शूरवीरता उसका व्यक्तिगत गुण है । अस्तु शूरवीर सेना के सदस्य होते हुये भी किसी सैनिक का शूरवीर होना आवश्यक नही है । किसी भी समूह का कोई गुण उसके प्रत्येक अंग के विषय मे लागू नही होता ।

६. दो और तीन पाँच होते हैं किन्तु दो और तीन दो संख्याएँ हैं । इसलिए पाँच भी दो सख्याएँ हैं ।

दो और तीन पाँच होते है किन्तु दो और तीन दो सख्यायें है । इसलिए पाँच भी दो सख्यायें है । यह तर्क दोषयुक्त है क्योकि इसमे संयोजन का दोष है । जब कोई पद मूल वाक्यो मे व्यक्तियो का द्योतक होता है और निगमन मे समूह का द्योतक हो जाता है तो उसमे सयोजन का दोष होता है । प्रस्तुत तर्क मे यही दोष पाया जाता है ।

७ स्नान स्वास्थ्य के लिये लाभप्रद है । अतः इन्फ्लून्जा का रोगी यदि स्नान करेगा तो स्वस्थ हो जायेगा ।

स्नान स्वास्थ्य के लिये लाभप्रद है । अत इन्फ्लून्जा का रोगी यदि स्नान करेगा तो स्वस्थ हो जायेगा यह तर्क दोषपूर्ण है । इसमे आकस्मिक दोष या उपाधि दोष पाया जाता है, जो बात सामान्य रूप से ठीक है उसे विशेष परिस्थिति मे भी ठीक मान लेने से आकस्मिक दोष (Fallacy of Accident) होता है । सामान्य रूप से स्नान करना स्वास्थ्य के लिए लाभदायक है किन्तु इन्फ्लून्जा के रोग की दशा व्यक्ति की सामान्य स्थिति नही है । इसलिये इस विशेष परिस्थिति मे स्नान करना उसके लिये लाभदायक होने के स्थान पर हानिकारक सिद्ध होगा ।

८. सभी घोड़े प्राणी है। सभी चिड़ियाँ प्राणी हैं। अतः सभी चिड़ियाँ घोड़े हैं।

सभी घोडे प्राणी है। सभी चिडियाँ प्राणी है। अतः सभी चिडियाँ घोडे हैं। इस तर्क को निम्नलिखित न्याय वाक्य मे लिखा जायेगा :—

सभी घोड़े प्राणी हैं।
सभी चिडियाँ प्राणी है।
सभी चिड़ियाँ घोडे है।

यह तर्क दूषित है क्योकि इसमे द्वितीय आकार मे तीनो ए वाक्य है। इसमे मध्यम पद प्राणी एक बार भी व्याप्त नही है। अस्तु, यहाँ पर अव्याप्त मध्यम पद दोष पाया जाता है।

(९) सभी अंग्रेज सभ्य हैं। कोई भारतीय अंग्रेज नही है, अतः कोई भारतीय सभ्य नही है।

सभी अंग्रेज सभ्य है, कोई भारतीय अग्रेज नही है, अत. कोई भारतीय सभ्य नही है। इस तर्क को निम्नलिखित रूप मे लिखा जा सकता है :—

सभी अग्रेज सभ्य है।
कोई भारतीय अंग्रेज नही है।
∴ कोई भारतीय सभ्य नही है।

उपरोक्त न्याय वाक्य दोपपूर्ण है क्योकि इसमे प्रथम आकार मे A E I का सयोग है। इस न्याय वाक्य मे साध्य वाक्य मे सभ्य पद अव्याप्त है। किन्तु वही पद निष्कर्ष मे व्याप्त है। इससे अव्याप्त साध्य पद दोप उत्पन्न होता है।

न्याय वाक्य का मूल्य
(Value of Syllogism)

न्याय वाक्य की उपयोगिता

वैज्ञानिक चिन्तन मे ज्ञात से अज्ञात का अनुभव करने की आवश्यकता होती है। अनुमान पूर्णतया नवीन ज्ञान नही है। वह हमारे वर्तमान ज्ञान के आधार पर भविष्य का ज्ञान है। इस प्रकार नवीन न होने पर भी वह अत्यन्त उपयोगी है। उसकी उपयोगिता अव्यक्त को व्यक्त करने मे है। वह हमे उन बातो का स्पष्ट बोध कराता है जो कि अनुमान लगाने से पहले हम नही जानते थे। इस प्रकार न्याय वाक्य की चिन्तन मे वडी उपयोगिता है। उसके आधार पर हम ज्ञात तथ्यो से अज्ञात तथ्यो के विपय मे अनुमान लगाते है। यह ठीक है कि न्याय वाक्य मे निष्कर्ष आधार वाक्यों से निकाला जाता है और वह पूर्णतया नवीन नही होता परन्तु फिर भी वह हमारे सामने कुछ ऐसी वातो को स्पष्ट करता है जिनको उस रूप मे हम पहले नही जानते थे। उदाहरण के लिये निम्नलिखित न्याय वाक्य लीजिये :—

ईमानदारी वाँछनीय है।
ईमानदारी सदगुण है।
∴ सदगुण वाँछनीय है।

उपरोक्त न्याय वाक्य मे ईमानदारी, उदारता, इत्यादि के विपय मे हमे यह ज्ञात था कि ये वाछनीय है और यह भी पता था कि ये सदगुण है। इस न्याय वाक्य मे इन दो आधार वाक्यो से यह निष्कर्ष निकाला गया कि सदगुण वाछनीय

है। इसी न्याय वाक्य को थोड़ा सा बदलकर एक अन्य रूप में रखा सकता है।

सद्गुण वाछनीय है।
ईमानदारी सद्गुण है।
∴ ईमानदारी वाँछनीय है।

उपरोक्त न्याय वाक्य में सद्गुणों के विषय में वांछनीयता का आरोप किया गया है और ईमानदारी एक सद्गुण है, इन दो आधार वाक्यों से यह निष्कर्ष निकाला गया है कि ईमानदारी वांछनीय है। उपरोक्त दोनो न्याय वाक्यो के उदाहरणो से निष्कर्ष की सत्यता आधार वाक्यो की सत्यता पर आधारित है। यदि आधार वाक्य सत्य हैं तो निष्कर्ष भी सत्य है। दोनों न्याय वाक्यों मे निष्कर्ष कोई न कोई नवीन बात उपस्थित करता है यद्यपि उसकी नवीनता से यह तात्पर्य नहीं है कि उसका आधार वाक्यों से कोई सम्बन्ध ही न हो। जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है जो बात आधार वाक्यों मे अव्यक्त रूप में उपस्थित होती है वही निष्कर्ष मे व्यक्त की जाती है।

न्याय वाक्य का कार्य

न्याय वाक्य की उपयोगिता के उपरोक्त विवेचन से उसका कार्य स्पष्ट होता है। संक्षेप में, न्याय वाक्य के कार्य निम्नलिखित हैं—

(१) **ज्ञात से अज्ञात की ओर ले जाना**—आगमनात्मक और निगमनात्मक दोनों प्रकार के न्याय वाक्यों में तर्क के द्वारा व्यक्ति ज्ञात आधार वाक्यो से अज्ञात निष्कर्ष पर पहुँचता है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित तर्क वाक्य देखिये—

कोई मनुष्य अमर नही है।
सुकरात मनुष्य है।
∴ सुकरात अमर नहीं है।

उपरोक्त न्याय वाक्य मे पहले दो आधार वाक्यों से हमें यह पता नहीं चलता कि सुकरात अमर नही है यद्यपि सुकरात के मनुष्य होने में उसकी नश्वरता छुपी हुयी है। प्रस्तुत न्याय वाक्यो मे निष्कर्ष मनुष्य और नश्वरता के ज्ञात सम्बन्ध के आधार पर सुकरात की नश्वरता के अज्ञात तथ्य को स्पष्ट करता है। इसी प्रकार जब हम जीवन मे नाना प्रकार के अनुभव प्राप्त करते हैं तो उन सब अनुभवों मे से कोई सामान्य सिद्धान्त निकालना न्याय वाक्य के बिना सम्भव नही होता। उदाहरण के लिए मनुष्य नश्वर प्राणी है, इस तथ्य पर पहुँचने के लिये भिन्न-भिन्न मनुष्यो के निरीक्षण के आधार पर निम्नलिखित न्याय वाक्य उपस्थित किया जा सकता है—

राम, मोहन, सोहन, नश्वर है।
राम, मोहन, सोहन, मनुष्य हैं।
∴ सब मनुष्य नश्वर हैं।

(२) **सामान्य सिद्धान्तों पर पहुँचना**—इस प्रकार न्याय वाक्य की सहायता से जीवन के विभिन्न क्षेत्रो में सामान्यीकरण की प्रक्रिया के द्वारा सामान्य सिद्धान्तो पर पहुँचा जाता है। वास्तव में सामान्यीकरण वैज्ञानिक पद्धति है, न्याय वाक्य उसे तर्कयुक्त सिद्ध करता है। इस दृष्टि से न्याय वाक्य सभी वैज्ञानिक तथ्यो की तार्किकता सिद्ध करता है।

(३) **अव्यक्त को व्यक्त करना**—न्याय वाक्य कोई सर्वथा नवीन ज्ञान नही

देता। उसका कार्य तो केवल आधार वाक्यो मे छिपे हुए सामान्य अथवा विशिष्ट निष्कर्ष को व्यक्त कर देना है। इसके उदाहरण पीछे दिये जा चुके हैं।

(४) **वैज्ञानिक युक्ति प्रदान करना**—अन्त मे न्याय वाक्य का एक कार्य किसी वैज्ञानिक तथ्य अथवा सिद्धात के पक्ष मे वैज्ञानिक युक्ति प्रदान करना है। उदाहरण के लिये यदि कोई यह पूछता है कि आप कैसे कह सकते है कि सुकरात अवश्य मरेगा तो यह सिद्ध करने के लिये हम सुकरात के सम्वन्ध मे पीछे दिया गया तर्कवाक्य उपस्थित करेगे। यदि कोई व्यक्ति यह कहता है कि राम को प्लेग का रोग है तो इसको सिद्ध करने के लिये वह न्याय वाक्य से युक्ति उपस्थित कर सकता है। इस युक्ति मे वह प्लेग के सामान्य लक्षणो को वतलाते हुए राम मे वे लक्षण दिखलाते हुए यह निष्कर्ष निकालेगा कि राम को प्लेग है। वास्तव मे तक-वाक्य का इतना अधिक महत्व ज्ञान प्रदान करने मे नही जितना कि उसके लिये वैज्ञानिक युक्ति प्रदान करने मे है। वहुधा लोग चेतन रूप से न्याय वाक्य का सहारा लिये विना ही विशेष से सामान्य और सामान्य से विशेष पर पहुँच जाते है किन्तु यदि उनके इस कार्य पर प्रश्न उठाया जाए तो वे उसके औचित्य को सिद्ध करने के लिये न्याय वाक्य का सहारा ले सकते है।

न्याय वाक्य की उपयोगिता के विरुद्ध आपत्तियाँ

तर्कशास्त्री मिल ने न्याय वाक्य की उपयोगिता के विरुद्ध निम्नलिखित आपत्तियाँ उपस्थित की है—

(१) **न्याय वाक्य तर्क की स्वाभाविक प्रक्रिया नही है**—यद्यपि मिल ने न्याय वाक्य की उपयोगिता से पूरी तरह से इन्कार नही किया है परन्तु उसका यह कहना है कि न्याय वाक्य वह प्रक्रिया नही है जिसके द्वारा हम तर्क करते है। मिल के अनुसार, "न्याय वाक्य की उपयोगिता उसके अनुमान का वह रूप होने मे नही है जिसे कि हमारी विचारधारा अवश्यमेव अथवा साधारणतया ग्रहण करती है, किन्तु उसके वह विधि होने मे है जिसके कि रूप मे हम अपने विचारो को सदैव ढाल सकते है और जो कि सदेहास्पद विचारो या अनुमानो की परीक्षा करने मे हमारी सहायता करती है।" मिल के अनुसार सभी अनुमान विशेष के अनुमान होते हैं। सामान्य वाक्य इन विभिन्न अनुमानो के सक्षेप मात्र है और इस प्रकार के अनुमान करने मे सहायक सूत्रो का कार्य करते है। न्याय वाक्य मे दीर्घ वाक्य एक सूत्र है और उससे निकाला हुआ निष्कर्ष उसके अनुसार निकाला हुआ अनुमान है। सक्षेप मे, न्याय वाक्य विचार की स्वाभाविक और साधारण प्रक्रिया न होकर विचार की जाच करने की विधि है। मिल के इस मत से हरशेल, व्हेवेल और वेन आदि अन्य अनेक तर्कशास्त्री सहमत है।

न्याय वाक्य के विरुद्ध उठायी गयी मिल की उपरोक्त आपत्ति तार्किक न होकर मनोवैज्ञानिक है और इस युक्ति से न्याय वाक्य की उपयोगिता मे कोई कमी नही आती। जहाँ तक विचारो की स्वाभाविक और सामान्य प्रक्रिया का प्रश्न है उसका अध्ययन मनोविज्ञान का विषय है, तर्कशास्त्र का विषय नही है और चूकि न्याय वाक्य तर्कशास्त्र का विषय है इसलिये उसमे विचार की स्वाभाविक प्रक्रिया से सम्वन्ध न होकर उसकी प्रामाणिकता से सम्वन्ध होना चाहिये। इस प्रकार मैंसेल, मार्गन, मार्टिन्यू तथा हैमेल्टन आदि तर्कशास्त्रियो ने न्याय वाक्य की उपयोगिता के

विरुद्ध मिल के उपरोक्त तर्क की आलोचना की है और मिल के आक्षेप का निम्न-लिखित प्रत्युत्तर दिया है।

(अ) **तर्कशास्त्र और मनोविज्ञान के कामों में भेद न करना**—जैसा कि पीछे बतलाया जा चुका है, तर्क की प्रक्रिया का पता लगाना मनोवैज्ञानिक का कार्य है। दूसरी ओर तर्कशास्त्र यह बतलाता है कि तर्क कैसे किया जाना चाहिये। अपने उपरोक्त तर्क मे मिल मनोविज्ञान और तर्कशास्त्र के कार्य को उलझा देता है और उनमे भेद नही करता है। यदि न्याय वाक्य तर्क की सामान्य प्रक्रिया नही है तो इससे उसका महत्व किसी प्रकार से भी कम नही होता। वास्तव मे न्याय वाक्य तर्क की सामान्य प्रक्रिया न होकर आदर्श प्रक्रिया है।

(ब) **विशेष से विशेष का अनुमान विशेषों में उपस्थित सामान्य तथ्य के कारण होता है**—मिल का वह कथन विल्कुल अतिश्योक्तिपूर्ण है कि सब कही अनुमान विशेष से विशेष की ओर जाते है। वास्तव में विशेष से विशेष का अनुमान सादृश्य के आधार पर नही किन्तु इस आधार पर होता है कि विशेषो मे सामान्य तथ्य विद्यमान होता है। और इस सामान्य तथ्य के आधार पर जो सामान्य नियम वनता है वह विशेषो को परस्पर वाधता है। इसलिये विशेष से विशेष का अनुमान करने मे भी सामान्य का सहारा लिया जाता है। वैल्टन के शब्दो मे, "जिन दृष्टांतों मे अनुमान एक या अधिक विशेष अनुभवो पर आधारित मालूम पड़ता है उनमे भी अनुमान का सच्चा आधार विशेष अनुभवों मे पाया जाने वाला सामान्य तत्व होता है और इस सामान्य तत्व को हम सामान्य वाक्य के रूप मे व्यक्त कर सकते है जो न्याय का दीर्घवाक्य होता है।"

(२) **न्याय वाक्य में आत्माश्रय दोष**—न्याय वाक्य की उपयोगिता के विरुद्ध मिल की दूसरी आपत्ति यह है कि उसमे आत्माश्रय दोष होता है। आत्माश्रय दोष से तात्पर्य यह है कि निष्कर्ष आधार वाक्य या आधार वाक्यो मे सम्मिलित होता है। उदाहरण के लिये यदि यह कहा जाये कि मनुष्य अमर नही है क्योंकि उसकी मृत्यु होती है तो इसमे निष्कर्ष आधार वाक्य मे शामिल है। इस प्रकार सुकरात अमर नही है, यह निष्कर्ष इस आधार वाक्य मे सम्मिलित है कि कोई मनुष्य अमर नही है। मिल के अनुसार न्याय वाक्य का निगमन अपने सामान्य आधार वाक्य मे पहले से ही उपस्थित होता है और किसी अनुमान को न्याय वाक्य के रूप मे रखने से कोई वात सिद्ध नही होती। जो वात पहले से ही सिद्ध है उसे सिद्ध करने का प्रयास निरर्थक है। अस्तु, आत्माश्रय दोष के कारण न्याय वाक्य निरर्थक सिद्ध होता है।

न्याय वाक्य की उपयोगिता के विरुद्ध मिल की उपरोक्त आपत्ति का मैन्सेल, डी० मार्गन, मार्टिन्यू, हैमेल्टन इत्यादि अनेक तर्कशास्त्रियो ने निराकरण किया है। मिल के मत के विरुद्ध तर्क निम्नलिखित है—

(अ) **सामान्य वाक्य विशेष वाक्य का योग मात्र नहीं होता**—न्याय वाक्य मे आत्माश्रय दोप दिखलाना मिल की इस मान्यता पर आधारित है कि उसमे सामान्य दीर्घवाक्य विशेप दृष्टान्तो का योगमात्र है। किन्तु वास्तव मे अधिकतर सामान्य वाक्य विशेष वाक्यो का योगमात्र नही है वल्कि कुछ दृष्टातों की जाच करने से वनता है। वैज्ञानिक आगमन मे कुछ थोड़े से दृष्टातो की परीक्षा करके ही सामान्य वाक्य वना लिया जाता है। उदाहरण के लिये जो पैदा हुआ है वह अवश्य

जा सकता है। बारोको और बोकार्डो ये दो सयोग इसके अपवाद है। अनुलोम रूपान्तरण के लिये इन्हे क्रमशः फाक्सोको (Faksoko) और दोक्सामोस्क (Doksamosk) कहा जाता है। पहले इनका अनुलोम रूपान्तरण नही होता था क्योकि इनमे क (C) बीच मे आता है जिससे यह मालूम होता है कि इनका विलोम रूपान्तरण होगा। साकेतिक नामो मे विभिन्न व्यंजन विभिन्न प्रकार के रूपान्तरण का सयोग करते है। ब्रामान्टीप का व्यंजन B यह बतलाता है कि इसका रूपान्तरण बार्बरा मे होगा। सेसारे के C से पता चलता है कि इसका रूपान्तरण सिलारेन्ट मे होगा। दाराप्ती में D व्यजन यह बतलाता है कि उसका रूपान्तरण दारीई में किया जायेगा। फेस्टीनो मे F व्यजन से यह मालूम पड़ता है कि उसका रूपान्तरण फेरीओ मे होगा। इनके अतिरिक्त विभिन्न व्यजन रूपान्तरण की विधि भी बतलाते है जैसा कि निम्नलिखित नियमो मे पता चलता है।

(१) C व्यजन अपने से पहले आये हुए स्वर के द्वारा प्रकट वाक्य का साधारण परिवर्तन बतलाता है।

(२) F व्यजन अपने से पहले आए हुये स्वर द्वारा यह बतलाता है कि उस वाक्य का सकुचित परिवर्तन करना है।

(३) जब C और F व्यजन तीसरे स्वर के बाद आते है तो इसका तात्पर्य यह होता है कि नये न्याय के निष्कर्ष का आवश्यकतानुसार साधारण अथवा संकुचित परिवर्तन करना है।

(४) M व्यजन यह बतलाता है कि आधार वाक्यो का परस्पर स्थान बदल देना है। दूसरे शब्दो मे, इसमे दिये हुए न्याय वाक्य का दीर्घ वाक्य नये वाक्य मे ह्रस्व वाक्य हो जायेगा और दिये हुये न्याय का ह्रस्व वाक्य नये वाक्य मे दीर्घ वाक्य हो जायेगा।

(५) K व्यजन यह बतलाता है कि उससे पहले वाक्य का परिवर्तन होना है। उसके साथ C व्यजन होने से पहले प्रतिवर्तन और फिर साधारण परिवर्तन होता है। यदि C व्यजन उससे पहले है तो पहले परिवर्तन और फिर प्रतिवर्तन होता है। यदि C K तीसरे स्वर के बाद आते है तो नये न्याय का निष्कर्ष पहले दिये हुये न्याय का परिवर्तन होगा।

(६) जब C व्यजन शब्द के बीच मे आता है तो उससे यह मालूम होता है कि न्याय का विलोम रूपान्तरण होगा। यह बात बारोको और बोकार्डो नामक दो सकेत शब्दों मे देखी जाती है। प्राचीनकाल मे इनका केवल विलोम रूपान्तरण ही सम्भव माना जाता था आजकल इनका अनुलोम रूपान्तरण भी होता है। इसके लिये इन्हे क्रमशः फाक्सोको और दोक्सामोस्क कहा जाता है।

उपरोक्त व्यंजनो के अतिरिक्त साकेतिक नामो मे दिये गये अन्य व्यजन केवल उच्चारण मे सुविधा के लिये प्रयोग किये जाते हैं और उनका कोई विशेष महत्व नही है।

विलोम रूपान्तरण

विलोम रूपान्तरण मे किसी पूर्ण सयोग की सहायता से अपूर्ण सयोगो के निष्कर्ष को यह दिखाकर सत्य सिद्ध किया जाता है कि मूल निष्कर्ष का व्याघातक वाक्य असत्य है। इसमें मूल निष्कर्ष का व्याघातक वाक्य बनाकर यह दिखलाया

जाता है कि वह मूर्खतापूर्ण परिवर्तन है। व्याघातक वाक्य के असत्य सिद्ध होने से मूल निष्कर्ष की सत्यता सिद्ध हो जाती है। पहले केवल बारोको और बोकार्डो नामक सयोगो का ही विलोम रूपान्तरण किया जाता था, आजकल प्रत्येक अपूर्ण सयोग का विलोम रूपान्तरण किया जाता है। भिन्न-भिन्न आकारो के विभिन्न सयोगो के विलोम रूपान्तरण के उदाहरण निम्नलिखित है।

द्वितीय आकार के संयोगों के विलोम रूपान्तरण

द्वितीय आकार के विभिन्न सयोगो के विलोम रूपान्तरण के उदाहरण निम्नलिखित हे :—

(अ) सेसारे—

कोई वि म नही है —E
सब उ म है। —A
∴ कुछ उ वि नही है। —E

उपरोक्त न्याय वाक्य मे निष्कर्ष का व्याघातक वाक्य होगा "कुछ उ वि है।" इससे निष्कर्ष की सत्यता की परीक्षा की जायेगी और यदि यह असत्य सिद्ध होगा तो मूल निष्कर्ष सत्य सिद्ध हो जायेगा। सबसे पहले इस वाक्य के निष्कर्ष को ह्रस्व वाक्य और मूल दीर्घ वाक्य को दीर्घ वाक्य मानकर पहले आकार मे फेरीओ नामक नया न्याय बनाया जायेगा :—

कोई वि म नही है। —E
कुछ उ वि है। —I
∴ कुछ उ म नही है। —O

पहले आकार मे फेरीओ एक प्रामाणिक सयोग है। विलोम रूपान्तरण मे मूल निष्कर्ष के व्याघातक वाक्य को दीर्घ वाक्य अथवा ह्रस्व वाक्य कोई भी माना जा सकता है। इन दोनो ही स्थितियो मे मूल न्याय से लिये गये दूसरे आधार वाक्य के सहयोग से प्रथम आकार का प्रामाणिक सयोग बन जाता है। उपरोक्त उदाहरण मे मूल ह्रस्व वाक्य न्याय के नियमो के अनुसार सत्य होना चाहिये। नया निष्कर्ष उसका व्याघातक होने के कारण अवश्य ही असत्य होगा। इसकी सत्यता से मूल निष्कर्ष सत्य सिद्ध होता है।

(२) कामेस्ट्रेस—इसका उदाहरण निम्नलिखित है—

सब वि म है। —A
कोई उ म नही है। —E
∴ कोई उ वि नही है। —E

अब यदि दिया हुआ निष्कर्ष सत्य नही है तो उसका व्याघातक वाक्य अवश्य सत्य होना चाहिये। यह व्याघातक वाक्य है, "कुछ उ वि है।" इस वाक्य को ह्रस्व वाक्य मानकर और मूल दीर्घ वाक्य को दीर्घ वाक्य के रूप मे लेकर निम्नलिखित न्याय वाक्य प्राप्त होता है .—

सब वि म है—A
सब उ वि है—I
सब उ म है—I

यहाँ पर दारीई प्रामाणिक सयोग बनता है। इस न्याय वाक्य में मूल ह्रस्व वाक्य सत्य है। नया निष्कर्ष उसका व्याघातक होने के कारण असत्य है। नये निष्कर्ष की असत्यता नये ह्रस्व वाक्य की असत्यता के कारण है। नये ह्रस्व वाक्य की सत्यता सिद्ध होने से उसके व्याघातक वाक्य मूल निष्कर्ष की सत्यता सिद्ध होती है।

(२) **फेस्टीनो**—इसका उदाहरण निम्नलिखित है—

कोई वि म नहीं है। —E
कुछ उ म है। —I
∴ कुछ उ वि नहीं है। —I

निष्कर्ष के व्याघातक वाक्य को ह्रस्व वाक्य और मूल दीर्घ वाक्य को दीर्घ वाक्य मानने से निम्नलिखित न्याय वाक्य बनता है।

कोई वि म नहीं है। —E
सब उ वि है। —A
∴ कोई उ म नहीं है। —E

उपरोक्त न्याय वाक्य प्रथम आकार का सिलारेन्ट (Celarent) नामक प्रामाणिक संयोग है। इसमे नया दीर्घ वाक्य मूल दीर्घवाक्य ही है इसलिये वह असत्य नही हो सकता। इसमे निष्कर्ष मूल ह्रस्व वाक्य का व्याघात होने के कारण असत्य है। इसकी असत्यता नये ह्रस्व वाक्य के असत्य होने के कारण है। इसके असत्य होने से उसके व्याघातक वाक्य अर्थात् मूल निष्कर्ष का सत्य होना सिद्ध होता है।

(४) **वारोको**—इनका उदाहरण निम्नलिखित है—

सब वि म है। —A
कुछ उ म नहीं है। —O
∴ सब उ वि नहीं है। —O

इसके निष्कर्ष का व्याघातक वाक्य अर्थात् "सब उ वि है" ह्रस्व वाक्य मानकर और मूल दीर्घ वाक्य को दीर्घ वाक्य के रूप मे लेकर निम्नलिखित न्याय वाक्य प्राप्त होता है—

सब वि म है। —A
कुछ उ वि है। —A
∵ सब उ म है। —A

उपरोक्त न्याय वाक्य वार्वरा प्रामाणिक सयोग है। मूल ह्रस्व वाक्य का व्याघातक नया निष्कर्ष नये ह्रस्व वाक्य के असत्य होने के कारण असत्य है। नये ह्रस्व वाक्य के असत्य होने से उसका व्याघातक मूल निष्कर्ष सत्य सिद्ध होता है।

तीसरे आकार के संयोगों का विलोम रूपान्तरण

न्याय वाक्य के तीसरे आकार मे ६ प्रामाणिक संयोग होते हैं जिनमे विलोम रूपान्तरण के उदाहरण निम्नलिखित है—

(१) **दाराप्ती**—इसका उदाहरण निम्नलिखित है—

सब म वि नहीं है। —A
सब म उ है। —A

∴ कुछ उ वि है। —I

उपरोक्त न्याय वाक्य के निष्कर्ष के व्याघातक वाक्य, "कोई उ वि नही है" को दीर्घ वाक्य के रूप मे लेकर और मूल ह्रस्व वाक्य को ह्रस्व वाक्यों के रूप मे लेकर निम्नलिखित न्याय वाक्य प्राप्त होता है।

कोई उ वि नही है। —E
सब म उ है। —A
∴ कोई म वि नही है। —E

उपरोक्त न्याय वाक्य प्रथम आकार का सिलारेन्ट नामक प्रामाणिक संयोग होने के कारण निर्दोष है। इसमे निष्कर्ष नये दीर्घ वाक्य के असत्य होने के कारण ही असत्य है। नये दीर्घ वाक्य के असत्य सिद्ध होने से उसका व्याघात वाक्य मूल निष्कर्ष सत्य सिद्ध होता है।

(२) **दीसामीस**—इसका उदाहरण निम्नलिखित है—

सब म वि है। —I
सब म उ है। —A
∴ कुछ उ वि है। —I

इस न्याय वाक्य के निष्कर्ष के व्याघात वाक्य, "कोई उ वि नही है" को दीर्घवाक्य मानकर मूल ह्रस्व वाक्य को ह्रस्व वाक्य मानने से निम्नलिखित न्याय वाक्य उपलब्ध होता है :—

कोई उ वि नही है। —E
सब म उ है। —A
∴ कोई म वि नही है। —E

उपरोक्त न्याय वाक्य सिलारेन्ट प्रामाणिक न्याय वाक्य है। इसमे निष्कर्ष की असत्यता नये दीर्घ वाक्य के असत्य होने के कारण है। नये दीर्घ वाक्य के असत्य सिद्ध होने से मूल निष्कर्ष की सत्यता सिद्ध होती है।

(३) **दातीसी**—इसका उदाहरण निम्नलिखित है—

सब म वि है। —A
कुछ म उ है। —I
∴ कुछ उ वि है। —I

उपरोक्त न्याय मे दीर्घवाक्य का व्याघात वाक्य लेकर और मूल ह्रस्व वाक्य को ह्रस्व वाक्य बनाकर निम्नलिखित न्याय उपलब्ध होता है।

सब उ वि नही है। —E
कुछ म उ है। —I
∴ कुछ म वि नही है। —O

इसमे नया निष्कर्ष मूल दीर्घ वाक्य का व्याघातक है और इसलिये असत्य है। यह असत्य नये दीर्घ वाक्य के असत्य होने से ही हो सकता है क्योकि नया ह्रस्व वाक्य मूल ह्रस्व वाक्य ही है नया दीर्घ वाक्य असत्य सिद्ध होने से उसका व्याघातक मूल निष्कर्ष सत्य सिद्ध होता है।

(४) **फेलोप्टोन**—इसका उदाहरण निम्नलिखित है—

कोई उ वि नही है। —E
सब म उ है। —A

∴ कुछ उ वि नही है । —O

उपरोक्त न्याय को निम्नलिखित न्याय मे परिवर्तित किया जा सकता है ।

सब उ वि है । —A
सब म उ है । —A
∴ सब म वि है । —A

उपरोक्त नये न्याय मे नया निष्कर्ष मूल दीर्घ वाक्य का विपरीत होने से असत्य हो जाता है । इसके असत्य होने का कारण नये दीर्घ वाक्य का असत्य होना है क्योकि नया ह्रस्व वाक्य मूल ह्रस्व वाक्य ही है । नये दीर्घ वाक्य के असत्य होने से उसके व्याघातक मूल निष्कर्ष को सत्य होना चाहिये ।

(५) बोकार्डो—इसका उदाहरण निम्नलिखित है—

कुछ म वि नही है । —O
सब म उ है । —A
∴ कुछ उ वि नही है । —O

उपरोक्त न्याय को निम्नलिखित न्याय के रूप मे परिवर्तित किया जा सकता है ।

सब उ वि है —O
सब म उ है —A
. सब म वि है —O

इस नये न्याय मे निष्कर्ष मूल दीर्घ वाक्य का व्याघातक होने से असत्य है । इसकी असत्यता नये दीर्घ वाक्य के असत्य होने के कारण है क्योकि नया ह्रस्व वाक्य मूल ह्रस्व वाक्य ही है । अस्तु, नये दीर्घ वाक्य के व्याघातक वाक्य अर्थात् मूल निष्कर्ष को सत्य होना चाहिये ।

(६) फेरीसोन—इसका उदाहरण निम्नलिखित है—

कुछ म वि नही है ।—E
कुछ म उ है । —I
∴ कुछ उ वि नही है ।—O

इस न्याय मे निष्कर्ष के व्याघातक वाक्य को दीर्घवाक्य और मूल ह्रस्व वाक्य को ह्रस्व वाक्य बनाकर निम्नलिखित संयोग प्राप्त किया जा सकता है :—

सब उ वि है । —A
कुछ म उ है । —I
∴ कुछ म वि है । —I

इससे नया निष्कर्ष मूल दीर्घ वाक्य का व्याघातक होने के कारण असत्य है । इसकी असत्यता नये दीर्घवाक्य के असत्य होने के कारण है क्योकि ह्रस्व वाक्य मूल ह्रस्व वाक्य ही हे । अस्तु, नये दीर्घवाक्य का व्याघातक मूल निष्कर्ष सत्य होना चाहिये ।

चौथे आकार के संयोग

चौथे आकार के सयोग और उनकी परीक्षा निम्नलिखित है—

(१) ब्रामान्टीप—इसका उदाहरण निम्नलिखित है—

सब वि म है ।—A
सब म उ है ।—A

किया है। इस दृष्टि से आगम स्वयसिद्धियों से भिन्न है जो कि प्रामाणिक सामान्य वाक्य है। दूसरी ओर आगमन निगमन से भी भिन्न है जिसमे निरीक्षण की आवश्यकता नही होती। आगमन का लक्ष्य द्रव्य विपयक सत्यता प्राप्त करना होता है। दूसरे शब्दो मे, आगमन के द्वारा जो सामान्य वाक्य प्राप्त होता है वह वस्तु स्थिति के अनुसार होना चाहिये।

(३) **आगमनात्मक कुदान या छलांग**—वैज्ञानिक आगमन मे ज्ञात के आधार पर अज्ञात के विपय मे अनुमान लगाया जाता है। इसीलिये मिल ने उसे "ज्ञात से अज्ञात मे जाने की" प्रक्रिया कहा है। वेन आगमन की इस विशेषता को आगमनात्मक कुदान या छलाग कहता है। इससे तात्पर्य देखे हुये दृष्टान्तो से न देखे हुये दृष्टान्तो पर पहुंचना है। इससे निरीक्षणकर्ता उस भविष्य में पहुँचता है जिसका उसने निरीक्षण नही किया अथवा उस अतीत के विपय मे अनुमान लगाता है जो उसके निरीक्षण की पहुँच के वाहर है।"[1] ज्ञात के आधार पर अज्ञात के विपय मे इस अनुमान मे छलाग निहित है, इसके विना अनुमान का कोई महत्व नही है। यहॉ पर मैलोन ने इस वात की ओर सकेत किया है कि जिसे हम अज्ञात समझते हैं वह ज्ञात के समान होने के कारण अशत. ज्ञात होता है। जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, वैज्ञानिक आगमन प्रकृति की समरूपता पर आधारित है। इस सिद्धान्त को मानने से वह अनुमान लगाया जा सकता है कि जो कुछ हमारे अनुभव का विपय है उसके समान अनुभव मे न आने वाला विपय भी वैसा ही होगा और उन्ही नियमो से परिचालित होगा। इसीलिये मैलोन ने कहा हे, "यह कहना गलत होगा कि आगमन मे हम ज्ञात से अपेक्षाकृत अज्ञात मे पहुँचते है···परन्तु इस वात को और अधिक अच्छी तरह कहने की विधि यह है कि आगमन में हम जिस वस्तु पर पहुचते है वह एक सामान्य वाक्य होता है।" इस प्रकार वर्तमान के आधार पर भूत अथवा भविष्य के विपय मे अनुमान पूर्णतया अज्ञात विपय के वारे मे अनुमान नही है क्योकि प्रकृति की समरूपता के नियम के कारण वर्तमान के निरीक्षण से भूत और भविष्य का भी ज्ञान हो सकता है।

(४) **प्रकृति की समरूपता और कारण के नियम पर आधारित**—वैज्ञानिक आगमन की अन्तिम विशेपता यह है कि वह प्रकृति की समरूपता और कार्यकारण का नियम इन दो मूलभूत मान्यताओ पर आधारित है। इसलिये ये आगमन की पूर्व मान्यताये कहलाते है। प्रकृति की समरूपता के सिद्धान्त के [illegible] किसी कारण से एक ही कार्य उत्पन्न होता है। उदाहरण के लिये मनुष्यता और मरणशीलता के मध्य सम्वन्ध प्रकृति मे सभी परिस्थितियो मे एक सा दिखलाई पडता है। कार्यकारण के सिद्धान्त के अनुसार प्रकृति मे प्रत्येक घटना का कोई न कोई कारण अवश्य है। अस्तु, मनोवैज्ञानिक प्रत्येक घटना के कारण की तलाश करते हे। विभिन्न विज्ञानो के उद्‌गमन के आधार पर कार्यकारण के विपय मे जो सामान्य सिद्धान्त निकाले जाते है वे प्रकृति की समरूपता के सिद्धान्त को मानकर समान परिस्थितियो मे सव कही लागू किये जा सकते है।

---

1 " to future which has not yet come within observation to the past before observation began, to the remote where there has been no access to observe "
—Bain

आगमन के विभिन्न सोपान

उद्‌गमन प्रणाली मे विशेष तथ्यो के आधार पर सामान्य सिद्धान्त निकाला जाता है। इस आगमनात्मक प्रक्रिया मे विभिन्न सोपान निम्नलिखित है—

(१) **विश्लेषण और परिस्थितियों को बदलते हुये निरास के साथ निरीक्षण**—आगमनात्मक प्रणाली मे सवसे पहला सोपान निरीक्षण है। निरीक्षण सामान्य प्रत्यक्षीकरण से भिन्न है, वह सुव्यवस्थित प्रत्यक्षीकरण है। उसमे किसी निश्चित प्रयोजन से किसी वस्तु अथवा परिस्थिति का निरीक्षण किया जाता है। अस्तु, निरीक्षण करने से पहले यह निश्चित करना आवश्यक है कि हमे किस वात का निरीक्षण करना है। इसीलिये निरीक्षण के पहले निरीक्षण की समस्या की परिभाषा कर ली जाती है। अव सावधानी पूर्वक निरीक्षण करने से जो तथ्य ज्ञात होते है उन्हे लिख लिया जाता है। कोरे निरीक्षण से केवल याददाश्त के आधार पर कोई आगमनात्मक सिद्धान्त नही निकाला जा सकता। इसलिये अध्ययन किये हुये तथ्यो को वैज्ञानिक साथ ही साथ नोट करते जाते है। इससे एक लाभ यह भी होता है कि वे अन्य वैज्ञानिको के लेखों से तुलना करके अपने लेख मे गल्तियो को निकाल सकते है।

निरीक्षण के पश्चात् प्राप्त तथ्यो का विश्लेपण किया जाता है। विश्लेपण का अर्थ जटिल तथ्यो को उनके सरल अवयवो मे तोड़ना है। कुछ तथ्य ऐसे होते है जिनमे अनेक तथ्य उलझे हुये होते है। जब तक इन तथ्यो को अलग-अलग न देखा जाये जव तक उनमे छिपा हुआ सत्व पकड़ में नही आ सकता। इन सरल तथ्यो मे कुछ अनिवार्य होते है और कुछ आकस्मिक होते है। विश्लेपण से वैज्ञानिक को अनिवार्य और आवश्यक घटको को अलग कर लेना आवश्यक है क्योंकि किसी भी घटना मे कार्यकारण सम्बन्ध अनिवार्य तत्वो पर आधारित होने से ही सामान्य सिद्धान्त निकाला जा सकता है।

निरीक्षण मे विश्लेषण के पश्चात् दूसरा सोपान आकस्मिक (Accedental) तत्वो का निरास (Elimination) है। निरास का अर्थ आकस्मिक परिस्थितियों को अनिवार्य परिस्थितियों से अलग करके उन्हे हटा देना है। मिल के शब्दो मे, "यह क्रमश उन विभिन्न परिस्थितियो को हटा देना है जो एक दिये हुये दृष्टान्त मे किसी तथ्य के साथ पाई जाती है ताकि यह ज्ञात हो सके कि उनमे से कौन सी ऐसी है जो तथ्य के मौजूद रहते हुये निरन्तर अनुपस्थित रह सके।" पीछे बतलाया जा चुका है कि विश्लेपण के द्वारा वैज्ञानिक अनिवार्य और आकस्मिक कारको को अलग-अलग कर लेते है। निरास की क्रिया इसके वाद भी हो सकती है।

विश्लेषण और निरास दोनो के लिये परिस्थितियो को वदलना आवश्यक है। भिन्न-भिन्न परिस्थितियो में किसी तथ्य का अध्ययन करके ही वैज्ञानिक यह-पता लगाते है कि उसकी उपस्थिति के लिये कौनसी परिस्थितियाँ सदव उपस्थित रहती है। इन्ही परिस्थितियों के आधार पर आगमनात्मक सिद्धान्त वनाया जायेगा।

(२) **परिकल्पना का निर्माण** (Formulation of a Hypothesis)—निरीक्षण के दौरान मे ही वैज्ञानिक के मस्तिष्क मे उपस्थित तथ्यो के कार्य कारण सम्बन्ध के वारे मे कोई न कोई परिकल्पना सूझ जाती है। परिकल्पना का निर्माण

वैज्ञानिक की सूझ बूझ और रचनात्मक प्रतिभा पर आधारित है। दूसरे शब्दो मे, सभी व्यक्ति वैज्ञानिक परिकल्पना नही बना सकते। परिकल्पना से तात्पर्य तथ्य के विषय मे कार्यकारण सम्बन्ध को लेकर स्थायी कल्पना से है। उदाहरण के लिये गन्दगी की परिस्थितियो मे कुछ रोगो के अनिवार्य रूप से उपस्थित होने के कारण यह परिकल्पना बना ली जाती है कि ये रोग गन्दगी के कारण होते है। यह एक अस्थायी कल्पना है जिसको सिद्ध करने की आवश्यकता है। इसकी प्रामाणिकता की जाँच करने के पश्चात् ही इसके आधार पर कोई सिद्धान्त बनाया जा सकता है। किन्तु इसका अर्थ यह नही है कि परिकल्पना मे चाहे जिस विचार को चुन लिया जाता है। निरीक्षण करते समय वैज्ञानिक के मन मे कार्यकारण सम्बन्ध की व्याख्या के लिये एक से अधिक कल्पनायें उपस्थित होती है। इन विभिन्न व्याख्याओ क विश्लेषण करके वह इनमे से उस व्याख्या को स्थायी रूप से चुन लेता है जो उसे सबसे अधिक यथार्थ मालूम पडती है। यदि आगे के अध्ययनो से यह परिकल्पना गलत सिद्ध होती है तो इसके स्थान पर अन्य परिकल्पना को उठाया जाता है। स्पष्ट है कि आगमनात्मक प्रणाली मे परिकल्पना के निर्माण का अत्यधिक महत्व है। मेधावी वैज्ञानिक प्रारम्भ से ही ऐसी परिकल्पना को लेकर चलते है कि खोज का प्रयत्न व्यर्थ नही जाता।

(३) **सामान्यीकरण** (Generalisation)—आगमनात्मक प्रणाली मे अगला चरण सामान्यीकरण है। इसमे विशेष दृष्टान्तो के निरीक्षण के आधार पर कोई सामान्य सिद्धान्त निकाला जाता है। उदाहरण के लिये भग्न परिवारो मे किशोरापराधियो की संख्या अधिक देखकर के निरीक्षण के आँकडो के आधार पर सामान्यीकरण करके यह सामान्य सिद्धान्त निकाल लिया जाता है कि भग्न परिवार मे किशोरापराधी प्रवृत्तियाँ उत्पन्न होती है। सामान्यीकरण करने मे यह ध्यान रखना आवश्यक है कि यथासम्भव तथ्यो को प्रत्येक पहलू से अध्ययन कर लिया जाये। मिल का कहना है कि सामान्यीकरण होने पर आगमनात्मक प्रक्रिया पूर्ण हो जाती है किन्तु अन्य तर्कशास्त्रियो ने सामान्यीकरण के बाद सत्यापन को भी आवश्यक माना है।

(४) **सत्यापन** (Verification)—सत्यापन से तात्पर्य यह जाँच करना है कि परिकल्पना पर आधारित कोई सामान्य सिद्धान्त वास्तव मे सत्य है अथवा नही। फाउलर के शब्दो मे, "सत्यापन उपपत्ति का नवीन उपाय नही है, बल्कि केवल एक उपपत्ति का दूसरी उपपत्ति से, कभी-कभी एक निगमन का एक आगमन से, कभी एक आगमन का एक निगमन से और कभी एक आगमन या निगमन का दूसरे आगमन या निगमन से······पुष्टिकरण है। इस शब्द का प्रयोग प्राय. केवल तथ्यो से एक परिकल्पना को प्रमाणित करने के लिये होता है।" इस प्रकार बहुधा परिकल्पना से सत्यापन की बात की जाती है। यदि विशेष परिस्थितियो मे सत्यापन करने से परिकल्पना सही सिद्ध होती है तो उसे वैज्ञानिक सिद्धान्त बना लिया जाता है अन्यथा उस परिकल्पना को छोड़कर दूसरी परिकल्पना ग्रहण की जाती है और नये सिरे से खोज प्रारम्भ करके नवीन सामान्यीकरण बनाये जाते है।

तर्कशास्त्रियो के अनुसार सत्यापन दो प्रकार का हो सकता है—परोक्ष (Indirect) अथवा अपरोक्ष (Direct)। जहाँ तक अपरोक्ष सत्यापन की बात है

वह तो प्रत्यक्ष रूप से वास्तविक तथ्यों के निरीक्षण से कर लिया जाता है किन्तु परोक्ष सत्यापन मे दो सोपान होते हैं—एक तो सामान्य वाक्य मे निगमन और दूसरे निगमन की परीक्षा। उदाहरण के लिये यदि यह सामान्य वाक्य दिया जाये कि निर्धनता अपराधी व्यवहार उत्पन्न करती है तो इस सामान्य सिद्धान्त से किसी निर्धन व्यक्ति के विषय मे निगमन करके यह तथ्य निकाला जाता है कि वह निर्धन व्यक्ति अपराधी अवश्य होगा। अब इस तथ्य की परीक्षा की जाती है और यदि जाच करने से यह पता चलता है कि वह व्यक्ति अपराधी नहीं है तो इससे उपरोक्त सामान्य वाक्य के विरुद्ध प्रमाण मिलता है। इस प्रकार के अनेक उदाहरणों को एकत्रित करके उपरोक्त सामान्य वाक्य का खण्डन किया जाता है। किन्तु यदि दूसरी ओर हमारे निरीक्षण में प्रत्येक निर्धन व्यक्ति अपराधी सिद्ध हो अथवा प्रत्येक अपराध के मूल में निर्धनता पायी जाये तो इससे उपरोक्त सिद्धान्त का सत्यापन होता है। स्पष्ट है कि परोक्ष सत्यापन में पहले सामान्य वाक्य से विशेष परिस्थिति मे निगमन किया जाता है और फिर इस निगमन की परीक्षा की जाती है।

सत्यापन के बिना किसी भी परिकल्पना अथवा सामान्य वाक्य को विश्वसनीय नही समझा जाता। इसलिये जेवोन्स ने कहा है कि आगमन की प्रक्रिया मे सत्यापन सबसे अधिक महत्वपूर्ण सोपान है और किसी भी सामान्य वाक्य को तब तक आगमन नही कहा जा सकता जब तक कि वह सत्यापन के द्वारा स्थापित न हो जाए।

विभिन्न सोपानों का तुलनात्मक महत्व

आगमनात्मक प्रणाली के विभिन्न सोपानो के उपरोक्त विवेचन मे स्थान-स्थान पर यह कहा गया है कि यह अथवा वह विशिष्ट सोपान अधिक महत्वपूर्ण है। इससे यह स्पष्ट होता है कि आगमन विधि के विभिन्न सोपानो मे कौनसा सोपान अन्य से अधिक महत्वपूर्ण है। इस विषय में तर्कशास्त्री एक मत नही हैं। उदाहरण के लिये जहाँ बेकन ने विश्लेषण और परिस्थितियो को बदलते हुए निरास पर बहुत जोर दिया है और परिकल्पना को महत्वपूर्ण नही माना वहां व्हेवेल ने परिकल्पना के निर्माण को विशेष महत्व दिया है और अन्य सोपानो को उतना महत्वपूर्ण नही माना है। व्हेवेल के अनुसार परिकल्पना बन जाने पर आगमन की क्रिया लगभग समाप्त हो जाती है। दूसरी ओर मिल ने परिकल्पना को इतना कम महत्वपूर्ण माना है कि उसकी लगभग उपेक्षा ही कर दी है। उसके मतानुसार आगमन मे सामान्यीकरण का सोपान सबसे अधिक महत्वपूर्ण है, परिकल्पना का सम्बन्ध अनुमान से न होकर खोज से है। यह ठीक है कि परिकल्पना बनाए बिना आगमन नही हो सकता किन्तु परिकल्पना का निर्माण रचनात्मक प्रतिभा पर आधारित है, वैज्ञानिक नियमो पर नही। जेवोन्स ने आगमन की प्रक्रिया मे सत्यापन के सोपान को सबसे अधिक महत्वपूर्ण माना है। वह सामान्यीकरण की क्रिया को बहुत ही कम महत्व देता है। यहाँ पर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि शुद्ध आगमनात्मक प्रणाली मे और वैज्ञानिक खोज की विधि मे अन्तर है। आगमनात्मक प्रणाली का अन्तिम सोपान सामान्यीकरण है। दूसरी ओर वैज्ञानिक खोज मे सामान्यीकरण का सत्यापन करना भी आवश्यक है। इसे निगमनात्मक विधि कहा जाता है। जेवोन्स ने इसे आगमन और निगमन को सयुक्त करने वाली सयुक्त अथवा पूर्ण विधि कहा है।

आगमनात्मक प्रणाली की सफलता के लिये कुछ आतरिक और बाह्य दशाये आवश्यक होती है। बाह्य दशायें वे है जिनका पीछे विभिन्न सोपानो मे वर्णन किया जा चुका है। आतरिक दशाओ मे पूर्वाग्रहो से मुक्त होना, धैर्य और लगन तथा प्रकृति मे समरूपता और कारणो के नियमो में आस्था आवश्यक है।

आगमन के प्रकार

प्रसिद्ध तर्कशास्त्री मिल ने आगमन को निम्नलिखित दो वर्गों मे बाँटा है—

(१) **अनुपयुक्त आगमन अथवा अनुचित आगमन** (Improper Induction) यह वह आगमन है जो आगमन कहलाने पर भी वास्तव मे आगमन कहे जाने के अनुपयुक्त है अर्थात उसको आगमन कहना उचित नही है।

(२) **उपयुक्त अथवा उचित आगमन** (Proper Induction)—यह वह आगमन है जिसे वास्तव मे आगमन कहा जाना चाहिये, जो आगमन कहलाने के **उपयुक्त है और जिसको आगमन कहना उचित** है।

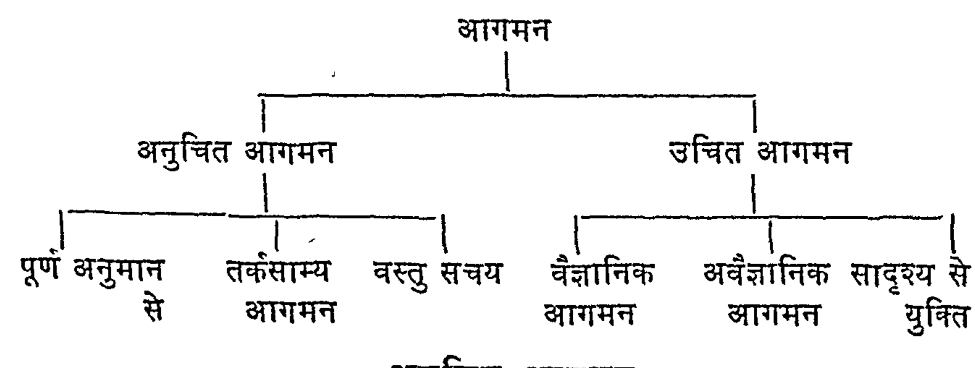
अनुपयुक्त अथवा अनुचित आगमन के निम्नलिखित तीन प्रकार माने गये है—

(क) पूर्ण आगमन (Perfect Induction)
(ख) तर्कसाम्य से आगमन (Induction by Parity of reasoning)
(ग) वस्तु संचय (Colligation of Facts)

उचित अथवा उपयुक्त आगमन के निम्नलिखित तीन भेद किये गये है—

(क) वैज्ञानिक आगमन (Scientific Induction)
(ख) अवैज्ञानिक आगमन (Unscientific Induction or Induction per Simple Enumeration)
(ग) सादृश्य से युक्ति (Argument from Analogy)

आगमन के उपरोक्त प्रकारो को निम्नलिखित चार्ट से भली प्रकार समझा जा सकता है।



अनुचित आगमन

अनुचित आगमन तर्क की वे प्रक्रियाये है जो बाहर से आगमन जैसी दिखलाई देने पर भी आगमन की अनिवार्य विशेषताये नही रखती। इसलिये इनको आगमन से समानता रखने वाली प्रक्रियायें भी कहा जाता है। समानता रखते हुए भी आंतरिक स्वरूप मे ये आगमन से भिन्न होती हैं। इसके विभिन्न प्रकार अग्र-लिखित है—

(अ) पूर्ण आगमन

पूर्ण आगमन को पूर्ण गणना पर आधारित आगमन भी कहते है। मध्य युग मे योरोपीय तर्कशास्त्रियो ने आगमन के दो मुख्य भेद माने है—पूर्ण और अपूर्ण पूर्ण आगमन उसे कहा जाता था जो उसके अन्तर्गत आने वाले सभी विशेष दृष्टातो की जाच पर आधारित होता था। जो आगमन थोडे से विशेष दृष्टान्तो की जाच पर आधारित होता था उसे अपूर्ण आगमन कहा जाता था। स्पष्ट है कि पूण और अपूर्ण आगमन मे गणना सम्बन्धी अन्तर पाया जाता था। इसलिये पूर्ण आगमन को पूर्ण गणना के द्वारा आगमन भी कहा जाता है। उदाहरण के लिये यदि किसी वाग के सभी आम के पेड़ो की जाच करने से यह मालूम हो कि वे सभी कलमी आम के पेड़ है तो पूर्ण गणना के आधार पर कहा जा सकता है कि इस वाग मे सभी आम के पेड़ कलमी है। अव यदि उस वाग के कुछ थोड़े से पेड़ो को देखकर ही यह आगमन कर लिया गया है तो यह अपूर्ण आगमन होगा। साधारणतया किसी भी प्राकृतिक घटना के सभी उदाहरणो की गणना करना कठिन होता है। इसलिये अधिकतर वैज्ञानिक सिद्धान्त साधारण गणनात्मक आगमन होते है। पूर्ण आगमन सीमित वर्गो मे ही सम्भव है। उदाहरण के लिये वगाल टाईगर जैसे विशेप प्रकार के पशुओं की सख्या सीमित है और उनकी पूर्ण गणना की जा सकती है किन्तु ससार के सभी हिरणो, भेड़ियो या हाथियो की गणना नही की जा सकती क्योकि उनका वर्ग सीमित नही है और वे वहुत से देशो मे पाये जाते है। थोड़े से दृष्टान्तो पर आधारित आगमन इसलिये अपूर्ण कहलाता है क्योकि उस वर्ग मे सभी उदाहरणों की गणना सम्भव नही होती जिसके कारण कुछ न कुछ सन्देह वना ही रहता है। पूर्ण आगमन मे तर्कशास्त्री 'प्रत्येक से सव की ओर' जाता है जवकि अपूर्ण आगमन में वह 'कुछ से सव की ओर' जाता है। पूर्ण आगमन के कुछ उदाहरण निम्नलिखित है—

(१) जनवरी, फरवरी, मार्च, ··दिसम्वर प्रत्येक मे ३२ से कम दिन होते है। अस्तु, अंग्रेजी कैलेण्डर के अनुसार सव महीनो मे ३२ से कम दिन होते है।

(२) मेरठ कॉलिज मे प्रत्येक छात्र हिन्दुस्तानी है। इसलिये मेरठ कॉलिज के सव छात्र हिन्दुस्तानी है।

(३) योरप, अफ्रीका, एशिया और अमरीका महाद्वीपो मे बड़ी-वड़ी नदियाँ पायी जाती है। इसलिये सव ज्ञात महाद्वीपो मे वडी-वड़ी नदियाँ है।

(४) इस अलमारी की एक-एक किताव को देखने से ज्ञात होता है कि प्रत्येक किताव हिन्दी साहित्य पर है। अस्तु, इस अलमारी में सब किताबे हिन्दी साहित्य की है।

पूर्ण आगमन के उपरोक्त उदाहरणो मे यह ध्यान देने की वात है कि इनमे ऐसे ही वर्गो को लिया गया है जिनकी संख्या सीमित है। उदाहरण के लिए मेरठ कॉलिज के छात्रो, वर्ष के महीनो, बड़े-बड़े महाद्वीपो और इस अलमारी की किताबों की सख्या सीमित है। अस्तु, उनकी गणना की जा सकती है। इनके स्थान पर यदि ऐसे वर्ग हो जिनकी सख्या सीमित न हो तो उनमे गणना नही की जा सकती इसलिये पूर्ण आगमन नही हो सकता।

मिल और वेन के अनुसार मध्ययुगीन तर्कशास्त्रियो ने जिसे पूर्ण आगमन कहा हे वह न तो पूर्ण है और न आगमन है वल्कि निरीक्षित तथ्यो का योगमात्र है। पूर्ण आगमन के विरुद्ध उनके तर्क अग्रलिखित है—

(१) **आगमनात्मक छलांग का अभाव**—इसमे निष्कर्ष आधार वाक्यो से आगे नही जाते है। यह विशेष तथ्यो का योगमात्र है और इसके निष्कर्ष मे कोई नवीनता नही है। इससे हमारे ज्ञान मे कोई वृद्धि नही होती। मिल के शब्दो मे यह, "ज्ञात तथ्यों का सक्षेप मात्र" है। बेन के अनुसार इसमे, "सच्चा अनुमान, सूचना की प्रगति, हमारे ज्ञान मे वृद्धि नही होती।"[1]

(२) **देखने में ही सामान्य**—पूर्ण आगमन का वाक्य केवल देखने मे सामान्य है जबकि वास्तव मे वह "ज्ञात तथ्यो का सक्षेप मे लिखित रजिस्ट्रेशन" (A mere short-hand registration of facts known) है। उदाहरण के लिये पीछे जो आलमारी की सभी पुस्तको के बारे मे सामान्य वाक्य कहा गया है उसमे एक-एक पुस्तक के विषय मे निष्कर्ष योगमात्र है। इसमे सामान्यीकरण नहीं है क्योंकि सामान्य वाक्य मे ज्ञात से अज्ञात की ओर जाया जाता है।

आधुनिक तर्कशास्त्री वैज्ञानिक आगमन को पूर्ण आगमन मानते है और अवैज्ञानिक आगमन को अपूर्ण आगमन मानते हैं। इस प्रकार आधुनिक मत मध्य कालीन तर्कशास्त्रियो के मत से भिन्न है। वास्तव मे पूर्ण और अपूर्ण आगमन का अन्तर आगमन की सदिग्धता के आधार पर है। पूर्ण आगमन पर आधारित निष्कर्ष पूर्णतया सदेहहीन होता है जब कि अपूर्ण आगमन पर आधारित निष्कर्ष में सन्देह रह जाता है। जेवोन्स के शब्दो मे, "इस बात को सदैव ध्यान मे रखना चाहिये कि कोई भी अपूर्ण आगमन असदिग्ध निष्कर्ष नही प्रदान कर सकता। यह बहुत कुछ सम्भव है या लगभग निश्चित सा ही है कि जिन दृष्टान्तो की जाच नही की गई है वे जाच किये गये दृष्टान्तो के सदृश्य होगे। परन्तु यह असदिग्ध कभी नही हो सकता ..। इसके विपरीत पूर्ण आगमन का निष्कर्ष अनिवार्य या असदिग्ध होता है।"[2] जहाँ तक वाह्य आकार का प्रश्न है जेवोन्स का मत ठीक हो सकता है परन्तु यह तथ्य है कि किसी भी वर्ग की समस्त वस्तुओ के विषय मे कोई भी नितान्त असदिग्ध आगमन नही बनाया जा सकता। इसलिये फाउलर ने कहा है "हमारे कई आगमनात्मक अनुमान इतने असंदिग्ध होते है जितना कि मनुष्य का ज्ञान हो सकता है।"[3] वास्तव मे दो वस्तुओ मे कार्यकारण सम्बन्ध स्थापित हो जाने पर भी निष्कर्ष असन्दिग्ध होना आवश्यक नही है। जैसा कि ग्रमली ने कहा है, "जब गणना पूर्ण हो जाती है तब भी इससे वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त नही होता। जो गुण किसी वर्ग के प्रत्येक व्यक्ति मे पाया जाता है, हो सकता है कि वह एक अवियोज्य आकस्मिक गुण के अतिरिक्त कुछ न हो।" फिर भी पूर्ण

---

1 There is "no real inference, no march of information, no addition to our knowledge " —Bain

2 "It must be carefully remembered that no Imperfect Induction can give a certain conclusion It may be highly probable or nearly certain that the cases unexamined will resemble those which have been examined, but it can never be certain . imperfect induction gives only a certain degree of probability or liklihood that all instances will agree with those examined Perfect induction, on the other hand, gives a necessary, or certain conclusion." —Jevons.

3 "Many of our inductive inferences have all the certainty of which human knowledge is capable." —Fowler.

आगमन के महत्व से कोई भी तर्कशास्त्री इकार नही करता । मिल ने यह स्वीकार किया है कि भले ही पूर्ण आगमन एकवाचक वाक्यो को संक्षेप मे लिखने का कार्य हो फिर भी उससे सत्य की खोज मे महत्वपूर्ण सामग्री प्राप्त होती है । फाउलर के शब्दों मे, "चाहे पूर्ण आगमन संक्षेपीकरण की प्रक्रिया से बढ़कर न हो तब भी इसका महत्व बहुत है तथा विज्ञान और दैनिक जीवन मे इसका बराबर प्रयोग होते रहना चाहिए । इसके बिना हम कभी व्यापक कथन कर भी नही सकेंगे बल्कि हमें प्रत्येक विशेष तथ्य का अलग-अलग कथन करना पड़ेगा ।···विज्ञान की प्रकृति के लिये विशेष तथ्यो की बड़ी-बड़ी सख्याओं को थोड़ी सी जगह पर प्रकट कर देना आवश्यक है···पूर्ण आगमन विशेष तथ्यों की एक बड़ी सख्या को थोड़ी सी जगह पर रख देने के लिए नितान्त आवश्यक है ।"[1]

(ख) तर्कसाम्य द्वारा आगमन

तर्कसाम्य द्वारा आगमन, जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है, अनुमान की वह प्रक्रिया है जिसमें इस आधार पर एक सामान्य वाक्य स्थापित किया जाता है कि जो तर्क एक विशेष तथ्य को स्थापित करता है वह सामान्य वाक्य के क्षेत्र में आने वाले अन्य सब सामान्य तथ्यो को भी स्थापित करेगा । दूसरे शब्दो मे, इस अनुमान में एक विशेष दृष्टान्त से सामान्य वाक्य पर पहुँचने का आधार समानता होती है । उदाहरण के लिए ज्यामिति मे सभी त्रिभुज एक विशेष सामान्य आकृति बनाते हैं । अस्तु, जब हम तर्क के द्वारा विशेष त्रिभुज के विषय मे यह सिद्ध कर देते हैं कि उसके तीनो कोण दो समकोण के बराबर होते हैं तो तर्कसाम्य के आधार पर यह कहा जाता है कि त्रिभुज के तीनो कोणो का योग दो समकोण के बराबर होता है क्योकि जो तर्क प्रस्तुत त्रिकोण पर लागू होता है वह अन्य सभी त्रिकोणो पर लागू होता है क्योकि उनमे समान आकृतियाँ पाई जाती हैं ।

तर्कसाम्य द्वारा आगमन मे निष्कर्ष सामान्य वाक्य होता है । दूसरी ओर पूर्ण आगमन मे निष्कर्ष केवल देखने मे सामान्य होता है और वास्तव में अनेक एकवाचक वाक्यों की बड़ी सख्या का सक्षिप्त कथन होता है । मिल ने तर्कसाम्य द्वारा आगमन को आगमन कहना अनुचित माना है क्योकि उसमें तथ्यो का निरीक्षण नही किया जाता जब कि उचित आगमन मे वास्तविक तथ्यो का निरीक्षण करके सामान्य वाक्य की स्थापना की जाती हे । पीछे दिये गये उदाहरण मे केवल त्रिभुज की जाँच के आधार पर सब त्रिभुजो के बारे मे सामान्य वाक्य बना दिया गया है । इस प्रकार इसमे निरीक्षण का अभाव है । दूसरी ओर यदि यह कहा जाता है कि सभी मनुष्य मरणशील है तो यह सामान्य वाक्य बहुत से मनुष्यो के प्रत्यक्षीकरण के आधार पर होता है । परन्तु क्या इसका तात्पर्य यह है कि ज्यामिति के सामान्य वाक्य उचित नही है ? वास्तव मे गणित यथार्थ तथ्यों पर आधारित न होकर

---

1. "If perfect induction were no more than a process of abbreviation it is yet of great importance and requires to be continually used in science and common life. Without it, we should never make a comprehensive statement, but should be obliged to enumerate every particular.. the power of expressing a great number of particular facts in a very brief space is essential to the progress of science.. perfect induction is absolutely necessary to enable us to deal with great number of particular facts in a very brief space."

—Fowler, *Elementary Lessons*, p. 214

काल्पनिक प्रत्ययो पर आधारित होता है इसलिए उसमे तथ्यो का निरीक्षण किये विना सामान्य सिद्धान्त वनाये जा सकते है। यह गणितशास्त्रीय आगमन कहलाता है। ज्यामिति, बीजगणित और अकगणित मे इसी प्रकार की आकृतियाँ काल्पनिक प्रत्यय मात्र होती हैं। उसमे निष्कर्ष निगमनात्मक होते है। इसीलिये मिल ने उन्हे आगमन कहने का विरोध किया है। वास्तविक आगमन भौतिकशास्त्रो के क्षेत्र मे किये जाते है।

(ग) वस्तु संचय

वस्तु सचय के अग्रेजी पर्याय शब्द Colligation of facts का प्रयोग सबसे पहले व्हेवेल ने किया। Colligate शब्द का अर्थ हैं एक साथ वाँधना। इस प्रकार वस्तु सचय से तात्पर्य किसी उपयुक्त विचार के द्वारा निरीक्षित वस्तुओ या तथ्यो को एक साथ वाँधना अर्थात् मन मे उनको संयुक्त करना है। मिल के शब्दो मे, "वस्तु सचय वह मानसिक प्रक्रिया है जो हमे निरीक्षण किये हुए तथ्यो की एक वडी सख्या को एक विचार के अन्तर्गत लाने में समर्थ वनाता है अथवा जिसकी सहायता से हम वहुत सी विस्तृत वातो को एक वाक्य मे सक्षिप्त कर सकते है।"[1] उदाहरण के लिये कैप्लर ने वस्तु सचय के द्वारा मगल ग्रह के मार्ग की खोज की। उसका उद्देश्य यह पता लगाना था कि वह कौनसा मार्ग है जिस पर चलकर मंगल ग्रह सूर्य की परिक्रमा करता है। इसके लिए उसने वर्ष के अलग-अलग समयो मे मगल की क्रमिक स्थितियो का निरीक्षण किया और उन सब का एकीकरण दीर्घवृत्त (Ellipse) के प्रत्यय द्वारा किया।

उपरोक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि वस्तु सचय मे सामान्य विचार वनाने का प्रयास किया जाता हैं। उसमे आगमन के समान सामान्य वाक्य की स्थापना नही की जाती। इसलिए तर्कशास्त्रियो ने वस्तु सचय को आगमन कहने का विरोध किया है। जव कि व्हेवेल ने वस्तु संचय और आगमन को एक ही माना है मिल ने इस मत की आलोचना की है। वस्तु सचय को आगमन मानने के विरुद्ध मिल ने निम्नलिखित तर्क उपस्थित किये हैं—

(१) **इसमें अनुमान नही होता**—वस्तु सचय मे कुछ तथ्यो का निरीक्षण होता है और किसी पहले से ज्ञात विचार से उनका एकीकरण कर लिया जाता है। उदाहरण के लिये एक नाविक समुद्र मे यात्रा करते हुए कही पर कोई भूमि देखता है और उसके किनारे-किनारे यात्रा करने लगता है। जव वह उसके चारो ओर घूमकर वही पर पहुँच जाता है जहाँ से वह चला था तो वह जान लेता है कि यह भूमि एक द्वीप है। इसमे नाविक ने पूरे द्वीप को एक साथ नही देखा वल्कि उसने जिन तथ्यो को देखा उनका एकीकरण करके उस भूमि को द्वीप मान लिया। इस प्रकार इसमे ज्ञात से अज्ञात की ओर जाना नही है वल्कि जो कुछ देखा गया है उसी के आधार पर विचार वनाया जाता है। दूसरी ओर आगमन मे सामान्यीकरण मे ज्ञात से अज्ञात की ओर जाने का प्रयास किया जाता है।

(२) **व्याख्या का अभाव**—वस्तु सचय मे देखे हुए तथ्यो का वर्णन मात्र होता है उनकी व्याख्या नही की जाती। दूसरी ओर आगमन मे वर्णन मात्र न

1. "Colligation is that mental observation which enables us to bring a number of actually observed phenomena under description, or which enables us to sum up a number of details in a single proposition." —Mill

होकर कार्यकारण सम्बन्ध की स्थापना की जाती है और इस प्रकार निरीक्षण उसके प्रारम्भ मे आवश्यक प्रक्रिया हो सकता है। मिल के शब्दों में, "आगमन वस्तु संचय है परन्तु वस्तु सचय अनिवार्य रूप से आगमन नही है।"[1]

(३) **कभी-कभी निगमनात्मक**—वस्तु संचय सदैव आगमनात्मक नही होता। पीछे दिये गये नाविक और कैप्लर के उदाहरण में मिल ने इन दोनों दृष्टान्तो मे निगमन मे कोई प्रकार भेद नही माना है। वेन के अनुसार दूसरा दृष्टान्त निगमन का उदाहरण है आगमन का नही। अस्तु, वस्तु संचय कभी-कभी निगमनात्मक होता है।

सारांश

आगमन क्या है—आगमन विशेष दृष्टान्तो से सामान्य सिद्धान्त निकालने की प्रक्रिया है। वैज्ञानिक आगमन की मुख्य विशेषतायें हैं—१. सामान्य वास्तविक वाक्यों की स्थापना, २. तथ्यों के निरीक्षण पर आधारित, ३. आगमनात्मक कुदान या छलांग, ४. प्रकृति की समरूपता और कारण के नियम पर आधारित।

आगमनात्मक प्रणाली में विभिन्न क्रम—१. विश्लेषण और परिस्थितियों को वदलते हुये निरास के साथ निरीक्षण, २. परिकल्पना का निर्माण, ३. सामान्यीकरण, ४. सत्यापन। इन विभिन्न सोपानों का तुलनात्मक महत्व है।

आगमन के विभिन्न प्रकार—मिल ने आगमन को दो वर्गो में बाँटा है—(क) अनुपयुक्त आगमन अथवा अनुचित आगमन—१. पूर्ण आगमन, २. तर्कसाम्य से आगमन, ३. वस्तु संचय (ख) उपयुक्त अथवा उचित आगमन—१. वैज्ञानिक आगमन, २. अवैज्ञानिक आगमन, ३. सादृश्य से युक्ति।

अभ्यास के लिये प्रश्न

प्रश्न १. वैज्ञानिक आगमन किसे कहते है ? इसकी विशेपतायें वतलाइये।
(यू० पी० वोर्ड १९६८)

[illegible]

प्रश्न ३. विज्ञान मे आगमनात्मक प्रणाली के विभिन्न क्रमो की व्याख्या करो।
(यू० पी० वोर्ड १९६६)

प्रश्न ४. आगमन किसे कहते हैं ? इसके विभिन्न प्रकारो की सोदाहरण व्याख्या कीजिये।
(यू० पी० वोर्ड १९७१)

प्रश्न ५. आगमन की पूर्वमान्यतायें क्या हैं ? उनकी व्याख्या कीजिये।
(यू० पी० वोर्ड १९७०)

प्रश्न ६. आगमन क्या है ? उसके लक्षण और उपयोगिता क्या है ? (आगरा १९७२)

---

1. "Induction is colligation but colligation is not necessarily Induction." —Mill.

१९

सामान्य भाषा में तर्क—संक्षिप्त न्याय और संक्षिप्त न्यायमाला

(ARGUMENTS IN ORDINARY LANGUAGE—ENTHYMEMES AND SORITES)

पीछे न्याय वाक्य के विवेचन मे यह दिखलाया गया है कि तर्क की दृष्टि से न्याय वाक्य मे किसी वात को कम से कम तीन तर्कवाक्यो मे रखा जाता है। प्रत्येक न्याय वाक्य मे तीन पद होते है, दीघ, ह्रस्व और निष्कर्ष। तर्कवाक्यो और पदो को इस प्रकार व्यवस्थित रूप मे उपस्थित करने से निष्कर्ष तार्किक दृष्टि से उपयुक्त होता है किन्तु सामान्य जीवन मे जव हम तर्क करते हैं तो किसी निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए न्याय वाक्य मे अनिवार्य रूप से और स्पष्ट रूप मे तीन तर्क वाक्य अथवा तीन पद नही रखते। सामान्य भापा मे जो तर्क किये जाते है उनमें कभी कोई पद और कभी कोई तर्क वाक्य अव्यक्त रहता है। कभी ह्रस्व वाक्य और निष्कर्ष व्यक्त होता है तो दीर्घ वाक्य अव्यक्त रहता है। दूसरी ओर कभी दीर्घ वाक्य और निष्कर्ष व्यक्त होता है तो ह्रस्व वाक्य अव्यक्त होता है। इसी प्रकार कभी आधार वाक्य व्यक्त होते हैं तो निष्कर्ष अव्यक्त रहता है। सामान्य भापा मे सुनने वाला अव्यक्त तर्कवाक्य का अनुमान लगा लेता है। कभी-कभी तो पूरे न्याय वाक्य को केवल एक ही वाक्य से व्यक्त कर दिया जाता है। दूसरे शब्दो मे, एक वाक्य मे पूरा न्याय वाक्य अव्यक्त रहता है। न्याय वाक्य के इस सक्षिप्त रूप को सक्षिप्त न्याय (Enthymeme) कहते है। जैसा कि सक्षिप्त न्याय के आगे दिये गये स्पष्टीकरण से ज्ञात होगा, सामान्य भाषा मे सक्षिप्त न्याय का व्यापक रूप से प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार न्याय माला (Sorites) का भी सामान्य भापा मे व्यापक रूप से प्रयोग किया जाता है और हम एक तर्क से दूसरा तर्क तथा दूसरे से तीसरा तर्क निकालते चले जाते है। प्रस्तुत अध्याय मे संक्षिप्त न्याय माला का विवेचन किया जायेगा।

संक्षिप्त न्याय क्या है?

संक्षिप्त न्याय क्या है ?

सक्षिप्त न्याय उस न्याय को कहते है जिसके कुछ वाक्य अव्यक्त या गुप्त रहते है। इस प्रकार यह अपूर्ण न्याय है। सामान्य न्याय वाक्य मे तीन न्याय वाक्य होते है दीर्घ, ह्रस्व और निष्कर्ष। किन्तु सामान्य वातचीत मे न्याय मे तीन वाक्यो का कथन नही किया जाता। न्याय को सरल करने के लिए वहुधा उसका सक्षिप्त रूप प्रयोग किया जाता है जिसमे कुछ वाक्य लिप्त रहते हैं। दूसरे शब्दो मे, इसमे

तर्क को केवल उतने ही वाक्यों मे रखा जाता है जितने वाक्य उसके अभिप्राय को स्पष्ट करने के लिये आवश्यक है ।

संक्षिप्त न्याय वाक्य के प्रकार

संक्षिप्त न्याय वाक्य निम्नलिखित चार प्रकार के माने जाते है—

(१) **प्रथम श्रेणी का संक्षिप्त न्याय** (Enthymeme of the first order)—इसमें ह्रस्व वाक्य और निष्कर्ष व्यक्त रहते हैं और दीर्घ वाक्य अव्यक्त रहता है जैसे मोहन सुखी है क्योकि वह सतोषी है। इस न्याय वाक्य मे सब सुखी मनुष्य सतोषी होते है यह दीर्घवाक्य लुप्त है। इसका पूर्णतया व्यक्त रूप निम्नलिखित होगा—

सब सुखी मनुष्य सतोषी है ।
मोहन सुखी है ।
∴ मोहन सतोषी है ।

(२) **द्वितीय श्रेणी का संक्षिप्त न्याय** (Enthymeme of the second order)—इसमे दीर्घ वाक्य और निष्कर्ष व्यक्त होते है और ह्रस्व वाक्य अव्यक्त होता है। उदाहरण के लिये मोहन सुखी है क्योकि सब सतोषी मनुष्य सुखी होते है। इसमे मोहन सतोषी है यह ह्रस्व वाक्य अव्यक्त है ।

(३) **तृतीय श्रेणी का संक्षिप्त न्याय** (Enthymeme of the third order)—इसमे आधार वाक्य व्यक्त होते हैं और निष्कर्ष अव्यक्त रहता है। उदाहरण के लिये सब संतोषी मनुष्य सुखी होते है और राम सतोषी है। इस न्याय मे राम सुखी है यह निष्कर्ष अव्यक्त है ।

(४) **चतुर्थ श्रेणी का संक्षिप्त न्याय** (Enthymeme of the fourth order)—यह सबसे अधिक सक्षिप्त न्याय है। इसमे केवल एक ही वाक्य से अनुमान का कार्य लिया जाता है। उदाहरण के लिये यदि किसी मनुष्य को अत्यधिक घमण्ड करते देखा जाता है तो कहा जाता है कि थोथा चना बाजे घना। इस एक वाक्य से पूरा मतलब सिद्ध हो जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि जो अन्दर से खोखले होते है वे ही अधिक घमण्ड करते है, यह मनुष्य घमण्ड करता है, इसलिये यह अन्दर खोखला है। इस पूरे न्याय को थोथा चना बाजे घना कहकर व्यक्त किया गया है। अधिकतर कहावतें इसी प्रकार से एक वाक्य मे पूरे न्याय को समाये रहती है ।

अरस्तू का मत

पीछे जो एन्थीमीम शब्द का अर्थ समझाया गया है वह उसका प्रचलित अर्थ है किन्तु अरस्तू ने इसको कुछ भिन्न अर्थ मे प्रयोग किया था। अरस्तू के अनुसार सक्षिप्त न्याय वे अनुमान है जो निश्चित वाक्यो पर आधारित न होकर केवल सम्भाव्य वाक्यो पर आधारित होते है। इस प्रकार अरस्तू के अनुसार संक्षिप्त न्याय वाक्य अर्थ अथवा भाव अपूर्ण होता है। दूसरी ओर प्रचलित अर्थ मे सक्षिप्त न्याय अर्थ मे नही किन्तु रूप मे अपूर्ण होता है ।

संक्षिप्त न्याय वाक्य के कारण

सक्षिप्त न्याय वाक्य की परीक्षा करने के लिये उसे पूरी तरह व्यक्त कर लिया जाता है। इसमे कुछ शब्द ऐसे होते है जिनसे यह पता चल जाता है कि न्याय वाक्य मे कौन सा वाक्य लुप्त है। इस प्रकार के शब्द निष्कर्ष और आधार

वाक्यो के लिये अलग-अलग होते हैं। उदाहरण के लिये अतः, इसलिये, फलतः शब्द निष्कर्ष और क्योकि, चूंकि, कारण है कि, शब्द आधार वाक्यो को दिखलाते हैं। व्यक्त करके सक्षिप्त न्याय के सत्य की परीक्षा कर ली जाती है।

न्याय माला क्या है ?

न्याय शृंखला अथवा न्याय माला (sorites) ऐसे दो या अधिक न्यायो की शृंखला को कहा जाता है जिनका परस्पर सम्बन्ध इस प्रकार का होता है कि अन्त मे उनसे केवल एक ही निष्कर्ष निकलता है। न्याय शृंखला मे विभिन्न न्याय इस प्रकार जुडे होते है कि पहले का निष्कर्ष दूसरे का आधार वाक्य वन जाता है और दूसरे का निष्कर्ष तीसरे का आधार वाक्य वन जाता है और इस प्रकार न्याय माला चलती रहती है। जिस न्याय का निष्कर्ष दूसरे न्याय मे आधार वाक्य वनता है वह दूसरे न्याय की तुलना मे पूर्व न्याय (Prosyllogism) कहलाता है। दूसरा न्याय पहले न्याय की तुलना मे उत्तर न्याय (Episyllogism) कहलाता है। पूर्व न्याय और उत्तर न्याय सापेक्ष पद हैं। किसी भी न्याय माला मे कोई न्याय किसी एक न्याय की तुलना मे पूर्व न्याय और अन्य न्याय की तुलना मे उत्तर न्याय हो सकता है। न्याय माला मे पूर्व न्याय और उत्तर न्याय का उदाहरण निम्नलिखित है—

जो जन्म लेता है वह मरता है।
सभी मनुष्य जन्म लेते है।
∴ सभी मनुष्य मरणशील है।
सभी मनुष्य मरणशील है।
मोहन मनुष्य है।
∴ मोहन मरणशील है।

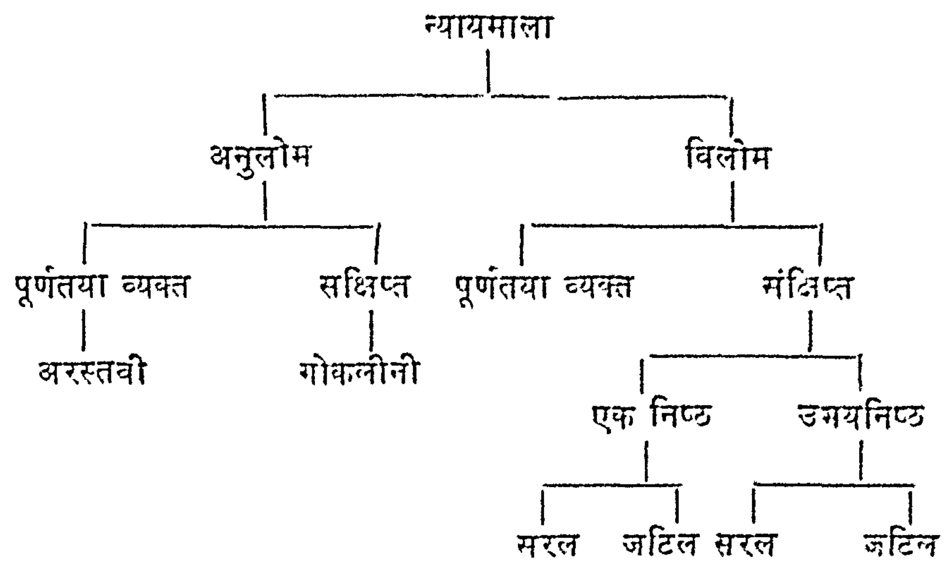
जैसा कि उपरोक्त दोनो न्यायो के उदाहरण से स्पष्ट है, उत्तर न्याय मे पूर्व न्याय का निष्कर्ष आधार वाक्य वन जाता है। सभी मनुष्य मरणशील है, यह पूर्व न्याय मे निष्कर्ष है और उत्तर न्याय मे आधार वाक्य है।

न्यायमाला के प्रकार

सामान्य रूप से न्याय माला दो प्रकार की होती है अनुलोम न्याय माला (Progressive train of Reasoning) और विलोम न्याय माला (Regressive train of Reasoning) इन दोनो के ही दो मुख्य रूप हैं—पूर्णतया व्यक्त (Fully expressed) और सक्षिप्त (Abridged)। अनुलोम सक्षिप्त न्याय माला दो प्रकार की होती है अरस्तवी (Aristotelian) और गोकलीन (Goclenian) दूसरी ओर सक्षिप्त विलोम न्याय माला के दो प्रकार हैं एकनिष्ठ (Single) और उभयनिष्ठ (Double)। इनमे से प्रत्येक मे सरल (Simple) और जटिल (Complex) दो प्रकार होते है। इस तरह न्याय माला के वर्गीकरण को अग्रलिखित चार्ट से भली प्रकार समझा जा सकता है।

उत्तर न्याय और पूर्व न्याय के सम्वन्ध के अनुसार न्यायमाला दो प्रकार की मानी जाती है—

(१) **उत्तरोन्मुखी (Episyllogistic) न्याय माला**—यह अनुलोम वर्धमान या सश्लेषणात्मक (Synthetic) न्याय माला भी कहलाती है। जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, इसमे पूर्व न्याय से उत्तर न्याय की ओर अग्रसर होता है। इसमे



दो या अधिक न्याय हो सकते है। पीछे दिया गया उदाहरण उत्तरोन्मुखी न्याय माला का ही उदाहरण है।

(२) **पूर्वोन्मुखी** (Prosyllogistic) न्याय माला—इसे विलोम, ह्रीयमान पूर्वोन्मुखी अथवा विश्लेपणात्मक (Analytic) न्याय माला कहते है। इसमे, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, तर्क उत्तर न्याय के पूर्व न्याय की ओर चलता है। इसी लिए यह विलोम या विश्लेपणात्मक न्याय माला कहलाती है।

संक्षिप्त अनुलोम न्यायमाला

न्याय माला का एक प्रकार संक्षिप्त अनुलोम न्यायमाला है। इसमें सभी पूर्व न्यायो के निष्कर्ष और इसलिए उत्तर न्यायों के आधार वाक्य गुप्त रहते हैं। अनुलोम न्याय माला कहलाने से ही स्पष्ट है कि इसमे तर्क पूर्व न्याय से उत्तर न्याय की ओर चलता है किन्तु इसमे पूर्व न्याय और उत्तर न्याय पूरी तरह स्पष्ट नहीं होते। जैसा कि इसकी परिभाषा मे पीछे कहा गया है, इसमे पूर्व न्यायो के निष्कर्ष और उत्तर न्याय वाक्यों के आधार वाक्य गुप्त रहते है। सक्षिप्त अनुलोम वाक्यमाला का एक उदाहरण निम्नलिखित है।

सब अ ब है
सब ब स है
∴ सब स द है
सब अ ए है
सब ए फ है
∴ सब अ फ है

उपरोक्त न्याय माला मे पूर्व न्यायों के निष्कर्ष और उत्तर न्यायो के आधार वाक्य गुप्त होते है। जैसा कि नीचे दिये गए उदाहरण से ज्ञात होता है।

(१) सब ब स है।
सब अ ब है।
∴ सब अ स है।
(२) सब स द है।
सब अ स है।
∴ सब अ द है।

(३) सब द ए है।
सब अ द है।
∴ सब अ ए है।
(४) सब ए फ है।
सब अ ए है।
∴ सब अ फ है।

सक्षिप्त अनुलोम न्याय माला के निम्नलिखित दो प्रकार माने जाते है—

(१) **अरस्तवी**—यह अनुलोम न्याय माला, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, अरस्तु ने बनायी थी। इसमे पूर्व न्यायो के दबे हुए निष्कर्ष उत्तर न्यायो मे ह्रस्व वाक्य बनते है। इसका उदाहरण निम्नलिखित है—

सॉकेतिक उदाहरण	**ठोस उदाहरण**
सब अ ब है	विद्वान विनयमान है
सब ब स है	विनयमान सुपात्र है
सब स द है	सुपात्र धार्मिक है
सब अ द है	विद्वान धार्मिक है

उपरोक्त ठोस उदाहरण मे पूर्व न्यायो के दबे हुए निष्कर्ष उत्तर न्यायो के ह्रस्व वाक्य है। उपरोक्त उदाहरण मे पहली दो पक्तियो के बाद विद्वान सुपात्र हैं यह निष्कर्ष दबा हुआ है। यही निष्कर्ष अगले न्याय मे आधार वाक्य बन जाता है।

(२) **गोकलीन संक्षिप्त अनुलोम न्याय माला**—इसको, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, मारबर्ग के प्रसिद्ध विद्वान गोकलेनियस ने उपस्थित किया था। इसमे पूर्व न्याय का दबा हुआ निष्कर्ष उत्तर न्याय का दीर्घ वाक्य होता है। इसका उदाहरण निम्नलिखित है—

सॉकेतिक उदाहरण	**ठोस उदाहरण**
सब स द है	सुपात्र धार्मिक है
सब ब स है	विनयमान सुपात्र है
सब अ ब है	विद्वान विनयमान है
सब अ द है	विद्वान धार्मिक है

उपरोक्त न्याय माला मे पहले दो वाक्यो के बाद सुपात्र विनयमान है निष्कर्ष वाक्य होगा, यही दूसरे न्याय का आधार वाक्य बन जाएगा। इस प्रकार इसे निम्नलिखित रूप मे लिखेगे—

(१) सुपात्र धार्मिक है
विनयमान सुपात्र है
∴ विनयमान धार्मिक है
विद्वान विनयमान है
∴ विद्वान धार्मिक है

सामान्य रूप से सक्षिप्त अनुलोम न्यायमाला के उपरोक्त दोनो प्रकारों मे निम्नलिखित अन्तर देखा जा सकता है।

(१) **दीर्घपद सम्बन्धी अन्तर**—जबकि अरस्तवी न्याय माला मे अन्तिम आधार वाक्य का विधेय दीर्घ पद होता है गोकलीन न्याय माला मे पहले आधार वाक्य का विधेय पद होता है।

(२) **ह्रस्व पद सम्बन्धी अन्तर**—जबकि अरस्तवी न्याय माला मे पहला उद्देश्य ह्रस्व पद होता है, गोकलीन न्याय माला मे ह्रस्व पद अन्तिम उद्देश्य होता है।

(३) **गुप्त निष्कर्ष सम्बन्धी अन्तर**—जबकि अरस्तवी न्याय माला मे पूर्व न्याय का गुप्त निष्कर्ष उत्तर न्याय मे ह्रस्व वाक्य होता है, गोकलीन न्याय माला में पूर्व न्याय का गुप्त निष्कर्ष उत्तर न्याय का दीर्घ वाक्य होता है।

(४) **आधार वाक्य सम्बन्धी अन्तर**—जबकि अरस्तवी न्याय माला मे पहला आधार वाक्य ह्रस्व होता है गोकलीन न्याय माला मे पहला आधार वाक्य दीर्घ वाक्य होता है।

(५) **अन्य आधार वाक्य सम्बन्धी अन्तर**—जबकि अरस्तवी न्याय माला में पहले आधार वाक्य को छोड़कर अन्य सब दीर्घवाक्य होते हैं, गोकलीन न्याय माला मे पहला आधार वाक्य छोडकर अन्य सब ह्रस्व वाक्य होते हैं।

संक्षिप्त अनुलोम न्याय माला के नियम—सक्षिप्त अनुलोम न्याय माला बनाने मे निम्नलिखित नियमो का पालन करना आवश्यक है—

(१) **एक ही आधार वाक्य निषेधात्मक**—संक्षिप्त अनुलोम न्याय माला मे एक ही आधार वाक्य निषेधात्मक होता है। यह अरस्तवी न्याय माला में अन्तिम और गोकलीन न्याय माला मे पहला होता है। एक आधार वाक्य के निषेधात्मक होने से निष्कर्ष भी निषेधात्मक होता है। निष्कर्ष निषेधात्मक होने से विधेय व्याप्त होता है। अस्तु अरस्तवी न्याय माला मे अन्तिम और गोकलीन न्याय माला मे पहला आधार वाक्य निषेधात्मक होता है। ऐसा न होने पर अनियमित दीर्घ पद दोष होगा क्योकि अरस्तवी न्याय माला मे अन्तिम आधार वाक्य विधेय और गोकलीन न्याय माला मे प्रथम वाक्य विधेय होता है।

(२) **एक ही आधार वाक्य विशेष**—अनुलोम न्याय माला का दूसरा नियम यह है कि इसमे एक ही आधार वाक्य विशेष होता है। यह आधार वाक्य अरस्तवी न्याय माला मे पहला और गोकलीन न्याय माला मे आखिरी होता है। एक आधार वाक्य विशेष होने से निष्कर्ष भी विशेष होता है। अस्तु यदि एक से अधिक आधार वाक्य विशेष हे तो किसी न किसी न्याय मे दोनो आधार वाक्य विशेष हो जाने से कोई निष्कर्ष नही निकलेगा।

उपरोक्त नियम तभी लागू होते है जबकि सक्षिप्त अनुलोम न्याय माला मे सभी न्याय पहले आकार मे हो। ऐसा न होने पर न्याय माला मे दोष उत्पन्न ह जाता हैं।

संक्षिप्त विलोम न्याय माला

संक्षिप्त विलोम न्याय माला क्या है—सक्षिप्त विलोम न्याय माला (Epicheirema) न्याय माला का वह प्रकार है जिसमे प्रत्येक पूर्व न्याय का एक आधार वाक्य गुप्त अथवा अव्यक्त रहता है और उत्तर न्याय पूरी तरह व्यक्त रहता है। जैसा कि पीछे बतलाया जा चुका है, सक्षिप्त विलोम न्याय माला सरल अथवा जटिल होती है और इनमे से प्रत्येक के दो रूप होते है एकनिष्ठ और उभयनिष्ठ। अस्तु, सक्षेप मे सक्षिप्त विलोम न्याय माला को अग्रलिखित चार वर्गो मे बाटा जा सकता है—

(१) **सरल एकनिष्ठ संक्षिप्त न्याय माला** (Simple Single Epicheirema)—

इस न्याय माला मे क्रम इस प्रकार होता है–सब अ ब है क्योंकि सब स ब है और सब अ स है। सब स ब है क्योकि सब द ब है। इस न्याय माला को पूर्ण तथा व्यक्त करने पर इसका निम्नलिखित रूप हो जाता है।

(क) सब स ब है।
सब अ स है।
∴ सब अ ब है।
(ख) सब द ब है।
सब स द है।
∴ सब स ब है।

उपरोक्त उदाहरण मे दूसरे न्याय वाक्य का निष्कर्ष पहले वाक्य मे साध्य वाक्य है। इसलिये पहला न्याय वाक्य पूर्व न्याय और दूसरा उत्तर न्याय है। इस प्रकार इस न्याय माला मे उत्तर न्याय से पूर्व न्याय की ओर युक्ति चलती है। स्पष्ट है कि यह विलोम न्याय माला है। दूसरे, चूंकि इसमे पूर्व न्याय का एक आधार वाक्य अव्यक्त है इसलिये यह सक्षिप्त न्याय माला है। यह सरल है क्योकि इसमे उत्तर न्याय का आधार वाक्य संक्षिप्त न्याय द्वारा सिद्ध होता है। इसको एकनिष्ठ इसलिए कहते है क्योकि इसमे एक ही आधार वाक्य को इस प्रकार सिद्ध किया गया है।

(२) **सरल उभयनिष्ठ विलोम न्याय माला** (Simple Double Epicheirema)—इसमे पिछले प्रकार की न्याय माला से यह अन्तर है कि इसमे एक आधार वाक्य को नही बल्कि दोनो आधार वाक्यो को सिद्ध किया गया है। इसका उदाहरण है—

अ ब है, क्योंकि स ब है और अ स है।
स ब है, क्योकि द ब है।
और अ स है, क्योकि ज स है।

(३) **जटिल एकनिष्ठ संक्षिप्त विलोम न्याय माला** (Complex Single Epicheirema)—जिस न्याय माला मे उत्तर न्याय का एक आधार वाक्य एक संक्षिप्त न्याय के द्वारा सिद्ध किया जाता है और फिर इस सक्षिप्त न्याय को भी दूसरे सक्षिप्त न्याय के द्वारा सिद्ध किया जाता है वह जटिल सक्षिप्त विलोम न्याय माला कहलाती है। यह सरल तब होती है जब कि उत्तर न्याय का केवल एक आधार वाक्य सिद्ध किया जाता है। निम्नलिखित उदाहरण देखिये—

अ ब है, क्योकि स ब है और अ स है।
स ब है, क्योकि द ब है।
और द ब है, क्योकि प ब है।

(४) **जटिल उभयनिष्ठ संक्षिप्त विलोम न्याय माला** (Complex Double Epicheirema)—यह उभयनिष्ठ इसलिये कहलाती है क्योकि इसमे उत्तर न्याय के दोनो आधार वाक्यो को सिद्ध किया गया है। निम्नलिखित उदाहरण देखिये—

स ब है, क्योकि द ब है, क्योकि प ब है।
अ स है, क्योकि क स है, क्योकि ख स है।
∴ अ ब है।

सारांश

संक्षिप्त न्याय वाक्य में कोई तर्कवाक्य छिपा रहता है। यह प्रथम, द्वितीय तृतीय और चतुर्थ श्रेणी का होता है। अरस्तू के अनुसार यह अर्थ में अपूर्ण होता है। किन्तु वास्तव में यह रूप में अपूर्ण होता है, इसकी परीक्षा करने के लिये इसे पूरी तरह व्यक्त किया जाता है।

न्यायमाला दो या अधिक तर्कवाक्यों की वह श्रृंखला है जिससे अन्त में एक निष्कर्ष निकलता है। न्याय माला के दो प्रकार हैं—उत्तरोन्मुखी और पूर्वोन्मुखी न्याय माला। न्यायमाला के अन्य प्रकार है अनुलोम और विलोम। इन दोनों के दो प्रकार हैं व्यक्त और संक्षिप्त। सक्षिप्त अनुलोम न्याय माला के दो प्रकार हैं अरस्तवी और गोकलीन। संक्षिप्त विलोम न्याय माला के दो प्रकार हैं—एकनिष्ठ और उभयनिष्ठ इनमें से प्रत्येक के दो रूप हैं—सरल और जटिल।

अभ्यास के लिये प्रश्न

प्रश्न १ सामान्य भाषा मे तर्क करने के तर्कवाक्यो की व्याख्या कीजिये। (बुन्देलखण्ड १९७८)

२०

आगमन के आधार-प्रकृति की समरूपता और कारणता

(POSTULATES OF INDUCTION-UNIFORMITY OF NATURE AND CAUSATION)

तर्कशास्त्रियो ने आगमन के आकार विषयक और द्रव्य विषयक पूर्व मान्यताओ अथवा आधारो मे अन्तर दिखलाया है। शुद्ध आगमन मे आकार विषयक और द्रव्य विषयक दोनो ही प्रकार की सत्यता होनी चाहिये। इसलिये आगमन मे आकार विषयक और द्रव्य विषयक दोनो ही प्रकार के आधारो पर जोर दिया जाता है। आगमन के द्रव्य विषयक आधार निरीक्षण और प्रयोग है। यहा पर आगमन के आकार विषयक आधारो की चर्चा की जायेगी।

आगमन के आकार विषयक आधार

आगमन के आकार विषयक आधार निम्नलिखित है—

(१) प्रकृति की समरूपता का नियम (Law of Uniformity of Nature)

(२) कारणता का नियम (Law of Causation)

प्रकृति की समरूपता का सिद्धांत

सिद्धांत का तात्पर्य

विज्ञान मे विभिन्न सामान्य तथ्यो के निरीक्षण से सामान्यीकरण करना कैसे उचित है ? इसका उत्तर प्रकृति की समरूपता का नियम है। यह नियम समस्त विज्ञान के मूल मे उपस्थित है। समरूपता के सिद्धांत को अनेक प्रकार से व्यक्त किया गया है जैसे प्रकृति एक रूप है, प्रकृति अपनी पुनरावृत्ति करती है, भविष्य भूत के समान होगा, विश्व मे नियम का शासन है, प्रकृति के नियम दिखलाई देते है, प्रकृति मे समान दृष्टाँत दिखलाई देते है, वही कारण वही कार्य पैदा करेगा इत्यादि। समरूपता के सिद्धांत को व्यक्त करने वाले इन सब कथनो मे एक बात सामान्य रूप से मानी गई है कि प्रकृति समान परिस्थिति मे समान व्यवहार करती है। दूसरे शब्दो मे, यदि वे ही परिस्थितियाँ दोबारा उत्पन्न हो तो उनमे वे ही घटनायें भी उत्पन्न होगी। उदाहरण के लिये यदि भूतकाल मे सामान्य रूप से भग्न परिवारो मे किशोरापराधी उत्पन्न होते रहे है तो अन्य बातें समान रहने पर भविष्य मे भी ऐसा ही होगा। आग पानी से बुझती रही है और बुझती रहेगी। ऐसा नही हो सकता कि जो आग आज तक जलाती रही है वह कल को न जलाये।

प्रकृति मे अटल और सनातन नियम काम करते है और इनमे कोई अपवाद नही होता। इसी कारण आगमनात्मक प्रणाली से निकाले गये सामान्य सिद्धान्त प्रत्येक देश काल मे सही सिद्ध होते है।

समरूपता की विविधता

उपरोक्त विवेचन से यह निष्कर्ष नही निकाला जाना चाहिये कि प्रकृति मे अपवाद होते ही नही। जैसा कि पाश्चात्य अनुभववादी दार्शनिक ह्यूम ने ठीक ही दिखलाया था प्रकृति के विषय मे कोई सामान्य सिद्धान्त सम्भावना (Probability) से अधिक नही है। मिल के शब्दो मे, "कोई भी यह विश्वास नही कर सकता कि प्रतिवर्ष वर्षा के वाद अच्छा मौसम इसी प्रकार आता रहेगा जिस प्रकार इस वर्ष आया है। कोई भी यह आशा नही करता कि वे ही स्वप्न प्रत्येक रात दिखलाई देगे · वास्तव मे प्रकृति का व्यवहार केवल समरूप ही नही है वल्कि विविधता लिये हुए भी है।"[1] इसी वात को दूसरे प्रकार से कहते हुए कार्वेथरीड ने लिखा है, "कई रूपो मे प्रकृति समरूप नही दिखाई देती। वस्तुओ के आकार प्रकार, रग और सभी गुणो मे बहुत विविधता पाई जाती है···हवा और मौसम के वारे मे कहावत है कि इनका कोई ठिकाना नही है, व्यापार और राजनीति मे आश्चर्यजनक घटनाये होती रहती है।'[2] जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे हम सदैव ऐसी घटनाये देखते है जो पहले कभी नही हुई और जिनके होने की सम्भावना भी नही की जा सकती थी। विभिन्न विज्ञानो के क्षेत्र मे बरावर नये-नये सिद्धान्त आते रहते है जिनसे पिछले सिद्धान्तो का खण्डन होता है। लगभग प्रत्येक वैज्ञानिक नियम का कोई न कोई अपवाद अवश्य मिल जाता है। इसलिए वैज्ञानिक नियमो को सम्भावना मात्र माना जाता है, अनिवार्य नही कहा जाता। दूसरे शब्दो मे, जहाँ प्रकृति मे समरूपता है वहाँ विविधता भी है परन्तु क्या इससे यह कहना गलत सिद्ध हो जाता है कि प्रकृति मे समरूपता है? वास्तव मे यहाँ पर प्रकृति मे समरूपता के नियम का वास्तविक अर्थ जानना आवश्यक है।

प्रकृति की समरूपता का अर्थ यह नही है कि भविष्यकाल मे विल्कुल वैसी ही घटनाये होगी जैसी कि भूतकाल मे हुई है। इस नियम का अर्थ केवल यह है कि प्राकृतिक घटनाये कुछ निश्चित नियमो के अनुसार होती है। ये नियम विशेष परिस्थितियो मे काम करते है और जब तक परिस्थितियाँ ये ही रहेगी तव तक प्रकृति मे वे ही घटनाये होगी जो पहले होती रही है। इसको समझने के लिये भौतिकशास्त्र, भूगोल, भूगर्भशास्त्र, रसायनशास्त्र आदि किसी भी भौतिक विज्ञान से कितने ही उदाहरण दिये जा सकते है। एक उदाहरण गुरुत्वाकर्षण के नियम का है। इसके कारण जो ज्वारभाटे उठते है उनमे आज तक कोई भी परिवर्तन नही

---

1 "Nobody believes that the succession of rain and fine weather will be the same in every future year as in the present. Nobody expects to have the same dreams repeated every night The course of Nature, in truth, is not only uniform, it is also infinitely various" —Mill

2 "In many ways Nature seems not to be uniform · there is great variety in the sizes, shapes, colours and all other properties of things.. the wind and the weather are proverbially uncertain, the course of trade or of politics, is full of surprises." --Carveth Read

देखा गया। प्रकृति की इसी समरूपता के कारण विभिन्न विज्ञानों मे भविष्यवाणियाँ की जाती है। मौसम के बारे में पहले से ही अनुमान कर लिया जाता है; भूकम्प तूफान आदि को पहले से ही जान लिया जाता है। यह ठीक है कि अनुमान कभी-कभी गलत भी होते है परन्तु सामान्य रूप से वे काम चलाऊ अवश्य होते हैं। प्रकृति की समरूपता का अर्थ उसकी घटनाओ मे विविधता का अभाव नही है वल्कि विविधता मे एकता, नानात्व मे एकत्व की उपस्थिति है। जब कभी कोई घटना अनुमान के विरुद्ध होती है तो इससे हम प्रकृति की समरूपता मे सन्देह नही करते वल्कि उस घटना के विषय मे अपने ज्ञान को ही अपूर्ण ठहराते है और अधिक ज्ञान प्राप्त करने की चेष्टा प्राप्त करते हैं। सच तो यह है कि हजारो सालो के अनुसंधानो के वाद भी प्रकृति के लगभग सभी क्षेत्रो मे मनुष्य वहुत ही थोड़ा जान सका है। तव क्या आश्चर्य है कि वहुधा हमारे अनुमान गलत सावित होते है ? परन्तु यदि इससे प्रकृति की समरूपता के सिद्धान्त को ही छोड़ दिया जाये तो समस्त विज्ञान की नीवें हिल जायेगी। इसीलिये भविष्यवाणियो के कितने भी गलत सिद्ध होने पर भी प्रकृति की समरूपता के नियम मे सन्देह नही किया जाता। यहाँ पर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि प्रकृति में विभिन्न क्षेत्रो मे भिन्न-भिन्न नियम काम करते है। उदाहरण के लिए पशु जगत मे अस्तित्व के लिये सघर्प और योग्यतम की विजय के नियम काम करते हैं, परन्तु इन नियमो के आधार पर मानव समाज की विभिन्न प्रक्रियाओ की व्याख्या नही की जा सकती क्योंकि मनुष्यो मे सघर्ष के साथ सहयोग भी है। इसी प्रकार जो नियम जैवकीय उद्‌विकास की व्याख्या करते है उन नियमो को जड़तत्व मे उद्‌विकास पर लागू नही किया जाता। इसीलिये वेन ने ठीक ही कहा है, "जगत मे एक समरूपता नही है किन्तु अनेक समरूपताये है।"[1] भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र, जीवशास्त्र और समाजशास्त्र के क्षेत्रो मे भिन्न-भिन्न नियम दिखलाई पड़ते है। ऐसा नही है कि विभिन्न विज्ञानो के नियमो का परस्पर कोई सम्वन्ध ही न हो किन्तु विपय सामग्री के अन्तर से उनके नियमो में अन्तर हो जाता है। कुल मिलाकर विभिन्न विज्ञानो को देखने से यह अवश्य स्पष्ट होता है कि प्रकृति मे सव कही व्यवस्था है और सव कही समष्टि है। अस्तु, केवल विशिष्ट विज्ञान के क्षेत्र मे ही नही वल्कि समस्त विज्ञानो के क्षेत्र मे भी प्रकृति की समरूपता की वात कही जा सकती हैं। वेल्टन ने ठीक ही लिखा है, "प्रकृति की समरूपता कहने से हमारा तात्पर्य यह नही है कि जगत एक अपरिवर्तनशील इकाई है वल्कि यह है कि जगत एक ऐसी समष्टि है जो भागो के पारस्परिक सम्वन्धो के निरन्तर वदलते रहने पर भी वही वनी रहती है।"[2] इस प्रकार प्रकृति मे अनेकता मे एकता और विविधता में समरूपता दिखलाई पड़ती है।

समरूपता के दो अर्थ

मैलोन ने प्रकृति की समरूपता की व्याख्या करते हुए कारण की समरूपता और प्रकृति की वर्तमान व्यवस्था का वना रहना समरूपता के इन दो अर्थो मे अन्तर

---

1 "The course of the world is not a uniformity but uniformities"
—Bain

2 "The unity of nature does not mean that the universe is an unchanging identity, but that it is a system which remains identical with itself amidst the unceasing changes of relations between its parts"
—Welton

किया है। कौफी (Coffey) पहले अर्थ को प्रकृति की समरूपता के कथन का हेतुफलाश्रित रूप (Hypothetical Form) और दूसरे अर्थ को उसका निरपेक्ष (Categorical) रूप कहता है। सापेक्ष रूप मे प्रकृति की समरूपता का अर्थ यह है कि यदि वही कारण दुबारा होगा तो उसका वही कार्य भी होगा। निरपेक्ष रूप मे प्रकृति की समरूपता के अर्थ को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है कि प्रकृति का व्यवहार जैसा भूतकाल में रहा है वैसा ही भविष्य मे भी रहेगा। समरूपता के इन दोनो अर्थो मे पहला ही अर्थ अधिक उपयुक्त है और आधुनिक वैज्ञानिक इसी को मानते है। दूसरे अर्थ मे प्रकृति की समरूपता को नही माना जा सकता क्योकि प्राकृतिक घटनाओ के विषय मे हमारा ज्ञान कभी भी असंदिग्ध नही हो सकता क्योंकि हमारा अनुभव सीमित है। इसी अर्थ मे मिल ने यह कहा था कि "अज्ञात ज्ञात की तरह होगा।"

आगमन में महत्व

प्रकृति की समरूपता का सिद्धान्त आगमन का आकार विषयक आधार है। मिल ने इसे आगमन का आधारभूत नियम या सामान्य स्वयं सिद्धि और "आगमन के प्रत्येक दृष्टान्त मे छिपी हुई मान्यता" कहा है। स्पष्ट है कि भले ही प्रकृति की समरूपता का सिद्धान्त सिद्ध न किया जा सके किन्तु उसको माने विना आगमन सम्भव नही हो सकता।

आगमन का विरोधाभास

समरूपता के सिद्धान्त से आगमन का सम्बन्ध बतलाते हुये मिल ने यह भी कहा है कि यह नियम "स्वय आगमन का एक दृष्टान्त है।" और वह "स्वय पहले सामान्यीकरणो पर आधारित है।" मिल के आगमन और प्रकृति की समरूपता के सम्बन्ध के विषय मे इन परस्पर विरोधी कथनो मे विरोधाभास मिलता है। मिल का कहना है कि प्रकृति की समरूपता का नियम अबाधित अनुभवो पर आधारित है। दूसरे शब्दो मे, हम बिना अपवाद के समरूपता देखते है और इसीलिये समरूपता का नियम मानते है और एक बार जब यह नियम बन जाता है तो यही आगमनो का आधार बन जाता है। मिल के आगमन के विरोधाभास (Paradox of Induction) के विरुद्ध निम्नलिखित युक्तियाँ उपस्थित की गयी है—

(१) **आत्माश्रय दोष**—मिल की युक्ति मे आत्माश्रय (petitio principii) दोष है क्योकि वह जिस बात को सिद्ध करना चाहता है उसे पहले से ही मान लेता है। समरूपता के नियम को माने वगैर आगमन नही हो सकता और आगमन को माने वगैर समरूपता का नियम नही माना जा सकता।

(२) **यह कहना अनुचित है कि सम्भाविता निश्चय का आधार है**—यदि प्रकृति की समरूपता सामान्य गणना से प्राप्त आगमन पर आधारित है तो उसमे सम्भाविता है निश्चितता नही। दूसरी ओर वैज्ञानिक आगमन मे निश्चितता होती है। यहाँ पर यह समझना कठिन है कि सम्भाविता के आधार पर निश्चितता की स्थापना कैसे की जाती है।

(३) **अनुभव का आधार अनुभवजन्य कैसे हो सकता है?**—पहले कहा जा चुका है कि प्रकृति की समरूपता का सिद्धान्त समस्त अनुभव की आधारभूत मान्यता है। मिल के मत से यह नियम अनुभवजन्य ठहरता है क्योकि मिल अनुभववादी

(Empiricist) था। यहाँ यह समझना कठिन है कि अनुभव का आधार अनुभवजन्य कैसे हो सकता है ?

हरवर्ट स्पेन्सर ने प्रकृति मे समरूपता के सिद्धान्त को मनुष्य मे जन्मजात, अनुभव-पूर्व और मौलिक मान्यता माना है। उसने अपने विकासवादी सिद्धान्त के आधार पर यह सिद्ध किया है कि प्रकृति की समरूपता का नियम हमे हमारे पूर्वजों को, सदैव अनुभव का आधार रहा है। इसलिये वह अनुभवजन्य नही माना जाना चाहिये।

समरूपताओं के मौलिक प्रकार

कार्वेथ रीड ने समरूपताओ के निम्नलिखित मौलिक प्रकार माने है—

(१) व्याघात और मध्यदशा परिहार के नियम।
(Principle of Contradiction and Excluded Middle)
(२) सान्तरानुमान की कुछ स्वय सिद्धियाँ।
(Certain Axioms of Mediate Evidence)
(३) देश और काल की समरूपताये।
(The Uniformities of Time and Space)
(४) विश्व मे पुद्गल और ऊर्जा की नित्यता।
(The Persistance of Matter and Energy)
(५) कार्य कारण का नियम।
(६) सहअस्तित्व।

मिल ने प्रकृति मे दो प्रकार की सम्भावनायें दिखलाई है—सहअस्तित्व की समरूपता और अनुक्रम की समरूपता। वेन ने प्रकृति मे तीन प्रकार की समरूपता मानी है—१. सहअस्तित्व, जिसमे स्थान और एक साथ रहने वाले गुणो की व्यवस्था सम्मिलित है, २ अनुक्रम जिसमे समय और कारण की व्यवस्था सम्मिलित है और समानता तथा असमानता जो कि गणित का आधार है।

समरूपता में विश्वास का उद्गम

प्रकृति की समरूपता मे आस्था का मूल आधार क्या है, इस विषय मे निम्नलिखित तीन मत पाये जाते हैं—

(१) **अनुभव निरपेक्षतावाद** (Apriori theory) **या सहजज्ञानवाद** (Intuitionism)—यह मत रीड और हैमिल्टन इत्यादि सहजज्ञानवादियो ने उपस्थित किया है। इसके अनुसार प्रकृति की समरूपता मे विश्वास एक सहज विचार है जो कि अनुभव निरपेक्ष है। हम सहजज्ञान से प्रकृति मे समरूपता पाते हैं और इसलिये इस ज्ञान की सत्यता मे सन्देह नही करते।

प्रकृति की समरूपता मे विश्वास के विषय मे उपरोक्त व्याख्या मे निम्नलिखित दोष है—

(१) इस मत से यह नही ज्ञात होता है कि यह नियम सहज विचार क्यो है ?

(२) यदि यह सहज विचार है तो सभी लोगो को इसका ज्ञान होना चाहिये किन्तु बालको, मूर्खो तथा अन्य अनेक व्यक्तियो को इसका ज्ञान नही होता।

(२) **अनुभव सापेक्षतावाद** (A posteriori theory) **या अनुभववाद** (Empiricism)—इस मत को ह्यूम और मिल इत्यादि अनुभववादियो ने प्रस्तुत किया है। इसके अनुसार प्रकृति की समरूपता मे विश्वास अनुभव के कारण होता है।

और इस प्रकार वह अनुभव सापेक्ष है। मनुष्य लम्बे काल तक अनुभव के द्वारा ही प्रकृति के विभिन्न सिद्धातो का पता लगा सका है चूँकि प्रकृति की समरूपता से उसको अपवाद नही मिलते इसलिये वह उसको नियम बना लेता है। मिल के कथन मे आगमन का विरोधाभास मिलता है। समरूपता का नियम आगमन का आधार भी है और उसका फल भी स्पष्ट है कि मिल के तर्क मे आत्माश्रय दोष और अनुभववादी पक्षपात पाया जाता है।

(३) **विकासवादी मत** (Evolutionary Theory)—विकासवादी दार्शनिक हरवर्ट स्पेन्सर के अनुसार पिता मे जो आदत है वह बच्चे मे स्वभाव बन जाता है। इस प्रकार मनुष्य जाति के हजारो साल के अनुभव से हमारे अन्दर प्रकृति की समरूपता मे विश्वास उत्पन्न हो गया है। विकासवादी मत समस्या को केवल एक कदम पीछे ढकेल देता है और किसी भी तरह से अनुभववाद से अधिक अच्छा सावित नही होता।

वास्तव में प्रकृति की समरूपता का नियम समस्त तर्क का आधार है और इसलिये उसको किसी भी तरह से सिद्ध नही किया जा सकता। यह तर्कशास्त्र की समस्या नही है। इसे तो मनोविज्ञान अथवा दर्शन मे ही सुलझाया जा सकता है। तर्कशास्त्र की दृष्टि से तो यही कहा जायेगा कि प्रकृति मे समरूपता का नियम समस्त आगमन का आधार है और समस्त आगमनात्मक प्रमाणो का आधारभूत नियम है। अस्तु, उसके विश्वास के मूल की व्याख्या का प्रश्न ही नही उठता। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह विश्वास कैसे उत्पन्न हुआ इसकी खोज मनोविज्ञान मे की जाएगी, तर्कशास्त्र मे नही।

कारणता का नियम

कारण की सामान्य धारणा

साधारण भाषा मे लोग बराबर यह कहते सुनायी पड़ते है कि अमुक घटना का अमुक कारण है अथवा अमुक कार्य अमुक कारण की वजह से हुआ है। साधारणतया जब कभी भी घटना होती है तो हम यह समझते है कि उसका कोई न कोई कारण अवश्य होगा और इसलिए हम उसके कारण की तलाश मे लग जाते है। सामान्य व्यक्ति कारण के विषय मे बहुत सकुचित दृष्टिकोण रखता है। उदाहरण के लिये किसी का लडका घर से भाग जाता है तो सामान्य व्यक्ति यह समझते है कि चूँकि उस लडके को उसके पिता ने पीटा है इसलिए वह भाग गया जबकि वास्तव मे घर से भाग जाने जैसी असामान्य घटना पीटने मात्र का परिणाम नही हो सकती। वास्तव मे किसी भी घटना के होने पर जो उसका प्रमुख कारण दिखाई पड़ता है अथवा जो उसका निकट कारण है उसे ही सामान्य व्यक्ति कारण मान बैठते है और ऐसे कारको की ओर ध्यान नही देते जो छिपे हुए रहते है। उदाहरण के लिये कोई व्यक्ति सीढी से फिसल जाता है और उसकी मृत्यु हो जाती है तो सामान्य व्यक्ति यह कहने लगता है कि सीढी से फिसल जाने से उसकी मृत्यु हो गयी जबकि वास्तव मे सीढी से फिसल जाना उसके मरने का कारण नही हो सकता। मरने का कारण तो सिर फट जाना या शरीर को किसी प्रकार से गहरी चोट पहुँचना ही हो सकता है। इसके अभाव मे सीढ़ी से फिसल कर मृत्यु नही हो सकती। वैज्ञानिक दृष्टि से मृत्यु का कारण सीढी से फिसलना नही किन्तु शरीर को लगी घातक चोट मानी जाएगी।

कारण की वैज्ञानिक धारणा

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जनसाधारण मे प्रचलित कारणता की धारणा दोषपूर्ण है क्योकि उसमे असली कारण की धारणा न समझकर तात्कालिक घटना अथवा सबसे अधिक प्रत्यक्ष कारक को ही कारण मान लिया जाता है। कारणता की वैज्ञानिक धारणा जनसाधारण मे प्रचलित धारणा से भिन्न है। वैज्ञानिक दृष्टि से कारण की परिभाषा में भावात्मक (Positive) और अभावात्मक (Negative) सभी प्रकार की उपाधियों के पूर्ण योग को लिया जाता है। जबकि सामान्य व्यक्ति अत्यन्त दूरस्थ (Remote) कारण को भी वास्तविक कारण मान बैठते है, वैज्ञानिक किसी कार्य के नियत, अनुपाधिक और अव्यवहित पूर्ववर्ती कारण को ही वास्तविक कारण मानता है। जबकि साधारण व्यक्ति किसी विमोचक उपाधि (Liberating Condition) को ही कारण मान बैठते हैं वैज्ञानिक दृष्टि से उसे कारण नही माना जाता। उदाहरण के लिए टोटी खोल देने से पानी बहने पर साधारण व्यक्ति पानी बहने का कारण टोटी को खोल देना मान लेता है जबकि वास्तव में यह विमोचक उपाधि मात्र है क्योंकि नल मे पानी न रहने से टोंटी खोल देने से भी पानी नही बहेगा। नल मे पानी रहने से ही टोटी खोल देने पर पानी बहता है। जनसाधारण मे बहुधा कर्ता (Agent) को ही कारण मान लिया जाता है और कर्माश्रिय (patient) को कारण मे नही गिना जाता। उदाहरण के लिए दियासलाई दिखाने से बारूद मे आग लग जाती है तो साधारण व्यक्ति बारूद को नही बल्कि दियासलाई को विस्फोट का कारण मानता है जबकि वास्तव में विस्फोट का कारण बारूद है चिंगारी नही, यह दूसरी बात है कि चिंगारी के बिना बारूद मे आग नही लग सकती। कारण मे चालक शक्ति और वस्तु विन्यास दोनो उपाधियाँ सम्मिलित है। सामान्य व्यक्ति चालक अथवा उत्तेजक शक्ति को ही कारण मान बैठता है किन्तु वैज्ञानिक दृष्टि से चालक अथवा उत्तेजक शक्ति और वस्तु विन्यास दोनो ही मिलकर कारण बनाती है। कारण कर्ता और कर्माश्रिय के मिलने से बनता है।

सक्षेप मे बेन के शब्दो मे, "जनसाधारण की दृष्टि से, किसी घटना का कारण उसकी उपाधियो के समुच्चय मे से चुनी हुई एक ऐसी उपाधि होती है जो उस क्षण व्यवहार रूप मे महत्वपूर्ण मानी जाती है।" दूसरो ओर वैज्ञानिक दृष्टि से कारण नियत, निरुपाधिक और अव्यवहित पूर्ववर्ती अथवा सब भावात्मक और अभावात्मक उपाधियो का सहयोग होता है। बेन के शब्दो मे, "वैज्ञानिक छान बीन मे उपाधियो या परिस्थितियो के उस सम्पूर्ण को कारण मानना चाहिये जो कार्य को उत्पन्न करने के लिए आवश्यक होता है।"[1]

कारण की परिभाषा

कारणता के उपरोक्त वैज्ञानिक विवेचन से कारण की परिभाषा को समझा जा सकता है। इस सम्बन्ध मे कुछ परिभाषाये निम्नलिखित हैं—

(१) **मिल का मत**—तर्कशास्त्री मिल के अनुसार किसी वस्तु का कारण,

---

1. "In scientific investigation, the cause must be regarded as the entire aggregate of conditions or circumstances requisite to the effect" —Bain·

"वह पूर्ववर्ती या पूर्ववतियो का समूह है जिसके या जिनके होने के बाद वह वस्तु सदैव अनिवार्य रूप से होती है।" अन्य स्थान पर मिल ने लिखा है कि किसी वस्तु का कारक, "भावात्मक और अभावात्मक उपाधियों को मिलाकर जो समूह बनता है वह होता है।"[1] इस प्रकार मिल के मत के अनुसार कारण और कार्य मे अनुक्रम सम्बन्ध होता है। कारण कार्य का नियत पूर्ववर्ती होता है। उदाहरण के लिए दूध जमाने से दही बनता है। दही बनने के पहले दूध का होना सदैव आवश्यक है।

(२) **कार्वेथ रीड का मत**—कार्वेथ रीड के अनुसार किसी घटना का कारण गुण की दृष्टि से, "कार्य का अव्यवहित, निरुपाधिक, नियत पूर्ववर्ती।"[2] होता है और परिणाम की दृष्टि से, "कार्य के समान" होता है। कार्वेथ रीड के इस मत मे यह माना गया है कि कारण और कार्य दोनों घटनाये है और दोनों मे सापेक्ष भाव है। कारण कार्य मे अनुक्रम होता है और कारण कार्य का नियत पूर्ववर्ती है। कारण कार्य का अनुपाधिक पूर्ववर्ती भी है।

(३) **बेन का मत**—तर्कशास्त्री बेन के अनुसार, "कारण उन सब परिस्थितियो या उपाधियो का समूह है जो कार्य की उत्पत्ति के लिए आवश्यक होती हैं।"[3]

कारण की विशेपताये

कारण की उपरोक्त परिभाषाओ से उसकी निम्नलिखित विशेपताये ज्ञात होती हैं—

(१) **कारण और कार्य सापेक्ष (Relative) पद हैं**—प्रकृति में कुछ तथ्य कारण हो और कुछ कार्य हों ऐसा नही है। एक ही तथ्य किसी अन्य तथ्य के सम्बन्ध मे कारण होता है और दूसरे तथ्य के सम्बन्ध मे कार्य होता है। इस प्रकार कारण अथवा कार्य होना किसी अन्य तथ्य से सापेक्ष सम्बन्ध मे होता है। निरपेक्ष रूप से कोई भी तथ्य कारण अथवा कार्य नहीं होता।

(२) **कारण कार्य का पूर्ववर्ती (Antecedent) होता है**—कारण और कार्य में कालगत अनुक्रम देखा जाता है। घटनाओ के किसी क्रम मे पहले आने वाले सोपान को बाद मे आने वाले सोपान का कारण माना जाता है। इस प्रकार काल की दृष्टि से कारण कार्य का पूर्ववर्ती (Antecedent) होता है और कार्य कारण का अनुवर्ती (Consequent) होता है। कुछ तर्कशास्त्रियों ने कारण को कार्य का पूर्ववर्ती न मानकर समकालीन माना है क्योकि उनका कहना है कि जब तक कार्य न हो तब तक कारण नही हो सकता। यह बात कुछ घटनाओ में तो सत्य हो सकती है जिनमें कारण और कार्य मे समय का अन्तर बहुत ही कम होता है किन्तु ऐसी घटनाओ के विपय मे सत्य नही हो सकती जिनमें कारण के पूर्ण होने मे बहुत समय लगता हे। उदाहरण के लिये विश्व महायुद्धो के कारण और कार्य मे बहुत बडा व्यवधान था। उनके कारण बनने मे बहुत समय लगा और तब कही

---

1 "The sum total of the conditions positive and negative taken together" —Mill.

2. "The immediate, unconditional, invariable antecedent of the effect" —Carveth Read.

3 "The entire aggregate of conditions or circumstances requisite to the effects" —Bain.

जाकर के कार्य शुरू हुआ। इसलिये कार्वेथ रीड ने कहा है, "यह एक बडी गलती है क्योकि कारण शब्द कार्य सूचक अवश्य है परन्तु साथ ही साथ इस बात का भी सूचक है कि कार्य अपेक्षाकृत बाद मे भी होगा तथा कार्य शब्द इस बात का सूचक है कि कारण कुछ पहले होगा।"[1] इसका अर्थ यह नही है कि कारण और कार्य पृथक घटनाये है। वास्तव मे ये दोनो ही एक समय के दो पहलू हैं और केवल विचार की दृष्टि से इन्हे अलग किया जाता है। इनके बीच मे कोई ऐसी रेखा नही खीची जा सकती जिसके एक ओर कारण हो और दूसरी ओर कार्य क्योकि प्रकृति मे घटनाओ का प्रवाह अबाध रूप से चलता रहता है। मैलोन ने ठीक ही कहा है कि यदि पूर्ववर्तिता को कारण का एक लक्षण कहा जाता है तो हमे ऐसा समझना चाहिये कि कारण और कार्य पृथक घटनाये है।

(३) **कारण कार्य का नियत** (Invariable) **पूर्ववर्ती है**—केवल पूर्ववर्ती होने मात्र से कोई तथ्य किसी अन्य तथ्य का कारण नही हो जाता। इसी बात की ओर सकेत करते हुए ब्रिटिश दार्शनिक डेविड ह्यूम ने कारण को नियत पूर्ववर्ती माना है। नियत पूर्ववर्ती कहने से तात्पर्य यह है कि कारण नियमित रूप से कार्य के पहले सदैव उपस्थित होता है। यदि कोई तथ्य किसी अन्य तथ्य से पूर्व अनियत रूप से उपस्थित होता है अर्थात कभी होता है कभी नही तो उसे अनुवर्ती तथ्य का कारण नही कहा जा सकता। नियत पूर्ववर्ती सम्बन्ध के कारण ही प्रकृति मे कारण की समरूपता का नियम माना जाता है।

(४) **कारण निरूपाधिक** (Unconditional) **पूर्ववर्ती होता है**—कारण कार्य का केवल नियत पूर्ववर्ती मात्र नही होता बल्कि निरूपाधिक पूर्ववर्ती भी होता है क्योकि कुछ तथ्य ऐसे है जो सदैव एक दूसरे के आगे पीछे देखे जाते है किन्तु फिर भी उनमे कार्यकारण सम्बन्ध नही माना जा सकता। उदाहरण के लिये रात के बाद दिन और दिन के बाद रात होती है किन्तु इससे इनमे कार्यकारण सम्बन्ध नही माना जाता। निरूपाधिक पूर्ववर्ती का अर्थ समझाते हुए मिल ने उन उपाधियो के समूह की ओर सकेत किया है जिनके उपस्थित रहने के बाद कार्य के होने के लिए किसी अन्य उपाधि (Condition) की आवश्यकता नही पडती। इस प्रकार कारण पूर्ववर्ती अथवा पूर्ववर्तियो का एक ऐसा समूह हो जाना है जिसके होने पर बिना किसी अन्य उपाधि की अपेक्षा के कार्य हो जाय। दूसरे शब्दो मे, कारण पूर्ववर्ती उपाधियों का समग्र है। बेन के शब्दो मे, "वह एक मात्र पर्याप्त परिस्थिति है जिसकी उपस्थिति कार्य को उत्पन्न करती है और जिसकी अनुपस्थिति कार्य के होने को रोकती है।"[2]

(५) **कारण अव्यवहिन** (Immediate) **पूर्ववर्ती है**—निरूपाधिक पूर्ववर्ती होने के साथ-साथ कारण का अव्यवहित पूर्ववर्ती होना भी आवश्यक है। जैसे कि पीछे बतलाया जा चुका है, साधारण व्यक्ति दूरस्थ पूर्ववर्ती को भी किसी कार्य का

---

1. "This is a blunder for while the word 'cause' implies 'effect', it also implies the relative futurity of the effect, and the effect implies the relative priority of cause" —Carveth Read

2 It is "the sole sufficing circumstance whose presence makes the effect, and whose absence arrests it" —Bain

कारण मान बैठता है जबकि वैज्ञानिक दृष्टि से केवल अव्यवहित पूर्ववर्ती को ही कारण माना जा सकता है। वास्तव मे निरुपाधिक होने के लिये अव्यवहित होना आवश्यक है क्योकि यदि किसी तथ्य और कार्य के मध्य किसी अन्य तथ्य की आवश्यकता होती है तो वह अव्यवहित न होने के साथ-साथ निरुपाधिक कारण भी नही रहता। यहाँ पर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि अव्यवहित से तात्पर्य यह नही समझना चाहिये कि कारण के तुरन्त बाद कार्य होता है। कारण कार्य के भिन्न-भिन्न समग्रों मे कारण और कार्य मे न्यूनाधिक अन्तर पाया जाता है, कुछ न कुछ अन्तर सदैव होता है जिससे कारण और कार्य मे अन्तर किया जाता है।

(६) कारण और कार्य दोनों घटनायें हैं—कारण के उपरोक्त गुणात्मक लक्षणो से स्पष्ट है कि कारण और कार्य दोनो ही ऐसी दो घटनाये हैं जो एक ही समग्र में सम्मिलित है। दो घटनाये होने से ही उनमे परस्पर कारण कार्य सम्बन्ध जोडा जाता है। कारण की समस्या तभी उत्पन्न होती है जब कि वर्तमान स्थिति मे कोई परिवर्तन होता है क्योकि हम यह अनुमान लगा लेते है कि इस परिवर्तन के पीछे कोई न कोई कारण अवश्य है।

कारण की परिमाणात्मक विशेषताये

कारण के उपरोक्त गुणात्मक लक्षणो के अलावा उसके परिमाणात्मक लक्षणो को स्पष्ट करना भी आवश्यक है। परिमाण की दृष्टि से कारण कार्य के बराबर होता है। दूसरे शब्दो मे, कारण के पुदगल (Matter) और ऊर्जा (Energy) कार्य के पुदगल और ऊर्जा के समान होते है। विज्ञान में यही पुदगल और ऊर्जा की नित्यता का नियम (Law of Conservation of matter and energy) कहलाता है। इन नियमो के अनुसार विश्व मे कुल मिलाकर पुदगल और ऊर्जा का परिमाण एक ही रहता है। यदि एक स्थान पर ये घटते है तो दूसरे स्थान पर बढ जाते है। परिवर्तन केवल रूप के परिवर्तन है उनसे कुल मिला कर पुदगल और ऊर्जा की मात्रा मे अन्तर नही पडता। समस्त परिवर्तनो मे पुदगल और ऊर्जा के रूप बदलते रहते है किन्तु उनकी मात्रा वही बनी रहती है। स्पष्ट है कि परिमाण की दृष्टि से कारण और कार्य बराबर होते हे।

कारण और कार्य का परस्पर सम्बन्ध

कारण की उपरोक्त विशेषताओ के विवेचन से स्पष्ट है कि कारण में भावात्मक उपाधि वह है जिसको छोड़ देने से कार्य का होना रुक जाता है और अभावात्मक उपाधि वह है जिसको सम्मिलित करने से कार्य का होना रुक जाता है। अस्तु, कारण के लिये यह आवश्यक है कि उसमे भावात्मक उपाधि की परिभापा हो और अभावात्मक उपाधियाँ न हो। अभावात्मक उपाधि की परिभापा करते हुये मिल ने लिखा है कि वह कार्य को रोकने वाले कारण की अनुपस्थिति है। वैज्ञानिक दृष्टि से, जैसा कि मिल ने लिखा है, "कारण सभी भावात्मक और अभावात्मक उपाधियो का सहयोग है।" साधारणतया वैज्ञानिक अनुसंधान मे हम अधिकतर भावात्मक उपाधियाँ बतला सकते है। अभावात्मक उपाधियो की पूरी सूची बनाना सम्भव नही है। इसलिये उन सब उपाधियो को अभावात्मक कह दिया जाता है जो कार्य को रोकने वाली या विफल बनाने वाली है।

क्या वही कारण वही कार्य उत्पन्न करता है ?

कार्य और कारण के सम्बन्ध को लेकर यह प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या

वही कारण वही कार्य उत्पन्न करता है और वही कार्य उसी कारण से उत्पन्न होता है। इस प्रश्न को लेकर कुछ लोगों ने कारणो की अनेकता का सिद्धान्त माना है जिसके अनुसार एक ही कार्य अलग-अलग मामलो मे अलग-अलग कारणो से उत्पन्न हो सकता है। यह **कारणों की अनेकता का सिद्धान्त** (Theory of Plurality of Causes) कहलाता है। कारणो की अनेकता पद का प्रयोग सबसे पहले मिल ने किया था। मिल के शब्दो मे, "यह कहना सही नही है कि एक कार्य का केवल एक ही कारण से सम्बन्ध होना चाहिये, कि एक घटना केवल एक ही तरीके से उत्पन्न की जा सकती है। प्राय एक घटना को उत्पन्न करने के कई स्वतन्त्र उपाय होते है। •• अनेक कारण यान्त्रिक गति उत्पन्न कर सकते हैं, कई कारण उसी तरह की सवेदना उत्पन्न कर सकते हैं, कई कारणो से मृत्यु हो सकती है।"[1] कारणो की अनेकता के सिद्धान्त को स्पष्ट करते हुये कार्वेथ रीड ने लिखा है, "एक ही घटना अलग-अलग काल मे अलग-अलग पूर्ववर्तियो से उत्पन्न हो सकती है, अर्थात् वास्तव मे उसके कारण अनेक हो सकते हैं।"[2] इस प्रकार कारण वहुत्व अथवा कारणों की अनेकता का सिद्धान्त यह मानता है कि एक ही कार्य भिन्न-भिन्न कालो मे भिन्न-भिन्न कारणो से उत्पन्न हो सकता है। उदाहरण के लिये मृत्यु के अनेक कारण हो सकते हैं जैसे कोई आत्महत्या करके मरता है तो किसी की हत्या कर दी जाती है, कोई रोग के कारण मरता है, तो कोई पानी मे डूबकर। आत्महत्या के भी अनेक प्रकार हो सकते है, कोई जहर खाकर मरता है, तो कोई फाँसी लगाकर लटक जाता है। इस प्रकार मृत्यु नामक *कार्य के अलग-अलग देश काल में अलग-अलग* कारण होते है।

कारण वहुत्व के सिद्धान्त की आलोचना

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कारण वहुत्व से तात्पर्य यह नही है कि वहुत से कारण मिलकर किसी कार्य को उत्पन्न करते हैं। वहुत से कारणो का मिलना तो कारण सयोग (Conjunction of Causes) कहलाता है। वैज्ञानिक दृष्टि से कारण वहुत्व का सिद्धान्त उपयुक्त नही है। इस सिद्धान्त के विरुद्ध निम्नलिखित युक्तियाँ दी जा सकती हैं—

(१) यदि पूरे कार्य पर ध्यान दिया जाये तो उसका केवल एक ही कारण होता है—कारणो की अनेकता के सिद्धान्त को समझने के लिये पीछे यह कहा गया है कि मृत्यु अलग-अलग काल मे अलग-अलग कारणो से होती है। किन्तु यहाँ पर प्राण निकलने के अतिरिक्त भिन्न-भिन्न परिस्थितियो मे अन्य वाते भी भिन्न ही होगी। इसलिए तो शव की परीक्षा करके यह पता लगा लिया जाता है कि मृत्यु किस कारण से हुई है। यदि मृत व्यक्ति की सम्पूर्ण दशा पर ध्यान दिया जाय तो मृत्यु का कारण केवल एक ही ठहरेगा अनेक नही। अनेक कारण तो तव वतलाये जायेंगे जवकि परीक्षा करने वाले व्यक्ति का ज्ञान अधूरा हो।

---

1. "It is not true that one effect must be connected with only one cause, that each phenomenon can be produced only in one way. There are often several independent modes in which the same phenomenon could have originated· 'Many causes may produce mechanical motion, many causes may produce some kind of sensation, many causes may produce death" —Mill.

2. "The same event may be due at different times to different antecedents, that is in fact there may be various causes." —Carveth Read.

(२) **कारण और कार्य दोनों को विशेष अर्थ में लेने से यह सिद्धान्त गलत सिद्ध होता है**—वास्तव में ध्यान से देखने पर प्रत्येक कार्य विशिष्ट होता है और उसका विशिष्ट कारण भी होता है। उदाहरण के लिये यूँ तो सभी रोगों को रोग कहा जा सकता है कि किन्तु अलग-अलग रोगों मे परिणाम अथवा लक्षण विशिष्ट होते है भले ही बड़े-बडे सभी रोगो से एक ही परिणाम अर्थात् मृत्यु हो जाती हो। इस प्रकार हैजा, प्लेग, चेचक आदि विभिन्न कारणो से रोगी मे भिन्न-भिन्न कार्य दिखलाई पड़ते हैं। यदि कारण को विशेष अर्थ मे लिया जाये तो कार्य को भी विशेष अर्थ मे लिया जाना चाहिए और यदि कारण को सम्पूर्ण रूप में लिया जाये तो कार्य को भी सम्पूर्ण रूप मे लिया जाना चाहिए।

(३) **कारण और कार्य को सामान्य अर्थ में लेने से यह सिद्धान्त गलत सिद्ध होता है**—यदि कार्य को सामान्य अर्थ में लिया जाये तो कारण को भी सामान्य अर्थ मे लिया जाना चाहिए। उदाहरण के लिये सामान्य अर्थ मे मृत्यु से तात्पर्य हृदय गति रुक जाने से होता है। इस दृष्टि से रोग के कारण को सामान्य रूप में लिया जा सकता है किन्तु प्रत्येक स्थिति मे हृदय की गति रुक जाने का कारण एक ही होगा अनेक नही। इसलिए कारण की अनेकता का सिद्धान्त गलत सिद्ध होगा।

(४) **यह सिद्धान्त कारण की नियतता के विरुद्ध है**—कारण की परिभाषा करते हुये उसको कार्य का अनुपाधिक नियत पूर्ववर्ती बतलाया गया है। कारणो की अनेकता का सिद्धान्त मानने मे नियत पूर्ववर्ती का नियम काम नही करता। यदि एक ही कार्य भिन्न-भिन्न समय में भिन्न-भिन्न कारणो से उत्पन्न हो सकता है तो इसका अर्थ यह हुआ कि उस कार्य का कभी एक कारण होता है और कभी दूसरा। स्पष्ट है कि कारण को कार्य का नियत पूर्ववर्ती मानने से कारण बहुत्व का सिद्धान्त असिद्ध हो जाता है।

कारणो की अनेकता के सिद्धान्त के उपरोक्त खण्डन से यह नही समझना चाहिए कि इस सिद्धान्त का कोई उपयोग ही नही है। वैज्ञानिक दृष्टि से भले ही यह सिद्धान्त गलत हो परन्तु इसके पीछे एक व्यावहारिक कठिनाई है। जैसा कि कार्वेथ रीड ने लिखा है, "यदि हम तथ्यो को पर्याप्त सूक्ष्मता से समझ ले तो हम देखेगे कि प्रत्येक कार्य का केवल एक ही कारण होता है और घटनाओ का क्रम पीछे की ओर उतना ही समरूप है जितना आगे की ओर।"[1] बेन ने ठीक ही लिखा है कि "कारणों की अनेकता वस्तुओ के विषय मे कोई सत्यता नही है बल्कि हमारे अधूरे ज्ञान का परिणाम है।"[2] किन्तु क्योकि मानव ज्ञान व्यवहार मे लगभग सदैव अधूरा ही रहता है इसलिए किसी कार्य के एक ही कारण को निश्चय करना बडा कठिन है। इसीलिए मैलोन ने कारण बहुत्व के सिद्धान्त को, "एक व्यवहार मे काम देने वाला कठिनाई का संकेत" माना है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि यह ठीक है कि वही कारण वही कार्य

1. "If we know the facts minutely enough, it will be found that there will be only one cause (sum of conditions) for each effects (sum of effects) and the order of events is as uniform backwards as forwards."
—Carveth Read.

2 "Plurality of causes is more an incident of our imperfect knowledge than a fact in the nature of things." —Bain.

उत्पन्न करता है और वही कार्य उसी कारण से उत्पन्न होता है। कारण और कार्य दोनो मे पारस्परिकता का सम्बन्ध है। वे एक दूसरे पर क्रिया प्रतिक्रिया करते है। जो पहले आता है उसे कारण और जो बाद मे आता है उसे कार्य कहा जाता है। कारण और कार्य परस्पर सापेक्ष है। कार्य के होने से ही किसी तथ्य को कारण कहा जाता है।

कारण संयोग और कारण मिश्रण

साधारणतया कारणो के अलग-अलग होने पर कार्य भी अलग-अलग होते है। प्रत्येक कारण स्वतन्त्र रूप से पृथक् कार्य उत्पन्न करता है परन्तु प्रकृति मे कभी-कभी अनेक कारण मिलकर सयुक्त रूप से कोई कार्य उत्पन्न करते है। कारणो का इस प्रकार मिलकर काम करना कारणो का सयोग (Conjunction of Causes) कहलाता है और किसी तथ्य मे विभिन्न कार्यों का गुँथा होना कार्यो का मिश्रण (Intermixture of Effects) है। कारणो के सयोग के फलस्वरूप कार्यो का मिश्रण होता है। कारणो का और कार्यो का मिश्रण निम्नलिखित दो प्रकार का होता है—

(१) **कार्यों का सजातीय मिश्रण** (Homogenous Intermixture of Effects)—कार्यो का सजातीय मिश्रण तब देखा जाता है जब कि दो या दो से अधिक कारण सयुक्त होकर कार्य करते है। यह सजातीय मिश्रण उसी प्रकार का होता है जिस प्रकार का प्रत्येक कार्य अलग-अलग होता है। उदाहरण के लिये यदि एक एन्जिन बीस अश्वशक्ति से किसी गाड़ी को खीचता है तो उसी प्रकार का एक एन्जिन और सयुक्त हो जाने से चालीस अश्वशक्ति की गति हो जायेगी। एक बल्ब पचास कैण्डिल पावर की रोशनी करता है तो उस जैसे एक अन्य बल्ब के सम्मिलित हो जाने से १०० कैण्डिल पावर की रोशनी होगी। इन सब उदाहरणो मे हरएक कारण अपने नियम के अनुसार अपना कार्य उत्पन्न करता है और चूंकि अनेक कारण एक से ही है और उनके कार्य भी एक से ही है इसलिये कारणो का सयोग और कार्यो का मिश्रण सजातीय होता है।

(२) **कार्यो का विजातीय मिश्रण** (Heterogenous Intermixture of Effects)—जब कभी दो या अधिक कारण इस प्रकार से कार्य करते है कि उनमे से प्रत्येक का कार्य अलग-अलग होता है तब कार्यों का यह मिश्रण विजातीय मिश्रण कहलाता है। रासायनिक और शारीरिक परिवर्तन इसी प्रकार के होते है। इनमे पृथक्-पृथक् कारण के कार्य का स्वरूप नही रहता और विजातीय कारणों के मिलने से बिल्कुल नया कार्य उत्पन्न होता है। उदाहरण के लिए हाइड्रोजन और ऑक्सीजन दोनो विजातीय गैसे है। इन दोनो को मिलाकर और एक विद्युत धारा प्रवाहित करने से जो कार्य होता है वह पानी के रूप मे दिखलाई पडता है। इस पानी मे हाइड्रोजन और आक्सीजन किसी गैस मे भी चिन्ह नहीं मिलते। हम जो भोजन खाते है उसमे तरह-तरह की चीजे होती है जो पचकर रक्त, हड्डी, मांस, मज्जा आदि के रूप में बदल जाती हैं जिनके लक्षण मूल कारण भोजन से बिल्कुल भिन्न है। कार्यो के विजातीय मिश्रण मे भिन्न गुण वाले कारण उपस्थित होने पर कभी-कभी विपरीत दिशाओ मे कार्य होता है। सजातीय मिश्रण मे एक ही दिशा मे कार्य होने से परिणाम बढ जाता है। विपरीत कारणो की अनुपस्थिति मे ही कोई कार्य हो सकता है क्योकि विपरीत कारण कार्य का प्रतिकार करते हैं।

मिल ने क्रमिक कार्य को भी कार्यो के सजातीय मिश्रण मे सम्मिलित किया है।

क्रमिक कार्य वह जटिल कार्य है जो एक स्थायी कारण के सचित प्रभाव से उत्पन्न होता है जैसे पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण या सूर्य का ताप। पहले उदाहरण मे गुरुत्वाकर्षण वढ़ने से गिरते हुए पिण्ड की रफ्तार वढ़ती है, दूसरे उदाहरण मे सूर्य की स्थिति वदलने के साथ-साथ उसका ताप वढता अथवा कम होता है।

सारांश

तर्कशास्त्र में आगमन के दो आकारगत आधार माने जाते हैं—प्रकृति की समरूपता और कारणता।

प्रकृति का समरूपता का सिद्धान्त—इसके अनुसार प्रकृति में समरूपता का सिद्धान्त कार्य करता है। समरूपता का अर्थ यह नहीं है कि प्रकृति में विविधता नहीं है। वास्तव में प्रकृति में ये दोनों ही हैं। दूसरी ओर प्रकृति में एक नहीं वल्कि अनेक समरूपतायें हैं। वैज्ञानिक आगमन प्रकृति की एकरूपता के सिद्धान्त पर आधारित होता है। दूसरी ओर समरूपता का सिद्धान्त भी आगमन का एक दृष्टान्त है। यह आगमन का विरोधभास कहलाता है। इसके वावजूद भी समरूपता का सिद्धान्त माना जाता है। समरूपता में विश्वास के उदगम हैं—१. अनुभव निरपेक्षतावाद, २ अनुभव सापेक्षतावाद, ३. विकासवादी मत।

कारण—कारण की वैज्ञानिक धारणा सामान्य धारणा से भिन्न है। वेन के शव्दों में, कारण उन सव परिस्थितियों या उपाधियों का समूह है जो कार्य की उत्पत्ति के लिए आवश्यक होती है। कारण की मुख्य विशेषतायें हैं—१. कारण और कार्य सापेक्ष पद हैं, २. कारण कार्य का पूर्ववर्ती होता है, ३. कारण कार्य का नियत पूर्ववर्ती है, ४. कारण निरुपाधिक पूर्ववर्ती है, ५. कारण अव्यवहित पूर्ववर्ती है, ६. कारण और कार्य दोनों घटनायें है। इन गुणात्मक लक्षणों के अतिरिक्त कारण का परिमाणात्मक लक्षण पुदगल और ऊर्जा की नित्यता के नियम से स्पष्ट होता है। कारण और कार्य परस्पर सापेक्ष हैं। सदैव वही कारण वही कार्य उत्पन्न नहीं करता इसलिये विज्ञान के क्षेत्र में कारण वहुत्व का सिद्धान्त माना जाता है। इस सिद्धान्त के विरुद्ध अनेक युक्तियाँ दी जाती हैं जैसे—१. यदि पूरे कार्य पर ध्यान दिया जाये तो केवल एक ही कारण होता है, २. कारण और कार्य दोनों को विशेष अर्थ में लेने से यह सिद्धान्त गलत सिद्ध होता है, ३. कारण और कार्य को सामान्य अर्थ में लेने से यह सिद्धान्त गलत सिद्ध होता है, ४. यह सिद्धान्त कारण की नियतता के विरुद्ध है। कारणों का संयोग और कार्यो का मिश्रण दो प्रकार का होता है—१. कार्यो का सजातीय मिश्रण, २. कारणों का विजातीय मिश्रण।

अभ्यास के लिये प्रश्न

प्रश्न १. आगमन के आकार विषयक आधार क्या हैं ? उदाहरणो से स्पष्ट कीजिये।
(यू० पी० वोर्ड १९६६)

प्रश्न २. प्रकृति की एकरूपता के सिद्धान्त का क्या तात्पर्य है ? आगमन मे इसकी उपयोगिता और महत्व क्या हैं ?
(यू० पी० वोर्ड १९६१)

प्रश्न ३. जनसाधारण में प्रचलित कारणता का लक्षण लिखिये। कोई उदाहरण देकर उसमें दोष वतलाइये।
(यू० पी० वोर्ड १९६०)

प्रश्न ४. कारण की परिभाषा कीजिये। क्या यह ठीक है कि वही कारण वही कार्य उत्पन्न करता है और वही कार्य उसी कारण से उत्पन्न होता है? (यू० पी० बोर्ड १९६०)

प्रश्न ५. कारण का वैज्ञानिक स्वरूप लिखिये। कारण और कार्य का परस्पर क्या सम्बन्ध है? बहुत्व के सिद्धान्त की विवेचना कीजिये। (यू० पी० बोर्ड १९५८)

प्रश्न ६. कार्यकारण सम्बन्ध क्या है? मिल इसकी जाँच की कौन-सी प्रणालियाँ बतलाता है? (बुन्देलखण्ड १९७८)

प्रश्न ७. प्रकृति की समरूपता के सिद्धान्त को समझाइये और आगमन के लिये उसके महत्व का विवेचन कीजिये। (मेरठ १९७८)

२१

भारतीय न्याय में कारण की धारणा

(CONCEPT OF CAUSALITY IN INDIAN LOGIC)

न्याय दर्शन के अनुसार कारण का कार्य से 'अन्यथासिद्ध—नियतपूर्ववर्ती का सम्बन्ध है ।[1] इस प्रकार कारण की तीन विशेषतायें है—१. वह कार्य से पहले होना चाहिये (पूर्ववृत्ति) । २. वह अनिवार्य और नियत रूप से कार्य से पूर्व होना चाहिये (नियतपूर्ववृत्ति) । ३. वह निरपेक्ष रूप से कार्य से पूर्व होना चाहिये (अन्यथा सिद्ध) कार्य को अपने स्वय के पहले अभाव का प्रतियोगी (प्रागा भाव-प्रतियोगी) कहा गया है । इसके होने पर अभाव नष्ट हो जाता है । अपने होने के पहले उसका नितान्त अभाव था । उत्पत्ति नवीन सृष्टि है ।

कारण और कार्य

इस प्रकार कारण और कार्य के नित्य सम्बन्ध को मानकर भी नैयायिक उन्हे एक दूसरे से सर्वथा भिन्न मानते है । कार्य और कारण मे 'अत्यन्त भेद' है । कार्य कारण से सर्वथा भिन्न है और किसी भी रूप मे कारण मे नही रहता । उत्पन्न होने के पूर्व कार्य का 'प्रागाभाव' कारण मे है । नाश होने के पश्चात उसका 'ध्वसाभाव' हो जाता है । परन्तु यह सत्य है कि समवाय सम्बन्ध के द्वारा कार्य सदैव कारण मे रहता है । अत: समवाय सम्बन्ध से कार्य अपने 'समवायिकरण' मे से ही उत्पन्न होता है अन्यत्र नही । समवाय सम्बन्ध नित्य है । यहाँ पर यह प्रश्न उठता है कि कारण से सर्वथा भिन्न कार्य, जिसका उत्पत्ति के पूर्व नितान्त अभाव है और जो नाश के पश्चात बिलकुल नही बचता, अपने 'समवायि-कारण' से नित्य सम्बन्ध के द्वारा कैसे सम्बद्ध है ? न्याय के पास इसका कोई उत्तर नही है । अपनी दुर्बलता को छिपाने के लिये वे चार्वाक दार्शनिको के समान 'स्वभाववाद' का सहारा लेते है । अत: न्याय के मतानुसार घडा जब कभी उत्पन्न होता है तब वह मिट्टी से ही उत्पन्न होता है, वह घड़े और मिट्टी का स्वभाव है । इस प्रकार न्याय मतानुयायी 'सत्कार्यवादी' हैं । वे कार्य और कारण मे 'अभेद-सहिष्णु अत्यन्तभेद' मानते है । असत्कार्यवाद और सत्कार्यवाद के मानने वालों मे परस्पर खूब तर्कवितर्क हुए है ।

असत्कार्यवाद

न्याय के अनुसार कार्य की उत्पत्ति के लिये जिनका नियत रूप से पहले रहना नितान्त आवश्यक हो, जिनके न रहने से वह कार्य उत्पन्न ही न हो सके और जो अन्यथासिद्ध न हो वही कारण हैं । अत: अन्यथासिद्ध वह कारण है जिसके न रहने

अन्यथासिद्ध

---

1. अन्यथासिद्धत्वे सति कार्य नियतपूर्ववृत्ति कारणम् ।

पर भी कार्य हो सके। न्याय ने पाँच प्रकार के अन्यथासिद्ध कारण माने है जो कि वास्तविक कारण नही है।

(१) **दण्डत्व**—यह दण्डत्व घटरूप कार्य के लिये नियतपूर्व-वृत्ति और अनिवार्य नही है। यह दण्डत्व सामान्य अन्यथासिद्ध कारण है, अन्यथासिद्ध नही। घटरूप कार्य के लिये मिट्टी (मृद्) ही अन्यथासिद्ध कारण है जो कि नियतपूर्ववृत्ति और अनिवार्य है। इसके अभाव मे कार्य का होना असम्भव है।

(२) **दण्डरूप**—इसी प्रकार दण्डरूप भी घटरूप कार्य का एक अन्यथा-सिद्ध कारण है क्योंकि यह दण्डरूप घटरूप कार्य का पूर्ववर्ती होते हुए भी घटरूप कार्य के लिये अनिवार्य नही है। इसके विना भी कार्य निष्पन्न हो सकता है। कार्य के निर्माण मे इसका अनिवार्य, नियत और अन्यथासिद्ध हाथ नही है। इसलिये जो अन्यथासिद्ध और नियतपूर्ववृत्ति नही है वह कारण भी कहलाने का अधिकारी नही है।

(३) **व्योम**—यद्यपि प्रत्येक कार्य 'आकाश' मे होता है और कार्य से नियतरूप मे पूर्ववृत्ति भी होता है किन्तु वह घटरूप कार्य के लिये अन्यथासिद्ध नही है।

(४) **कुलालजनक**—यह कारण भी कार्य का पूर्ववर्ती है। घटरूप कार्य के लिये कुलालपिता अर्थात् कुभकार जो कि निमित्तकारण है, आवश्यक है परन्तु वह अन्यथासिद्ध नही है। उसके विना भी कार्य निष्पन्न हो सकता है।

(५) **रासभादि**—मिट्टी ढोने वाला गधा भी घटरूप कार्य के लिए पूर्ववर्ती है और इसका कार्य के निर्माण मे प्रयोग भी वहुत होता है किन्तु वास्तविकता यह है कि इसमें घट के प्रति कारणता का अभाव ही है क्योकि गर्दभ की घट रूप कार्य के लिये अनिवार्य आवश्यकता नही है।

इस प्रकार न्याय के अनुसार कारण कार्य का नियतपूर्वगामी तो है ही साथ ही अन्यथासिद्ध भी है। वह कार्य की समस्त आवश्यक और निरपेक्ष पूर्वगामी वस्तुओ का योग है। ये वस्तुये 'कारण सामग्री' कहलाती है। विरोधी वस्तुओ के अभाव को 'प्रतिवन्धकाभाव' कहते हैं। कारण सामग्री की उपस्थिति के साथ-साथ कार्य की उत्पत्ति होने के लिये प्रतिवन्धकाभाव भी होना चाहिए।

कारण के भेद

न्याय के अनुसार कारण तीन प्रकार के है—समवायी, असमवायी और निमित्त।

(१) **समवायिकारण**—यह वह है जिसमे समवाय-सम्वन्ध से कार्य उत्पन्न हो जैसे सूत कपडे का समवायी कारण है क्योकि सूतो मे समवाय-सम्वन्ध से कपडा उत्पन्न होता है। समवाय-सम्वन्ध मे जव तक एक पदार्थ विद्यमान रहता है अर्थात् नष्ट नही होता तव तक वह दूसरे के आश्रित होकर ही स्थित रहता है 'समवाय सम्वन्ध' रखने वाले दोनो पदार्थ 'अयुत सिद्ध' कहलाते है। घडा और उसका रूप दोनो अयुतसिद्ध हैं क्योकि घडे के विना उसका रूप नही रह सकता। रूप जव तक रहेगा तव तक घडे का आश्रित होकर रहेगा। नैयायिको ने इन पांच जोडो को अयुतसिद्ध कहा है—(अ) अवयव और अवयवी, (आ) गुण और गुणी, (इ) क्रिया

और क्रियावान्, (ई) जाति और व्यक्ति, (उ) नित्य द्रव्य और विशेप। इनमे प्रत्येक जोड़े मे परस्पर 'समवाय-सम्वन्ध' है।

(२) **असमवायिकारण**—न्याय के अनुसार जो कि कार्य के पहले नियतरूप से रहे तथा अन्यथा सिद्ध न हो और जो कार्य के साथ साथ से उस कार्य से समवायिकारण मे समवाय सम्वन्ध से रहे वह उस कार्य का असमवायिकारण है। जैसे सूतो मे रहने वाला 'सयोग' उन सूतो से उत्पन्न कपड़ा रूपी कार्य का 'असमवायिकारण' है। इस उदाहरण में कपड़े का समवायिकारण सूत है और सूतो में परस्पर संयोग सम्वन्ध है। संयोग गुण है, जो समवाय-सम्वन्ध से सूतो में है और सूतों के संयोग के विना कपड़ा नही उत्पन्न हो सकता। अतः सयोग कपड़े का कारण भी है और उन्ही सूतो में समवाय-सम्वन्ध से 'कपड़ा रूपी' कार्य भी साथ साथ वर्तमान है।

असमवायिकारण का एक दूसरा लक्षण भी वतलाया जाता है—जो किसी कार्य का कारण हो तथा कार्य के साथ साथ समवाय सम्वन्ध से उस कार्य के समवायिकारण मे अथवा 'समवायिकारण के समवायिकारण' मे समवाय सम्वन्ध में रहे वही उस कार्य का असमवायिकारण है। जैसे 'सूतरूप' 'पटरूप' का असमवायिकारण है क्योकि 'सूत का रूप' 'कपडे का रूप' का कारण है और कपडे के रूप के समवायिकारण अर्थात कपड़े के समवायिकारण अर्थात सूत मे कपड़ा रूपी समवायिकारण के साथ साथ समवाय-सम्वन्ध से उपस्थित है।

असमवायिकारण के नाश होने से कार्य का नाश हो जाता है। असमवायिकारण केवल 'गुण' और 'क्रिया' होते है।

(३) **निमित्त कारण**—जो कार्य के पूर्व नियत रूप से रहे और अन्यथा सिद्ध न हों उसे नैयायिको ने 'निमित्तकारण' कहा है। यह समवायिकारण तथा असमवायिकारण दोनों से भिन्न है।

अभाव के समवायी अथवा असमवायी कारण नही होते क्योंकि अभाव किसी पदार्थ मे समवाय सम्वन्ध से नही रहता और न कोई पदार्थ ही अभाव मे समवाय सम्वन्ध से रहता है। अतः अभाव का केवल निमित्त कारण होता है। सव पदार्थो मे ये तीनो कारण पाये जाते है। ईश्वर के सभी विशेप गुण निमित्त कारण है। निमित्त कारण कार्य को उत्पन्न करके उससे पृथक हो जाता है। इन तीनो कारणों मे कार्य को उत्पन्न करने के लिये जो सवसे अधिक उपकारक हो उसे न्याय मे 'कारण' कहा गया है।

कारणवाद पर विभिन्न मत

कार्य-कारणवाद दर्शन मे एक अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। भारतीय दर्शन मे कार्य-कारण (Causality) पर पर्याप्त विचार किया गया है। कार्य-कारण के प्रश्न पर भारतीय दार्शनिको के मुख्य सिद्धान्त निम्नलिखित है—

(१) **असत् कारणवाद**—'असत्कारणवाद' वौद्ध दर्शन का सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के अनुसार कारण के विध्वस या नाश होने या कारण के अभाव होने पर कार्य उत्पन्न होता है।

(२) **असत्कार्यवाद या आरम्भवाद**—न्याय दर्शन का सिद्धान्त असत्कार्यवाद अथवा आरम्भवाद है। इस सिद्धान्त के अनुसार कारण की क्रिया चालू होने से पहले कार्य का अभाव होता है और चालू कारण की क्रिया से ही कार्य की उत्पत्ति होती

है अथवा कारण द्वारा ही परिणाम या फल का सृजन होता है ।

(३) **सत्कार्यवाद या परिणामवाद**—साख्य दर्शन का सिद्धान्त परिणामवाद कहलाता है । इस सिद्धान्त के अनुसार, कार्य पहले से ही कारण सामग्री या कारण मे व्याप्त रहता है कार्य-कारण व्यापार अर्थात कारण की क्रिया द्वारा, कारण क्षेत्र से उत्पन्न नही होता वल्कि प्रकट होता है ।

(४) **विवर्तवाद**—अद्वैत वेदान्त का मत 'विवर्तवाद' कहलाता है । यह 'सत्कार्यवाद' का एक विशिष्ट रूप है । इसके अनुसार, कार्य वर्तमान कारण का विलक्षण और मिथ्या रूपान्तर है, जिसे न तो 'सत्' अथवा अस्तित्वपूर्ण या स्थित ही कहा जा सकता है और न असत् अथवा अस्तित्वहीन ही कहा जा सकता है । कार्य कारण का विवर्त अर्थात् प्रतिच्छाया मात्र है ।

असत्कार्यवाद

वौद्ध दार्शनिको के अनुसार, कारण के समाप्त या नष्ट हो जाने पर ही कार्य का प्रादुर्भाव होता है । अन्य शब्दो मे, कारण के नाश या अभाव का नाम ही कार्य है । उदाहरण के लिये जब वीज से अकुर निकलता है, तब वीज खत्म हो जाता है । इस तरह कारण रूप मे वीज के नष्ट हो जाने पर ही अकुर निकलता है अर्थात वर्तमान कार्य अस्तित्वहीन कारण से निकलता है ।

असत् कारणवाद की आलोचना

वौद्ध दार्शनिको के असत् कारणवाद सिद्धात के विरुद्ध, यह तर्क उपस्थित किया जाता है कि यदि अभाव ही किसी वर्तमान कार्य का कारण हो सकता है तव किसी चीज से कोई भी चीज पैदा हो सकती है । अभाव अथवा अस्तित्व सब जगह एकसा ही है और एक अभाव या अस्तित्व का किसी अन्य अभाव या अस्तित्व से कोई भेद नही होता इस कारण कही से भी (अनस्तित्व या अभाव द्वारा) किसी भी कार्य के निकलने मे कोई रुकावट नही हो सकती । दूसरे शब्दो मे, अभाव के कारण दुनिया की किसी भी चीज को, किसी भी समय तथा किसी भी जगह पर हो सकना चाहिये । सरसो के तेल को सरसो के वीज के अभाव से ही नही, वल्कि रेत के अभाव से भी निकल सकना चाहिये । परन्तु व्यवहार मे ऐसा नही होता । इसलिये यह सिद्धात यथार्थता से परे है । वौद्ध दार्शनिक यह भूल जाते है कि जब वीज से अकुर निकलता है तो इस निकलने का कारण वीज नष्ट होना या उसका अभाव नही है वरन् अकुर फूटने का कारण यह है कि वीज पहले कुछ दूसरे वनस्पति पदार्थो मे वदल जाता है, वनस्पति पदार्थ अकुर के रूप मे वदल जाते है, अर्थात वीज से वनस्पति पदार्थ निकलते है और उन पदार्थो से अकुर निकलता है ।

आरम्भवाद

न्याय दर्शन के अनुसार निकलने से पहले कार्य (Effect) होता ही नही है, अर्थात् कार्य पहले अस्तित्वहीन होता है, और फिर एक साथ ही, अपने आप अकस्मात् अथवा विलक्षण ढंग से जादू के खेल की तरह, आरम्भ हो जाता है । यह मत आरम्भवाद कहलाता है । न्याय के अनुसार सनी हुई मिट्टी के पिंड से घडा वनता है तो मिट्टी कारण है और घडा कार्य । यह कार्य (घट) कारण (मिट्टी के पिंड) मे, कारण व्यवहार के पहले नहीं होता । वह कारण के चालू होने के वाद ही उत्पन्न

होता है। इसलिये कार्य (घट) अनस्तित्व तथा अस्तित्व (Non-existence and Existence) दोनो तत्वो का फल है। अपनी उत्पत्ति से पहले वह अनस्तित्व या अभाव का फल है तथा अपनी उत्पत्ति के पश्चात उत्पत्ति का फल है।

आरम्भवाद की आलोचना

किन्तु जब बनने से पहले घड़ा होता ही नही तब यह अनस्तित्व या अभाव के लक्षण को धारण करने वाला 'धर्मी' या आधार (Substrate) कैसे हो सकता है? नैयायिको के लिये यह जरूरी हो जाता है कि वे कारण मे कार्य (Effect) के सूक्ष्म या लुप्त अस्तित्व को उस कार्य की उत्पत्ति के पहले ही मान लें अर्थात यह मान ले कि अपने जन्म के पहले ही कार्य कारण मे लुप्त, अतर्भूत या निहित (Latent) रहता है, और कारण के चालू होने पर वह कार्य गतिशील तथा यथार्थ हो जाता है। उदाहरण के लिये जो तेल तिल के बीज मे लुप्त या निहित होता है, वह तिल के पेरे जाने पर प्रकट हो जाता है। इसी तरह धान कूटने के बाद चावल प्रकट होता है, और गाय के दूहे जाने पर दूध प्रगट होता है। इस तरह कारण की अवस्था से कार्य की अवस्था में बदल जाना अनस्तित्व दशा से अस्तित्व की दशा में आने के समान नही है बल्कि सूक्ष्म की दशा से स्थूल दशा मे गुप्त, लुप्त या निहित अवस्था मे प्रगट तथा स्पष्ट अवस्था मे बदलना है। इस तरह इस विषय मे, न्याय का मत भी बौद्ध दर्शन के समान ही दोषपूर्ण है।

सत्कार्यवाद और असत्कार्यवाद

सांख्य सिद्धात को मानने वाले दार्शनिक न्याय के इस मत का खण्डन करते है कि उत्पत्ति के पहले कार्य का अस्तित्व कारण मे नही होता। साख्य दार्शनिको ने असत्कार्यवाद को न मानकर, सत्कार्यवाद का समर्थन किया है। सत्कार्यवाद के अनुसार कार्य (Effect) का निकलना किसी नये विलक्षण फल का आरम्भ नही है बल्कि पहले से मौजूद कारण—सामग्री का रूपान्तरण (Transformation) या परिवर्तन है। उदाहरण के लिये भौतिक शक्ति (Physical energy), रासायनिक शक्ति (Chemical energy) के रूप मे बदल जाती है। इसी तरह रासायनिक शक्ति, प्राणशक्ति (Vital energy) के रूप मे परिवर्तित हो जाती है, और प्राण शक्ति मानसिक शक्ति (Mental energy) का रूप ग्रहण कर लेती है, इन सब उदाहरणो मे, कही भी वास्तविक सृजन (Real creation) नही होता बल्कि कारण-सामग्री के कणो या अशो का पुन: विभाजन (Redistribution) तथा पुन: सगठन (Rearrangement) होता है। कारण सामग्री (जैसे भौतिक शक्ति) मे जो रूप (जैसे रासायनिक शक्ति) अर्न्तहित होता है या एक प्रकार के बन्धन मे होता है वह रूप सब बन्धन से मुक्त होकर कार्य के रूप मे व्यक्ति हो जाता है। उस रूप के जो गुण पहले गर्भ के बन्धन मे थे, वे अब बन्धन से छूटकर, प्रकट हो जाते है। इस तरह 'सत्कार्यवाद' के सिद्धांत के अनुसार कार्य पहले से ही अथवा व्यक्त या बीज रूप मे, कारण मे निहित (या लुप्त) रहता है।

इस तरह न्याय के आरम्भवाद के सिद्धात के विरुद्ध सांख्य अपना अपरिणामवाद (रूपान्तर या परिवर्तन) का सिद्धात उपस्थित करता है। सांख्य के अनुसार

कारणवाद (Causality) का विषय कारणत्व (Causatıon) का अर्थ अभिव्यक्ति (Manıfestatıon) है, न कि उत्पत्ति (Originatıon)। साख्य के अनुसार कुछ कार्यो और कारणो का कारणत्व के सामान्य नियम के अलावा कारण और कार्य के विशेप नियमो का एक दूसरे से निश्चित सम्बन्ध होता है। जिस आदमी को तेल की इच्छा होती है, वह तेल पाने के लिये, दूध को तलाश नही करता, वल्कि तिल या दूसरे बीजो जिनमे तेल पैदा करने की योग्यता हो, को ही खोजता है। इससे जाहिर है कि कुछ खास कार्यो (उदाहरण के लिये तेल) का कुछ खास कारणो (उदाहरण के लिये वीज) से निश्चित, सम्वन्ध होता है। इसलिये कार्य, पहले से ही कारण मे मौजूद है और कारण का परिणाम है।

परिणामवाद

साख्य दर्शन के इस उदाहरण मे कुछ खास कारणो जैसे तिल के वीज आदि मे कुछ खास कार्यो, जैसे खास तरह के तेल मे सम्वन्ध होता है। परन्तु जव इन दो सम्वद्ध वस्तुओं मे से एक अर्थात् कारण (तिल) तो निश्चित रीति से स्थित हो या वर्तमान काल मे उपस्थित हो और द्वितीय कथित सम्वन्धी अर्थात् कार्य (तेल) भविष्य के गर्भ मे छिपा हो और वर्तमान काल मे उपस्थित ही न हो तव ऐसी दो चीजो के बीच मे कैसे सम्वन्ध हो सकता है ? एक ऐसे मनुष्य को 'पिता' की उपाधि किस प्रकार दी जा सकती है जिसका पुत्र अभी पैदा न हुआ हो। यहाँ पर यह भी नही कहा जा सकता है कि कारण अपने अनुपस्थित, अस्तित्वहीन कार्य को, उससे किसी तरह का सम्वन्ध न होने पर भी, पैदा कर सकता है, तव तो इस कार्य से ही नही बल्कि दुनिया भर के दूसरे कार्यो से भी, कारण का किसी तरह का सम्वन्ध न होने पर भी इसी तरह वह कोई भी कार्य उत्पन्न कर सकेगा। ये वाते अनुभव के विरुद्ध है। किसी भी कारण से कोई भी कार्य पैदा नही हो सकता।

परिणामवाद की आलोचना

सांख्य और न्याय दर्शन के तर्क-वितर्क

सत्कार्यवाद और परिणामवाद को पुष्ट करने के लिये साख्य यह तर्क पेश करता है कि कार्य (जैसे घडा) कारण (जैसे मिट्टी) का सह-द्रव्य (Con-substantıal) है तथा उससे अभिन्न है। इसलिये जव कारण मौजूद है तव कार्य भी मौजूद माना जाना चाहिये। कार्य और कारण के अभेद को सिद्ध करने के लिए, साख्य ने निम्नलिखित युक्तियाँ प्रस्तुत की है—

(१) वस्त्र उन धागो से अभिन्न है, जो कि उसके अंश है, क्योकि वह, उन धागो के आधार (धर्मी) होने की हैसियत से उनमे मौजूद है। यदि एक चीज दूसरी चीज से भिन्न होती है तो वह उस चीज के आधार के रूप मे विद्यमान नही दिखाई पडती। उदाहरण के लिये गाय घोड़े से भिन्न है, इसलिये गाय और घोडे मे, उनके आधार के रूप मे कोई चीज स्थित दिखाई नही देती।

सांख्य मत के तर्क

(२) धागो और कपडो के वीच मे उत्पादन कारण तथा कार्य का सम्वन्ध है, इसलिये वे अभिन्न है। भिन्न वस्तुओ जैसे गाय और भैंस के वीच मे उत्पादन कारण तथा कार्य का सम्वन्ध नही पाया जाता।

(३) धागे और कपडे की अभिन्नता इस वात से जाहिर है कि उनके वीच

में कोई सयोग तथा वियोग का सम्बन्ध नही है। भिन्न चीजों से दूध और प्याले के बीच मे कभी सयोग और कभी वियोग हो सकता है किन्तु कपड़े और उसके धागों का अभेद (Non-difference) इस बात से भी सिद्ध होता है कि दोनों का वजन एक सा ही है और चाहे धागो को तोल ले या कपड़े को तोल लें, वजन मे अन्तर नही होगा। इस तरह कारण (Cause) और कार्य (effect) एक ही हैं।

साख्य मत के विरुद्ध नैयायिको ने निम्नलिखित आपत्तियाँ उपस्थित की है:—

नैयायिकों की आपत्तियाँ (१) यदि कार्य (कपड़ा) वही है जो कि कारण (धागे) हैं तो ऐसा नही कहा जाता है कि "कारण ने कार्य को उत्पन्न किया है।" जब कारण वही है, जो कार्य है तब तो कारण, वास्तव मे अपने ही को पैदा करेगा, न कि कार्य को।

(२) यदि कार्य समाप्त हो जाए या फिर से कारण मे मिल जाए, तब भी इसी तरह, ऐसा मानना पड़ेगा कि कारण ने ही अपने-आपको नष्ट कर डाला है।

(३) अनुभव के उपरान्त कार्य और कारण में अर्थ-क्रिया-भेद भी पाया जाता है। कार्य से तो एक प्रयोजन सिद्ध होता है और कारण से दूसरा प्रयोजन। उदाहरण के लिये धागे (कारण) तो सिलाई के काम मे आते हैं परन्तु कपड़ा (कार्य) शरीर को ढाकने के लिये आवरण के काम आता है। यदि कारण और कार्य मे कोई भी अन्तर न हो, तब फिर ऐसा नही होना चाहिये अर्थात् धागों तथा उससे बने कपड़े को एक ही सा काम करना चाहिये।

साख्य दार्शनिकों के अनुसार ये तर्क, कारण और कार्य के बीच मे अन्तर स्थापित करने के स्थान मे, केवल इतना ही दिखा पाते हैं कि एक दशा मे तो कार्य, परिणाम या फल तिरोहित (Non-manifest) होता है, और दूसरी परिस्थिति मे वह विदित या व्यक्त हो जाता है। उदाहरण के लिये जब कछुआ अपना सिर शुक्ति के अन्दर खीचकर छुपा लेता है तब यह नही कहा जाता कि उसका सिर नष्ट हो गया है बल्कि यह कहा जाता है कि वह (सिर) गायब हो गया है या दृष्टि से ओझल हो गया है। इसी तरह जब कछुआ फिर से अपना सिर बाहर निकाल लेता है, तब यह नही कहा जाता कि सिर उत्पन्न हो गया है बल्कि यही कहा जाता है कि सिर फिर से दिखाई देने लगा या उसका प्रादुर्भाव हुआ है। इसी तरह कारण की दिशा मे, अर्थात् जिस समय कि केवल धागे (Threads) ही हैं, उस समय भी बाद मे आने वाले या बाद मे दिखाई देने वाले कपड़े का आवरण के रूप मे, शरीर को ढाकने का कार्य तिरोहित (लुप्त या अन्तर्हित) रहता है; और बाद मे उसी सामग्री की दूसरी अवस्था में, अर्थात् कपड़े के रूप मे प्रकट हो जाने पर, शरीर को ढांकने का कार्य भी खत्म हो जाता है। इसी उत्तर मे इसी शंका का भी समाधान हो जाता है कि यदि कार्य और कारण एक ही हैं, तो क्या कारण ही अपने को पैदा या नष्ट करता है। सांख्य के अनुसार, कारण, अपनी क्रिया द्वारा, उस रूप का, जिसका अभी तक तिरोभाव हो गया था केवल प्रादुर्भाव (manifestation) ही करता है; उसे उत्पन्न नही करता।

सांख्य का प्रत्युत्तर

वास्तव मे कारण और कार्य के आपसी सम्बन्ध की ठीक-ठीक व्याख्या सांख्य का 'परिणामवाद' और न्याय दर्शन का 'आरम्भवाद' कोई भी नही कर पाता। न्याय मत के आक्षेप से सांख्य दर्शन अपने इस सिद्धान्त की रक्षा नही कर

पाता है कि गुप्त रूप मे कार्य अपने उपादान कारण (Material Cause) मे पहले से ही निहित है। न्याय दर्शन अपने इस सिद्धान्त की साख्य के तर्को से रक्षा नही कर पाता कि कार्य (परिणाम) एक नया आरम्भ है, जो कारण के क्रियावान होने के पहले था ही नही।

विवर्तवाद

अद्वैत दर्शन के अनुसार केवल ब्रह्म ही सत् है, केवल ब्रह्म ही की पारमार्थिक सत्ता है, किन्तु जागृत (व्यवहारिक) काल मे हमे ब्रह्म की मिथ्या-प्रतीति कारण और कार्य अनिर्वचनीय सम्बन्ध के रूप मे होती है। इस तरह पारमार्थिक दृष्टि से कार्य-कारण का विवर्त (Appearance) है। यह सिद्धान्त 'विवर्तवाद' भी कहलाता है। व्यावहारिक दशा मे, अद्वैत वेदान्त, कारण और कार्य के सम्बन्ध को मिथ्या नही बतलाता। वह उसके व्यावहारिक अस्तित्व को स्वीकार करता है। किसी द्रव्य के वास्तविक विकार को परिणाम कहते है जैसे दूध का दही बन जाना। इसके विपरीत इसी प्रकार किसी द्रव्य के विकार के आभास को विवर्त कहते है जैसे रस्सी का साँप दिखलाई पडना। सक्षेप शारीरक के अनुसार—

विवर्तवादस्य हि पूर्व भूमिः वेदान्त वादे परिणामवाद.।
व्यवस्थितेऽस्मिन् परिणामवादे, स्वयं समायाति विवर्तवादः।

परिणामवाद तथा विवर्तवाद ये दोनों ही मत सत्कार्यवादी है। विवर्तवाद के अनुसार कार्य कारण से भिन्न नही है। मिट्टी का बर्तन मिट्टी के अलावा और कुछ नही है। सोने का गहना सोना ही हे। कार्य कारण के बिना नही रह सकता मिट्टी के बर्तन और सोने से गहना अलग नही हो सकता। कार्य कोई नई चीज नही है जो पहले नही थी और अब उत्पन्न हुई है, तत्व रूप में वह अपने उपादान कारण मे हमेशा मौजूद थी। निमित कारण की क्रिया से किसी नवीन द्रव्य की उत्पत्ति नही हो सकती। उसमे केवल उस द्रव्य के निहित रूप की अभिव्यक्ति मात्र ही हो सकती है। इसलिये कार्य कारण मे पहले ही से मौजूद है। वह कारण की अवस्था मात्र है। इसलिये कारण से कार्य का निकलना वास्तविक परिवर्तन नही है। परिवर्तनशील ससार अध्यास के कारण एक आभास है। अध्यास अविद्या के कारण है। अध्यास और अविद्या अनादि है इसलिये जगत भी अनादि मालूम पडता है।

विवर्तवाद की विशेषता

श्रुति से उक्तियाँ देकर विवर्तवाद को सिद्ध करने के साथ-साथ शकर ने यह भी दिखलाया है कि विवर्तवाद को मानने से सृष्टि-सम्बन्धी अनेक कठिनाइयाँ दूर हो जाती है। सृष्टि को परिणाम मान लेने पर उसको समझना असम्भव है। यदि ईश्वर को सृष्टिकर्ता माना जाय और अचेतन प्रकृति से जगत की रचना मानी जाय तो ईश्वर असीम नही रहता, क्योकि उसके अलावा प्रकृति की भी सत्ता माननी पडती है। प्रकृति को सत्य मानकर ईश्वर पर आश्रित मानने मे भी कठिनाई है। इस हालत मे या तो प्रकृति ईश्वर का एक अश मात्र है या सम्पूर्ण ईश्वर से अभिन्न है। पहला विकल्प मान लेने पर ईश्वर भी भौतिक द्रव्यो के समान सावयव और नश्वर हो जाता है। दूसरा विकल्प मानने पर प्रकृति के विकास का अर्थ ईश्वर का जगत बन जाना है। इस तरह सृष्टि के बाद कोई ईश्वर नही बचता। जाहिर है कि ईश्वर मे कुछ भी वास्तविक विकार मानने पर वह ईश्वर कहलाने योग्य नही रहता। विवर्तवाद को मान लेने पर ये सब कठिनाइयाँ दूर हो जाती है।

सारांश

न्याय दर्शन के अनुसार कारण का कार्य से अन्यथा सिद्ध नियत पूर्ववर्ती का सम्बन्ध है। यह असत् कार्यवादी सिद्धान्त है। न्याय ने कारण को अन्यथा सिद्ध न होने वाला माना है। अन्यथा सिद्ध कारण पाँच हैं—१. दण्डत्व, २. दण्ड रूप, ३. व्योम, ४. कुलालजनक, ५. रासभादि। कारण तीन प्रकार के हैं—१. समवायिकारण, २. असमवायिकारण, ३. निमित्त कारण।

कारणवाद के विभिन्न मत—१. असत् कारणवाद, २. असत् कार्यवाद या आरम्भवाद, ३. सत्कार्यवाद या परिणामवाद, ४. विवर्तवाद। कारण को लेकर बौद्ध, न्याय, सांख्य और अद्वैत वेदान्त के दार्शनिकों में वाद-विवाद दिखलाई पड़ता है।

अभ्यास के लिये प्रश्न

१. कारण के विषय मे नैयायिक सिद्धान्त को स्पष्ट रूप से बताइये तथा इसकी तुलना पाश्चात्य तर्कशास्त्र के न्याय के सिद्धान्त से कीजिये।

२. समवायी और असमवायी कारणों का भेद उदाहरण सहित बतलाओ। (यू० पी० बोर्ड १९६६)

३. भारतीय तर्कशास्त्र के अनुसार कारण के भेद बताइये और उनके उदाहरण देकर समझाइये। (यू० पी० बोर्ड १९५९)

४. भारतीय न्याय के अनुसार कारण का स्वरूप और उसके विभिन्न प्रकारों की विवेचना कीजिये। (यू० पी० बोर्ड १९६८)

५. भारतीय न्याय के अनुसार कारण के निश्चय करने की विभिन्न विधियो की विवेचना सक्षेप में लिखिये। (यू० पी० बोर्ड १९६६)

६. भारतीय तर्कशास्त्र मे कारण सम्बन्धी विभिन्न सिद्धान्तो की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये। (प्रयाग १९७४)

७. कारण के सप्रत्यय को स्पष्ट कीजिये तथा कारण कार्य सम्बन्ध के विषय में दिये गए विभिन्न भारतीय सिद्धान्तो की परीक्षा कीजिये। (प्रयाग १९७३)

२२

हेत्वाभास के मुख्य प्रकार

(THE PRINCIPAL FORMS OF HETVABHASA)

अनुमान हेतु पर आधारित होता है। यदि हेतु शुद्ध है तो अनुमान भी शुद्ध होता है। यदि हेतु दूपित है तो अनुमान भी दूषित होता है। यही दूपित हेतु 'असत् हेतु' अर्थात् हेत्वाभास कहलाता है। हेत्वाभास का अर्थ है कि जो देखने मे तो हेतु के समान है परन्तु वास्तव मे हेतु नही है। हेत्वाभास पाच प्रकार के होते हैं—(१) असिद्ध, (२) विरुद्ध, (३) सव्यभिचार अथवा अनैकान्तिक, (४) सत्प्रतिपक्ष अथवा प्रकरणसम और (५) बाधितविपय अथवा कालात्ययापदिष्ट।

(१) असिद्ध

असिद्ध अथवा साध्यसम हेतु वह है जो कि स्वय साध्य की भाति असिद्ध हो इसको साध्यसम कहते है क्योकि जैसे अभी तक साध्य का अस्तित्व सिद्ध नही है वैसे ही हेतु का अस्तित्व भी सिद्ध नही रहता। स्वय असिद्ध रहने के कारण यह निगमन की सत्यता को भी सिद्ध नही करता। असिद्ध हेत्वाभास के निम्नलिखित तीन भेद है।

(क) **आश्रयासिद्ध या पक्षासिद्ध**—जिसमे 'पक्ष' या 'आश्रय' असिद्ध हो जैसे—

प्रतिज्ञा—आकाश का कमल सुगन्ध वाला है।

हेतु—क्योकि (वह) कमल है।

उदाहरण—जो कमल है वह सुगन्ध वाला है जैसे तालाब मे उगने वाला कमल। यहाँ 'आकाश का कमल' जो पक्ष अथवा आश्रय है स्वय असिद्ध है।

(ख) **स्वरूपासिद्ध**—जिसमे हेतु का पक्ष मे रहना असम्भव हो जैसे—

प्रतिज्ञा—शब्द अनित्य है।

हेतु—क्योकि वह (शब्द) आँख से देखा जाता है।

उदाहरण—जो आख से देखा जा सकता है वह अनित्य है जैसे घड़ा, पुस्तक आदि। यहाँ हेतु का स्वरूप ही असिद्ध (स्वरूप+असिद्ध) है क्योकि शब्द आँख से नही देखा जाता।

(ग) **व्याप्यत्वासिद्ध**—जहाँ हेतु का साध्य के साथ व्याप्त होना असिद्ध हो।

यह दो प्रकार का है (अ) व्याप्ति को सिद्ध करने वाले प्रमाण के अभाव से (आ) हेतु मे उपाधि के होने से। इसके उदाहरण निम्नलिखित है—

(अ) **प्रतिज्ञा**—शब्द क्षणिक है अर्थात् वह एक ही क्षण मे रहने वाला है।

हेतु—क्योकि वह सत् है।

उदाहरण—जो सत् है वह क्षणिक है जैसे बादल का टुकड़ा।

उपनय—सत् शब्द क्षणिक है।

निगमन—इसलिये शब्द क्षणिक है।

यहाँ दृष्टान्त के अशुद्ध होने से व्याप्ति असिद्ध है।

(आ) **प्रतिज्ञा**—यज्ञ मे की गई हिंसा अधर्म का साधन है।

हेतु—क्योकि वह हिंसा है।

उदाहरण—जहाँ हिंसा है वहाँ अधर्म का साधन है।

यहाँ हेतु अशुद्ध है क्योकि हिंसा हिंसा होने के कारण नही बल्कि निषिद्ध होने से अधर्म का साधन होती है।

(२) विरुद्ध

जो हेतु साध्य के विपरीत वस्तु को सिद्ध करे वह विरुद्ध है। इसमे हेतु पक्ष मे साध्य के अस्तित्व को नही बल्कि उसके अभाव को ही सिद्ध करता है जैसे—

प्रतिज्ञा—शब्द नित्य है।

हेतु—क्योकि वह उत्पन्न होता है।

यहाँ हेतु 'नित्य' रूपी साध्य के विपरीत 'अनित्य' को सिद्ध करता है क्योकि उत्पन्न होने वाला नित्य नही अनित्य होता है।

(३) सव्यभिचार अथवा अनैकान्तिक

सव्यभिचार हेतु के द्वारा निगमन की सिद्धि निश्चित रूप से नही होती परन्तु विरुद्ध हेतु के द्वारा निगमन का खण्डन ही हो जाता है। यह तीन प्रकार का है—

(अ) **साधारण अनैकातिन्क**—जो हेतु पक्ष, सपक्ष तथा विपक्ष इन तीनों मे रहे जैसे—

प्रतिज्ञा—शब्द नित्य है।

हेत—क्योकि वह प्रमेय (ज्ञान का विषय) है।

(आ) **असाधारण अनैकान्तिक**—जो हेतु सपक्ष तथा विपक्ष मे न रहकर केवल पक्ष मे रहे जैसे—

प्रतिज्ञा—पृथ्वी नित्य है।

हेतु—क्योकि वह गन्ध रखने वाली है।

(इ) **अनुपसंहारी**—जिस हेतु मे न तो अन्वय दृष्टान्त हो और न व्यतिरेक दृष्टान्त हो जैसे—

प्रतिज्ञा—सभी अनित्य है।

हेतु—क्योकि वे प्रमेय है।

४. सत्प्रतिपक्ष अथवा प्रकरणसम

जिस हेतु मे साध्य के विपरीत को सिद्ध करने का दूसरा हेतु उपस्थित हो।

इस प्रकार एक अनुमान का दूसरा प्रतिपक्षी अनुमान भी सम्भव हो जाता है जैसे—

(१) **प्रतिज्ञा**—शब्द नित्य है।

हेतु—क्योकि वह आकाश के समान अदृश्य है।

(२) **प्रतिज्ञा**—शब्द अनित्य है।

हेतु—क्योकि वह घर की भाँति एक कार्य है।

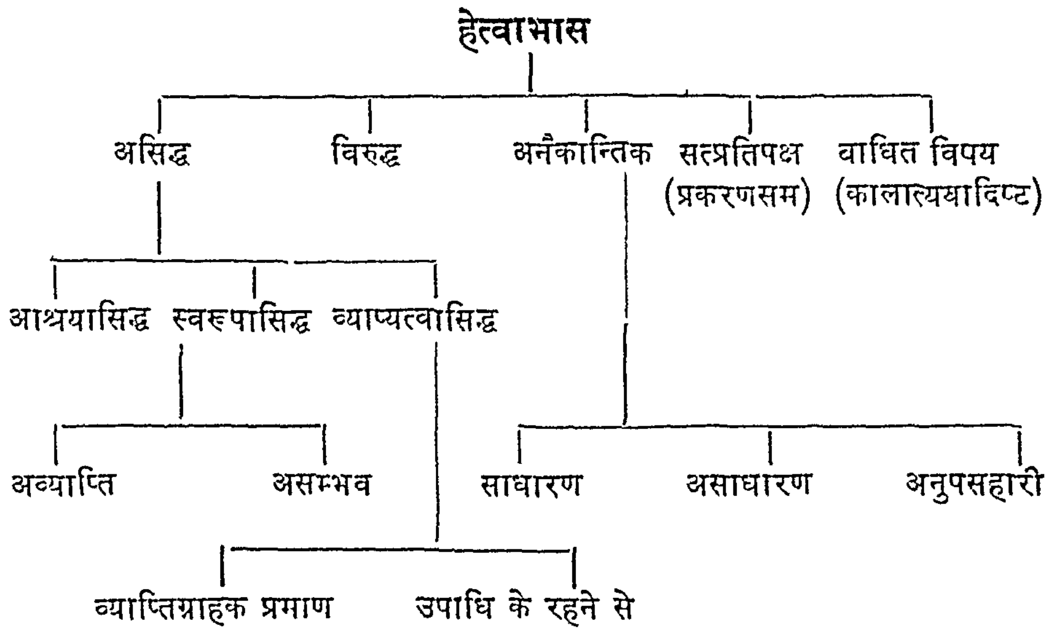
इस उदाहरण मे द्वितीय अनुमान मे हेतु अदृश्य द्वारा शब्द की नित्यता सिद्ध की गई है और द्वितीय अनुमान मे हेतु 'कार्य' के द्वारा उसकी अनित्यता सिद्ध की गई है। दूसरे अनुमान का हेतु ठीक होने के कारण उससे पहले अनुमान का हेतु खडित हो जाता है अतः पहले अनुमान मे 'सत्प्रतिपक्ष' दोष है। विरुद्ध मे हेतु के द्वारा ही निगमन का खण्डन हो सकता है परन्तु 'सत्प्रतिपक्ष' मे निगमन का खण्डन अन्य सम्भावित अनुमान के हेतु द्वारा होता है।

५. बाधितविषय अथवा कालात्ययापदिष्ट

इसमे दृढ प्रमाणो के द्वारा पक्ष मे साध्य का होना बाधित अथवा असिद्ध होता है जैसे—

बाधितविषय प्रतिज्ञा—आग गरम नही है।

कालात्ययापदिष्ट हेतु—क्योकि वह उत्पन्न होती है, जैसे—



इस उदाहरण मे 'गरम न होना' साध्य है और उत्पन्न होना हेतु है। सभी प्रत्यक्ष प्रमाण से यह जानते है कि आग गरम होती है। अत यहाँ पर साध्य का पक्ष मे होना प्रत्यक्ष प्रमाण से बाधित है। जब कोई अनुमान किसी दूसरे अनुमान से खण्डित हो जाता है तो सत्प्रतिपक्ष दोष होता है और जब कोई अनुमान प्रत्यक्ष अथवा अनुमान के अतिरिक्त अन्य किसी प्रमाण से खण्डित हो जाता है तब बाधित विषय दोष होता है।

तर्कशास्त्र मे ये ही पाँच प्रकार के 'हेत्वाभास' माने जाते हैं, इन्ही को उलट-पलट कर देने से इनके कुछ और भी भेद हो जाते हैं। हेतु के 'अतिव्याप्ति'

'अव्याप्ति', तथा 'असम्भव' दोष इसी प्रकार के है। ये इन्ही पाँच हेत्वाभासों मे आ जाते हैं।

सारांश

हेत्वाभास दूषित हेतु वाला अनुमान है। हेत्वाभास के प्रकार हैं असिद्ध, विरुद्ध, अनैकान्तिक, सत्प्रतिपक्ष और बाधित विषय।

अभ्यास के लिये प्रश्न

प्रश्न १. हेत्वाभास से आप क्या समझते हैं ? असिद्ध हेतु का स्वरूप क्या है और वह कितने प्रकार का होता है ? (यू० पी० बोर्ड १९६५)

प्रश्न २. हेत्वाभास क्या है ? भारतीय तर्कशास्त्र मे अनुमान हेत्वाभास के प्रकार बतलाइये। (बुन्देलखण्ड १९७८)

प्रश्न ३. हेत्वाभास के विभिन्न प्रकारों की उपयुक्त उदाहरण सहित व्याख्या कीजिये। (प्रयाग १९७५, ७४)

२३

आगमन के वस्तुगत आधार : निरीक्षण और प्रयोग

(MATERIAL GROUNDS OF INDUCTION : OBSERVATION AND EXPERIMENT)

निगमनात्मक तर्क के समान आगमनात्मक तर्क मे भी सत्यता आकार विषयक और द्रव्य विषयक दोनो प्रकार की होती है। आगमन की द्रव्य विषयक सत्यता निरीक्षण और प्रयोग पर आधारित रहती है। कार्वेथरीड के शब्दो मे, "निरीक्षण और प्रयोग आगमन के द्रव्य विषयक आधार है।"[1] आगमन की सत्यता इस बात पर निर्भर है कि उसमे जिन तथ्यो का सहारा लिया गया है उनका निरीक्षण अथवा प्रयोग कहाँ तक वैज्ञानिक ढग से किया गया है। इनके दोषपूर्ण होने पर आगमन आकार विषयक दृष्टि से कितना ही यथार्थ क्यो न हो वह कभी भी सत्य नही हो सकता। इसीलिये विभिन्न विज्ञानो मे निरीक्षण और प्रयोग पर इतना अधिक बल दिया जाता है और सब प्रकार की सावधानी रखी जाती है। उदाहरण के लिये कुत्ते पर किये गये सम्बद्ध अनुक्रिया के प्रयोग मे रूसी वैज्ञानिक पैवलोव ने एक ऐसे कमरे का प्रयोग किया जिसमे बाहर का शब्द बिल्कुल नही जा सकता था ताकि कुत्ते पर बाहर की किसी प्रकार की उत्तेजना का प्रभाव न पडे। प्रयोगात्मक विधि मे समस्त परिस्थितियो का अलग-अलग विश्लेषण करके नियन्त्रित कर दिया जाता है जिससे कि यह मालूम हो सके कि उस कारक के कारण तथ्यो पर क्या प्रभाव पडता है। आगमन का भवन सही सामान्यीकरण के आधार पर खडा होता है और सामान्यीकरण तभी यथार्थ हो सकता है जब कि वह जिन तथ्यो पर आधारित हो वे यथार्थ हो। ये यथार्थ तथ्य निरीक्षण अथवा प्रयोग से प्राप्त किये जा सकते है। अस्तु, सक्षेप मे निरीक्षण और प्रयोग आगमन के द्रव्य विषयक आधार है।

निरीक्षण

निरीक्षण का अर्थ

सामान्य रूप से किसी घटना को देखने, किसी बात को सुनने अथवा किसी इन्द्रिय से किसी तथ्य का प्रत्यक्षीकरण निरीक्षण मान लिया जाता है जबकि वास्तव मे सामान्य प्रत्यक्षीकरण मात्र निरीक्षण नही है। वैज्ञानिक दृष्टि से निरीक्षण

---

1 "Observations ar[illegible] [illegible]iments are the material grounds of Induction" —Carveth Read

उद्देश्य युक्त और नियमित प्रत्यक्षीकरण है। उदाहरण के लिये यदि किसी रोग के कारण अथवा लक्षण का पता लगाना होता है तो इस उद्देश्य को ही लेकर उस रोग के अनेक रोगियों का निरीक्षण किया जाता है। इस निरीक्षण मे जो असामान्य बात देखी जाती है उसको छोड़कर सामान्य तथ्यों के आधार पर सामान्य नियम बना लिया जाता है। उद्देश्य युक्त होने के कारण निरीक्षण मे तथ्यो के प्रत्यक्षीकरण मे चुनाव किया जाता है। बाजार मे घूमते हुए अपने चारो ओर होती हुई चाहे जिस घटना को देखना निरीक्षण नही कहलाता क्योंकि यह निरूद्देश्य है। दूसरी ओर यदि आपका उद्देश्य बाजार मे लगाए गये पोस्टरो, अथवा विज्ञापनों तथा साइनबोर्डों के विषय में कोई अनुसधान करना है तो यह वैज्ञानिक निरीक्षण है क्योकि इसमे आप केवल इन्ही की ओर ध्यान देंगे। संक्षेप में, निरीक्षण उद्देश्ययुक्त नियमित, पक्षपातहीन और चुनावयुक्त प्रत्यक्षीकरण है।

निरीक्षण की विशेषतायें

निरीक्षण की उपरोक्त परिभाषा से उसकी निम्नलिखित विशेषताये स्पष्ट होती है—

(१) **निरीक्षण नियमित प्रत्यक्षीकरण है**—जैसा कि पहले कहा जा चुका है, चाहे जिस तथ्य का प्रत्यक्षीकरण मात्र निरीक्षण नही हो सकता। निरीक्षण में हमारे सामने पहले से ही निश्चित उद्देश्य होने के कारण हम कुछ विशेष तथ्यों का ही प्रत्यक्षीकरण करते है और बाकी तथ्यो को छोड़ देते है। इस प्रकार निरीक्षण नियमित अथवा व्यवस्थित होता है।

(२) **निरीक्षण में चुनाव होता है**—नियमित निरीक्षण में कुछ विशेषताये होती है। एक तो वह सक्रिय प्रत्यक्ष है। उसमे निष्क्रिय रूप से विभिन्न इन्द्रियो से प्रत्यक्षीकरण मात्र नही होता बल्कि मन लगाकर ध्यानपूर्वक प्रत्यक्षीकरण किया जाता है। दूसरे, नियमित निरीक्षण मे चुनाव होता है। तीसरे उसमे रुचि और उद्देश्य होता है, चौथे, उसमे प्रत्यक्षीकरण के तथ्य की सही व्याख्या की जाती है।

निरीक्षण की दूसरी विशेषता चुनाव है। यह चुनाव उद्देश्य के अनुसार होता है। भिन्न-भिन्न वैज्ञानिक भिन्न-भिन्न उद्देश्यो को लेकर प्राकृतिक तथ्यो का निरीक्षण करते है। किसी बाग मे घूमते हुए वनस्पति शास्त्री, कलाकार और भूगर्भ शास्त्री भिन्न-भिन्न तथ्यो का निरीक्षण करते है क्योकि उनके वैज्ञानिक उद्देश्य भिन्न-भिन्न है।

(३) **निष्पक्षता**—वैज्ञानिक निरीक्षण की एक अन्य विशेषता उसकी निष्पक्षता है। वैज्ञानिक को तटस्थ होकर निरीक्षण करना होता है। यदि वह किसी तथ्य के विषय में पहले से ही कोई पक्षपात या पूर्वाग्रह मन मे लिये हुए है तो वह भटक जायेगा और सही तथ्यो का निरीक्षण नही कर सकेगा। निष्पक्षता के लिये यह आवश्यक है कि निरीक्षणकर्ता के मन मे किसी प्रकार का पूर्वाग्रह न हो। इसके अतिरिक्त उसकी मानसिक स्थिति तटस्थ और सवेगहीन होनी चाहिये क्योकि सवेगो से निरीक्षण पर प्रभाव पड़ता है।

(४) **अचेतन अनुमान से विहीन**—सामान्य व्यक्ति बहुधा अपने निरीक्षण मे अचेतन अनुमान से प्रभावित हो जाते है किन्तु वैज्ञानिक निरीक्षण मे निरीक्षण अचेतन अनुमान से दूर रखा जाता है। वैज्ञानिक निरीक्षण की प्रक्रिया को बतलाते हुये जैवोन्स ने लिखा है, "जब तक हम केवल उन्ही बातों का वर्णन करते है जो

वास्तव मे हमारी ज्ञानेन्द्रियो के सामने प्रकट हुई है तब तक हम कोई गलती नही कर सकते, परन्तु जैसे ही हम किसी वस्तु की कल्पना या अनुमान करते है वैसे ही गलतियो की सम्भावना हो जाती है।"[1] अचेतन अनुमान कई कारणो से होता है जिनमे से कुछ मनुष्य के सुदूर भूतकालीन जीवन से सम्बन्धित होते हैं। अचेतन होने के कारण व्यक्ति को उनका पता नहीं होता और वह समझता है कि उसका निरीक्षण सही है। वैज्ञानिक को ध्यानपूर्वक अपने निरीक्षण मे से अचेतन अनुमान को अलग रखना चाहिये।

(५) **यन्त्रों की सहायता**—वैज्ञानिक निरीक्षण को यथार्थ और प्रभावशाली बनाने के लिये आजकल भिन्न-भिन्न विज्ञानो मे भिन्न-भिन्न यन्त्रो की सहायता ली जाती है। उदाहरण के लिये रोगी के निरीक्षण मे डाक्टर थर्मामीटर, स्टेथेस्कोप इत्यादि अनेक यन्त्रो का प्रयोग करता है। इन उपकरणो के प्रयोग से ज्ञानेन्द्रियो की प्रत्यक्षीकरण की शक्ति अत्यधिक बढ जाती है। उदाहरण के लिये शक्तिशाली खुर्दबीन से जो सूक्ष्म वस्तुये देखी जा सकती हैं उनको खाली आँख से नही देखा जा सकता। इसी प्रकार माइक्रोफोन की सहायता से ऐसी सूक्ष्म ध्वनियो को सुना जा सकता है जो खाली कान से सुनाई नही दे सकती। बैरोमीटर की सहायता से वायुमण्डल की दशाओ को जाना जा सकता है। थर्मामीटर की सहायता से शरीर के तापक्रम को मापा जा सकता है। स्टेथेस्कोप की सहायता से फेफड़ो के कार्य को समझा जा सकता है। इसी प्रकार आज के वैज्ञानिक युग मे सैकड़ो ऐसे उपकरण उपस्थित हैं जिनसे वैज्ञानिक निरीक्षण की शक्ति अत्यधिक बढ गई और नये-नये आविष्कारो से निरीक्षण की यह शक्ति बराबर बढती ही जाती है। यहाँ पर यह ध्यान रखने की बात है कि वैज्ञानिक उपकरणो के प्रयोग मात्र से निरीक्षण प्रयोग नही बन जाता जब तक कि हम परिस्थितियो का नियन्त्रण न करते हो। यन्त्र तो इन्द्रियो की शक्ति तथा प्रत्यक्षीकरण की विशुद्धता और यथार्थता को बढ़ा देते हैं।

निरीक्षण की सामान्य दशाये

वैज्ञानिक निरीक्षण के लिये कुछ प्रतिबन्धो की आवश्यकता होती है जिनका पालन न करने से निरीक्षण वैज्ञानिक नही हो सकता। जॉयस (Joyce) ने निरीक्षण के तीन प्रकार के सामान्य प्रतिबन्ध बतलाये है—बौद्धिक (Intellectual), शारीरिक (Physical) तथा नैतिक (Moral)।

(१) **बौद्धिक प्रतिबन्ध**—बौद्धिक प्रतिबन्ध से तात्पर्य ज्ञान की इच्छा है। ज्ञानार्जन की इच्छा के बिना निरीक्षण कभी भी वैज्ञानिक नही हो सकता। जिस वैज्ञानिक को जिस क्षेत्र में ज्ञान की इच्छा होती है वह उसी क्षेत्र मे व्यापक निरीक्षण करता है।

(२) **शारीरिक प्रतिबन्ध**—शारीरिक प्रतिबन्ध से तात्पर्य शारीरिक दशाओ और इन्द्रियो का स्वस्थ होना और वैज्ञानिक उपकरणो का प्रयोग है। वास्तव मे वैज्ञानिक उपकरणो के प्रयोग को शारीरिक प्रतिबन्ध न कहकर भौतिक प्रतिबन्ध कहा जाना चाहिये। इन्द्रियो के अस्वस्थ होने पर प्रत्यक्षीकरण यथातथ्य नही

1 "So long as we only record and describe what our senses have actually witnessed, we cannot commit an error, but the moment we presume or infer anything we are liable to mistake"
—Jevons.

होता। उदाहरण के लिये पीलिया के रोगी को सब कुछ पीला दिखाई पड़ता है। इन्द्रियों मे सामान्य शक्ति न होने पर भी प्रत्यक्षीकरण सम्भव नही है। उदाहरण के लिये वर्णान्ध व्यक्ति विभिन्न प्रकार के रंगो मे अन्तर नही कर सकता। सूक्ष्म निरीक्षण के लिये ज्ञानेन्द्रियों को विभिन्न वैज्ञानिक उपकरणो की आवश्यकता होती है जैसे दूर की वस्तु देखने के लिये दूरबीन की जरूरत पड़ती है।

(३) नैतिक प्रतिबन्ध—नैतिक प्रतिबन्ध से तात्पर्य वैज्ञानिक के निष्पक्ष होने से है। यह एक बड़ी कठिन बात है चूँकि बहुधा वैज्ञानिक जिस परिस्थिति का निरीक्षण करता है स्वय भी उसी का अग होता है। उदाहरण के लिये समाजशास्त्र मे समाजशास्त्री स्वयं सामाजिक व्यवस्था मे सक्रिय भाग लेता है, वह स्वय समाज का एक अग है और इसलिये समाज से प्रभावित है। ऐसी स्थिति मे उसका निरीक्षण निष्पक्ष होना बड़ा कठिन है। इसीलिये जैवीन्स ने ठीक ही कहा है, "ऐसे आदमियों का पाना सरल नही है जो पूरे न्याय के साथ अपने व्यक्तिगत सिद्धान्तों के पक्ष और विपक्ष मे तथ्य सग्रह कर सके।"[1] फिर भी प्रयत्न करने से पक्षपात अधिक से अधिक दूर किया जा सकता है। अनेक प्रसिद्ध वैज्ञानिक अपने निरीक्षण मे पूर्णतया निष्पक्ष रह सके है।

निरीक्षण के दोष

मिल ने निरीक्षण के दो दोष बतलाए है–अनिरीक्षण (Non-observation) और कुनिरीक्षण (Mal-observation)। मिल के शब्दो मे, "भ्रांत निरीक्षण का दोष अभावात्मक या भावात्मक, निरीक्षण या कुनिरीक्षण हो सकता है वह अनिरीक्षण तब होता है जब दोष यह है कि जिन तथ्यो का निरीक्षण होना चाहिये, उनकी उपेक्षा कर दी जाती है। वह कुनिरीक्षण तब होता है जब कोई वस्तु न केवल देखने से रह जाती है बल्कि गलत देखी जाती है, जब एक तथ्य को उसके यथार्थ रूप मे नही देखा जाता बल्कि किसी दूसरे रूप में देखा जाता है।"[2] निरीक्षण के ये दोष निम्नलिखित है—

(१) अनिरीक्षण—अनिरीक्षण का अर्थ किसी ऐसी वस्तु का निरीक्षण न करना है जिसका निरीक्षण करना आवश्यक है। दूसरे शब्दो मे, इस निरीक्षण मे किसी ऐसी वस्तु की उपेक्षा कर दी जाती है जो सही निष्कर्ष पर पहुँचने के लिये अत्यन्त आवश्यक है। अस्तु, जब कभी निरीक्षण के चुनाव मे ऐसे दृष्टान्तो की कुछ ऐसी आवश्यक बातो को छोड दिया जाता है जो कि सही निष्कर्ष पर पहुँचने के लिये जरूरी है तो अनिरीक्षण का दोष होता है। इस प्रकार अनिरीक्षण के अग्र-लिखित दो प्रकार होते है—

---

1. "It is not easy to find persons who can with perfect fairness register facts both for and against their own perculiar views." —Jevons.

2 "A fallacy of misobservation (or imperfect observation) may be either negative or positive; either non observation or mal-observation It is non observation, when all the error consists in overlooking or neglecting facts or particulars which ought to have been observed It is mal-observation when it is not simply unseen, but seen wrong, when the fact or phenomena, instead of being recognised for what it is in reality, is mistaken for some thing else." —Mill

(अ) **दृष्टान्तों का अनिरीक्षण**—इसमें, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, कुछ ऐसे दृष्टान्तो (Examples) का निरीक्षण नही किया जाता जिनका निरीक्षण करना आवश्यक है। बहुधा जिन सिद्धातो को हम सिद्ध करना चाहते है उनके पक्ष मे भावात्मक दृष्टान्तो का तो हम निरीक्षण कर लेते हे और उनके विपक्ष मे निरीक्षण पक्षपातपूर्ण हो जाता है। वेकन ने लिखा है, "जिन दृष्टान्तो मे मनुष्य को सफलता मिलती है उन्हे वह भली प्रकार अकित कर लेता है। परन्तु जिन दृष्टान्तो मे उसे असफलता मिलती है उन्हे वह अकित करना भूल जाता है। इसको समझाने के लिये वेकन ने एक दृष्टात दिया है। एक मन्दिर मे एक पुजारी था जो कि समुद्र के यात्रियो से यह कहा करता था कि देवता को कुछ चढाओ ताकि तुम्हारा जहाज डूबने से बच जाये। जिन लोगो ने देवता पर कुछ चढाया था और डूबने से बच गये थे उनके चित्र उसने मन्दिर की दीवारो पर अकित करा रक्खे थे। एक दिन एक व्यक्ति आया जो समुद्र यात्रा के लिये जाने वाला था। पुजारी ने उससे कहा कि यदि तुम देवता की मनौती कर दो तो कुशलतापूर्वक यात्रा से लौट आओगे। उसने उस व्यक्ति को उनके चित्र दिखलाये जिन्होने देवता की मनौती की थी और इस प्रकार आपत्ति से बच गये थे। यात्री ने उन चित्रो की सराहना की और फिर यह पूछा कि उन लोगो के चित्र कहाँ है जिन्होने देवता की मनौती तो मानी परन्तु फिर भी समुद्र मे डूब गये और घर वापिस न आ सके। पुजारी ने इन लोगो के चित्र नही लगा रक्खे थे और न कभी उनकी ओर ध्यान दिया था क्योंकि ये उसकी पूर्व मान्यता के विरुद्ध दृष्टात उपस्थित करते थे। इसी से वह यह समझता था कि देवता की मनौती मानने से जहाज डूबने से बच जाते है। अभावात्मक दृष्टान्तो की अपेक्षा से उसका निरीक्षण अनिरीक्षण बन गया और उसके आधार पर गलत निष्कर्ष बना रखा था।

(ब) **आवश्यक दशाओं (Crucial Instances) की उपेक्षा**—पीछे कहा जा चुका है कि निरीक्षण मे चुनाव किया जाता है। उसमे विशेष उद्देश्य के अनुसार उन दशाओ का निरीक्षण किया जाता है जो गवेषणा की वस्तु पर प्रभाव डालती है और उन दशाओ की उपेक्षा की जाती है जो प्रभाव नही डालती। प्रभाव डालने वाली आवश्यक और अनावश्यक दशाओ मे भेद न कर सकने के कारण अथवा पक्ष-पातपूर्ण चुनाव होने मे अनेक वार ऐसी आवश्यक स्थितियो की उपेक्षा कर दी जाती है जिनके अनिरीक्षण से निरीक्षण के निष्कर्ष पर प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार के अनिरीक्षण के उदाहरण सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और धार्मिक घटनाओ मे देखे जा सकते है। उदाहरण के लिये किसी विशेष काल मे अधिक अभियुक्तो के पकड़े जाने से यह मान लिया जाता है कि अपराध वढ रहे है जवकि यह भी हो सकता है कि अपराध न वढ़े हो वल्कि घटे ही हो और केवल पुलिस की सतर्कता वढ जाने के कारण अधिक लोग पकडे जा रहे हो। वास्तव में अनिरीक्षण अभावा-त्मक दोष है। उपरोक्त दोनो प्रकार के अनिरीक्षण मे कोई न कोई वात निरीक्षण से छूट जाती है।

(२) **कुनिरीक्षण**—कुनिरीक्षण, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, गलत निरीक्षण है। यह अनेक कारणो से हो सकता है। उदाहरण के लिये यदि हमारी कोई इन्द्रिय ठीक प्रकार से कार्य नही कर रही है तो उसके द्वारा किये गये प्रत्यक्षी-

करण यथार्थ नही होगे । दूसरे, संवेगावस्था के कारण कभी-कभी ऐसी वस्तु देख ली जाती है जो वहाँ नही है । इसके उदाहरण विभिन्न प्रकार के पर्याय हैं जैसे कुछ लोगो को अधेरे मे भूत नजर आता है । कभी-कभी संवेगावस्था के कारण अथवा पूर्वाग्रह के कारण प्रत्यक्षीकरण की सवेदना की गलत व्याख्या कर दी जाती है । उदाहरण के लिये अन्धेरे मे रस्सी को साप समझ लिया जाता है । भारतीय दर्शन मे अध्यास के अनेक उदाहरण दिये गये है जो कि कुनिरीक्षण के उदाहरण हैं ।

निरीक्षण के उपरोक्त दोषों को निम्नलिखित चार्ट से दिखाया जा सकता है—

निरीक्षण के दोष
- अनिरीक्षण
  - दृष्टान्तो का अनिरीक्षण
  - आवश्यक बातो का अनिरीक्षण
- कुनिरीक्षण

प्रयोग

प्रयोग क्या है

प्रयोग का अर्थ नियन्त्रित परिस्थितियो मे निरीक्षण से है । उसके उद्देश्य निम्नलिखित होते है—

(१) **अनावश्यक स्थितियों का निरास करके आवश्यक स्थितियों का चयन**—जैसा कि पीछे बतलाया जा चुका है, प्रयोग मे सबसे पहले यह आवश्यक होता है कि जिस तथ्य का अध्ययन किया जाये उसको प्रभावित करने वाली परिस्थितियो का विश्लेषण करके अनावश्यक स्थितियो का निरास कर दिया जाये और आवश्यक स्थितियाँ चुन ली जायें । उदाहरण के लिये यदि हमें यह पता लगाना है कि विद्यार्थी की पढाई पर शिक्षण प्रणाली का कहाँ तक प्रभाव पड़ता है तो इस सम्बन्ध में प्रयोग करने के लिये केवल उन स्थितियो को चुन लिया जाना चाहिये जो शिक्षण प्रणाली से सम्बन्धित है । पढाई को प्रभावित करने वाली अन्य परिस्थितियो का निरास कर दिया जाना चाहिये ।

(२) **उपकल्पना की परीक्षा और सत्यापन** (Test and Verification of Hypothesis)—प्रयोग किसी न किसी उपकल्पना से प्रारम्भ होता है । यह उपकल्पना अनुभव और निरीक्षण के आधार पर बनाई जाती है । उदाहरण के लिये किसी अध्यापक को ऐसा प्रतीत होता है कि अध्यापन प्रणाली में परिवर्तन हो जाने से विद्यार्थियो की पढाई मे परिवर्तन दिखलाई पड़ता है तो वह यह उपकल्पना बना लेता है कि अध्यापन प्रणाली विद्यार्थियो की पढाई को प्रभावित करती है । अब इस उपकल्पना की परीक्षा प्रयोग के द्वारा की जायेगी और यदि प्रयोगो से इसके पक्ष मे निष्कर्ष निकले तो इसका सत्यापन हो जायेगा । भौतिक विज्ञान के क्षेत्र मे विभिन्न भौतिक घटनाओ को लेकर वैज्ञानिक नयी नयी उपकल्पनायें उपस्थित करते रहते हैं और उनके सत्यापन के लिये वर्षों तक प्रयोग चलते है यदि इन प्रयोगो से वे उपकल्पनायें सिद्ध हो जाती है तो वे वैज्ञानिक सिद्धान्त

बन जाती है और यदि प्रयोग के परिणाम उनके विरुद्ध होते है तो उनको छोडकर अन्य अधिक सम्भावित उपकल्पनाये उठाली जाती है और उनकी परीक्षा की जाती है ।

(३) **प्रकृति के नियमों की खोज**—अन्त मे प्रयोग का उद्देश्य नियन्त्रित परिस्थितियो मे किसी तथ्य का निरीक्षण करके उसके विषय मे सामान्य प्राकृतिक नियमो का पता लगाना है । प्रयोगो के आधार पर ही विभिन्न विज्ञानो के क्षेत्र मे प्राकृतिक नियमो का पता लगाया गया है । प्रयोगो से मिले हुये निष्कर्ष अधिक यथार्थ होते है क्योकि उनका निरीक्षण नियन्त्रित परिस्थितियो मे किया गया है इसी लिये उनके आधार पर यथार्थ वैज्ञानिक नियम बनाये जा सकते है ।

प्रयोग के प्रकार

प्रयोग के मुख्य रूप से निम्नलिखित तीन प्रकार होते है—

(१) **भावात्मक प्रयोग** (Positive Experiment)—इसमे गवेषणा की जाने वाली घटना और उसका कारण दोनो वर्तमान मे उपस्थित होते हैं । दूसरे शब्दो मे, यह घटना और उसके कारण दोनो के भाव अथवा उपस्थिति पर आधारित होता है, इसलिये यह भावात्मक प्रयोग कहलाता है । उदाहरण के लिये वायु मे घन्टी बजाने पर ध्वनि होती है । इसमे ध्वनि होना और उसका कारण वायुस्पन्दन दोनो ही उपस्थित हे इसलिये यह भावात्मक प्रयोग है ।

(२) **अभावात्मक प्रयोग** (Negative Experiment)—इसमे गवेपणा की घटना और उसका कारण दोनो ही गैर हाजिर होते है इसीलिये दोनो के अभाव पर आश्रित होने के कारण यह अभावात्मक प्रयोग कहलाता है । उदाहरण के लिये यदि ऐसे स्थान पर घण्टी वजाई जाए जहाँ वायु न हो और शून्य हो तो वहा न तो वायु का स्पन्दन होगा और न ध्वनि होगी ।

(३) **प्राकृतिक प्रयोग** (Natural Experiment)—पीछे कहा जा चुका है कि प्रयोग नियन्त्रित निरीक्षण है । उसमे वैज्ञानिक स्वय परिस्थितियो को उत्पन्न करता है और उनका नियन्त्रण करता हैं तथा इच्छानुसार परिवर्तन करता है । यह बात प्राकृतिक विपयो मे सम्भव नही है । परन्तु क्या इसका अर्थ यह है कि प्राकृतिक तथ्यो के विषय मे प्रयोग नही किये जा सकते ? नही, इनके विपय मे भी प्रयोग किये जा सकते है जो कि प्राकृतिक प्रयोग कहलाते है । इनमे अन्य प्रयोगो के समान विभिन्न वैज्ञानिक उपकरणो का सहारा लिया जाता है और विशेष प्राकृतिक घटना की सभी दशाओ का विश्लेपण करके उन सवका निरीक्षण करते हुए घटना मे अन्तर को नोट किया जाता है । प्राकृतिक प्रयोग के उदाहरण सूर्य चन्द्र तथा अन्य ग्रहो उपग्रहो के विपय मे होने वाले प्रयोग है । इन पर मनुष्य किसी प्रकार से नियन्त्रण नही कर सकता । इनको प्राकृतिक स्थिति मे ही निरीक्षण करके प्रयोग किया जाता है ।

निरीक्षण के प्रयोग

निरीक्षण प्राकृतिक घटनाओ का प्राकृतिक परिस्थितियो मे नियमित प्रत्यक्षीकरण है । इसमे प्रत्यक्षीकरण की घटना का विशेप उद्देश्य के अनुसार चुनाव किया ज़ाता है । उदाहरण के लिये भौतिकशास्त्री, रसायनशास्त्री और चिकित्साशास्त्री सब प्रकृति मे भिन्न-भिन्न घटनाओ का निरीक्षण करते है । निरीक्षण मे वैज्ञानिक घटनाओ को उत्पन्न नही करता और न उन्हें नियन्त्रित ही करता है । दूसरी ओर

प्रयोग मे वह घटनाओं का केवल चुनाव ही नही करता किन्तु अधिकतर स्वय उन्हे कृत्रिम रूप से उत्पन्न करता है और नियन्त्रित परिस्थितियो से उनका अन्तर नोट करता है। इसी प्रकार निरीक्षण और प्रयोग का सबसे बड़ा अन्तर प्रयोगशाला विधि का प्रयोग है। प्रयोगशाला मे प्राकृतिक घटनाओं को कृत्रिम रूप से उत्पन्न किया जाता है। उसमे घटनाओ के प्राकृतिक रूप मे होने की प्रतीक्षा नही की जाती। बेकन के शब्दो मे, "प्रयोग मे हम प्रकृति से प्रश्न पूछते है।"[1] प्रयोग के परिणाम से प्रश्न का उत्तर मिलता है। उदाहरण के लिये रसायनशास्त्री यह प्रश्न उठाता है कि अमुक रसायनो के मिलने से क्या परिणाम होगा। इसके लिये वह प्रयोगशाला मे इन रसायनो को मिलाता है और परिणाम नोट करता है। यह परिणाम ही उसके प्रश्न का उत्तर है।

निरीक्षण और प्रयोग में अन्तर

उपरोक्त विवेचन से निरीक्षण और प्रयोग मे निम्नलिखित अन्तर स्पष्ट होते हैं—

(१) **परिस्थितियों को उत्पन्न करना**—निरीक्षण और प्रयोग मे मुख्य अन्तर परिस्थितियो को उत्पन्न करने के विषय मे है। जब कि निरीक्षण मे परिस्थितियों को उत्पन्न नही किया जाता, प्रयोग मे निरीक्षण की परिस्थितियो को कृत्रिम रूप से उत्पन्न किया जाता है। यह प्रयोगशाला विधि की विशेषता है। बेन के शब्दों मे, "निरीक्षण किसी तथ्य को पाना है और प्रयोग उसको उत्पन्न करना है।"[2] उदाहरण के लिये बादलो मे विद्युत का प्रत्यक्षीकरण निरीक्षण है और प्रयोगशाला मे विद्युत उत्पन्न करना प्रयोग है।

(२) **परिस्थितियों का नियन्त्रण**—जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है निरीक्षण मे परिस्थितियो का नियन्त्रण नही किया जाता जब कि प्रयोग में परिस्थितियो का नियन्त्रण किया जाता है क्यो इसमे परिस्थितिया स्वय उत्पन्न की जाती हैं। यहा पर कुछ लोग यह कहने लगते है कि प्रयोग कृत्रिम और निरीक्षण प्राकृतिक हैं। प्रयोग और निरीक्षण मे यह अन्तर भ्रामक है। यह ठीक है कि निरीक्षण मे प्राकृतिक घटनाओ का ज्यों का त्यो निरीक्षण किया जाता है किन्तु उसमें भी यान्त्रिक उपकरणो के प्रयोग से कृत्रिमता आ जाती है। दूसरी ओर प्रयोगशाला में प्राकृतिक घटनाओ को उत्पन्न करने मे प्रकृति के नियमों के अनुसार ही चलना पड़ता है और इसलिये किसी सीमा तक यह भी प्राकृतिक है।

(३) **परिस्थितियों का निरास**—निरीक्षण मे प्रासगिक और अप्रासगिक परिस्थितियो को अलग नही किया जा सकता जबकि प्रयोग मे परिस्थितियो पर नियन्त्रण होने के कारण अप्रासगिक परिस्थितियो को पृथक करके उनका निरास कर दिया जाता है।

(४) **उपकल्पना का महत्व**—निरीक्षण और प्रयोग मे उपकल्पना के महत्व को लेकर भी अन्तर पाया जाता है निरीक्षण मे पहले से ही कोई उपकल्पना बनाना आवश्यक नही है जबकि प्रयोग उपकल्पना की परीक्षा के लिये ही किया जाता है। वास्तव मे निरीक्षण करने के बाद ही वैज्ञानिक के मन मे उपकल्पना का उदय

---

1. "In experiment, we interrogate Nature." —Bacon.
2. "Observation is finding a fact and experiment is making one." —Bain.

होता है और उसी का सत्यापन करने के लिये वह प्रयोग करता है। जैसा कि बेकन ने कहा है, जिस तरह एक वकील गवाह से जिरह करके उपयुक्त उत्तर निकाल लेता है उसी प्रकार एक वैज्ञानिक प्रयोग द्वारा प्रकृति से प्रश्न करके उससे उपयुक्त उत्तर निकाल लेता है। इस उत्तर का प्रश्न उसके मन मे निरीक्षण के समय उत्पन्न हुआ था।

(५) **निरीक्षण प्रयोग से पहले होता है**—उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि निरीक्षण प्रयोग से पहले होता है। निरीक्षण करने से हमारे मन मे किसी प्राकृतिक घटना के विषय में उपकल्पना उत्पन्न होती है और प्रयोग करके हम उसी उपकल्पना का सत्यापन करते है।

(६) **निरीक्षण अधिकतर आविष्कार में और प्रयोग उपपत्ति में सहायक होता है**—ससार मे वड़े-वड़े आविष्कार प्रायः निरीक्षण से हुए है। इन आविष्कारो के सम्वन्ध मे जो उपकल्पनाये बनायी गयी है उनको सिद्ध करने अथवा उनकी उपपत्ति के लिये प्रयोग किये गए है। किन्तु यहाँ पर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि यह जरूरी नही कि प्रयोग से केवल उपपत्ति ही होती है। उसकी सहायता से अनेक आविष्कार भी किये गये है।

प्रयोग और निरीक्षण के उपरोक्त अन्तर के विवेचन से स्पष्ट है कि ये दोनो परस्पर घनिष्ठ रूप से सम्वन्धित हैं। निरीक्षण से उत्पन्न होने वाली उपकल्पनाओ के सत्यापन के लिये प्रयोग की आवश्यकता होती है और प्रयोग को सफल बनाने के लिए निरीक्षण की आवश्यकता होती है। अस्तु, यह कहना गलत है कि निरीक्षण निष्क्रिय अनुभव और प्रयोग सक्रिय अनुभव है। प्रयोग के समान निरीक्षण भी सक्रिय होता है, उसमे रूचि और उद्देश्य तथा चुनाव होते है। वास्तव मे निरीक्षण और प्रयोग प्रकार मे भिन्न नही है, उनमे केवल मात्रा का अन्तर है निरीक्षण मे भी प्रयोग के समान परिस्थितियो पर कुछ न कुछ नियन्त्रण तो होता ही है क्योकि उसमे परिस्थितियो का चुनाव किया जाता है। दूसरी ओर प्रयोग मे यह नियन्त्रण अधिक होता है। निरीक्षण और प्रयोग मे मात्रा के अन्तर के कारण ही निरीक्षण को साधारण निरीक्षण और प्रयोग को प्रयोगात्मक निरीक्षण कहा जाता है।

निरीक्षण और प्रयोग के लाभों की तुलना

सक्षेप मे प्रयोग निरीक्षण से कही अधिक लाभदायक विधि है। प्रयोगात्मक विधि ने ही विज्ञान को उसके वर्तमान स्तर पर पहुँचाया है। इसी के आधार पर वैज्ञानिक यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर सके है। निरीक्षण की तुलना मे प्रयोग के मुख्य लाभ निम्नलिखित है :—

(१) **उदाहरणों का बहुलीकरण**—चूंकि प्रयोग मे वैज्ञानिक घटना की परिस्थितियो को स्वय उत्पन्न करता है इसलिये वह चाहे जितनी वार प्रयोग को दोहरा सकता है। उदाहरणो के इस बहुलीकरण से प्रयोग द्वारा सिद्ध बात अधिक निश्चित हो जाती है और उसकी कमी भी जाँच करके देखी जा सकती है। दूसरी ओर निरीक्षण मे उदाहरणो की पुनरावृत्ति इतनी आसान नही है क्योकि उसमे घटना की पुनरावृत्ति के लिये प्रकृति पर निर्भर रहना पड़ता है। उदाहरण के लिये नक्षत्र विद्या सम्वन्धी अनेक निरीक्षणो मे घटना की पुनरावृत्ति कभी-कभी बीसो

वर्ष बाद होती है । स्पष्ट है कि निरीक्षण में दृष्टान्तों को चाहे जितना नहीं बढ़ाया जा सकता जब कि प्रयोग में ऐसा किया जा सकता है ।

(२) **प्रासंगिक परिस्थितियों का पृथक्करण**—जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है, निरीक्षण में घटना की परिस्थितियों का विश्लेषण करके प्रासंगिक और अप्रासंगिक घटनाओं को अलग-अलग नहीं किया जा सकता क्योंकि उसमें परिस्थितियों पर कोई नियन्त्रण नहीं होता । दूसरी ओर प्रयोग में परिस्थितियों पर नियन्त्रण होने के कारण प्रासंगिक और अप्रासंगिक परिस्थितियों में अन्तर करके अप्रासंगिक परिस्थितियों का निरास किया जा सकता है और प्रासंगिक परिस्थितियों का पृथक्करण किया जा सकता है । उदाहरण के लिये यदि हमें यह देखना है कि मोमबत्ती हवा में क्यों जलती है और बर्तन में बन्द कर देने से क्यों बुझ जाती है तो इसके लिये हम हवा का विश्लेषण करके यह पता लगा सकते हैं कि हवा में आक्सीजन और नाइट्रोजन हो सकती हैं जिनमें आक्सीजन मोमबत्ती के जलने में सहायक है और जब तक वह रहती है तब तक मोमबत्ती जलती है । आक्सीजन और नाइट्रोजन से भरे हुए अलग-अलग बर्तनों में मोमबत्ती को रखकर भी इस सम्बन्ध में परीक्षा की जा सकती है । यह बात निरीक्षण में सम्भव नहीं है क्योंकि आक्सीजन और नाइट्रोजन प्रकृति में अलग-अलग उपलब्ध नहीं हैं । उनको प्रयोगशाला में उपलब्ध किया जाता है और तब उनके आधार पर प्रयोग किये जाते हैं ।

(३) **परिस्थितियों का पर्याप्त परिवर्तन**—जैसा कि पीछे बतलाया जा चुका है, निरीक्षण में परिस्थितियों का परिवर्तन नहीं किया जा सकता । यदि हमें वर्तमान परिस्थितियों से भिन्न परिस्थिति में निरीक्षण करना है तो इसके लिये हम भिन्न परिस्थिति उपलब्ध होने की प्रतीक्षा करेंगे और तभी निरीक्षण सम्भव हो सकेगा । दूसरी ओर प्रयोगात्मक विधि में यह प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती क्योंकि परिस्थितियों पर नियन्त्रण होने के कारण उसमें परिस्थितियों में पर्याप्त परिवर्तन किया जा सकता है । परिस्थितियों में परिवर्तन होने से गवेषणा के तथ्य को भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में रखकर जाँच की जा सकती है । उदाहरण के लिये नाइट्रिक एसिड का विभिन्न प्रकार की धातुओं पर प्रभाव देखने के लिये उसमें लोहा, ताम्बा, चाँदी और सोना आदि विभिन्न धातुयें डाली जा सकती हैं । परिस्थितियों के इस परिवर्तन से हम यह पता लगा लेते हैं कि नाइट्रिक एसिड सोने को नहीं गला सकता जबकि वह अन्य धातुओं को गला देता है ।

(४) **धैर्य और अवधानपूर्वक निरीक्षण**—प्राकृतिक घटनायें कभी-कभी इतनी आकस्मिक और क्षणिक होती हैं कि उनका धैर्यपूर्वक और पर्याप्त समय तक निरीक्षण नहीं किया जा सकता । जब ये ही घटनायें प्रयोगशाला में उत्पन्न कर ली जाती हैं तो हम चाहे जितनी देर तक धैर्य और अवधानपूर्वक उनका निरीक्षण कर सकते हैं । किन्तु घटनाओं को उत्पन्न करना सभी विज्ञानों में सम्भव नहीं है । उदाहरण के लिए जब कि यह यन्त्र विज्ञान, भौतिकशास्त्र और रसायनशास्त्र इत्यादि में सम्भव है, ज्योतिष और वायु विज्ञान इत्यादि में यह सम्भव नहीं है । इसी कारण पहले विज्ञानों में जितनी उन्नति हुई है उतनी उन्नति दूसरे प्रकार के विज्ञानों में नहीं हुई । कार्वेथरीड ने ठीक ही कहा है, "प्रयोग हमें धैर्य के साथ पूरी जाँच करने में समर्थ बनाता है और जो कुछ घटित होता है, जिस समय घटित होता है, जिस क्रम में घटनायें होती हैं जितने समय तक होती है उतनी तीव्रता और विस्तार

इत्यादि बातो के हमारे निरीक्षण को यथार्थ बनाता है ।"[1]

प्रयोग की तुलना में निरीक्षण के लाभ

निरीक्षण की तुलना मे प्रयोग के लाभो के उपरोक्त विवेचन से यह नही समझा जाना चाहिये कि प्रत्येक परिस्थिति मे प्रयोग विधि निरीक्षण विधि से श्रेष्ठ है क्योकि यदि ऐसा होता तो प्रयोग विधि ने निरीक्षण को बिल्कुल ही हटा दिया होता । तथ्य यह है कि प्रयोग विधि का प्रत्येक क्षेत्र मे लाभ नही उठाया जा सकता । ये वे क्षेत्र है जिनमे निरीक्षण से काम लिया जाता है । सक्षेप मे, प्रयोग की तुलना मे निरीक्षण के मुख्य लाभ निम्नलिखित है :—

(१) **निरीक्षण का क्षेत्र प्रयोग से बड़ा है**—चूँकि निरीक्षण सभी घटनाओ का किया जा सकता है जब कि सभी घटनाओ के विषय मे प्रयोग नही किया जा सकता इसलिये निरीक्षण का क्षेत्र प्रयोग से कही अधिक विस्तृत है । सभी विज्ञानो मे निरीक्षण सम्भव है जबकि सभी मे प्रयोग सम्भव नही है । उदाहरण के लिये सामाजिक, राजनैतिक और गृह नक्षत्र सम्बन्धी घटनाओ मे प्रयोग सम्भव नही है । कही तो उन परिस्थितियो को उत्पन्न करना असम्भव है और कही अनैतिक है । उदाहरण के लिए ग्रहण को कृत्रिम रूप से उत्पन्न नही किया जा सकता । दूसरी ओर किशोरापराधी को कृत्रिम रूप से उत्पन्न करना अनैतिक होगा । अस्तु, इन दोनो ही प्रकार के उदाहरणो मे निरीक्षण किया जायेगा प्रयोग नही । अपराध, किशोरापराध, आत्महत्या, मानसिक रोग इत्यादि को उत्पन्न नही किया जा सकता । वे जहाँ-जहाँ है वहाँ-वहाँ उनका निरीक्षण करके उनके विषय मे ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है ।

(२) **कार्य से कारण और कारण से कार्य दोनों का अनुमान**—प्रयोग मे हम केवल कारण से कार्य की ओर जा सकते है कार्य से कारण की ओर नही जा सकते । उदाहरण के लिये विष का इन्जैक्शन देकर किसी चूहे को मारा जा सकता है किन्तु मरे चूहे पर प्रयोग द्वारा यह पता नही लगाया जा सकता कि उसकी मृत्यु किस प्रकार हुई है । दूसरी ओर निरीक्षण मे कारण से कार्य और कार्य से कारण दोनो का ही अनुमान लगाया जा सकता है । उदाहरण के लिये मलेरिया के कारण एनाफिलीस मच्छर के काटने का निरीक्षण किया जा सकता है और इस कारण के कार्य मलेरिया का भी निरीक्षण किया जा सकता है । मरे हुये चूहे की मृत्यु का कारण पता लगाने के लिये पहले निरीक्षण करना पड़ेगा और कोई परिकल्पना बनानी पड़ेगी तब कही उस परिकल्पना की जाँच करने के लिये प्रयोग किये जा सकते है ।

(३) **निरीक्षण प्रयोग का पूर्वगामी है**—मरे हुये चूहे की मृत्यु का कारण पता लगाने के उपरोक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि अनेक विषयो मे निरीक्षण प्रयोग का पूर्वगामी होता है । अधिकतर प्रयोग किसी उपकल्पना की जाँच के लिए किये जाते है और यह उपकल्पना निरीक्षण के आधार पर बनायी जाती है । अस्तु, अधिकतर निरीक्षण प्रयोग का पूर्वगामी होता है ।

सारांश

निरीक्षण—निरीक्षण उद्देश्ययुक्त और नियमित प्रत्यक्षीकरण है । इसकी

---

1. "Experiment enables us to observe coolly and circumspectly and to be precise as to what happens, the time of its occurrence, the order of successive events their duration, intensity and extent" —Carveth Read

विशेषतायें हैं—१. नियमित, २. चुनावयुक्त, ३. निष्पक्ष, ४. अचेतन अनुमान से विहीन, ५. यत्रों की सहायता। इसकी सामान्य दशायें हैं—१. बौद्धिक प्रतिबन्ध, २. शारीरिक प्रतिबन्ध, ३. नैतिक प्रतिबन्ध। निरीक्षण के मुख्य दोष अनिरीक्षण और कुनिरीक्षण हैं। अनिरीक्षण दो प्रकार का होता है—दृष्टान्तों का अनिरीक्षण और आवश्यक दशाओं की उपेक्षा।

प्रयोग—प्रयोग नियन्त्रित परिस्थितियों में निरीक्षण है। इसके मुख्य उद्देश्य हैं—१. अनावश्यक स्थितियों का निरास करके आवश्यक स्थितियों का चयन, २. उपकल्पना की परीक्षा और सत्यापन, ३. प्रकृति के नियमों की खोज। प्रयोग तीन प्रकार के होते हैं—१. भावात्मक, अभावात्मक और प्राकृतिक। निरीक्षण और प्रयोग में मुख्य अन्तर हैं—१. परिस्थितियों को उत्पन्न करना, २. परिस्थितियों का नियन्त्रण, ३. परिस्थितियों का निरास, ४. उपकल्पना का महत्व, ५. निरीक्षण प्रयोग से पहले, ६. निरीक्षण आविष्कार में और प्रयोग उत्पत्ति में सहायक है। निरीक्षण की तुलना में प्रयोग के मुख्य लाभ हैं—१. उदाहरणों का बहुलीकरण, २. प्रासंगिक और अप्रासंगिक परिस्थितियों का पृथक्करण, ३. परिस्थितियों का पर्याप्त परिवर्तन, ४. धैर्य और अवधानपूर्वक निरीक्षण। प्रयोग की तुलना में निरीक्षण के मुख्य लाभ हैं—१. अधिक विस्तृत क्षेत्र, २. कार्य से कारण और कारण से कार्य दोनों का अनुमान, ३. निरीक्षण प्रयोग का पूर्वगामी है।

अभ्यास के लिये प्रश्न

प्रश्न १. आगमन की समस्या क्या है? आगमन के वस्तुगत आधारों की व्याख्या करें। (यू० पी० बोर्ड १९६८)

प्रश्न २. आगमन के वस्तुगत आधार से आप क्या समझते हैं? ये कितने प्रकार के होते हैं? संक्षिप्त विवेचना कीजिये। (यू० पी० बोर्ड १९६३)

प्रश्न ३. तर्कशास्त्र में निरीक्षण का क्या अर्थ है? अनिरीक्षण तथा मिथ्या निरीक्षण के दोषों को उदाहरण देकर समझाइये। (१९६५)

प्रश्न ४. निरीक्षण किसे कहते हैं? आगमन में निरीक्षण की क्यों आवश्यकता होती है? निरीक्षण और प्रयोग में क्या अन्तर और सम्बन्ध है? (१९५८)

प्रश्न ५. वैधानिक निरीक्षण से आप क्या समझते हैं? निरीक्षण के मुख्य दोषों का उल्लेख कीजिये और उदाहरण द्वारा स्पष्ट कीजिये। (१९६१, ६२)

प्रश्न ६. निरीक्षण की अपेक्षा प्रयोग में क्या अच्छाइयाँ हैं? सविस्तार समझाइये। (१९५९)

प्रश्न ७. निरीक्षण एवं प्रयोग में क्या अन्तर है? प्रयोग के विशेष काम क्या हैं? (आगरा १९७६)

२४

पूर्वकल्पना
(HYPOTHESIS)

वैज्ञानिक अनुसधान मे किसी भी सिद्धान्त पर पहुँचने से पूर्व विशेष घटना मे कार्यकारण सम्बन्ध के विषय मे पहले से ही कोई विचार बना लिया जाता है।

पूर्वकल्पना क्या है

उदाहरण के लिये यदि अध्यापक को कक्षा मे अध्यापन करते समय विद्यार्थियों मे अनुशासनहीनता की समस्या को सुलझाने का प्रश्न उपस्थित होता है तो वह अनुशासनहीनता के कारणो के विषय मे अपना एक अनुमान बना लेता है और इस अनुमान पर चलकर अनुशासनहीनता को दूर करने की कोशिश करता है। यदि उसे सफलता मिलती है तो यह अनुमान सही मान लिया जाता है और यदि उसे सफलता नहीं मिलती तो वह इसके स्थान पर कोई अन्य पूर्व कल्पना लेकर उसके सहारे अनुशासनहीनता दूर करने का प्रयास करता है। इस उदाहरण मे अध्यापक ने अनुशासनहीनता के कारण के विषय मे पूर्वकल्पना बना ली है। पूर्वकल्पना के स्वरूप को समझने के लिये निम्नलिखित परिभाषाओ से सहायता मिल सकती है—

(१) **मिल द्वारा परिभाषा**—मिल के अनुसार, "परिकल्पना कोई भी कल्पना है जिसे हम इसलिये बनाते है (या तो वास्तविक प्रमाण के बिना या पर्याप्त प्रमाण के बिना) कि उससे ऐसे निष्कर्ष निकालने का प्रयत्न किया जाये जो तथ्यो के अनुसार हो और जिनका सत्य होना ज्ञात हो, और इसके पीछे यह विचार होता है कि यदि परिकल्पना के निष्कर्ष ज्ञात तथ्य है तो या तो परिकल्पना स्वय सही होगी या कम से कम उसके सही होने की सम्भावना होगी।"[1]

(२) **काफी का मत**—काफी के अनुसार, "पूर्वकल्पना व्याख्या का एक प्रयास है, किसी तथ्य या घटना की वैज्ञानिक तरीके से व्याख्या करने के लिये बनायी हुयी एक अस्थायी कल्पना है।"[2]

---

1. "A hypothesis is any supposition which we make (either without actual evidence, or an evidence avowedly insufficient) in order to endeavour to deduce from it conclusions in accordance with facts which are known to be real, under the idea that if the conclusions to which the hypothesis leads are known truths, the hypothesis itself either must be or at least is likely to be, true." —Mill

2. "A hypothesis is an attempt, an explanation, a provisional supposition made in order to explain scientifically some fact or phenomenon" — Coffey.

पूर्वकल्पना के आवश्यक चरण

पूर्वकल्पना की उपरोक्त परिभाषाओं से उसके निम्नलिखित चरण स्पष्ट होते है :—

(१) **निरीक्षण** (Observation)—जैसा कि पीछे अनुशासनहीनता के उदाहरण मे बतलाया जा चुका है, पूर्वकल्पना निरीक्षण पर आधारित होती है। अध्यापक ने विद्यार्थियो के व्यवहार का बहुत दिनों तक निरीक्षण करके यह पूर्वकल्पना की है कि अनुशासनहीनता का एक कारण शिक्षण विधि सम्बन्धी दोष हैं। इस प्रकार उसकी पूर्वकल्पना उसके निरीक्षण पर आधारित है। यह निरीक्षण किसी एक घटना को देखकर नही बनाया जाता वल्कि एक सी अनेक घटनाओ के निरीक्षण से पूर्वकल्पना बनायी जाती है। निरीक्षण जितना ही वैज्ञानिक होगा पूर्वकल्पना के उतने ही सही होने की आशा की जा सकती है। यही कारण है कि बड़े-बड़े प्रसिद्ध वैज्ञानिक जो पूर्वकल्पना बनाते है उस पर लम्बे काल तक अनुसंधान किये जाते हैं और अनुसंधान का यह परिश्रम बहुधा व्यर्थ नही जाता। दूसरी ओर सामान्य व्यक्ति अनेक बातो के विषय मे बहुधा गलत पूर्वकल्पना बना लेते है क्योंकि उनका निरीक्षण सूक्ष्म और पर्याप्त नही होता।

(२) **पूर्वकल्पना निर्माण** (Formation of Hypothesis)—लम्बेकाल तक पर्याप्त और सूक्ष्म निरीक्षण के पश्चात् पूर्वकल्पना बनायी जा सकती है। इसमे कल्पना शक्ति की विशेष आवश्यकता होती है। कल्पना के सहारे ही व्यक्ति ज्ञान के आधार पर अज्ञात का अनुमान करता है। वास्तव मे वैज्ञानिक को किसी समस्या मे जितनी भी अधिक अन्तर्दृष्टि होगी वह उतनी ही सफल पूर्वकल्पना बना सकेगा। दूसरे शब्दो मे, पूर्वकल्पना का निर्माण वैज्ञानिक की अन्तर्दृष्टि पर निर्भर है। पूर्वकल्पना निर्माण सिखाया नही जा सकता। यह वैज्ञानिक की अपनी सूझ-बूझ और प्रतिभा पर निर्भर है। न्यूटन से पहले भी ऊपर से अनेक वस्तुये नीचे गिरने की घटना हुई होंगी परन्तु न्यूटन ने ही सबसे पहले पेड़ से सेब पृथ्वी पर गिरता देखकर पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण की पूर्वकल्पना उपस्थित की जो कि सत्यापन के द्वारा बाद में वैज्ञानिक सिद्धान्त बन गया।

(३) **निगमन** (Deduction)—पूर्वकल्पना के निर्माण में तीसरा चरण निगमन है। इसमे निगमन के सहारे पूर्वकल्पना से निष्कर्ष निकाल कर यह देखा जाता है कि वे वास्तविक तथ्यो से मेल खाते है या नहीं। यदि पूर्वकल्पना के आधार पर निकाले गये निष्कर्ष वास्तविक तथ्यो के अनुरूप नही हैं तो उन्हे छोड़कर दूसरी पूर्वकल्पना बना ली जाती है।

(४) **सत्यापन** (Verification)—अन्त में सत्यापन के द्वारा ही कोई पूर्व-कल्पना वैज्ञानिक सिद्धान्त बनती है। सत्यापन का अर्थ यह है कि पूर्वकल्पना को वास्तविक परिस्थितियो मे आजमा कर देखा जाये कि वह कहाँ तक उपयुक्त है। अनुशासनहीनता के पीछे दिये गये उदाहरण मे यदि अध्यापक अपनी पूर्वकल्पना के आधार पर शिक्षण विधि मे सुधार करता है और इस प्रकार अनुशासनहीनता की समस्या को सुलझाने मे समर्थ होता है तो यह पूर्वकल्पना सही सिद्ध होती है और फिर वह कह सकता है कि शिक्षण विधि के दोषपूर्ण होने से अनुशासनहीनता बढती है। प्राकृतिक विज्ञानो मे किसी भी घटना के निरीक्षण के पश्चात् उसके कार्य-

कारण के सम्बन्ध के विषय मे जो पूर्वकल्पना बनायी जाती है उसे अनेक बार प्रयोग करके जाँच लिया जाता है। इस जाँच मे यदि वह पूर्वकल्पना खरी उतरती है तो वह वैज्ञानिक सिद्धान्त बन जाता है। दूसरी ओर यदि सत्यापन नही हो पाता तो उस पूर्वकल्पना को छोड़कर दूसरी पूर्वकल्पना की स्थापना की जाती है।

पूर्वकल्पना के उपरोक्त विभिन्न चरणो को एक अन्य उदाहरण से समझाया जा सकता है। बहुधा धूम्रपान की बड़ी आलोचना की जाती है। कहा जाता है कि धूम्रपान न करने वाले विद्यार्थी परीक्षा मे धूम्रपान करने वाले विद्यार्थियो से अधिक अक प्राप्त करते हैं अथवा कि धूम्रपान से चरित्र भ्रष्ट होता है। दूसरी ओर कुछ लोग यह कहते देखे जाते है कि धूम्रपान करने से ध्यान एकाग्र होता है। जो न धूम्रपान करने के पक्ष मे है और न विपक्ष मे है वे कहते है कि परीक्षा मे कम अंक आने का कारण धूम्रपान न होकर विद्यार्थी का व्यक्तित्व है। धूम्रपान न करने वालो की अपेक्षा धूम्रपान करने वाले अधिक सामाजिक तथा आरामतलब होते है, अत: वे परीक्षा के लिये उतना परिश्रम नही करते। इस प्रकार धूम्रपान के परिणामो के विषय मे एक समस्या उठ खड़ी होती है। स्मरण रहे कि समस्या के बिना पूर्वकल्पना नही बनती। वास्तव मे समस्या को सुलझाने अथवा उसका उत्तर पाने के लिये ही पूर्वकल्पना बनायी जाती है। अस्तु, मानसिक तथा शारीरिक क्षमता पर धूम्रपान के प्रभाव की समस्या को लेकर एक पूर्वकल्पना का सत्यापन करने के लिए प्रयोग किये जाते है। वैज्ञानिको ने इस प्रकार के प्रयोग किये हैं। एक मनोवैज्ञानिक प्रयोग मे नियन्त्रित परिस्थितियो मे धूम्रपान के सम्बन्ध मे प्रयोग किया गया जिससे यह निष्कर्ष निकला कि धूम्रपान का व्यक्ति की शारीरिक और मानसिक क्षमता पर प्रभाव नही के बराबर है। इससे यह पूर्वकल्पना सिद्ध नहीं हुई कि धूम्रपान का शारीरिक और मानसिक क्षमता पर प्रभाव पड़ता है। सत्यापन न होने से यह पूर्वकल्पना रद्द हो गयी।

आगमन में पूर्वकल्पना का महत्व

पूर्वकल्पना के उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आगमन मे पूर्वकल्पना का विशेष महत्व है। पूर्वकल्पना के बिना कोई भी वैज्ञानिक आगमन सम्भव नही है फिर भी कुछ विचारको ने आगमन मे पूर्वकल्पना के महत्व की आलोचना की है। उदाहरण के लिये बेकन, जो कि आगमनशास्त्र का संस्थापक माना जाता है, पूर्वकल्पना की प्रक्रिया को उचित नही मानता क्योकि उसमे जाँच किये बगैर प्रकृति से पहले से कुछ आशा की जाती है। बेकन के अनुसार प्रकृति के नियमो की खोज मे निरीक्षण और निरास (Elimination) ही पर्याप्त है। पूर्वकल्पना के विरुद्ध बेकन के इस आक्षेप को अन्य तर्कशास्त्री नही मानते। यद्यपि बेकन के अनुसार न्यूटन ने कहा था, "मैं पूर्वकल्पना नही बनाता" फिर भी न्यूटन पूर्वकल्पना का विरोधी नहीं था। अन्य अनेक तर्कशास्त्रियो ने आगमन मे पूर्वकल्पना का महत्व स्वीकार किया है। व्हेवेल के अनुसार आविष्कार के लिए पूर्वकल्पना नितान्त आवश्यक है। मिल ने आगमन मे पूर्वकल्पना का स्थान गौण माना है क्योकि उसके अनुसार आगमन का उद्देश्य खोज नही बल्कि उपपत्ति है। चूंकि व्हेवेल ने आगमन का लक्ष्य उपपत्ति नही बल्कि खोज माना है इसलिये उसने पूर्वकल्पना को महत्व दिया है। वास्तव

मे आगमन का उद्देश्य चाहे उपपत्ति हो अथवा खोज हो आगमन में पूर्वकल्पना के महत्व मे सदेह नही किया जा सकता । पूर्वकल्पना कार्य अथवा घटना का स्थायी स्पष्टीकरण है । उसका लक्ष्य कार्य के कारण की खोज है । वह कारण के सम्बन्ध मे अस्थायी रूप से एक कल्पना उपस्थित करती है । यद्यपि तर्कशास्त्र पूर्वकल्पना निर्माण के विषय में कोई नियम नही बना सकता फिर भी उसमें यह खोज की जाती है कि सही पूर्वकल्पना किस प्रकार की होती है और कब पूर्वकल्पना गलत होती है ।

सामान्य रूप से आगमन के दो अर्थ किये जाते है एक सामान्य वाक्य स्थापित करने की प्रक्रिया और दूसरे इस प्रक्रिया का फल सामान्य वाक्य । जहाँ तक पहले अर्थ का प्रश्न है उसमे पूर्वकल्पना नितान्त आवश्यक है । इस दृष्टि से वह आगमन का प्रारम्भ बिन्दु है । किसी भी घटना के सामान्य नियम पर पहुँचने से पहले हमे उसके सम्बन्ध में एक स्थायी कल्पना बना लेनी पड़ती है । वह पूर्वकल्पना ही सत्यापित होकर सामान्य नियम बन जाती है । दूसरी ओर यदि आगमन को सामान्य वाक्य के अर्थ मे लिया जाये तो पूर्वकल्पना आगमन का पहला चरण सिद्ध होगी जोकि सत्यापित हो जाने पर आगमन बन जाती है । मिल की प्रयोगात्मक विधियाँ पूर्वकल्पना से ही प्रारम्भ होती हैं । प्रयोगात्मक विधियों से सत्यापित होकर पूर्व-कल्पना सामान्य वाक्य बन जाती है ।

पूर्वकल्पना का उदगम

पूर्वकल्पना कैसे उत्पन्न होती है अथवा वह कैसे बनाई जाती है इसके विषय मे कोई निश्चित नियम नही हैं । साधारण रूप से यह कहा जा सकता है कि पूर्व-कल्पना का निर्माण आविष्कार की प्रतिभा पर निर्भर होता है । जिन आविष्कारकों मे दूरदर्शिता, प्रतिभा और मौलिकता होती है वे प्राकृतिक घटनाओं को देखकर कार्य-कारण सम्बन्ध के विषय मे पूर्वकल्पना बनाते हैं । उदाहरण के लिये जेम्सवाट ने खौलते हुए पानी को केतली मे भाप के जोर से ढक्कन को उठते देखकर के भाप की शक्ति की पूर्वकल्पना बनाई और उसके आधार पर भाप के इन्जिन का निर्माण किया ।

फिर भी कुछ विधियाँ पूर्वकल्पना के निर्माण मे सहायक सिद्ध होती हैं । इनमे से मुख्य निम्नलिखित है—

(१) **साधारण गणनात्मक आगमन** (Induction by Simple Enumeration)—जब कभी हम एक प्रकार की अनेक घटनाओं को देखते है तो साधारण गणना के आधार पर कार्यकारण के सम्बन्ध के विषय मे आगमन कर लेते है । उदाहरण के लिये गुलाब के बहुत से फूलो में मीठी सुगन्ध का अनुभव करके साधारण गणना के आधार पर हम यह आगमन कर लेते हैं कि गुलाब के फूल मे मीठी सुगन्ध होती है । साधारण गणनात्मक आगमन का एक उदाहरण अन्वय की विधि है जिसमे अनेक समान दृष्टान्तों के आधार पर कार्यकारण सम्बन्ध का अनुमान लगा लिया जाता है । जब दो बाते सदैव एक साथ पाई जाती है तो यह पूर्वकल्पना कर ली जाती है कि उनमे कोई कार्यकारण सम्बन्ध अवश्य है । यहाँ पर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि साधारण गणनात्मक अनुमान पूर्वकल्पना बनाने मे सहायक होता है, उसके आधार पर पूर्वकल्पना का सत्यापन नही किया जा सकता ।

(२) **अन्वय विधि** (Method of Agreement)—पूर्वकल्पना निर्माण का एक अन्य उपाय अन्वय विधि है। परिस्थितियो मे अन्तर होते हुए भी जब हम दो तथ्यो को समान रूप से सभी दृष्टातो मे एक साथ होता हुआ पाते है तो उनमे कार्यकारण सम्बन्ध की पूर्वकल्पना कर लेते है। उदाहरण के लिये भिन्न-भिन्न अवस्थाओ, निवास स्थानो, व्यवसायों आदि के व्यक्तियो को मादा एनाफिलीस मच्छर के काटने से मलेरिया होता देखा जाता है जिससे यह पूर्वकल्पना बना ली जाती है कि मादा एनाफिलीस मच्छर मलेरिया के कीटाणुओ को फैलाता है।

(३) **सादृश्य विधि** (Analogy)—दो वस्तुओ मे कुछ बातो मे समानता देखने से उनमे अन्य प्रकार की समानता की उपस्थिति के विषय मे पूर्वकल्पना बना ली जाती है। उदाहरण के लिये पृथ्वी और मगल ग्रह मे वायु मण्डल, तापक्रम, जलवायु इत्यादि अनेक बातों मे सादृश्य पाकर के यह अनुमान लगा लिया जाता है कि पृथ्वी के समान मगल मे भी जीवित प्राणी रहते होगे। यह सादृश्य के आधार पर पूर्वकल्पना का एक उदाहरण है।

(४) **सहचारी परिवर्तन विधि** (Method of Concomitant Variation)—जब दो घटनाओ मे बहुत बार साथ-साथ परिवर्तन दिखलाई पड़ता है तो उनमे कार्यकारण सम्बन्ध की पूर्वकल्पना बना ली जाती है। उदाहरण के लिये गरीबी बढने के साथ-साथ अपराध की दरो मे कमी देखकर गरीबी और अपराध के सहचारी परिवर्तन से यह पूर्वकल्पना बना ली जाती है कि अपराध का एक कारण गरीबी है। इस प्रकार सहचारी परिवर्तन विधि पूर्वकल्पना बनाने मे सहायक होती है।

(५) **अवशेष विधि** (Method of Residues)—यदि हम दो घटनाओ मे किसी एक के भाग को दूसरे के किसी भाग का कारण पाते है तो बचे हुए भाग को बचे हुए भाग का कारण मान लेते है। यह पूर्वकल्पना बनाने की अवशेष विधि कही जाती है। उदाहरण के लिये यदि हमे किसी खाली बर्तन का भार मालूम है तो भरे बर्तन को तौलकर उसमे से खाली बर्तन का भार घटाकर हम यह पता लगा सकते है कि भरे बर्तन मे कितने भार का पदार्थ भरा हुआ है।

पूर्वकल्पना के प्रकार

पूर्वकल्पना के विषय की दृष्टि से उसके निम्नलिखित तीन प्रकार माने जाते है—

(१) **नियम के विषय में पूर्वकल्पना** (Hypothesis about law)—यदि किसी घटना मे हमे यह पता नही है कि वह किस नियम अथवा योजना के अनुसार होती है तो हम इस नियम के बारे मे पूर्वकल्पना कर लेते हैं। उदाहरण के लिये न्यूटन को पेड़ से सेव के नीचे गिरने के नियम का पता नही था इसलिए उसने पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के नियम की पूर्वकल्पना की। लगभग सभी प्रकार के वैज्ञानिक नियम प्रारम्भ मे पूर्वकल्पना की ही स्थिति मे होते है। जब पूर्वकल्पना का सत्यापन हो जाता है तो वह नियम बन जाती है।

(२) **कर्ता के विषय में पूर्वकल्पना** (Hypothesis about agent)—जिस घटना मे हमे कर्ता का पता नही होता उसमे कर्ता के विषय मे पूर्वकल्पना करनी

पड़ती है। उदाहरण के लिये यदि किसी मकान मे चोरी हुई है, दरवाजा खुला पड़ा है, घर की वस्तुयें इधर-उधर बिखरी हुई है और कुछ सामान गायब हैं तो चोरी की घटना मे सदेह नहीं होता। यदि ऊपर की खिड़की टूटी हुई है या दीवार में कोई बड़ी सेंध बनाई गई है तो उससे यह भी स्पष्ट होता है कि चोरी किस तरह हुई किन्तु चोरी किसने की यह पता नही होता। अस्तु, कर्ता के विषय में पूर्वकल्पना की जाती है। यदि मकान के मालिक को घर के किसी सदस्य पर सदेह है तो वह यह पूर्वकल्पना उपस्थित करता है कि उस व्यक्ति ने चोरी की होगी और इस पूर्व कल्पना की जाँच की जाती है। यदि जांच करने पर वह चोर नही पाया जाता तो कोई अन्य पूर्वकल्पना बनाई जाती है और उसकी जांच की जाती है। कर्ता के विषय मे पूर्वकल्पना का एक अन्य उदाहरण नैप्चून नामक ग्रह की खोज मे दिखलाई पड़ता है। उस समय तक जितने भी ग्रह मालूम थे उनके आकर्षण के प्रभाव से यूरेनस नामक ग्रह का जो मार्ग होना चाहिये था वह गणित से पता लगा लिया गया था। बाद में यह देखा गया कि यूरेनस गणना से ज्ञात मार्ग से हट रहा है। चूंकि यूरेनस के हटने से कर्ता का पता नही था इसलिये कर्त्ता के विषय में पूर्वकल्पना बनाई गई कि वह किसी अन्य ग्रह के प्रभाव से अपने मार्ग से हट रहा है, इसको जांच करके नैप्चून ग्रह का पता चला।

(३) **परिस्थिति विन्यास के विषय में पूर्वकल्पना** (Hypothesis about Collocation of Circumstances)—परिस्थिति विन्यास का अर्थ परिस्थितियो के समूह का विशेष प्रकार से स्थापित होना है। उदाहरण के लिये यदि रुई और चिगारी, पैट्रोल और आग एक साथ उपस्थित हो तो ऐसा परिस्थिति विन्यास बन जाता है जिसमे आग लगने की सम्भावना है। यदि किसी घटना मे हमे कर्ता के विषय मे ज्ञात है और कार्य के नियम का भी पता है तो परिस्थिति विन्यास के विषय मे पूर्वकल्पना कर ली जाती हे। उदाहरण के लिये पूर्वकाल मे टॉलेमी के सिद्धांत के अनुसार पृथ्वी को विश्व का केन्द्र माना जाता था और सूर्य, चन्द्र आदि अन्य ग्रहों को पृथ्वी के चारो ओर चक्कर काटता हुआ माना जाता था परन्तु बाद मे कॉपरनिकस ने आकाश के पिंडो की गति के विषय मे यह पूर्वकल्पना उपस्थित की कि सौर मण्डल का केन्द्र पृथ्वी नही हे बल्कि सूर्य और पृथ्वी, चन्द्रमा तथा अन्य ग्रह सूर्य के चारो ओर परिक्रमा करते हैं। टॉलेमी के सिद्धात की तुलना मे कॉपर निकस का सिद्धात सौर मण्डल की गति की अधिक उपयुक्त व्याख्या कर सका। इससे परिस्थिति विन्यास के सम्बन्ध मे यह पूर्वकल्पना सिद्ध हो गई।

पूर्वकल्पना के उपरोक्त तीनो प्रकार सदैव एक दूसरे से अलग-अलग नही पाये जाते। यदि नियम, कर्ता और परिस्थिति विन्यास मे से किन्ही दो का पता हो तो केवल तीसरे के विषय मे पूर्वकल्पना बनाई जाती है किन्तु यदि इनमे से केवल एक ही का पता है तो एक साथ अन्य दो के विषय मे पूर्वकल्पना बनाई जाती है। उदाहरण के लिये वैज्ञानिको ने ईथर और उसकी गति के नियम दोनो के विषय मे एक साथ पूर्वकल्पनाये बनाई थी।

पूर्वकल्पना की प्रामाणिकता की दशायें

पूर्वकल्पना एक अस्थाई अनुमान है किन्तु प्रत्येक अटकल को वैध पूर्वकल्पना नही माना जाता। कुछ विशेष दशाओ मे ही पूर्वकल्पना प्रामाणिक मानी जाती है। पूर्वकल्पना की प्रामाणिकता की ये दशाये अग्रलिखित है—

(१) **आत्मविरोध का अभाव** (Absence of self contradiction)—प्रामाणिक पूर्वकल्पना के लिये यह आवश्यक है कि उसमे आत्मविरोध का अभाव हो अर्थात् वह आत्म संगति युक्त हो। आत्मविरोधी कल्पना प्रामाणिक नही होती। उदाहरण के लिये समान परिस्थितियो मे भी किसी विशेष कारण ही क्रिया को भिन्न मानने की पूर्व कल्पना आत्म विरोधी है, क्योकि इसमे पूर्वकल्पना कारण के नियम की विरोधी है। आत्म विरोध होने पर पूर्वकल्पना विसगत अथवा युक्तिहीन हो जाती है। उदाहरण के लिये किसी का वालक घर से गायव है तो उसके सम्वन्ध मे यह पूर्वकल्पना वनाना हास्यास्पद है कि उसको भूत उठा ले गया होगा प्राचीन काल मे भारत मे यह माना जाता था कि सूर्य ग्रहण और चन्द्रग्रहण राहु और केतु नामक राक्षसों के इन ग्रहो को निगल जाने से होता है। भूकम्प की व्याख्या करने के लिये कहा जाता था कि पृथ्वी शेप नाग के फन पर टिकी हुई है जिसके हिलने से पृथ्वी पर भूकम्प आते हैं। इन उदाहरणो से यह नहीं समझा जाना चाहिये कि जो पूर्वकल्पना देखने में हास्यास्पद लगती है, वह अवश्य ही ऐसी होगी। विज्ञान के इतिहास मे कुछ ऐसे उदाहरण पाये जाते हैं, जवकि कोई हास्यास्पद पूर्वकल्पना वाद मे तथ्य सावित हुई थी। उदाहरण के लिये कोलम्वस के अमरीका पहुँचने से पूर्व लोग उसकी इस पूर्वकल्पना को हास्यास्पद मानते थे कि योरुप के पश्चिम मे भी किसी अन्य महाद्वीप का अस्तित्व है। अस्तु, आत्मसगति अथवा आत्मविरोध के आधार पर किसी पूर्वकल्पना की प्रामाणिकता निश्चित करने मे वड़ी सावधानी से काम लिया जाना चाहिये।

(२) **स्थापित सत्यो के विरुद्ध न होना** (Not opposed to established Truths)—पूर्वकल्पना की प्रामाणिकता इस वात पर भी निर्भर है कि वह कहाँ तक ज्ञात नियमो के अनुरूप है और स्थापित सत्यो के विरुद्ध नही है। कोई भी घटना हो जाने पर ऐसी पूर्वकल्पना नही की जाती जो स्थापित सत्यो के विरुद्ध मानी जाती है। उदाहरण के लिये भौतिक घटनायें भूत प्रेतों के कारण नही होती वहाँ उनका कोई न कोई भौतिक कारण मानकर ही पूर्वकल्पना वनाई जाती है भले ही कुछ घटनाये ऐसी हो जिनमे यह पूर्वकल्पना सही न वैठे। उदाहरण के लिये कुछ वर्ष पूर्व अमरीका मे एक वड़े नगर मे एक मकान मे विचित्र घटनाये होने लगी, कभी वाहर से पत्थर आते, कभी किसी कपड़े मे आग लग जाती, कभी आलमारी से कपड़े निकल जाते इत्यादि। यद्यपि पुलिस इन उपद्रवो का कारण पता न लगा सकी परन्तु इनके कारण को लेकर भूत प्रेत की पूर्वकल्पना स्थापित सत्यो के विरुद्ध होने के कारण रद्द कर दी गई। यहाँ पर भी वडी सावधानी से काम लेने की आवश्यकता है क्योकि हो सकता है कि और अधिक अनुसन्धान होने पर हमें भौतिक घटनाओ के अभौतिक कारणो के भी प्रमाण मिले। वास्तव मे जो पूर्वकल्पना ज्ञात तथ्यो के विरुद्ध होती है वह एकदम असत्य नही किन्तु सदिग्ध मानी जाती है। कुछ लोग इस प्रकार की पूर्वकल्पना को लेकर जाँच करके उसे सही सिद्ध कर देते हैं किन्तु साधारणतया हम ऐसी पूर्वकल्पना को प्रामाणिक मानते हैं जो हमे ज्ञात वैधानिक नियमो का उल्लघन न करती हो। चूंकि विज्ञान मे वरावर नये-नये तथ्य और नियम पता लगाये जा रहे है अस्तु, यह अवश्य सम्भव है कि जो पूर्वकल्पना अव तक के ज्ञात सत्यो के विरुद्ध है वह भी भविष्य मे सही सिद्ध हो जाये।

(३) **निश्चितता और स्पष्टता** (Definiteness and Clarity)—प्रामाणिक पूर्वकल्पना को निश्चित और स्पष्ट होना चाहिये। अनिश्चित और अस्पष्ट पूर्वकल्पना प्रामाणिक नही होती। अस्तु, यह आवश्यक है कि जो पूर्वकल्पना बनाई जाये उसके निहित अर्थ को निश्चित और स्पष्ट कर लिया जाये। पूर्वकल्पना बनाने मे हम जिन शब्दो का प्रयोग करें उनके अर्थ को भली प्रकार निश्चित करलें क्योंकि ऐसा न होने से पूर्वकल्पना के आधार पर खोज नही की जा सकती। उदाहरण के लिए यदि ऐसा कहा जाये कि साम्प्रदायिक वर्ग तनाव के कारण होते हैं तो तनाव का अर्थ निश्चित किये विना इस पूर्वकल्पना की जाँच नही की जा सकती।

(४) **तथ्यों पर आधारित वास्तविक कारक**—कर्ता या कारण के विषय मे प्रामाणिक पूर्वकल्पना वह है जो तथ्यो पर आधारित वास्तविक कारण हैं। इस प्रकार की पूर्वकल्पना बनाने के लिये निष्पक्ष होकर तथ्यो का निरीक्षण किया जाना चाहिये और उसके बाद उनकी व्याख्या करने के लिये पूर्वकल्पना बनाई जानी चाहिये। यह आवश्यक नही है कि वास्तविक कारण प्रत्यक्षीकरण का विषय अवश्य हो। कभी-कभी कुछ घटनाओं मे सच्चा कारण प्रत्यक्षीकरण का विषय नही होता। उदाहरण के लिये परमाणु या ईथर प्रत्यक्ष के विषय नही है परन्तु वैज्ञानिको ने उन्हे कुछ घटनाओ के कारण माना है। वास्तव मे इस प्रकार के अप्रत्यक्ष कारण परोक्ष रूप से प्रमाणित किये जाते हैं। अस्तु, तथ्यो पर आधारित सही कारण कहने से केवल यह समझा जाना चाहिये कि पूर्वकल्पना कोरी कल्पना मात्र न हो बल्कि तर्क-युक्त, बुद्धि सम्मत और तथ्यो के अनुरूप हो।

(५) **सत्यापनीय** (Verifiable)—अन्त मे पूर्वकल्पना की प्रामाणिकता की कसौटी उसकी सत्यापनीयता है। कार्वेथ रीड के शब्दो मे, "किसी वाक्य के पूर्व-कल्पना नाम धारण करने के योग्य होने के लिये केवल दो ही प्रतिबन्ध है, उसे सत्यापनीय होना चाहिये और सत्यापनीय होने के लिये उसे निश्चित होना चाहिये। इन दो प्रतिबन्धों के अतिरिक्त, किसी प्रामाणिक पूर्वकल्पना के लिये अन्य प्रति-बन्ध बनाना व्यर्थ प्रतीत होता है।"[1] इस प्रकार कार्वेथरीड पूर्वकल्पना की प्रामा-णिकता की दो ही दशाये मानता है। अन्य तर्कशास्त्री, जैसा कि पीछे दिखलाया जा चुका है, इन दो दशाओ के अतिरिक्त भी कुछ दशाये आवश्यक मानते है। फिर भी इस बात से सभी सहमत है कि प्रामाणिक पूर्वकल्पना मे सत्यापनीयता अवश्य होनी चाहिये। इसके न होने पर पूर्वकल्पना प्रामाणिक नही होगी क्योकि उसके सिद्ध या असिद्ध किये जाने की सम्भावना नही होगी। जिन क्षेत्रों मे अभी तक विज्ञान का प्रवेश नही हो सका है उनमे अब भी ऐसी ही पूर्वकल्पनाये बनायी जाती है जो सत्यापनीय नही होती। उदाहरण के लिये पुर्नजन्म की व्याख्या करने के लिये अनेक प्रकार की पूर्वकल्पनाये उपस्थित की गयी है जिनके वैज्ञानिक होने मे सन्देह है। विज्ञान के क्षेत्र मे ऐसी ही पूर्वकल्पना को प्रामाणिक माना जाता है जो कि सत्यापनीय हो क्योकि सत्यापन किये विना पूर्वकल्पना को वैज्ञानिक नियम नही माना जा सकता और यदि पूर्वकल्पना के आधार पर वैज्ञानिक नियम न बनाया जा सके तो पूर्वकल्पना के निर्माण का प्रयास व्यर्थ हो जाता है।

---

1. "Except the condition of verifiability, and definiteness for the sake of verifiability without which a proposition does not deserve the name of an hypothesis, it seems inadvisable to lay down rules for a legitimate hypothesis."
—Carveth Read.

पूर्वकल्पना के प्रयास

प्रामाणिक पूर्वकल्पना की दशाओ के उपरोक्त विवेचन से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि पूर्वकल्पना को प्रमाणित करने के लिये कौन से प्रमाण दिये जा सकते है। पूर्वकल्पना के प्रमाण वे ही है जिनके होने पर पूर्वकल्पना को प्रामाणिक माना जाता है। संक्षेप मे ये प्रमाण निम्नलिखित हैं—

(१) **सत्यापन** (Verification)—पूर्वकल्पना का सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रमाण सत्यापन है। सत्यापन से तात्पर्य पूर्वकल्पना को वास्तविक तथ्यो से मिलाकर देखने से है। यह सत्यापन दो प्रकार का हो सकता है—प्रत्यक्ष (Direct) अथवा परोक्ष (Indirect)। प्रत्यक्ष सत्यापन मे निरीक्षण अथवा प्रयोग से पूर्वकल्पना की जाँच की जाती है। परोक्ष सत्यापन मे पूर्वकल्पना से निगमन करके अथवा उससे संगति रखने वाले तथ्यो का संग्रह करके पूर्वकल्पना की जाँच की जाती है।

(अ) प्रत्यक्ष सत्यापन
(Direct Verification)

जब अनुभव के तथ्यो को प्रत्यक्ष देखकर पूर्वकल्पना का सत्यापन किया जाता है तो यह प्रत्यक्ष सत्यापन कहलाता है। इसकी निम्नलिखित दो विधियाँ है :—

(१) **निरीक्षण** (Observation)—पूर्वकल्पना का सत्यापन करने के लिये उससे सम्बन्धित घटनाओ का निरीक्षण किया जाता है। उदाहरण के लिये नैप्चून ग्रह का पता लगाने के लिये यूरेनस के मार्ग से हटने का निरीक्षण किया गया और यह पूर्वकल्पना बनायी गयी कि यूरेनस के विचलन का कारण ज्ञात ग्रहो के अतिरिक्त कोई अन्य ग्रह है। जब इस ग्रह की खोज की गयी तो दूर्वीन से नेप्चून देखा गया जिससे निरीक्षण के द्वारा पूर्वकल्पना सत्यापित हो गयी।

(२) **प्रयोग** (Experiment)—जिन विषयो की जाँच प्रयोग विधि से की जा सकती है उनमे सत्यापन करने के लिये प्रयोग किये जाते है। भौतिक विज्ञान मे सभी प्रकार की कल्पनाओ का सत्यापन प्रयोग की सहायता से किया जाता है। प्रयोग विधि की विशेषता यह है कि उसके द्वारा किये हुये सत्यापन की जाँच कहीं भी की जा सकती है क्योकि प्रयोग को दोहराया जा सकता है। प्रयोग के द्वारा भिन्न-भिन्न पूर्वकल्पनाओ की अलग-अलग परीक्षा की जा सकती है। इसका एक उदाहरण देखिये। बहुत दिनों से इस समस्या का हल नही मिल रहा है कि अन्धे निशब्द बाधाओ से कैसे बचते है। हजारो वर्षो से यह देखा गया है कि अन्धे लोगो को रास्ते की बाधाओ का पहले से पता चल जाता है और वे उनसे बच जाते है। ऐसा क्यो होता है, इसके विषय मे अनेक पूर्वकल्पनाये प्रचलित है। इसका एक उदाहरण चेहरे की दृष्टि (Facial Vision) की पूर्वकल्पना है जिसके अनुसार चेहरे पर हवा के दबाव के कारण निकट की वस्तुओ का पता चल जाता है। इस पूर्वकल्पना का सत्यापन करने के लिये एक प्रयोग किया गया। इस प्रयोग मे अन्धे और देखने वाले दोनो प्रकार के पात्रो को लिया गया। देखने वाले पात्रो की आँखो पर पट्टी बाँध दी गयी। शुरु-शुरु मे उनको बाधाओ का पता न चलता था परन्तु धीरे-धीरे उन्होने बाधाओ का स्थान निश्चित करना सीख लिया। अन्धे पात्रो को बाधाओ का आभास हो ही जाता था किन्तु अन्धे और आँखो पर पट्टी बाँधे हुये,

दोनो ही प्रकार के पात्रो को यह पता नही चलता था कि वे बाधाओ का आभास कैसे पा सकते है ।

अतः इस रहस्य का पता लगाने के लिये प्रयोग किये गये । इन प्रयोगो मे यह नोट किया गया कि किस फासले पर पात्रों को दीवार दिखाई पड़ने लगती थी और उसको छुए बिना वे उसके कितना पास पहुँच सकते थे । इस परीक्षा के लिए एक हटाये जा सकने वाले मैसोनाईट पर्दे का प्रयोग किया गया । पात्र को इधर उधर घुमाया गया जिससे कि उसको दिशा का ज्ञान न रहे और फिर पर्दे के सामने खडा कर दिया गया । प्रत्येक बार पर्दे की स्थिति बदल दी गयी परन्तु स्थितियो के बदलने पर भी अन्धे और पट्टी बाँध दिये दोनो प्रकार के पात्रो को उसकी स्थिति निश्चित करने मे कोई कठिनाई नही हुयी । जब पात्र मोजे पहनकर पर्दे की ओर बढे जिससे कि पैरो की आवाज कम हो गयी तब उनको पर्दे का स्थान निश्चित् करने में कठिनाई हुई । कभी न कभी सभी पात्र पर्दे से टकरा गये । इससे यह विचार पक्का हुआ कि अन्धो को वस्तुओ का स्थान निश्चित करने मे सुनने का कुछ न कुछ हाथ अवश्य है । फिर भी इससे चेहरे की दृष्टि की पूर्वकल्पना असिद्ध नही हुई ।

अब पात्रो का चेहरा कपड़े से ढंक दिया गया और हाथो मे दस्ताने पहना दिए गये जिससे वायु का स्पर्श न हो सके । परन्तु फिर भी वे आसानी से पर्दे की स्थिति बतलाते रहे । इससे यह स्पष्ट हो गया कि बाधाओ को जानने मे चेहरे की दृष्टि का कोई हाथ नही है । अब पात्रो के कानो को बन्द करके या शोर मचाकर फिर प्रयोग किए गए । इस बार वे पर्दे की स्थिति निश्चित न कर सके और सब पर्दे से टकरा गये । इस प्रकार यह ज्ञात हुआ कि किसी वस्तु की स्थिति निश्चित् करने मे आवाज सहायक हैं । अस्तु, चेहरे की दृष्टि के सिद्धान्त की पूर्वकल्पना के सत्यापित न होने पर दूसरी पूर्वकल्पना बनाली गयी कि अन्धे लोग आवाज के सहारे बाधाओ का पता लगाते हैं । यह पूर्वकल्पना उपरोक्त प्रयोग से पुष्ट होती है । बहरे, अन्धे मनुष्यो पर प्रयोग करने पर देखा गया कि वे बाधाओं को पार करना न सीख सके । चलने की आवाज, लाठी या बेंत से खटखटाने आदि से अधो को अपने मार्ग की बाधाओ से बचने मे सहायता मिलती दिखलाई पड़ी । इन सब प्रयोगो से यह पूर्वकल्पना पुष्ट होती है कि अन्धे लोग आवाज के सहारे बाधाओं को पहचानते है । इस प्रयोग को कोई भी व्यक्ति कही भी दोहरा कर देख सकता हैं ।

(ब) परोक्ष सत्यापन
(Indirect Verification)

जब कभी कोई घटना ऐसी होती है जिसमे निरीक्षण या प्रयोग से काम नही लिया जा सकता तो उसमे प्रत्यक्ष सत्यापन नही हो सकता । ऐसी स्थितियो में परोक्ष सत्यापन से काम लिया जाता है । उदाहरण के लिये कुछ घटनाओ मे कारण ऐसे होते हैं जिनका हम किसी भी प्रकार से प्रत्यक्ष नही कर सकते जैसे परमाणु ईंधन इत्यादि । ऐसे कारणों से सम्बन्धित घटनाओ में परोक्ष सत्यापन से काम लिया जाता है । परोक्ष सत्यापन निम्नलिखित दो प्रकार से होता है—

(१) **निगमन के द्वारा** (Through deduction)—इसमे दी हुई पूर्वकल्पना से निष्कर्ष निकाले जाते हैं और निष्कर्षो को वास्तविक तथ्यो से मिलाया जाता है ।

यदि उसमे तथ्यों की सगति है तो पूर्वकल्पना सत्यापित हो जाती है और यदि वे सगति नही रखते तो पूर्वकल्पना अप्रमाणित हो जाती है। दोनो ही स्थितियो मे पूर्वकल्पना में दिये गये कारण का प्रत्यक्षीकरण सम्भव नही होता और केवल निष्कर्ष का ही प्रत्यक्षीकरण होता है इसलिये यह परोक्ष सत्यापन है।

(२) **संगत तथ्यों के संचय द्वारा** (Through Collection of Relevant facts)—कुछ प्राकृतिक घटनाये ऐसी है जिनमे निगमन के द्वारा भी निष्कर्ष नही निकाला जा सकता। इनमे सगत तथ्यो के सचय के द्वारा परोक्ष रूप से पूर्वकल्पना का सत्यापन किया जाता है। ऐसे बहुत से तथ्य मिल जाते है जो पूर्वकल्पना से सगति रखते है और दूसरी ओर विरोधी अथवा असगत तथ्यो का अभाव दिखलाई पडता है तो पूर्वकल्पना को सत्यापित मान लिया जाता है। असगत तथ्यो के अभाव के कारण सत्यापन की इस परोक्ष विधि को अविरुद्ध अनुभव द्वारा सत्यापन भी कहते है।

(३) **घटनाओं की व्याख्या के लिये पर्याप्त होना** (Sufficient for explaining phenomena)—पूर्वकल्पना के सत्यापन करने की एक अन्य विधि यह है कि जिन घटनाओ की व्याख्या करने के लिये उसका निर्माण किया गया है उनको स्पष्ट करने के लिये उसको पर्याप्त होना चाहिये। उदाहरण के लिये न्यूटन ने प्रकाश की गति की व्याख्या करने के लिए कार्पसकुलर सिद्धान्त (Corpuscular theory) की पूर्वकल्पना उपस्थित की जो कि प्रकाश की गति को स्पष्ट करने के लिये पर्याप्त नही सिद्ध हुयी। अस्तु, यह पूर्वकल्पना सत्यापित न होने के कारण छोड दी गयी और एक अन्य पूर्वकल्पना तरगवाद (Theory of undulation) की स्थापना की गयी जो प्रकाश की गति की व्याख्या करने मे पर्याप्त सिद्ध होने के कारण प्रमाणित मान ली गयी। यहाँ पर एक प्रश्न यह उपस्थित होता है कि किसी पूर्वकल्पना के अपर्याप्त ठहराने में उसकी कब तक जाच की जानी चाहिये। इस सम्बन्ध मे निम्नलिखित तीन बातो का ध्यान रखना आवश्यक है :—

(अ) **पर्याप्त समय तक जांच**—जब तक किसी पूर्वकल्पना की जाच पर्याप्त समय तक नही की जायेगी तब तक निश्चित रूप से यह नही कहा जा सकता कि उस पूर्वकल्पना के आधार पर तथ्यों की व्याख्या नही होती। इसलिये पूर्वकल्पना की जाच पर्याप्त काल तक की जानी चाहिये।

(ब) **केवल उन्ही तथ्यों की व्याख्या जिनके लिये वह बनी है**—पूर्वकल्पना से केवल उन्ही तथ्यो की व्याख्या की आशा की जा सकती है जिनकी व्याख्या के लिये वह बनायी गयी है। इन तथ्यो से सम्बन्धित अन्य बातो का स्पष्टीकरण न करने से पूर्वकल्पना को अप्रामाणिक नही कहा जा सकता।

(४) **निर्णायक दृष्टान्त द्वारा जांच** (Verification through crucial instance)—तथ्यो की व्याख्या के लिये पर्याप्त होने के साथ-साथ पूर्वकल्पना को निरुपाधिक भी होना चाहिये। दूसरे शब्दो मे, सभी परिस्थितियो मे तथ्यो की व्याख्या करने के लिये केवल एक वही पूर्वकल्पना होनी चाहिये। इसकी जाच करने के लिये निर्णायक दृष्टान्त की सहायता ली जाती है। इसकी सहायता से अनेक प्रति-द्वन्दी पूर्वकल्पनाओ मे से ऐसी पूर्वकल्पना का चुनाव किया जाता है जो असदिग्ध सिद्ध होती हो। निर्णायक दृष्टान्त उस प्रबल दृष्टान्त को कहते है जो विभिन्न

प्रतिद्वन्दी पूर्वकल्पनाओं मे संघर्ष को समाप्त करके एक एसा असंदिग्ध निर्णय उपस्थित करता है जिससे विवाद के लिये कोई स्थान नही रह जाता। निर्णायक दृष्टांत कभी निरीक्षण के आधार पर प्राप्त किया जाता है तो कभी प्रयोग के आधार पर देखा जाता है। प्रयोग के आधार पर निर्णायक दृष्टान्त निर्णायक प्रयोग (Crucial Experiment) कहलाता है। निर्णायक दृष्टान्त न केवल प्रतिद्वन्दी पूर्वकल्पनाओं मे से सही पूर्वकल्पना का चुनाव करता है बल्कि गलत पूर्वकल्पनाओं का निराकरण भी करता है। जेवोन्स के शब्दो मे, "निर्णायक दृष्टान्त न केवल पूर्वकल्पना को पुष्ट करता है बल्कि अन्य पूर्वकल्पनाओ का निषेध भी करता है।"[1] निर्णायक दृष्टान्त द्वारा जाच के दो रूप हैं—

(अ) निरीक्षण द्वारा निर्णायक दृष्टान्त—जिन मामलों मे प्रयोग नही किये जा सकते उनमे निरीक्षण के द्वारा ही निर्णायक दृष्टान्त प्राप्त किया जाता है। उदाहरण के लिये सौर मण्डल के ग्रहों की गति के विषय मे पूर्वकाल में दो पूर्वकल्पनायें थी। टॉलेमी के अनुसार पृथ्वी सौर मण्डल का केन्द्र थी और सूर्य, चन्द्रमा इत्यादि ग्रह उसके चारो ओर घूमते थे। दूसरी ओर कॉपरनिकस की पूर्वकल्पना के अनुसार सूर्य सौर मण्डल का केन्द्र है और पृथ्वी, चन्द्रमा तथा अन्य ग्रह सूर्य के चारो ओर चक्कर लगाते है। इन दो प्रतिद्वन्दी पूर्वकल्पनाओं मे सही पूर्वकल्पना का निश्चय करने के लिये निर्णायक निरीक्षण से काम लिया गया। वैज्ञानिको ने निरीक्षण से यह देखा कि प्रकाश के विचलन की व्याख्या में कॉपरनिकस की पूर्वकल्पना ही काम देती है और टॉलेमी के सिद्धान्त के आधार पर उसकी व्याख्या नही की जा सकती। इस प्रकार प्रकाश के विचलन का दृष्टान्त कॉपरनिकस की पूर्वकल्पना को प्रमाणित करता है और टॉलेमी के सिद्धान्त का निषेध करता है। अस्तु, इसके आधार पर कॉपरनिकस की पूर्वकल्पना को प्रमाणित मान लिया गया।

(ब) प्रयोग द्वारा निर्णायक दृष्टान्त अथवा निर्णायक प्रयोग—जिन घटनाओ के विषय मे प्रयोग किये जा सकते हैं उनमे निर्णायक प्रयोग से ही पूर्वकल्पना की स्थापना की जाती है क्योकि प्रयोग सिद्ध बात निरीक्षण से स्थापित की गई बात से अधिक प्रामाणिक मानी जाती है। प्राचीन काल मे पीसा के गैलीलियो द्वारा किया गया एक प्रयोग निर्णायक प्रयोग का एक उदाहरण है। उस समय लोगो मे यह पूर्वकल्पना प्रचलित थी कि पृथ्वी पर पदार्थो के गिरने का वेग उनके भार के अनुपात के अनुसार होता है। इसके विरुद्ध गैलीलियो ने यह पूर्वकल्पना उपस्थित की कि पदार्थो के गिरने के वेग का उनके भार से कोई सम्बन्ध नही है। अपनी पूर्वकल्पना की प्रामाणिकता को सिद्ध करने और सामान्य पूर्वकल्पना को असिद्ध करने के लिये गैलीलियो ने एक निर्णायक प्रयोग किया, उसने पीसा के झुके हुये मीनार की चोटी से भिन्न-भिन्न भार वाले लोहे के गोले गिराये जो कि एक साथ ही पृथ्वी पर पहुँचे। इससे यह सिद्ध हुआ कि पदार्थो के पृथ्वी पर गिरने के वेग का उनके भार से कोई सम्बन्ध नही है। दूसरी ओर इससे यह सामान्य पूर्वकल्पना असिद्ध हुई कि पृथ्वी पर पदार्थो के गिरने का वेग उनके भार के अनुपात

---

1. "A crucial instance not only confirms one hypothesis but negates the other." —Jevons

के साथ होता है क्योकि यदि ऐसा होता तो विभिन्न भार के लोहे के गोले एक ही समय पृथ्वी पर न गिरते ।

(४) **आगमनों की एकता** (Consilience of Inductions)—पूर्वकल्पना की प्रामाणिकता सिद्ध करने का एक अन्य उपाय आगमनो की एकता है । यह नाम व्हेवेल का रक्खा हुआ है । आगमनो की एकता से तात्पर्य पूर्वकल्पना की उस विशेपता से है जिससे वह उन तथ्यो के अतिरिक्त अन्य तथ्यो की भी व्याख्या कर देती है जिनकी व्याख्या के लिये उसे बनाया गया है । दूसरे शब्दो मे, इस पूर्वकल्पना की संगति केवल गवेषणीय सत्यो से ही नही है बल्कि प्रकृति के अन्य सामान्य विभागों से भी है । अनेक पूर्वकल्पनाये प्रकृति मे बहुत बड़े क्षेत्रो के तथ्यो की व्याख्या करती है । उदाहरण के लिये गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त न केवल पृथ्वी पर गिरने वाले पिण्डो की व्याख्या करता है बल्कि उससे समुद्र के ज्वार भाटे, ग्रहो की गतियाँ इत्यादि अनेक तथ्यों की भी व्याख्या होती है । सक्षेप मे, जो पूर्वकल्पना जितने ही अधिक तथ्यो की व्याख्या करेगी वह उतनी ही अधिक प्रामाणिक पूर्वकल्पना मानी जायेगी ।

(५) **भविष्यवाणी करने की शक्ति** (Power of Prediction)—व्हेवेल के अनुसार पूर्वकल्पना की प्रामाणिकता की परीक्षा करने का एक अन्य उपाय उसकी भविष्यवाणी करने की शक्ति की जाँच करना है । जिस पूर्वकल्पना मे भविष्यवाणी करने की शक्ति जितनी अधिक होगी वह उतनी ही अधिक शक्तिशाली पूर्वकल्पना मानी जायेगी । टॉलेमी के सिद्धान्त से खगोलशास्त्र मे भविष्यवाणी करने की शक्ति बहुत कम थी । कॉपरनिकस की पूर्वकल्पना के आधार पर खगोलशास्त्री चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण आदि के विषय मे ठीक-ठीक भविष्यवाणियाँ कर सके । यदि किसी पूर्वकल्पना के आधार पर की हुयी सभी भविष्यवाणियाँ गलत सिद्ध होती है तो निश्चय ही वह पूर्वकल्पना अप्रामाणिक है । दूसरी ओर यदि भविष्यवाणी सही सिद्ध होती है तो पूर्वकल्पना प्रामाणिक है । यूरेनस (Uranus) के विचलन के विषय मे नेप्चून (Neptune) ग्रह के होने की भविष्यवाणी की गई जो कि बाद मे दूरबीन से देखने पर सही सिद्ध हुई ।

पूर्वकल्पना की प्रामाणिकता सिद्ध करने के उपरोक्त पाँचो प्रकार भिन्न-भिन्न स्थितियो मे लाभदायक सिद्ध होते है और उनसे पूर्वकल्पना न्यूनाधिक मात्रा मे प्रामाणिक सिद्ध होती है । सबसे अधिक प्रामाणिक पूर्वकल्पना निर्णायक प्रयोग से सिद्ध होती है । किन्तु चूंकि सभी परिस्थितियो मे निर्णायक प्रयोग करना सम्भव नही है इसलिये भिन्न-भिन्न स्थितियो मे प्रामाणिकता सिद्ध करने के प्रमाणो मे से किसी की भी सहायता ली जा सकती है ।

पूर्वकल्पनाओं के प्रकार

तर्कशास्त्रियो ने पूर्वकल्पनाओ के अग्रलिखित प्रकारो मे अन्तर किया है—

(१) **व्याख्यात्मक अथवा वर्णनात्मक पूर्वकल्पना** (Explanatory or descriptive hypothesis)—तर्कशास्त्रियो ने व्याख्यात्मक और वर्णनात्मक पूर्वकल्पनाओ मे अन्तर किया है । साधारणतया पूर्वकल्पना के दो प्रकार होते हैं—कारण के विषय मे पूर्वकल्पना और नियम (Law) के विषय मे पूर्वकल्पना । इनमे कारण के विषय में पूर्वकल्पना को व्याख्यात्मक पूर्वकल्पना कहा जाता है और नियम

के विषय में पूर्वकल्पना को वर्णनात्मक पूर्वकल्पना कहा जाता है। इस प्रकार जब कि व्याख्यात्मक पूर्वकल्पना यह बतलाती है कि कोई घटना क्यों होती है, वर्णनात्मक पूर्वकल्पना केवल यह बतलाती है कि कोई घटना कैसे होती है। जबकि व्याख्यात्मक पूर्वकल्पना घटना का कारण बतलाती है वर्णनात्मक पूर्वकल्पना वह नियम बतलाती है जिसके कारण वह हुई है। किन्तु ध्यान से देखने पर इन दोनों प्रकार की पूर्व-कल्पनाओं में कोई आवश्यक भेद दिखाई नहीं पड़ेगा क्योंकि तथाकथित वर्णनात्मक पूर्वकल्पना भी कारण के नियम को प्रकट करके घटना की व्याख्या करती है और यह बतलाती है कि घटना क्यों होती है। वास्तव में सभी प्रकार की पूर्वकल्पनाएं किसी न किसी हद तक व्याख्यात्मक होती हैं क्योंकि पूर्वकल्पना का लक्ष्य ही व्याख्या करना है।

(२) काम चलाऊ अथवा स्थायी पूर्वकल्पना (Working or tentative hypothesis)—प्रकृति मे कुछ घटनाये ऐसी होती है जिनकी व्याख्या करने के लिए हम कोई उपयुक्त पूर्वकल्पना बना नहीं पाते किन्तु क्योंकि पूर्वकल्पना बनानी ही पड़ती है इसलिये काम चलाने के लिये एक स्थायी पूर्वकल्पना बना ली जाती है। यह काम चलाऊ पूर्वकल्पना कहलाती है। जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है, अपर्याप्त होते हुए भी यह खोज का काम चलाने के लिये उपयोगी होती है और इसलिये भले ही उसका पर्याप्त आधार न हो किन्तु यह नही कहा जा सकता कि उसका कोई आधार नहीं है। काम चलाऊ पूर्वकल्पना ही अस्थायी पूर्वकल्पना कही जाती है। जब तक उससे अधिक उपयुक्त पूर्वकल्पना नही बन जाती तब तक उसी से काम चलाया जाता है। जब उससे अधिक उपयुक्त पूर्वकल्पना मिल जाती है तो उसे छोड़कर नई पूर्वकल्पना को ग्रहण कर लिया जाता है। कॉपरनिकस की सौर मण्डल की गति की पूर्वकल्पना से पहले टॉलेमी की पूर्वकल्पना काम चलाऊ अथवा अस्थायी पूर्वकल्पना का एक उदाहरण है। जब तक कापरनिकस का सिद्धान्त नही निकला था तब तक खगोलशास्त्री टॉलेमी के सिद्धान्त से ही काम चलाते थे। जब कॉपरनिकस का सिद्धान्त विभिन्न तथ्यों की व्याख्या मे अधिक उपयुक्त सिद्ध हुआ तो टॉलेमी की पूर्वकल्पना छोड़कर कॉपरनिकस का सिद्धान्त ग्रहण कर लिया गया।

(३) प्रतिरूपक कल्पनायें (Representative fictions)—प्रतिरूपक कल्पनाओ की व्याख्या करते हुए बेन ने लिखा है, "कुछ पूर्व कल्पनायें पिण्डों की सूक्ष्म रचना और क्रिया विधि के विषय मे होती है। जैसा कि इन मामलो मे होता है, इन पूर्वकल्पनाओं को प्रत्यक्ष उपायो से कभी सिद्ध नही किया जा सकता। इनका एकमात्र गुण यह है कि ये दिये हुए तथ्यों का वर्णन करने के लिये उपयुक्त होती है। ये प्रतिरूपक कल्पनाये होती है।"[1] प्रतिरूपक कल्पना का उदाहरण ईथर की पूर्वकल्पना है। ईथर को प्रत्यक्ष रूप से नही जाना जा सकता किन्तु उसकी धारणा की सहायता से अनेक प्राकृतिक घटनाओ की व्याख्या की जाती है। अस्तु, उसके अस्तित्व की कल्पना कर ली गई है। प्रतिरूपक कल्पना को और भी अधिक स्पष्ट करते हुये बेन ने लिखा है, "पुद्गल के कणों की तात्विक रचना के विषय मे जितने भी कथन होते है वे सब काल्पनिक होते है। फिर भी हम उनको इसलिये छोड़ नही सकते कि वे सिद्ध नही किये जा सकते। उनके मूल्य को निर्धारित करने

1. "Some hypotheses consist of assumptions as to the minute structure and operation of bodies From the nature of the case, these assumptions can never be proved by direct means Their only merit is their suitability to express the phenomena They are Representative Fictions" —Bain

का एक उचित उपाय यह देखना है कि तथ्यो का प्रतिनिधित्व करती है या नही यह प्रत्यक्ष रूप मे कभी नही दिखाया जा सकता कि ताप परमाणुओ की गति है, परन्तु यदि यह कल्पना सभी गतियो के साथ सगति रहती है और यदि यह सभी गतियो को एक सामान्य कथन से जोड़ने मे हमारी सहायता करती है तो यह एक महत्वपूर्ण बौद्धिक प्रक्रिया का लक्ष्य पूर्ण करती है।"

पूर्वकल्पना और अमूर्तकरण

डुगल्ड स्टीवर्ट ने पूर्वकल्पना को अमूर्तकरण (Abstraction) माना है। उसके अनुसार ज्यामितीय प्रत्यय पूर्वकल्पना पर आधारित होते है। किन्तु इन प्रत्ययो की कोई वास्तविक स्थिति नही होती। उदाहरण के लिये ज्यामिति मे रेखा की यह परिभाषा दी जाती है कि उसमे लम्बाई होती है, चौडाई नही, इस प्रकार की रेखा खीची नही जा सकती। इसी प्रकार बिन्दु की परिभाषा यह दी जाती है कि उसकी स्थिति है परन्तु उसकी लम्बाई, चौडाई और ऊचाई नही है, इस प्रकार का बिन्दु नही बनाया जा सकता। रेखा और बिन्दु दोनो की परिभाषा करने मे हमने उनके एक गुण को लेकर अन्य का अमूर्तकरण कर दिया है। बिन्दु मे केवल स्थिति और रेखा मे केवल लम्बाई ली गई। स्टीवर्ट के अनुसार यह अमूर्तकरण पूर्व-कल्पना के कारण है क्योकि पूर्वकल्पना मे यह कल्पना छिपी रहती है कि वह वास्तविक चीज है।

किन्तु पूर्वकल्पना के विषय मे स्टीवर्ट का उपरोक्त मत उपयुक्त नही है क्योकि पूर्वकल्पना और अमूर्तकरण मे मौलिक अन्तर है। जब कि पूर्वकल्पना अज्ञात वस्तु के विषय मे कल्पना है अमूर्तकरण मे वस्तु के अनेक गुणो को छोडकर भी उसकी वास्तविकता की कल्पना की जाती है। इसीलिये पूर्वकल्पना को अमूर्तकरण मानने के विषय मे कार्वेथ रीड ने लिखा है, "क्योकि पूर्वकल्पना अब तक अज्ञात कारक, सामग्री अथवा नियम को स्थापित करती है जबकि अमूर्तकरण अनेक ऐसी बातो को छोड़ने का प्रस्ताव करता है जो भली प्रकार ज्ञात है, इसका कोई कारण नही दिखलाई पडता कि इस बाद वाली विधि को क्यो न स्पष्ट रूप से अमूर्तकरण ही कहा जाये।"[1]

पूर्वकल्पना, वाद और नियम
(Hypothesis, Theory and Law)

कभी-कभी साधारण बोलचाल मे पूर्वकल्पना, वाद और नियम शब्दो का एक ही अर्थ मे प्रयोग कर लिया जाता है किन्तु वैज्ञानिक दृष्टि से इनमे पर्याप्त अन्तर है।

पूर्वकल्पना और वाद—पूर्वकल्पना और वाद एक ही प्रक्रिया की दो दशाएं है। जब कोई पूर्वकल्पना प्रामाणिक सिद्ध हो जाती है तो वह वाद बन जाती है। किन्तु कोई विशेष सिद्धान्त पूर्वकल्पना है अथवा वाद इसके विषय मे सभी विचारक सहमत नही होते। जो लोग उसकी प्रामाणिकता मे सदेह करते है वे उसे पूर्वकल्पना मानते है। दूसरी ओर जो लोग उसके पक्ष मे पर्याप्त प्रमाण पाते है वे उसे वाद समझते है।

---

1 " for a hypothesis proposes agent collocation, or law hitherto unknown, whereas abstract reasoning proposes to exclude from consideration a good deal that is well known There seems to be no reason why the better device should not plainly be called an Abstraction "

—Carveth Read

पूर्वकल्पना और नियम—जब वाद इतना अच्छा काम दे सकता है और इतना संतोषजनक सिद्ध होता है कि उसके आधार पर अनेक तथ्यों की व्याख्या की जाती है और उनके विषय में भविष्यवाणी की जा सकती है तो वह नियम बन जाता है।

सारांश

पूर्वकल्पना वैज्ञानिक अनुसधान में किसी सिद्धान्त पर पहुँचने से पूर्व कार्य कारण सम्बन्ध के विषय में पहले से बनायी गयी अस्थायी कल्पना है।

पूर्वकल्पना के आवश्यक चरण—१. निरीक्षण, २. पूर्वकल्पना निर्माण ३. निगमन, ४. सत्यापन। आगमन मे पूर्वकल्पना का बड़ा महत्व है।

पूर्वकल्पना निर्माण की विधियाँ—१. साधारण गणनात्मक आगमन २ अन्वय विधि, ३. सादृश्य विधि, ४. सहचारी परिवर्तन विधि, ५. अवशेष विधि।

पूर्वकल्पना के प्रकार—१ नियम के विषय में पूर्वकल्पना, २. कर्ता के विषय में पूर्वकल्पना, ३. परिस्थिति विन्यास के विषय में पूर्वकल्पना।

पूर्वकल्पना की प्रामाणिकता की दशायें—१. आत्म-विरोध का अभाव २. स्थापित सत्यों के विरुद्ध न होना, ३. निश्चितता और स्पष्टता, ४. तथ्यों पर आधारित वास्तविक कारक, ४ सत्यापनीय।

पूर्वकल्पना के प्रमाण—१ (अ) प्रत्यक्ष सत्यापन, इसमें निरीक्षण और प्रयोग सम्मिलित है। (ब) परोक्ष सत्यापन—इसमें निगमन के द्वारा और संगत तथ्यों के सचय द्वारा सत्यापन सम्मिलित है। २. घटनाओं की व्याख्या के लिये पर्याप्त होना—इसमें तीन बातें आवश्यक है पर्याप्त समय तक जाँच, केवल उन्हीं तथ्यों की व्याख्या जिनके लिये वह बनी है, स्पष्टीकरण के आवश्यक अंग की जाँच ३. निर्णायक दृष्टान्त द्वारा जाँच—यह निरीक्षण अथवा प्रयोग के द्वारा होती है। ४ आगमनों की एकता, ५. भविष्यवाणी करने की शक्ति।

पूर्वकल्पनाओं के प्रकार—१. व्याख्यात्मक और वर्णनात्मक पूर्वकल्पना, २ काम चलाऊ अथवा स्थायी पूर्वकल्पना, ३. प्रतिरूपक कल्पनाएँ। पूर्वकल्पना के लिये अमूर्तकरण की आवश्यकता होती है, फिर भी इन दोनों में अन्तर है। पूर्व-कल्पना वाद और नियम से भी भिन्न है।

अभ्यास के लिये प्रश्न

प्रश्न १ पूर्वकल्पना किसे कहते हैं ? परीक्षण प्रारम्भ करने से पहले एक पूर्वकल्पना का आलम्बन क्यो आवश्यक है। (१९६०)

प्रश्न २ पूर्वकल्पना के भेद बतलाइये तथा भली भाँति समझाइए कि किन परिस्थितियो मे पूर्वकल्पना अच्छी कही जा सकती है ? (१९६१)

प्रश्न ३ प्राक्करपनाओ के मूल्य का निर्णय करने मे प्रमुख कसौटियो का विवेचन कीजिये। (गोरखपुर १९७७)

प्रश्न ४ प्राक्कल्पना क्या है ? यथार्थ प्राक्कल्पना की शर्तों की व्याख्या कीजिये। (गोरखपुर १९७६)

प्रश्न ५ प्राक्कल्पना के मूल्याकन की कसौटी का विवेचन कीजिये। (प्रयाग १९७५)

प्रश्न ६ सक्षिप्त टिप्पणी कीजिये तदर्थ प्राक्कल्पना। (प्रयाग १९७५)

प्रश्न ७ केवल गणनाश्रित आगमन क्या है ? कारणता के नियमो की खोज और जैव कीय प्रणाली के रूप मे इसके मूल्य का आलोचनात्मक विवेचन कीजिये। (प्रयाग १९७३)

प्रश्न ८ प्राक्कल्पनाओ के मूल्याकन मे प्रयुक्त होने वाले मापमण्ड क्या हैं ? उदाहरण सहित विवेचन कीजिये। (प्रयाग १९७४)

२५

प्रायोगिक अथवा आगमनात्मक विधियां

(EXPERIMENTAL OR INDUCTIVE METHODS)

प्रायोगिक विधियाँ क्या हैं ?

मिल की प्रायोगिक विधियाँ

विज्ञान के क्षेत्र मे विभिन्न घटनाओ मे कार्य कारण सम्वन्ध खोजे जाते है और उनके आधार पर सामान्य सिद्धान्त वनाए जाते हे। अस्तु, वैज्ञानिको को इस प्रकार की विधियो की आवश्यकता होती है जिनके द्वारा विशेष तथ्यो की छानवीन की जा सके और उसके आधार पर आगमन के द्वारा सामान्य नियम वनाये जा सके। इस प्रकार की विधियो को सवसे पहले मिल ने व्यवस्थित रूप मे उपस्थित किया। मिल से पहले हर्शेल ने दार्शनिक विधि के नौ नियम वतलाए थे। इन्ही के आधार पर मिल ने अपनी आगमनात्मक विधियाँ (Inductive Methods) निकाली। ये विधिया मिल के नाम से ही प्रसिद्ध है।

प्रायोगिक विधियो के अन्य नाम

प्रायोगिक विधियाँ (Experimental Methods) वे विधियाँ है जो कि वैज्ञानिक प्रयोग या परीक्षण मे काम मे लाई जाती हैं। ये ही विधियाँ आगमनात्मक विधियाँ कहलाती है। इन्हे प्रायोगिक छानवीन की विधियाँ (Methods of Experimental Enquiry) भी कहते हे। इनको आगमनात्मक सूत्र (Inductive Canons) या प्रत्यक्ष आगमन के सूत्र (Canons of direct Induction) भी कहा जाता है। सक्षेप मे इन विधियो की सहायता से विशेष तथ्यो की जाँच अथवा परीक्षा की जाती है जिससे उनमे छिपे प्रतिमान स्पष्ट हो जाते है। इन प्रतिमानो के स्पष्ट हो जाने से इनमे छिपे सामान्य सिद्धान्त स्पष्ट होते हैं। इस प्रकार प्रायोगिक विधियाँ आगमन की विधियाँ है।

निरीक्षण की भी विधियाँ

वास्तव मे प्रायोगिक विधियाँ नाम भ्रम उत्पन्न करता है क्योकि जैसा कि पीछे वतलाया जा चुका है, तथाकथित प्रायोगिक विधियाँ प्रयोग के साथ-साथ निरीक्षण मे भी इस्तेमाल की जाती है। वास्तव मे ये विधियाँ अनुभव से अनुमान निकालने की विधियाँ है। इनमे अन्वय विधि तो निरीक्षण की ही विधि है। अस्तु, यहा पर यह याद रखना आवश्यक है कि प्रायोगिक विधियाँ कहने मे यह नही समझा जाना चाहिये कि ये विधियाँ केवल प्रयोग मे ही इस्तेमाल की जाती है।

मिल ने प्रायोगिक विधियों को निरास की विधियाँ (Methods of Elimination) भी कहा है। निरास का तात्पर्य आकस्मिक परिस्थितियों को हटाना अथवा उनका निषेध करना है। निरास की विधियाँ कहने से यह तात्पर्य है कि इन विधियों मे केवल आकस्मिक अथवा अप्रासगिक परिस्थितियो को हटाने का निषेधात्मक (Negative) काम होता है। किन्तु वास्तव मे प्रायोगिक विधियाँ निषेधात्मक मात्र नही है। जहाँ एक ओर उनकी सहायता से आकस्मिक परिस्थितियाँ हटाई जाती है वहाँ दूसरी ओर उनके द्वारा कार्यकारण सम्बन्ध खोजा जाता है और सिद्ध किया जाता है। सच तो यह है कि प्रायोगिक विधियो का लक्ष्य कार्य-कारण वे आगमनात्मक सिद्धान्त खोजना है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये आकस्मिक और अप्रासगिक परिस्थितियो का निरास करना पड़ता है। इस प्रकार यह निरास अथवा निषेधात्मक कार्य प्रायोगिक विधियो का लक्ष्य नही बल्कि साधन मात्र है। आगमनात्मक विधियो मे लक्ष्य निषेधात्मक नही बल्कि विधानात्मक (Positive) होता है। सक्षेप मे **प्रायोगिक विधियाँ वे विधियाँ है जिनके द्वारा निरीक्षण और प्रयोग में आकस्मिक तथ्यों का निरास करके ऐसे तथ्य चुने जाते है जिनके द्वारा कार्य कारण सम्बन्ध सिद्ध होता है।**

निरास की विधियाँ

प्रायोगिक विधियों के प्रकार

मिल से बहुत पहले बेकन (Bacon) ने उपस्थिति की सूची, अनुपस्थिति की सूची और मात्राओ की सूची मे क्रमशः अन्वय विधि, व्यतिरेक विधि और सहचारी परिवर्तन की विधि मानी थी। बेकन के बाद हर्शेल ने अपनी पुस्तक Preliminary Discourses on the Study of Natural Philosophy मे दर्शनीकरण के नौ नियम (Nine Rules of Philosophising) बतलाये। मिल की प्रायोगिक विधियाँ, जैसा कि पीछे बतलाया जा चुका है, बेकन के विचारो पर नही बल्कि हर्शेल के विचारो पर आधारित है। सक्षेप मे मिल निम्नलिखित पाँच प्रायोगिक विधियाँ मानता है—

(१) अन्वय की विधि (Method of Agreement)।
(२) व्यतिरेक की विधि (Method of Difference)।
(३) अन्वय और व्यतिरेक की सयुक्त विधि।
(Joint method of Agreement and Difference).
(४) सहचारी परिवर्तनो की विधि।
(Method of Concomitant Variation).
(५) अवशेषो की विधि (Method of Residues)।

जैसा कि इन विधियो के नामो से स्पष्ट है, इनमे प्रथम दो विधियाँ मुख्य है और शेष तीन गौण है। अन्वय और व्यतिरेक की विधियाँ मौलिक है। तीसरी विधि, जिसको मिल ने अन्वय और व्यतिरेक की सयुक्त विधि कहा है, अन्वय की विधि का ही एक विशेष रूपान्तर है। चौथी विधि, जो कि सहचारी परिवर्तन की विधि कहलाती है, विभिन्न परिस्थितियो में अन्वय विधि या व्यतिरेक विधि का विशेष रूप होती है। पाँचवी विधि जिसे अवशेषो की विधि, कहा जाता है व्यतिरेक विधि का एक विशेष रूपान्तर है। मौलिक विधियो मे भी अन्वय की विधि विशेष रूप से निरीक्षण मे प्रयोग की जाती है क्योकि उससे कार्यकारण सबध

ज्ञात होता है। मैलोन (Mellone) और कॉफी (Coffey) इत्यादि कुछ तर्कशास्त्रियो ने मिल की उपरोक्त विधियो के अतिरिक्त एक अन्य विधि मानी है जिसे वे व्यतिरेक और अन्वय की सयुक्त विधि कहते है और जो इन दोनो के सयोग से बनती है। किन्तु सामान्य रूप से अधिकतर तर्कशास्त्री मिल के द्वारा बतलायी गयी पाँच विधियाँ को ही मानते हे।

प्रायोगिक विधियाँ और निरास के नियम

पहले कहा जा चुका है कि प्रायोगिक विधियो को मिल ने निरास की विधियाँ माना है। इस प्रकार इन विधियो का निरास के नियमो से घनिष्ठ संबंध है। विभिन्न निरास के नियमो के आधार पर विभिन्न प्रायोगिक विधियाँ निकाली गयी है। सक्षेप मे, निरास के नियमो और प्रायोगिक विधियो का सम्बन्ध निम्नलिखित है—

(१) **अन्वय विधि का आधार**—अन्वय विधि के मूल मे निरास का यह नियम काम करता है कि, "यदि कोई पूर्ववर्ती ऐसा है जिसको कार्य पर प्रभाव डाले वगैर छोडा जा सकता है तो वह कारण का अश बिल्कुल नही हो सकता है।"[1] जब किसी पूर्ववर्ती को हटाने से कार्य पर कोई प्रभाव नही पडता तो स्पष्ट है कि वह कार्य का कारण नहीं है। यदि किसी वस्तु को हटा देने से किसी दूसरी वस्तु मे कोई अन्तर नही आता तो उनमे किसी प्रकार का सम्बन्ध नही माना जा सकता। अन्वय विधि के अनुसार जो तथ्य अन्य सब तथ्यो का हटा देने पर भी बना रहता है वही कार्य का कारण माना जाना चाहिये क्योकि मिल के अनुसार कारण "नियत और निरूपाधिक पूर्ववर्ती" (Invariable and Unconditional Antecedent) है।

(२) **व्यतिरेक विधि का आधार**—व्यतिरेक की प्रायोगिक विधि निरास के इस नियम पर आधारित है कि "यदि कोई पूर्ववर्ती ऐसा है जिसे कार्य को लुप्त किये वगैर नही छोडा जा सकता तो ऐसे पूर्ववर्ती को कारण अथवा उसका एक अश होना चाहिए।"[2] यदि किसी परिस्थिति को हटा देने से कार्य नही रहता तो वह अवश्य कारण है। यदि छत से लटकी हुई कोई वस्तु रस्सी को काट कर देने से गिर जाती है तो अवश्य ही वह रस्सी के कारण लटकी थी।

(३) **सहचारी परिवर्तनों की विधि का आधार**—सहचारी परिवर्तनो की विधि का आधार निरास का यह नियम है कि "यदि एक पूर्ववर्ती और एक अनुवर्ती परिणाम की दृष्टि से एक साथ उठते है और गिरते है तो उन्हे क्रमश· कारण और कार्य समझा जाना चाहिये।"[3] इस नियम के अनुसार जिन दो घटनाओ मे साथ साथ परिवर्तन होते है उनमे से पूर्ववर्ती घटना, कारण और अनुवर्ती घटना कार्य माना जाना चाहिये।

(४) **अवशेषों की विधि का आधार**—अवशेषो की विधि का आधार निरास का वह नियम है कि, "कोई भी वस्तु जिसका किसी वस्तु का कारण होना ज्ञात है

---

1. "Whatever antecedent can be left out without prejudice to the effect cannot be part of the cause" —Mill.

2. "When an antecedent can not be left out, without the consequent disappearing, such antecedent must be the cause of a part of the cause" —Mill.

3. "An antecedent and a consequent rising and falling together in numerical concomitance are to be held as cause and effect." —Mill.

किसी अन्य वस्तु का कारण नहीं हो सकती ।"[1] यदि किसी कार्य समूह मे से ज्ञात कारणो के अभाव निकाल दिये जाये तो कारण समूह मे बचा हुआ अंश कार्य समूह मे बचे हुए अश का कारण माना जा सकता है । यही अवशेषो की विधि है ।

अन्वय विधि

अन्वय विधि की परिभापा

अन्वय विधि की परिभापा करते हुये मिल ने लिखा है, "यदि गवेपणीय तथ्य के दो या अधिक दृष्टान्तो मे केवल एक परिस्थिति समान है तो केवल वह परिस्थिति जिसमे सब दृष्टान्तो में समानता है दिये हुये तथ्य का कारण (या कार्य) है ।"[2] अन्वय विधि की इस परिभापा मे केवल एक परिस्थिति समान है कहने से मिल का तात्पर्य गवेपणीय तथ्य के अलावा एक तथ्य से है । दूसरे शब्दों में, इसका तात्पर्य अनुवर्ती (Consequent) से है यदि गवेपणीय तथ्य कारण है । दूसरी ओर यदि कार्य की खोज की जा रही है तो केवल एक परिस्थिति समान है, का तात्पर्य पूर्ववर्ती (Antecedent) से है । दोनो ही स्थितियो मे गवेपणीय तथ्य का तात्पर्य 'केवल एक परिस्थिति समान है' से नही है । इस बात को एक ठोस उदाहरण से समझा जा सकता है । मान लीजिये कि आप मलेरिया रोग का कारण जानना चाहते हैं । इसका पता लगाने के लिये आपको मलेरिया के बहुत से रोगियो के दृष्टान्त एकत्रित करने पडेंगे । इनमे से अलग-अलग रोगियो की जाँच करने पर यदि यह पता लगे कि इनमे से प्रत्येक की अन्य परिस्थितियाँ भिन्न होते हुए भी एक परिस्थिति समान है अर्थात् प्रत्येक को रोग से पहले एनाफिलीस मच्छर ने काटा था तो ऐसी स्थिति मे एनाफिलीस मच्छर का काटना मलेरिया बुखार का कारण माना जायेगा । मिल ने अन्वय विधि के द्वारा कार्य से कारण का पता लगाने के लिये यह उदाहरण दिया है कि यदि हम रवा बनाने के कार्य का कारण मालूम करना चाहते हैं तो हम ऐसे दृष्टान्तो की तुलना करते है जिनमे अन्य बाते असमान होते हुए भी एक परिस्थिति समान है और वह है पिण्डो का रवो की शक्ल मे होना । निरीक्षण से यह पता चलता है कि इन दृष्टान्तो मे एक पूर्ववर्ती समान रूप से पाया जाता है जो कि किसी द्रव्य का तरल अवस्था से ठोस अवस्था मे आना है अस्तु, हम यह निष्कर्ष निकालते है कि द्रव्य का तरल अवस्था से ठोस अवस्था में आना रवे बनने का कारण है ।

अन्वय के सिद्धान्त से केवल कार्य से कारण का ही अनुमान नही लगाया जाता बल्कि कारण से कार्य का अनुमान लगाने मे भी इस विधि का प्रयोग किया जाता है । कारण से कार्य का अनुमान लगाने मे अन्वय विधि को प्रयोग करने के लिये मिल ने एक उदाहरण दिया है । मान लीजिये कि हम एक क्षारयुक्त (Alkaline) पदार्थ और तेल के सम्पर्क का कार्य जानना चाहते हे । इसके लिए हम निरीक्षण मे कई ऐसे दृष्टान्त एकत्रित करते है जिनमे क्षारयुक्त पदार्थ का तेल से सम्पर्क होता है । निरीक्षण से यह ज्ञात होता है कि इस प्रकार के सम्पर्क के सभी उदा-

1 "Nothing is the cause of a phenomenon which is known to be the cause of a different phenomenon." —Joseph

2. "If two or more instances of a phenomenon under investigation have only one circumstance in common, the circumstance in which alone all the instances agree is the cause (or effect) of the given phenomenon" —Mill.

हरणो मे कार्य साबुन के रूप मे दिखलाई पड़ते है इससे यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि क्षारयुक्त पदार्थ और तेल के सम्पर्क के कारण का कार्य साबुन का बनना है। इस प्रकार के बहुत से उदाहरण सामान्य जीवन मे दिखलाई पडते हैं। देखा जाता है कि किसी विशेष स्थान की जलवायु विशेष रोग को दूर करने मे बडी सहायक मानी जाती है। यहाँ पर जलवायु कारण और रोग का दूर होना कार्य है। अब ध्यान दीजिये कि कारण से कार्य का अनुमान कैसे लगाया गया। उक्त स्थान पर विशेष रोग के बहुत से रोगी आते रहे और उन सबकी हालत मे पहले से सुधार देखा गया। ये सभी लोग विशेष रोग के रोगी थे और उक्त स्थान पर आने से इनका रोग दूर होने लगा। इससे यह निष्कर्ष निकाल लिया गया कि उक्त स्थान की जलवायु अमुक रोग को दूर करने मे सहायक है।

उपरोक्त उदाहरणो से स्पष्ट है कि अन्वय विधि कारण से कार्य और कार्य से कारण दोनो का अनुमान लगाने मे प्रयोग की जाती है। मिल के अनुसार यह विधि इस नियम पर आधारित है कि "यदि कोई परिस्थिति ऐसी है जिसको दिये हुये तथ्य को प्रभावित किये बगैर छोडा जा सकता है तो वह उससे कारण सम्बन्ध नही रखती।" दूसरे शब्दो मे यदि किसी तथ्य या परिस्थिति का उपस्थित होना सदैव आवश्यक पाया जाये तो उस परिस्थिति और उस तथ्य मे कारण कार्य सम्बन्ध माना जा सकता है। मिल के कथन मे सशोधन करते हुए कार्वेथ रीड ने लिखा है, "यदि किसी दिये हुये तथ्य के दो या अधिक उदाहरणो मे केवल एक अन्य परिस्थिति (पूर्ववर्ती या अनुवर्ती) समान हो तो वह परिस्थिति कदाचित दिये हुये तथ्य का कारण (या एक अनिवार्य उपाधि) या कार्य हे या उससे कारण सम्बन्ध रखती है।"[1] कार्वेथ रीड के इस कथन से स्पष्ट है कि यदि अनेक दृष्टान्तो मे कोई परिस्थिति किसी तथ्य के उपस्थित होने के लिये आवश्यक मानी जाती है तो उस परिस्थिति और उस तथ्य मे कार्य कारण सम्बन्ध माना जाता है। इसमे पूर्ववर्ती परिस्थिति कारण और अनुवर्ती तथ्य कार्य होता है। मिल के अनुसार कारण काय का नियत निरुपाधिक पूर्ववर्ती है।

अन्वय विधि मे विभिन्न दृष्टान्तो की तुलना करके यह देखा जाता है कि वे किस बात मे समान है। यह देखने के लिए विभिन्न उदाहरणो मे तथ्य की किसी एक परिस्थिति से समानता और अन्य परिस्थितियो से भेद दिखलाई पडता है। दूसरे शब्दो मे, अन्वय विधि के द्वारा कार्य कारण सम्बन्ध स्थापित करने के लिये यह आवश्यक है कि केवल एक बात मे अन्वय दिखलाई पडे। इसलिए मैलोन और काफी ने अन्वय विधि को एकान्तिक अन्वय विधि (Method of Exclusive Agreement) कहा है।

अन्वय विधि निरीक्षण की विधि

आधुनिक तर्कशास्त्रियो के अनुसार अन्वय विधि को प्रयोगिक विधियो मे नही गिना जाना चाहिये क्योकि यह मुख्य रूप से निरीक्षण की विधि हे। दूसरे

1 "If two or more instances of a phenomenon under investigation have only one other circumstance (antecedent or consequent) in common, that circumstance is probably the cause (or an indispensable condition) or the effect of the phenomenon, or is connected with it by causation"

—Carveth Read

शब्दो मे, प्रायोगिक विधियो से गिने जाते हुये भी अन्वय विधि मुख्य रूप से प्रयोग की नही बल्कि निरीक्षण विधि है। वास्तव मे अन्वय विधि को अधिकतर उन दृष्टान्तो मे प्रयोग किया जाता है जिनमे खोज के विषय पर अधिक नियन्त्रण सम्भव नही होता। दूसरे शब्दो में, जिन परिस्थितियो मे प्रयोग नही किया जा सकता उनमे अन्वय विधि का इस्तेमाल किया जाता है। इस विधि का प्रयोग करने के लिए किसी विशिष्ट और निश्चित प्रकार के उदाहरणो का होना अनिवार्य नही है। इसके लिए कोई भी ऐसे उदाहरण काम दे सकते है जिनमे खोज का तथ्य पाया जाता हो। इस प्रकार के उदाहरण निरीक्षण से प्राप्त हो जाते है इसीलिये अन्वय विधि को मुख्य रूप से निरीक्षण की विधि माना गया है। किन्तु इसका अर्थ यह नही है कि यह प्रायोगिक विधि नही है क्योकि प्रयोग और निरीक्षण में केवल नियन्त्रण के अश का अन्तर है। प्रयोग नियन्त्रित निरीक्षण है।

अन्वय विधि लाभ

जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, अन्वय विधि विशेष रूप से निरीक्षण की विधि है। अस्तु, इसके लाभ भी विशेप रूप से निरीक्षण के क्षेत्र मे है। सक्षेप मे, इस विधि के मुख्य लाभ निम्नलिखित है—

(१) **प्रयोग का विस्तृत क्षेत्र**—चूँकि निरीक्षण का क्षेत्र प्रयोग से बडा होता है और अन्वय विधि विशेप रूप से निरीक्षण की विधि है इसलिये अन्वय विधि के प्रयोग का क्षेत्र अन्य विधियो की तुलना मे कही अधिक विस्तृत है। जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है, इस विधि को लागू करने के लिये किसी विशेप प्रकार के उदाहरणो की आवश्यकता नही होती बल्कि यह उन सभी उदाहरणो मे प्रयोग की जा सकती है जिनमे गवेपणीय तथ्य पाया जाता है।

(२) **कारण से कार्य और कार्य से कारण का अनुमान**—अन्वय विधि की एक विशेपता यह है कि इससे न केवल कारण से कार्य बल्कि कार्य से कारण का का भी अनुमान लगाया जा सकता है। इस दृष्टि से यह अन्य प्रायोगिक विधियो से श्रेष्ठ है। पीछे जो अन्वय विधि के उदाहरण दिये गये है उनमे यह दिखलाया गया है कि इससे कार्य से कारण और कारण से कार्य दोनो का अनुमान लगाया जा सकता है। अन्य प्रायोगिक विधियो मे कारण से कार्य की ओर जाना तो सरल है किन्तु कार्य से कारण की ओर जाना सरल नही है।

अन्वय विधि के दोप

जहाँ अन्य प्रायोगिक विधियो की तुलना मे अन्वय विधि मे कुछ विशेपताये वहाँ उनकी तुलना मे उसमे कुछ कमियाँ भी है। ये कमियाँ ही उसकी सीमा दिखलाती है। संक्षेप मे, अन्वय विधि की ये कमियाँ-या सीमाये निम्नलिखित है—

(१) **सहअस्तित्व और कारणता में पहचान की कठिनाई**—अन्वय विधि के आधार पर सहअस्तित्व और कारणता मे भेद नही किया जा सकता जब कि मूल रूप से ये दोनों भिन्न है। कारणता मे अनुक्रम होता है अर्थात् एक तथ्य और दूसरे तथ्य मे अनुगामी और पूर्वगामी का सम्बन्ध होता है। सहअस्तित्व (Coexistence) का तात्पर्य दो तथ्यों का साथ-साथ पाया जाना है। सहअस्तित्व का अर्थ कारणता (Causality) नही है। उदाहरण के लिए सोने मे पीला रग और लचीलापन का गुण साथ-साथ पाये जाते है अर्थात् इनमे सहअस्तित्व है किन्तु इससे यह नही कहा जा सकता कि इनमे से एक दूसरे का कारण है। इसी प्रकार समुद्र

और आकाश मे सह अस्तित्व है क्योकि जहाँ-जहाँ आकाश है वहाँ-वहाँ समुद्र भी पाया जाता है किन्तु न तो समुद्र आकाश का और न आकाश समुद्र का कारण है। चूँकि अन्वय विधि के आधार पर यह निश्चय नही किया जाता कि किन्ही दो तथ्यो मे सम्बन्ध सहअस्तित्व का सम्बन्ध है अथवा कारणता का सम्बन्ध है अस्तु, उसके आधार पर कार्य कारण सम्बन्ध का अनुमान सही होना अनिवार्य नही है।

(२) एक ही कारण के दो कार्यों में कार्य कारण सम्बन्ध मान लेने की सम्भावना—चूंकि अन्वय विधि मे सहअस्तित्व और कारणता में पहचान नही की जा सकती इसलिए इनमे कभी-कभी दो कार्यो को भी परस्पर कार्यकारण मान लेने की सम्भावना की जाती है। उदाहरण के लिए रात और दिन दोनो मे पूर्ववर्ती और अनुवर्ती का नियत और निरुपाधिक सम्बन्ध है। इसलिए अन्वय विधि के आधार पर रात को दिन का अथवा दिन को रात का कारण माना जा सकता है। इस प्रकार अन्वय विधि मे किसी एक कारण के दो कार्यो को परस्पर कार्यकारण मानने की सम्भावना हो जाती है।

(३) एक से अधिक कारण होने पर अनुपयुक्त—अन्वय विधि का सबसे बडा दोष यह है कि एक से अधिक कारण होने की स्थिति मे इसके आधार पर कार्य कारण सम्बन्ध का अनुमान नही लगाया जा सकता। कभी-कभी एक ही कार्य-भिन्न-भिन्न स्थितियो मे भिन्न-भिन्न कारण से होता है। उदाहरण के लिए मृत्यु के अनेक कारण है। कोई रोग से मरता है तो कोई जहर खाने से तो कोई दुर्घटना के कारण मर जाता है। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न प्रकार की दवाओ से भिन्न-भिन्न व्यक्तियो मे एक ही प्रकार के प्रभाव देखे जा सकते है। अस्तु, केवल समान कार्य होने से कारण को समान मान बैठना अनुचित है। किन्तु अन्वय विधि की यह कठिनाई दूर की जा सकती है। इसके लिये तर्कशास्त्रियो ने निम्नलिखित दो उपाय बतलाये हैं—

(क) उदाहरणो की वृद्धि—यदि किसी अनुसधान मे इतने अधिक उदाहरण लिये जाये कि उनमे किसी समान तथ्य का मौजूद होना आकस्मिक न हो सकता हो तो उनके आधार पर जो निष्कर्ष निकाला जायेगा उसके सत्य होने की भारी सम्भावना हो जाती है। विज्ञान के क्षेत्र मे इस प्रकार से अनेक कार्यकारण सम्बन्ध निकाले जाते है। किन्तु स्मरण रहे कि उदाहरणो की सख्या कितनी भी अधिक होने पर भी अन्वय विधि के आधार पर निष्कर्ष अनिवार्य रूप से सत्य नही हो सकता। दूसरे शब्दो मे, उदाहरणो की सख्या बढ़ाकर अन्वय विधि का उपरोक्त दोष किसी सीमा तक तो दूर किया जा सकता है किन्तु पूरी तरह से दूर नही किया जा सकता इसीलिये मिल ने उपरोक्त दोष को अन्वय विधि की लाक्षणिक अपूर्णता माना है।

(ख) सयुक्त विधि का प्रयोग—अन्वय विधि के उपरोक्त दोष को दूर करने के लिए तर्कशास्त्रियो द्वारा प्रस्तावित एक अन्य उपाय संयुक्त विधि का इस्तेमाल है। सयुक्त विधि मे भावात्मक दृष्टान्तो के समान अभावात्मक उदाहरणो पर भी विचार किया जाता है। जहाँ भावात्मक उदाहरण यह दिखलाते है कि गवेषणीय तथ्य के उपस्थित होने पर कोई अन्य तथ्य भी उपस्थित रहता है, वहाँ अभावात्मक उदाहरण यह दिखलाते है कि गवेषणीय तथ्य के अनुपस्थित होने पर वह विशेष परिस्थिति भी अनुपस्थित रहती है। इस प्रकार भाव और अभाव दोनो स्थितियो

मे साथ-साथ होने के कारण गवेषणीय तथ्य और समान रूप से पाई जाने वाली परिस्थिति मे कार्यकारण सम्बन्ध माना जा सकता है। संयुक्त विधि का प्रयोग करने के लिये इतने अधिक अभावात्मक उदाहरण एकत्रित किये जाते हैं कि भावात्मक उदाहरणो मे समान रूप से उपस्थिति रहने वाली परिस्थिति के अतिरिक्त अन्य सब परिस्थितियाँ उनमे आ जाती है। इस प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि इन सब परिस्थितियो के उपस्थित होने के बावजूद भी कार्य उपस्थित नही था। इसमे यह सिद्ध होता है कि ये परिस्थितियाँ कारण नही हो सकती। अस्तु, भावात्मक उदाहरणो मे समान रूप से उपस्थित परिस्थिति का कारण होना सिद्ध हो जाता है। सयुक्त विधि को पृथक विधि माना जाने के कारण इससे अन्वय विधि की कठिनाई दूर नही होती।

(४) **पूर्ववर्ती और अनुवर्ती का भेद स्पष्ट न होने पर असफलता**—अन्वय विधि का प्रयोग करने के लिये यह आवश्यक है कि दिये गये उदाहरणों मे पूर्ववर्ती और अनुवर्ती का भेद स्पष्ट हो किन्तु कभी-कभी यह भेद स्पष्ट नही होता जिसके कारण इस विधि मे सहअस्तित्व को ही कारणता मान लिया जाता है। घटनाओ मे पूर्ववर्ती और अनुवर्ती अवस्थाओ का भेद स्पष्ट नही होता जैसे स्विच का दवाना बिजली का प्रकाश होने की नियत पूर्ववर्ती घटना है जबकि यह बिजली के प्रकाश का पर्याप्त कारण नही है।

(५) **पेचीदा घटनाओ में कठिनाई**—अन्वय विधि के उपरोक्त दोष के विवेचन से स्पष्ट है कि जहाँ पर किसी घटना की पूर्ववर्ती उपाधियो मे अनेक पूर्ववर्ती उलझे हुये हो वहाँ यह विधि काम नही दे सकती। दूसरे शब्दों मे, कार्य सकरता मे अन्वय विधि का प्रयोग नही किया जा सकता। इस विधि का प्रयोग करने के लिये यह आवश्यक है कि विशेष घटना के साथ सभी उदाहरणो मे एक ही स्थिति विद्यमान हो। दूसरी ओर जटिल घटना मे जटिल घटना के साथ अनेक कारण उपस्थित होते हैं और जटिल घटना मे भी अनेक कार्य उलझे हुए होते हैं। अस्तु, यह निश्चित करना सम्भव नही होता कि किस कार्य का कौन सा कारण है।

(६) **अनिरीक्षण की सम्भावना**—अन्वय विधि मे एक व्यावहारिक दोष यह बतलाया जाता है कि इसमे यह विश्वास करना असम्भव है कि हम सभी पूर्ववर्तियो को जान गये है। इससे सदैव अनिरीक्षण की सम्भावना बनी रहती है क्योकि सभी घटनाओं और स्थितियो का निरीक्षण व्यक्ति के हाथ मे नही होता। प्रकृति मे अनेक उदाहरण परस्पर उलझे हुये होते है, अनेक घटनाये बाहर से समान होने पर भी वास्तव मे समान नही होती। अनेक घटनायें पेचीदा होती है और उनमे अनेक अनेक उदाहरण परस्पर उलझे हुये होते है, अनेक घटनाये बाहर से समान होने पर भी वास्तव मे समान नही होती। अनेक घटनायें पेचीदा होती है और उनमे अनेक कार्य उलझे हुये होते है। चूँकि अवन्य विधि मे प्रयोग की सम्भावना बहुत ही कम होती है और यह मुख्य रूप से निरीक्षण की विधि है इसलिये इसके द्वारा सभी उदाहरणों मे सभी बातो का पता लगाना सम्भव नही होता। अनिरीक्षण की सम्भावना बढ जाने से इस विधि का प्रयोग करने मे भूल की सम्भावना बढ जाती है।

अन्वय विधि के उपरोक्त गुण दोषो की विवेचना से यह निष्कर्ष निकलता

है कि यह विधि कारण सम्बन्ध का सुझाव मात्र देती है। इससे कारण सम्बन्ध सिद्ध नही होता। वैज्ञानिक विधि मे अन्वय को प्रथम सोपान माना जा सकता है किन्तु अन्तिम सोपान नही कहा जा सकता। सच तो यह है कि वैज्ञानिक विधि के रूप मे इसका अधिक महत्व नही है। कॉफी के शब्दो मे, "इसका मुख्य उपयोग इस बात मे है कि यह सत्यापन के लिये एक परिकल्पना के रूप मे कारण सम्बन्ध का सुझाव देती है।"[1] इसीलिये इस विधि को उपपत्ति (Proof) की विधि न मानकर खोज की विधि माना गया है। अन्वय विधि मे परिस्थितियों मे परिवर्तन का बहुत मूल्य है। इसके प्रयोग के लिये घटना के अधिक से अधिक उदाहरण मिलने चाहिये ताकि अप्रासंगिक और अनावश्यक उपाधियो का अधिक से अधिक निराकरण किया जा सके। उदाहरणो की सख्या अधिक होने पर कार्यकारण सम्बन्ध पता लगाने की सम्भावना बढ़ जाती हैं। उदाहरणो की संख्या बढने से और परिस्थितियों के परिवर्तन से अन्वय विधि के पीछे बतलाये गए दोषो मे से अनेक दोष दूर किये जा सकते है।

अन्वय विधि और साधारण गणनात्मक आगमन

अन्वय विधि मे दो तथ्यो मे कारण सम्बन्ध खोजा जाता है। उदाहरण के लिये मलेरिया बुखार के उदाहरणो मे प्रत्येक दृष्टान्त मे मच्छर का काटना, बुखार का पूर्ववर्ती है जिससे अन्वय विधि के द्वारा मच्छर के काटने को मलेरिया का कारण माना जाता है। साधारण गणनात्मक आगमन (Induction by Simple Enumeration) के अनुभव के आधार पर सामान्य सिद्धान्त निकाला जाता है। जब कभी दो तथ्य सदैव साथ-साथ देखे जाते है और उनके अलग होने का कोई दृष्टान्त नही मिलता तो यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि ये तथ्य परस्पर सम्बन्धित है। उदाहरण के लिये कौवे का रग सदैव काला देखा जाता है इसलिये यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि सब कौवे काले होते है। किन्तु अन्वय विधि और आशिक गणनात्मक आगमन मे भावात्मक उदाहरणो की समानता होते हुए भी महत्वपूर्ण अन्तर है, आशिक गणनात्मक आगमन मे निरास करने का प्रयत्न नही किया जाता जबकि प्रायोगिक विधि के रूप मे अन्वय विधि अप्रासगिक तथ्यो का निरास करने पर निर्भर है। दूसरे, जबकि आँशिक गणनात्मक आगमन मे उदाहरणो का चुनाव नही होता, अन्वय विधि मे उदाहरणो का चुनाव होता है वैज्ञानिक दृष्टि से अन्वय विधि साधारण गणनात्मक आगमन से अधिक वैज्ञानिक मानी जाती है।

अन्वय और व्यतिरेक की संयुक्त विधि

अन्वय और व्यतिरेक की सयुक्त विधि की व्याख्या करते हुए मिल ने लिखा है, "यदि किसी तथ्य के होने के दो या अधिक उदाहरणो मे केवल एक परिस्थिति समान है जबकि उसके न होने के दो या अधिक उदाहरणो मे उस परिस्थिति के अभाव के अतिरिक्त कोई भी बात समान नही है तो जिस परिस्थिति का उदाहरणो के दोनो समूहो मे अन्तर है वह दिये हुये

संयुक्त विधि की व्याख्या

1. "Its chief utility lies in the fact that it suggests a causal connection as a hypthesis for verification." —Coffey

तथ्य का कारण या कार्य या कारण का अनिवार्य अंश है।"[1] अन्वय और व्यतिरेक की संयुक्त विधि को उभयान्वय विधि (Double Agreement Method) भी कहा गया है क्योकि इनमे अन्वय विधि को दो वार प्रयोग किया जाता है एक तो उपस्थिति में अन्वय और दूसरे अनुपस्थिति मे अन्वय। जैसाकि उपरोक्त व्याख्या से स्पष्ट है, अन्वय विधि के प्रयोग मे ऐसे उदाहरणो का निरीक्षण किया जाता है जिनमे केवल एक परिस्थिति सामान्य रूप से मौजूद है। यह अन्वय विधि का भावात्मक रूप है। अभावात्मक रूप से इस विधि मे ऐसे उदाहरणो का निरीक्षण किया किया जाता है जिनमे दिया हुआ तथ्य मौजूद नही है। मिल ने इस विधि को अन्वय विधि का ही विस्तार और सुधार माना है और इसे उपपत्ति की कोई स्वतन्त्र विधि नही माना।

मिल द्वारा उदाहरण

अन्वय और व्यतिरेक की सयुक्त विधि को समझाने के लिये मिल ने एक उदाहरण दिया है। हम देखते है कि जो चीजे गर्मी को शीघ्रतापूर्वक अपने बाहर निकाल देती हैं उन्ही पर ओस गिरती है जवकि दूसरी ओर उन चीजो पर ओस नही गिरती जो गर्मी को शीघ्र अपने अन्दर से नही निकालती अर्थात् जिनमे गर्मी शीघ्रता से नही फैलती। इन अभावात्मक और भावात्मक उदाहरणों के निरीक्षण से यह निष्कर्ष निकलता है कि ओस पड़ने का कारण गर्मी का शीघ्रता से बाहर निकलना या फैलना है।

फाउलर द्वारा उदाहरण

फाउलर ने इस विधि को समझाने के लिये उदाहरण दिया है। यदि मुझे यह मालूम हो कि एक विशेष प्रकार का भोजन करने पर मुझे नियत रूप से एक विशेष प्रकार की पीड़ा होती है जवकि उस भोजन को छोड़ देने पर मेरी वह पीड़ा भी दूर हो जाती है, तो मेरा यह विश्वास कि वह भोजन ही मेरी पीड़ा का कारण है, दूना हो जाता है। वैल्टन और मोनाहन ने इस विधि का उदाहरण देते हुये लिखा है कि मान लीजिये कि एक मनुष्य को नीद न आने का रोग है और वह उसका कारण पता लगाने का प्रयास करता है। रोग के कारण किसी हद तक किसी अनिश्चित प्रकार के है और अन्वेषण का क्षेत्र विस्तृत है। अब वह जिन रात्रियो मे उसे नीद नही आई उनकी तुलना उन रात्रियों के साथ करना प्रारम्भ करेगा जिनमे उसने सतोषप्रद आराम का अनुभव किया है। मान लीजिये कि उसे यह ज्ञात है कि नीद न आने की पूर्ववर्ती अवस्थाओ मे जैसे कि रात को अधिक देर तक जागते रहना, देर तक अध्ययन करना, विभिन्न प्रकार के पेय और भोज्य पदार्थ और चिन्ता आदि सभी बाते केवल तेज कहवा पीने को छोडकर साधारणतया अच्छी नीद आने वाली रात्रियो मे भी मौजूद थी तो इससे उसे यह सकेत हो जाता है कि यह पीछे की बात ही उसकी वह अड़ियल आदत है जिसको तोड़ना अनिद्रा रोग को दूर करने के लिये जरूरी है।

वैल्टन और मोनाहन द्वारा उदाहरण

---

1 "If two or more instances in which the phenomena occurs have only one circumstance in common, while two or more instances in which it does not occur have nothing in common save the absence of that circumstance, the circumstance in which alone the two sets of instances differ is the effect, or the cause, or an indispensable part of the cause, of the phenomena."
—Mill.

अन्वय और व्यतिरेक की सयुक्त विधि को मिल व्यतिरेक की परोक्ष विधि (Indirect Method of Difference) भी कहता है क्योकि इसमे प्रयोग से अभावात्मक उदाहरण प्राप्त नही होते बल्कि परोक्ष रूप से यह दिखाकर उदाहरण प्राप्त किये जाते है कि यदि प्रयोग किये जा सकते तो क्या परिणाम होता। इस प्रकार चूँकि इस विधि मे भावात्मक और अभावात्मक दोनो ही प्रकार के उदाहरणो पर विचार किया जाता है इसलिये यह व्यतिरेक की विधि कही जाती है किन्तु वास्तव मे इस विधि को यह नाम देना उपयुक्त नही है क्योकि इसमे मुख्य प्रक्रिया अन्वय की ही है। दूसरी ओर इसे अन्वय की दोहरी विधि (Double Method of Agreement) या उभयान्वय विधि (Method of Double Agreement) कहना अधिक उपयुक्त होगा क्योकि इसमे उपस्थिति और अनुपस्थिति दोनो का दोहरा अन्वय होता है।

अन्वय विधि के साथ तुलना

अन्वय विधि के साथ तुलना करने पर उभयान्वय विधि मे निम्नलिखित विशेषताये देखी जाती है—

(१) **अधिक विश्वसनीयता**—उभयान्वय विधि अन्वय विधि की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय है क्योकि इसमे उपस्थिति और अनुपस्थिति दोनो प्रकार के उदाहरणो मे अन्वय विधि का प्रयोग किया जाता है। चूँकि अन्वय विधि के समान यह भी मुख्य रूप से निरीक्षण की विधि है और प्रयोग की विधि नही है इसलिए इसके द्वारा लगाये गये अनुमान भी सम्भावना मात्र होते है, पूरी तरह से विश्वसनीय नही होते इसका एक कारण यह भी है कि व्यावहारिक जीवन मे पूरी तरह से भावात्मक अभावात्मक उदाहरणो को प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। फिर भी इस विधि के द्वारा लगाये गये अनुमान अन्वय विधि पर आधारित अनुमानो की तुलना मे अधिक विश्वसनीय होते है क्योकि इसमे निष्कर्ष की दोहरी पुष्टि हो जाती है, एक तो भावात्मक उदाहरणो से और दूसरे अभावात्मक उदाहरणो से।

(२) **कारण बहुत्व को दूर करने का प्रयास**—अन्वय विधि की तुलना मे सयुक्त विधि का एक अन्य लाभ यह है कि इसमे कारण बहुत्व की सम्भावना को दूर करने का प्रयास किया जाता है। अन्वय विधि मे कारण बहुत्व की स्थिति मे सही निष्कर्ष नही निकाले जा सकते। यह कठिनाई संयुक्त विधि से दूर की जा सकती है क्योकि इसमे कारण की उपस्थिति और अनुपस्थिति दोनो प्रकार के उदाहरणो पर विचार किया जाता है। यदि अभावात्मक उदाहरण क्रमश बढाये जाये और सभी सम्भव अभावात्मक उदाहरणो का निरीक्षण किया जाये तो कारण बहुत्व की सम्भावना का पूर्ण निराकरण किया जा सकता है। किन्तु व्यावहारिक कठिनाई यह है कि सभी अभावात्मक उदाहरणों को एकत्रित करना सम्भव नही होता। अस्तु, यद्यपि सयुक्त विधि से कारण बहुत्व की सम्भावना कम हो जाती है परन्तु वह पूरी तरह से दूर नही होती।

व्यतिरेक विधि

व्यतिरेक विधि की व्याख्या करते हुए तर्कशास्त्री मिल ने लिखा है, "यदि एक उदाहरण जिसमे दिया हुआ तथ्य हो और एक उदाहरण जिसमे दिया हुआ तथ्य न हो, ऐसे हो कि उस परिस्थिति को छोडकर जो कि केवल पहले दृष्टान्त मे मौजूद है शेष सब परिस्थितियाँ दोनो दृष्टान्तो मे बिलकुल समान हो तो जिस

परिस्थिति का दोनो मे अन्तर है वह दिये हुये तथ्य का कार्य या कारण या कारण का आवश्यक अश है।"[1] मैलोन ने व्यतिरेक विधि की परिभाषा करते हुए लिखा है, "जब किसी कारक को जोडने से कोई नई बात प्रकट होती है या उसे घटाने से कोई बात लुप्त हो जाती है और शेष परिस्थितियाँ वैसी ही रहती है तब वह कारक उस बात से कारण सम्बन्ध रखता है।"[2]

उपरोक्त व्याख्याओ से स्पष्ट है कि व्यतिरेक विधि के दो रूप होते है या तो हम पूर्ववर्तियो के साथ कोई कारक जोड देते है जिसके परिणामस्वरूप अनुवर्तियो मे कोई नई बात उत्पन्न हो जाती है अथवा हम पूर्ववर्तियो से कोई कारक निकाल देते है जिससे अनुवर्तियो मे कोई बात घट जाती है। इस प्रकार व्यतिरेक विधि मे दो दृष्टान्त लिये जाते है। प्रत्येक उदाहरण मे पूर्ववर्ती समूह रहता है। दोनो उदाहरणो मे एक ही परिस्थिति का अनुभव होता है जो कि पहले उदाहरण मे उपस्थित रहती है और दूसरे उदाहरण मे अनुपस्थिति रहती है। इससे यह निष्कर्ष निकाल लिया जाता है कि अनुवर्तियो के समूहो का अन्तर पूर्ववर्तियो के समूहो के अन्तर के कारण है। सक्षेप मे, व्यतिरेक की विधि इस नियम पर आधारित है कि जिस वस्तु को गवेषणीय तथ्य मे अन्तर उत्पन्न किए बिना नही छोडा जा सकता उसका उस तथ्य से कारण सम्बन्ध होना चाहिए। दूसरे शब्दो मे, यदि किसी परिस्थिति को निकाल देने से गवेषणीय तथ्य भी नही रहता तो अन्य बाते वही रहने पर इस परिस्थिति और गवेषणीय तथ्य मे कारण सम्बन्ध होना चाहिये। जैसाकि इस विधि के नाम से मालूम पडता है, इसमे दो ऐसे उदाहरणो की तुलना की जाती है जिनमे केवल एक ही बात का अन्तर होता है। इसीलिये कॉफी और मैलोन ने इस विधि को एकान्त व्यतिरेक की विधि कहा है। यहाँ अन्वय की विधि मे अनेक दृष्टान्तो मे किसी एक बात मे अन्तर होता है।

व्यतिरेक की विधि को समझाने के लिये निम्नलिखित कुछ उदाहरणो से सहायता मिलेगी—

(१) यदि हवा से भरे हुए एक बर्तन मे घण्टी बजाई जाए तो घण्टी की आवाज सुनाई पडती है। अब यदि उस बर्तन मे से हवा निकाल ली जाए तो घण्टी बजाने से कोई आवाज सुनाई नही देती। अत: स्पष्ट है कि आवाज सुनाई देने का कारण हवा की उपस्थिति है।

(२) यदि कोई व्यक्ति सर्प के काट लेने से मर जाता है और सर्प काटने के पहले वह जीवित था तो यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि सर्प के काटने के कारण ही उसकी मृत्यु हुई है।

(३) पानी पीने से पूर्व हमे तीव्र प्यास लगी होती है, पानी पीने के बाद

---

1 "If an instance in which the phenomenon under investigation occurs, and an instance in which it does not occur have every circumstance in common save one, that one occuring only in the former, the circumstance in which alone the two instances differ is the effect, or the cause or an indispensable part of the cause, of the phenomena" —Mill.

2. "When the addition of an agent is followed by the appearance, or its subtraction by the disappearance, of a certain event, other circumstances remaining the same, the agent is causally connected with the event"

—Mellone

हमारी प्यास बुझ जाती है। इससे हम यह यह निष्कर्ष निकालते हैं कि पानी पीने से प्यास बुझती है।

(४) सूर्य उदय होने से रोशनी और गर्मी उत्पन्न होती है, सूर्यास्त हो जाने पर अन्धकार हो जाता है और गर्मी भी कम होती है। इससे यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि सूर्य प्रकाश और ताप का कारण है।

(५) एक पानी से भरे गिलास का रग श्वेत है। अब यदि इसमे शीशी से रग डाल दिया जाता है तो वह लाल हो जाता है। इससे यह निष्कर्ष निकाला जाता कि शीशी मे रखे पदार्थ ने गिलास के पानी का रग लाल कर दिया।

व्यतिरेक विधि के गुण

सक्षेप मे व्यतिरेक विधि के मुख्य गुण निम्नलिखित है—

(१) **कार्यकारण सम्बन्ध सिद्ध करने की क्षमता**—जैसा कि पीछे बतलाया जा चुका है, अन्वय विधि की तुलना मे व्यतिरेक विधि से कार्य-कारण सम्बन्ध अधिक निश्चित रूप से मालूम पडता है क्योकि इसमे भावात्मक और अभावात्मक दोनो प्रकार के उदाहरणो को लिया जाता है। इसीलिए यह विधि मौलिक वैज्ञानिक विधि मानी जाती है।

(२) **उपकल्पनाओं की परीक्षा करने की क्षमता**—व्यतिरेक विधि के द्वारा उपकल्पना की पूरी तरह परीक्षा की जा सकती है क्योकि इसमे भावात्मक और अभावात्मक दोनो प्रकार के उदाहरणो की जाच की जाती है। जब कि अन्वय विधि के द्वारा जाच करने से उपकल्पना के सत्य या असत्य होने की सम्भावना मात्र होती है, व्यतिरेक विधि से जाच करने पर उपकल्पना का सत्यासत्य सिद्ध होता है।

(३) **कारणबहुत्व की स्थिति में भी भूल की सम्भावना न होना**—जबकि अन्वय विधि के प्रयोग मे कारण बहुत्व की स्थिति मे अप्रासगिक स्थिति को कारण मान लेने की सम्भावना होती है, व्यतिरेक विधि मे यह सम्भावना नही होती किन्तु शर्त यह है कि इस विधि का ठीक-ठीक प्रयोग किया जाना चाहिये। इस प्रकार कारण बहुत्व की स्थिति मे भी व्यतिरेक विधि मे भूल की सम्भावना कम है।

(४) **केवल दो उदाहरणों की आवश्यकता**—जबकि अन्वय विधि मे जितने ही अधिक उदाहरण होते हैं, निष्कर्ष के सत्य होने की सम्भावना उतनी ही अधिक बढ जाती है व्यतिरेक विधि मे केवल दो ही उदाहरण पर्याप्त होते है किन्तु इन उदाहरणो का विशेष प्रकार का होना आवश्यक है। अर्थात् दोनो मे अन्य बाते समान होते हुए एक ही कारक की उपस्थिति या अनुपस्थिति होनी चाहिये।

व्यतिरेक विधि के दोष

वैज्ञानिक विधि के रूप मे व्यतिरेक विधि मे मुख्य दोष या त्रुटियाँ अग्र-लिखित हैं—

(१) **कारण के किसी अश को कारण मान लेना**—व्यतिरेक विधि मे कारण के किसी अश को कारण मान लेने की भूल हो जाती है। उदाहरण के लिये यदि कुल्हाडी से किसी पेड की डाल पर आघात किया जाये और वह डाल भूमि पर गिर पडे तो इसमे व्यतिरेक विधि से यह निकाला जायेगा कि कुल्हाडी का

आघात डाल के पेड से गिरने का कारण है क्योकि उससे पहले डाल पेड पर लगी हुई थी और उसके बाद डाल पेड से गिर पडी। किन्तु यदि ध्यान से देखा जाये तो कुल्हाडी का आघात डाल के पेड़ से गिरने का पूरा कारण नही है वल्कि कारण का अश मात्र है क्योंकि पेड़ से डाल के भूमि पर गिरने का मुख्य कारण पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण है।

(२) **कारण को मुक्त करने वाली उपाधि को कारण मान लेना**—व्यतिरेक विधि मे कारण और उपाधि मे भेद नही किया जाता जवकि इनमे स्पष्ट भेद है। उदाहरण के लिये यदि खाने की वस्तु स्वादिष्ट नही है और थोड़ा सा नमक डालने से वह स्वादिष्ट हो जाती है तो यहाँ पर यह निष्कर्ष निकालना अनुचित होगा कि वस्तु का स्वादिष्ट होना नमक के ही कारण है क्योंकि नमक तो केवल एक उपाधि है। इसी तरह विजली का वटन दवाने से कमरे मे रोशनी हो जाती है और वटन दवाने से पहले कमरे मे अन्धकार था। इससे व्यतिरेक विधि के द्वारा यह निष्कर्ष निकाला जायेगा कि विजली का वटन दवाना कमरे मे रोशनी का कारण है जवकि वस्तुस्थिति ऐसी नही है। वास्तव में कमरे मे रोशनी का कारण विद्युत धारा का अवरोध हट जाना है। वटन दवाना इस अवरोध के हटने की एक उपाधि मात्र है। इसीलिये तो विद्युत धारा न होने पर केवल वटन दवाने मात्र से कमरे मे रोशनी नही होती।

(३) **कारण वहुत्व की सम्भावना का निराकरण नही होता**—जैसा कि उपरोक्त दोनो त्रुटियों से स्पष्ट होता है व्यतिरेक विधि मे अनुवर्ती और पूर्ववर्ती का तो पता चल सकता है किन्तु कारण वहुत्व की सम्भावना का निराकरण नही होता। इसके आधार पर यह नही कहा जा सकता कि अमुक कारण अमुक कार्य का एकमात्र कारण भी हो सकते है। हो सकता है कि भावात्मक और अभावात्मक उदाहरणों मे जो परिस्थिति समान रूप से मौजूद हो वह आकस्मिक परिस्थिति मात्र हो और अलग-अलग उदाहरणो मे अलग-अलग कारण दिखलाई दे। दो उदाहरणो मे अन्य वातें समान होने पर और किसी एक ही वात का अन्तर होने पर जो अन्तर दिखलाई पड़ता है वह तो उस वात के कारण माना जा सकता है किन्तु इससे यह सिद्ध नही होता कि अन्य उदाहरणो मे भी ऐसा ही होना आवश्यक है। सच तो यह है कि व्यतिरेक विधि से केवल इतना ही सिद्ध होता है कि दिये हुए उदाहरण में एक विशेष पूर्ववर्ती कारण है। उससे यह सिद्ध नही होता कि अन्य उदाहरणो मे भी वही कारण होना चाहिये। स्पष्ट है कि व्यतिरेक विधि कारण वहुत्व की सम्भावना का निराकरण नही करती।

(४) **कार्य से कारण की ओर जाने में कठिनाई**—प्रायोगिक विधि होने के कारण व्यतिरेक विधि मे कारण से कार्य की ओर तो जा सकते है किन्तु कार्य से कारण की ओर जाना सम्भव नही है क्योंकि कार्य पर हमारा नियन्त्रण नही होता। इस वात को स्पष्ट करते हुए मैलोन ने लिखा है कि व्यतिरेक विधि का प्रयोग कारण पक्ष मे कुछ जोड़कर या घटाकर उसके कार्य का पता लगाने मे किया जा सकता है किन्तु कार्य से कारण का पता लगाने मे नही किया जा सकता।

(५) **प्रयोग का संकुचित क्षेत्र**—व्यतिरेक विधि की उपरोक्त त्रुटियो से स्पष्ट है कि इसके प्रयोग का क्षेत्र अत्यन्त सीमित है। अनेक घटनाओ मे नैतिक या सामाजिक दृष्टि से प्रयोग करना उचित नही माना जाता। उदाहरण के लिये

बालको के व्यक्तित्व पर माता-पिता की अनुपस्थिति का प्रभाव देखने के लिये उन्हे अनाथ नही बनाया जा सकता । दूसरी ओर समाज विज्ञानो मे अनेक घटनाये ऐसी होती है जिन पर प्रयोग करना असम्भव होता है क्योकि इन घटनाओ मे नियन्त्रण नही किया जा सकता । समाजशास्त्र के क्षेत्र मे इसके अनेक उदाहरण पाये जा सकते है । अस्तु, प्रयोग विधि का क्षेत्र अत्यन्त सीमित है और इसीलिये व्यतिरेक विधि का क्षेत्र भी अत्यन्त सीमित है ।

(६) **काकतालीय दोष की सम्भावना**—सामान्य निरीक्षण मे व्यतिरेक विधि का प्रयोग करने से काकतालीय दोष (Post Hoc Ergo Propter Hoc) उत्पन्न होने की सम्भावना होती है । उदाहरण के लिये यदि किसी व्यक्ति के घर से निकल जाने पर चोरी की घटनाये नही होती तो केवल इसी से यह निष्कर्ष नही निकाला जाता कि वही व्यक्ति चोरी की घटनाओ का कारण था । यदि आकाश मे किसी पुच्छल तारे के उदय होने के बाद देश मे अकाल पड जाता है तो उससे यह अनुमान नही लगाना चाहिए कि पुच्छल तारा ही अकाल का कारण है यद्यपि व्यतिरेक विधि से उसे कारण कहा जा सकता है क्योकि उसकी अनुपस्थिति मे अकाल नही था और उसकी उपस्थिति मे अकाल था । काकतालीय दोष वहाँ होता है जहाँ किसी आकस्मिक पूर्ववर्ती घटना को केवल पूर्ववर्ती होने के कारण ही अनुवर्ती घटना का कारण मान लिया जाता है । जैसाकि इसके नाम से स्पष्ट है यह दोष ताली बजाने से काक अथवा कौवे के उड जाने को सम्बन्धित करता है । यदि हमारे ताली बजाते ही कौआ उड जाता है तो इससे यह नही कहा जा सकता है कि उसके उड जाने का कारण ताली का बजाना है । इस अनुमान मे काक-तालीय दोष है ।

व्यतिरेक विधि में आवश्यक बातें

उपरोक्त दोषो के बावजूद भी व्यतिरेक विधि मूल रूप मे प्रायोगिक विधि है और वैज्ञानिक विधियों मे उसका बडा ऊँचा स्थान है । व्यतिरेक विधि मे लाभ उठाना बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि उसे ठीक प्रकार से प्रयोग किया जाये । इस सम्बन्ध मे निम्नलिखित बातो को याद रखना आवश्यक है—

(१) **एक काल में एक ही स्थिति में अन्तर करना**—व्यतिरेक विधि का प्रयोग करने मे एक काल मे एक ही अन्तर किया जाना चाहिये अर्थात् एक ही स्थिति जोड़नी या घटानी चाहिये । उदाहरण के लिये यदि कोई रोगी रोग दूर करने के लिये एक साथ ही कई प्रकार की औषधियाँ लेता है, पथ्य का सेवन करता है और आराम करता है तो यह निश्चय नही किया जा सकता कि उसका रोग किस दवा से दूर हुआ है अथवा उसमे आराम या पथ्य के सेवन का कितना महत्व है । रोग दूर होने और दवा देने मे कार्य कारण सम्बन्ध तभी माना जा सकता है जबकि एक ही औषधि दी जाये ।

(२) **कारण को मुक्त करने वाली उपाधि का निश्चय**—व्यतिरेक विधि का प्रयोग करने मे यह ध्यान रखना चाहिये कि दो उदाहरणो मे समान रूप से उपस्थित या अनुपस्थित परिस्थिति कहीं कारण को मुक्त करने वाली परिस्थिति तो नही है जिससे कि इस परिस्थिति को कारण मान लिया जाये ।

(३) **काल क्रम पर ध्यान**—व्यतिरेक विधि से काम लेने मे काल क्रम का ध्यान रखना आवश्यक है । इसमे कारण और कार्य के उदाहरण मे समय का अन्तर

इतना कम होना चाहिये कि उसके व्यवधान में कोई अन्य घटना न हो जाये। तभी कारण का पता लगाया जा सकता है। उदाहरण के लिये यदि किसी व्यक्ति को कोई रोग हो जाने पर कोई औषधि दी जाये और उसके कई माह बाद वह अच्छा हो जाये या उसकी मृत्यु हो जाये तो इससे रोग के दूर होने या रोगी की मृत्यु हो जाने का सम्बन्ध औषधि से नही जोडा जा सकता क्योंकि औषधि के सेवन के पश्चात् कई माह के व्यवधान से उस व्यक्ति के स्वास्थ्य को बनाने या बिगाडने की न जाने कितनी बातें हुई होगी।

व्यतिरेक विधि और अन्वय की तुलना

व्यतिरेक विधि के गुण दोषो की पीछे दी गई व्याख्या से अन्वय विधि की तुलना मे उसके गुण दोष स्पष्ट होते है। सक्षेप मे इन दोनो विधियो मे निम्नलिखित अन्तर के कारण व्यतिरेक विधि को अन्वय विधि से अधिक उपयोगी माना जा सकता है—

(१) **कार्य कारण सम्बन्ध सिद्ध करने की क्षमता**—व्यतिरेक विधि मे अन्वय विधि से कार्य कारण सम्बन्ध सिद्ध करने की क्षमता अधिक होती है।

(२) **उपकल्पनाओं की परीक्षा करने की क्षमता**—अन्वय विधि की तुलना मे व्यतिरेक विधि मे उपकल्पनाओ की परीक्षा करने की क्षमता अधिक है।

(३) **कारण बहुत्व की स्थिति में भी भूल की कम सम्भावना**—जबकि कारण बहुत्व की स्थिति मे अन्वय विधि का प्रयोग दूषित होता है व्यतिरेक विधि में भूल की सम्भावना कम होती है यद्यपि इसमे कारण बहुत्व की सम्भावना का पूर्ण निराकरण नही होता।

(४) **केवल दो उदाहरणो की आवश्यकता**—जबकि अन्वय विधि के प्रयोग मे जितने ही अधिक उदाहरण हों उतना ही अच्छा समझा जाता है, व्यतिरेक की विधि के प्रयोग के लिये केवल दो उदाहरण होना पर्याप्त होता है। इनमे से एक उदाहरण भावात्मक और दूसरा अभावात्मक होता है।

(५) **प्रयोगात्मक विधि**—जब कि अन्वय विधि मुख्य रूप से निरीक्षण की विधि है व्यतिरेक विधि मूल रूप से प्रायोगिक विधि है। इसमे मुख्य रूप मे परीक्षण किया जाता है।

व्यतिरेक विधि और उभयान्वय विधि

व्यतिरेक विधि और उभयान्वय विधि मे समानता होने के कारण कभी-कभी दोनो मे अन्तर करना कठिन होता है। इन दोनो विधियो मे उदाहरणो का एक समूह भावात्मक और निषेधात्मक होता है। दोनो ही विधियो मे सामूहिक रूप मे एक ही बात के अन्तर पर ध्यान दिया जाता है। किन्तु फिर भी इन दोनो विधियो में निम्नलिखित स्पष्ट अन्तर है—

(१) जब कि व्यतिरेक विधि मे एक अभावात्मक और एक भावात्मक दो ही उदाहरण पर्याप्त होते है उभयान्वय विधि मे कम से कम चार उदाहरण होते है अर्थात् दो भावात्मक और दो निषेधात्मक उदाहरण होने आवश्यक है।

(२) जब कि व्यतिरेक विधि मे उदाहरणो मे अन्वय सम्बन्ध नही होता, उभयान्वय विधि मे दो बार अन्वय सम्बन्ध देखा जाता है।

(३) जब कि व्यतिरेक विधि परीक्षण की विधि है, उभयान्वय विधि निरीक्षण की विधि है।

(४) उभयान्वय विधि की तुलना मे व्यतिरेक विधि की शर्तों को पूरा करना अति कठिन है और यह कार्य परीक्षण मे ही सम्भव होता है ।

(५) शर्ते पूरी होने पर व्यतिरेक विधि उभयान्वय विधि से कही अधिक विश्वसनीय सिद्ध होती है । उपरोक्त पाँचो अन्तरो से स्पष्ट है कि वाह्य रूप से समानता होने के बावजूद व्यतिरेक विधि और उभयान्वय विधि मे पर्याप्त अन्तर है।

सहचारी परिवर्तन की विधि

सहचारी परिवर्तन विधि प्रायोगिक विधियो मे से एक मुख्य विधि है। इसकी परिभाषा करते हुए मिल ने लिखा है, "जब भी कोई तथ्य किसी विशेष प्रकार से परिवर्तित होता है तब जो तथ्य उसके साथ उसी प्रकार से परिवर्तित होता है, वह पहले तथ्य का कार्य या कारण है या किसी अन्य प्रकार से उसके साथ कारण सम्बन्ध रखता है ।"[1] मिल की इस परिभाषा से सहचारी परिवर्तन विधि मे निम्नलिखित विशेषताये स्पष्ट होती है—

परिभाषा

(१) **सहचारी वृद्धि**—इस विधि का प्रयोग तब किया जाता है जब कि पूर्ववर्ती घटना की वृद्धि के साथ-साथ उसकी अनुवर्ती घटना मे भी नियत रूप से वृद्धि हो । दूसरे शब्दो मे, इसमे अनुलोम परिवर्तन होता है अर्थात् पूर्ववर्ती और अनुवर्ती एक ही दिशा मे परिवर्तित होते है ।

(२) **सहचारी न्यूनता**—यह नियम वहाँ काम करता है जहाँ पूर्ववर्ती घटना मे किसी प्रकार की न्यूनता आने के साथ अनुवर्ती घटना मे भी किसी विशेष प्रकार की न्यूनता देखी जाती है । यह भी पूर्ववर्ती और अनुवर्ती के अनुलोम परिवर्तन का एक उदाहरण है । इस प्रकार पूर्ववर्ती और अनुवर्ती मे साथ-साथ वृद्धि अथवा न्यूनता देखे जाते है ।

(३) **वृद्धि के साथ न्यूनता**—सहचारी परिवर्तनो की विधि का प्रयोग उन दशाओ मे भी होता है जिनमे पूर्ववर्ती घटना मे किसी प्रकार की वृद्धि होने के साथ साथ उसकी अनुवर्ती घटना मे भी उसी के अनुपात मे न्यूनता देखी जाती है । यह विलोम परिवर्तन का उदाहरण है अर्थात् इसमे पूर्ववर्ती और अनुवर्ती विरुद्ध दशाओ मे परिवर्तित होते है ।

(४) **न्यूनता के साथ वृद्धि**—यदि किसी पूर्ववर्ती घटना मे किसी प्रकार की न्यूनता आने पर अनुवर्ती घटना मे उसी के अनुपात से नियत रूप से वृद्धि देखी जाए तो यह सहचारी परिवर्तन का एक रूप माना जाता है । यह भी विलोम परिवर्तन का एक उदाहरण है । इस प्रकार सहचारी परिवर्तन मे पूर्ववर्ती की वृद्धि के साथ अनुवर्ती मे न्यूनता अथवा पूर्ववर्ती की न्यूनता के साथ अनुवर्ती मे वृद्धि होती है ।

मिल द्वारा दी गयी परिभाषा की उपरोक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि सहचारी परिवर्तन के द्वारा उन पूर्ववर्ती अथवा अनुवर्ती घटनाओ मे सम्बन्ध स्थापित किया जाता है जिनमे अनुलोम अथवा विलोम सहचारी परिवर्तन दिखलाई पडता है ।

---

1. "Whatever phenomenon varies in any manner whenever another phenomenon varies in some particular manner, is either a cause, or an effect of that phenomenon, or is connected with it through some of fact causation "

—Mill

यह विधि अन्वय विधि का ही एक रूपान्तर प्रतीत होती है क्योंकि इसमें पूर्ववर्ती मे परिवर्तन होने के साथ-साथ उसी दिशा मे अनुवर्ती मे भी परिवर्तन होता है। दूसरी ओर यह व्यतिरेक विधि का भी उदाहरण प्रतीत होती है क्योंकि इसमे जब कि पूर्ववर्ती मे एक दिशा मे परिवर्तन होता है अनुवर्ती मे उसके विपरीत दिशा मे परिवर्तन होता है।

सहचारी परिवर्तन विधि को समझने के लिये निम्नलिखित उदाहरणो से काम लिया जा सकता है—

(१) **पास्कल का उदाहरण**—सहचारी परिवर्तन विधि का पास्कल ने बैरोमीटर मे पारे की ऊँचाई से वायु-मण्डल का भार निश्चित करने मे प्रयोग किया

उदाहरण वह एक पहाड़ पर चढा और ज्यों-ज्यो वह ऊपर चढता गया त्यों-त्यो उसने देखा कि वायु-मण्डल का भार घटता जाता है और पारे की ऊँचाई भी घटती है। इस सहचारी परिवर्तन से पास्कल ने निष्कर्ष निकाला कि वायु-मण्डल का भार पारे की ऊँचाई का कारण है।

(२) **अल्बर्ट का उदाहरण**—अल्बर्ट ने इस विधि के द्वारा चन्द्रमा और ज्वार भाटे के बीच कारण सम्बन्ध स्थापित किया। अल्बर्ट ने यह देखा कि चन्द्रमा का आकार परिवर्तित होने के साथ-साथ ज्वार भाटे में भी परिवर्तन होता है। इससे उसने यह निष्कर्ष निकाला कि इन दोनो मे कारण सम्बन्ध है।

(३) **समाजशास्त्र के क्षेत्र में उदाहरण**—विभिन्न सामाजिक विज्ञानों मे सामान्य सिद्धान्त निकालने के लिये सहचारी परिवर्तन विधि का प्रयोग करने के उदाहरण देखे जा सकते है। यहाँ पर समाजशास्त्र से दो चार उदाहरण पर्याप्त होगे। अपराधशास्त्रियो ने यह देखा कि आवागमन बढने से किशोरापराध की दरें भी बढती है और आवागमन घटने से किशोरापराध की दरो मे भी कमी आती है इसलिये उन्होने यह निष्कर्ष निकाला कि आवागमन अथवा गतिशीलता किशोरापराध का एक कारण है। इसी प्रकार यह देखा गया कि अनाज के भाव बढने के साथ-साथ सम्पत्ति सम्बन्धी अपराधो की दरे भी बढती है और अनाज के भाव गिरने के साथ-साथ ये दरे भी गिरती है। अस्तु, अनाज के भाव का सम्पत्ति सम्बन्धी अपराध की दरों से सम्बन्ध मान लिया गया। इसी प्रकार व्यक्तिगत विघटन, पारिवारिक विघटन तथा अन्य क्षेत्रो मे सहचारी परिवर्तन के आधार पर कारणों का पता लगाया गया है।

(४) **मनोविज्ञान से उदाहरण**—मनोविज्ञान के क्षेत्र मे सहचारी परिवर्तन विधि से बहुत से सामान्य सिद्धान्त निकाले गये है। उदाहरण के लिये देखा गया है कि हताशा (Frustration) बढने से हिंसात्मक प्रवृत्ति बढती है और हताशा कम होने से हिंसात्मक प्रवृत्ति कम होती है। इससे यह निष्कर्ष निकाला गया कि हताशा और हिंसात्मकता मे कारण कार्य सम्बन्ध है। इसी प्रकार यह देखा गया कि मानसिक संघर्ष बढने से स्नायविक रोग बढते हैं और मानसिक संघर्ष कम होने से उनकी दरे घटती हैं। अस्तु, मानसिक संघर्ष को स्नायविक रोग का एक कारण मान लिया गया।

उपरोक्त उदाहरणो के अतिरिक्त अर्थशास्त्र, इतिहास, मानवशास्त्र, चिकित्सा शास्त्र, स्वास्थ्य विज्ञान, भूगोल आदि सभी विज्ञानो मे इस विधि के प्रयोग के उदा-

हरण देखे जा सकते है । अर्थशास्त्र मे माँग और पूर्ति का नियम इसी विधि के आधार पर निकाला गया है ।

सहचारी परिवर्तन विधि की विशेषताये

अव प्रश्न यह उठता है कि सहचारी परिवर्तन विधि का किन परिस्थितियो मे प्रयोग किया जा सकता है अथवा उसकी क्या विशेपताये है । इस सम्वन्ध मे निम्नलिखित विशेपताये उल्लेखनीय है—

(१) **पूर्ण निरास न होने पर भी उपयुक्त**—सहचारी परिवर्तन विधि का प्रयोग ऐसी परिस्थितियो मे भी किया जा सकता है जहाँ पर विभिन्न कारको का पूर्ण निरास सम्भव नही होता क्योकि निरास न होने पर भी सहचारी परिवर्तन देखा जाता है । स्मरण रहे कि इस प्रकार की परिस्थिति मे व्यतिरेक विधि का प्रयोग नही किया जा सकता ।

(२) **कार्यकारण मे पारिमाणिक सम्वन्ध का निश्चय**—सहचारी परिवर्तन विधि की एक अन्य विशेषता यह है कि उसके द्वारा कार्य और कारण मे पारिमाणिक सम्बन्ध निश्चित किया जा सकता है । यह विशेषता किसी भी अन्य प्रायोगिक विधि मे नही पायी जाती । अन्य विधियाँ केवल यह वतलायी है कि किस कार्य का क्या कारण अथवा किस कारण का क्या कार्य है, वे यह नही वतलाती कि कितने कारण से कितना कार्य होगा । दूसरी ओर, सहचारी परिवर्तन विधि से यह पता चलता है कि कार्य कारण मे पारिमाणिक सम्बन्ध क्या है । उदाहरण के लिये चिकित्सा शास्त्र मे जहाँ किसी रोग को दूर करने के लिये किसी विशेष औपधि की व्यवस्था होती है वहाँ यह भी निश्चित किया जाता है कि उस रोग को दूर करने के लिये वह औपधि कितनी मात्रा मे दी जानी चाहिये । इसके विना औपधि की सहायता से रोग को दूर नही किया जा सकता ।

उपरोक्त विशेपताये सहचारी परिवर्तन विधि के गुण दिखलाती है जिनसे अन्य विधियो की तुलना मे उसका महत्व स्पष्ट होता है किन्तु फिर सहचारी परिवर्तन विधि मे कुछ ऐसी त्रुटियाँ भी है जिनसे अन्य प्रायोगिक विधियाँ उसकी तुलना मे वेहतर ठहरती है । सक्षेप मे, सहचारी परिवर्तन विधि की मुख्य त्रुटियाँ निम्नलिखित है—

(१) **केवल अनुभव की सीमा मे लागू होना**—सहचारी परिवर्तन विधि केवल उन्ही तथ्यो के विपय मे लागू की जा सकती है कि जो अनुभव का विपय हो । देखी हुई सीमाओ के बाहर इसको लागू नही किया जा सकता और यदि अनुभव की सीमा के बाहर इससे कुछ निष्कर्ष निकाले भी जाते है तो उनके सत्य होने के गारण्टी नही दी जा सकती । उदाहरण के लिये कुछ घटनाओ मे यह देखा जाता है कि ताप की तीव्रता बढ़ने के साथ-साथ पानी का आयतन वढता है और ताप की मात्रा घटने के साथ-साथ पानी का आयतन घटता है । इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ताप की मात्रा और पानी के आयतन मे कारण कार्य सम्बन्ध है किन्तु यह परिवर्तन इसी प्रकार नही चलता क्योकि ३९० फारेनहाईट पर पहुँचकर ताप घटने के साथ-साथ पानी का आयतन घटने की वजाये वढने लगता है । इसी प्रकार अनेक अन्य वस्तुओ के विपय मे यह देखा जा सकता है कि किसी कारण के उपस्थित होने से एक सीमा तक तो उनमे एक ही प्रकार के

परिवर्तन होते है किन्तु उस सीमा से आगे बढ़कर परिवर्तनों का स्वरूप बदल जाता है। अत: सहचारी परिवर्तन विधि के आधार पर निकाले गये निष्कर्ष जहाँ तक अनुभव है केवल वही तक ही सही माने जा सकते है। उनसे आगे उनका सही होना आवश्यक नही है।

(२) **गुणात्मक अथवा प्रकारात्मक परिवर्तनो में अनुपयुक्त**—जबकि परिवर्तन विधि कार्य कारण मे परिमाणिक सम्बन्ध स्थापित करने की क्षमता रखती है वह गुणात्मक अथवा प्रकारात्मक परिवर्तनो मे लागू नही की जा सकती क्योकि इन परिवर्तनों के परिणामस्वरूप सर्वथा नई वस्तु बन जाती हैं। सहचारी परिवर्तन विधि का प्रयोग केवल मात्रा मे परिवर्तन होने की स्थिति मे होता है क्योकि इसमें वस्तुओ के स्वरूप मे परिवर्तन नही होता।,

(३) **कार्यों में कार्यकारण सम्बन्ध मानने की सम्भावना**—कभी-कभी सहचारी परिवर्तन विधि से सहअस्तित्व (Coexistence) रखने वाले दो कार्यो मे ही कारण कार्य सम्बन्ध मान लेने की भूल हो जाती है। उदाहरण के लिये अनुशासित जीवन बिताने से स्वास्थ्य अच्छा रहता है और दूसरे लोग भी सम्मान करते है। यहाँ पर स्वास्थ्य का अच्छा होना और सम्मान ये दोनो ही अनुशासित जीवन के कार्य है इन दोनो मे अनुशासित जीवन के साथ-साथ सहचारी परिवर्तन होता है अर्थात् जैसे-जैसे जीवन अनुशासित बनता जाता है वैसे-वैसे स्वास्थ्य भी बढता है और सम्मान भी और जैसे-जैसे अनुशासन कम होता है उसके साथ-साथ उन दोनो मे भी न्यूनता आती है। यहाँ पर यदि कोई स्वास्थ्य और सम्मान मे सहचारी परिवर्तन देखकर उनमे कार्य कारण सम्बन्ध मान ले तो यह अनुचित होगा क्योकि ये दोनो ही एक कारण के कार्य है। इसी प्रकार के सैकड़ो उदाहरण जीवन मे देखे जा सकते है जबकि किसी एक कारण के अनेक प्रभाव दिखलाई पडते है जिनमे सहचारी परिवर्तन होता है। यहाँ पर यह ध्यान रखने की बात है कि यदि सहअस्तित्व और कार्य कारण सम्बन्ध के अन्तर को ध्यान मे रखा जाए तो यह भूल नही होगी। दूसरे शब्दो मे, यह भूल सहचारी परिवर्तन विधि के असावधानी से प्रयोग के कारण होती है अन्यथा इसका होना आवश्यक नही है।

अवशेषों की विधि

प्रायोगिक विधियो मे अवशेषो की विधि एक महत्वपूर्ण विधि है। इसकी व्याख्या करते हुये मिल ने लिखा है, "किसी भी घटना से (उस घटना का) ऐसा भाग घटा दीजिये जिसका कि कुछ विशेष पूर्ववर्ती बातों का कार्य होना पूर्व आगमन से ज्ञात हो, तो घटना का शेष भाग अवशिष्ट पूर्ववर्ती बातो का कार्य है।"[1] उदाहरण के लिये यदि अ ब स पूर्ववर्ती का परिणाम क ख ग है और इसमे अ ब, क ख का कारण है तो पूर्ववर्ती का अवशेष 'स' अनुवर्ती के अवशेष 'ग' का कारण माना जा सकता है। इस बात को कुछ ठोस उदाहरणो से भी समझा जा सकता है।

परिभाषा

1 "Subtract from any given phenomenon such part as is known by previous induction to be the effect of certain antecedent, and the residue of the phenomenon is the effect of the remaining antecedent." —Mill.

जैवोन्स ने इस विधि को समझाने के लिये उदाहरण देते हुए लिखा है, रासायनिक विश्लेषण मे एक साथ सयुक्त पदार्थो का आनुपातिक भार ज्ञात करने के लिये इस विधि का प्रयोग किया जाता है। पानी के तत्वों का पता इस प्रकार लगाया जाता हे कि ताम्बा मिले हुए आक्सीजन के एक ज्ञात भार के ऊपर एक गर्म नलिका से हाइड्रोजन डाला जाता है और फिर गन्धक के एसिड की नलिका मे इस तैयार किये हुए पानी को जमाया जाता है जब हम जमाने वाली नलिका के अन्तिम भार मे से उसके प्रारम्भिक भार को घटाते है तो हमे यह पता चलता है कि कितना पानी बना है। ताँबा लिये हुये आक्सीजन के अन्तिम भार मे से उस प्रारम्भिक भार को घटा देने से आक्सीजन की मात्रा ज्ञात होती है। यदि पानी के भार मे से आक्सीजन का भार घटा दिया जाए तो हाइड्रोजन का भार मालूम हो जायेगा। बहुत सावधानी से प्रयोग करने पर हमे पता चलता है कि ९८ ८९ भाग आक्सीजन और ११ ११ भाग हाइड्रोजन मिलाने से १०० भाग पानी बनता है। साधारण जीवन मे अवशेषो की विधि का प्रयोग किसी भी वस्तु का वजन निकालने के लिये किया जाता है। यदि किसी खाली बर्तन का वजन ज्ञात है और उस बर्तन मे कोई वस्तु भरी हुई है तो वस्तु से भरे बर्तन को तोलकर और उसके वजन मे से खाली बर्तन का वजन घटाकर वस्तु का वजन जान लिया जाता है क्योकि मूल वजन का अवशेष वस्तु के वजन के बराबर होता है। गणित मे इस प्रकार के बहुत से प्रश्न हल किए जाते हैं। उदाहरण के लिये यदि किसी बर्तन का खाली वजन ५ सेर है और घी भरने पर उसका वजन २५ सेर हो जाता है तो घी का वजन बतलाइये। यदि किसी गाडी को खाली तौलने पर उसका वजन ५० मन निकलता है और सामान भरकर तौलने पर वह १०० मन वजन की ठहरती है तो गाडी मे भरे सामान का वजन क्या है? कोई व्यक्ति अपनी सम्पत्ति का एक चौथाई धार्मिक सस्था को, दूसरा एक चौथाई बड़े लडके को और तीसरा एक चौथाई अपनी पुत्री को दे देता है तो स्वय उसके पास उसकी सम्पत्ति का कोनसा भाग बचता है। इन सब प्रश्नो को अवशेषो की विधि से हल कर लिया जाता है। इस विधि का प्रयोग विशेष रूप से ऐसे क्षेत्रो मे अनुसधान के लिये किया जाता है जहाँ पर प्रत्यक्ष अनुभव से कुछ बातो का पता नही लगाया जा सकता। उदाहरण के लिए नक्षत्र विद्या मे इस विधि का महत्वपूर्ण प्रयोग किया गया है। एडम्स और ली० वेरियर नामक नक्षत्र विद्या विशारदो ने यूरेनस नामक ग्रह मे कुछ मार्ग का व्यतिक्रम देखा। यह ग्रह उनके गणित के द्वारा निश्चित ठीक मार्ग पर नही चलता था और ऐसा प्रतीत होता था कि ज्ञात नक्षत्रो के अतिरिक्त कोई अन्य नक्षत्र ऐसा है जिसकी उपस्थिति से उसके मार्ग मे व्यतिक्रम होता है। एडम्स और ली वेरियर ने यूरेनस ग्रह के व्यतिक्रम के परिणाम और प्रकार का निश्चय करके उसमे व्यतिक्रम उत्पन्न करने वाले ग्रह के ठीक स्थान का हिसाब लगाया। अब जब उन्होने दूर्बीन से उस स्थान का निरीक्षण किया तो वहाँ उन्हे नेप्चून नामक ग्रह मिल गया।

अवशेषो की विधि की विशेषतायें

उपरोक्त उदाहरणो से अवशेषो की विधि की विशेषतायें स्पष्ट होती है। इस सम्बन्ध मे निम्नलिखित बाते उल्लेखनीय है—

(१). आधारभूत नियम—इस विधि का आधारभूत नियम यह है कि जो एक वस्तु का कारण है वह दूसरी वस्तु को कारण नही हो सकता। यदि हमारे

सामने तथ्यों का कोई जटिल समूह उपस्थित है और हम यह जानते है कि कुछ कार्यो के कुछ कारण है तो बचे हुये कारण के समूह के अश को अवशिष्ट कार्य समूह के अश का कारण माना जा सकता है। कार्वेथ रीड के अनुसार इस नियम मे दिया हुआ तथ्य कार्य है। कभी-कभी इस विधि को कुछ भिन्न रूप मे प्रयोग किया जाता है जिसके लिये मैलोन ने लिखा है, "जब किसी जटिल तथ्य के किसी भाग की व्याख्या ज्ञात कारणो से नही हो पाती तब उसका कोई अन्य कारण ढूंढना चाहिये।"[1] इसमे उपस्थित तथ्य मे अज्ञात तथ्य की उपस्थिति के कारण अज्ञात कारण ढूंढने की चेष्टा की जाती है जैसा कि पीछे नेप्चून ग्रह की खोज के उदाहरणो मे बतलाया गया है।

(२) **खोज की विधि**—अवशेषो की विधि खोज की विधि है, उपपति की विधि नही है। यह विधि अन्वेषण कार्य के लिये विशेष उपयोगी सिद्ध हुई है। इस विधि के द्वारा अन्वेषण के उदाहरण पीछे दिये जा चुके है। यदि पूर्ववर्ती और अनुवर्ती घटनाओ के दो समूहो मे हमे कुछ घटनाओ मे कार्य कारण सम्बन्ध ज्ञात होते है तो अवशेषो की विधि की सहायता से अन्य अज्ञात अनुवर्तियो के कारण ज्ञात किये जा सकते है। मैलोन के शब्दो मे, यह विधि "अव्याख्यात बातो की ओर इशारा करने वाली" (A finger post to the unexplained) विधि है। खोज की विधि होने के कारण इसके द्वारा उपकल्पनाये बनायी जा सकती है किन्तु यह उनको जाचने अथवा सत्यापन करने का साधन नही हो सकती।

(३) **कारणों के ज्ञान में कुछ प्रगति होने पर प्रयोग होना**—अवशेषो की विधि को तभी प्रयोग किया जाता है जब कि घटनाओ मे कारणो के विषय मे कुछ प्रगति हो चुकी हो। कुछ भी कारणो का पता न होने पर इस विधि का प्रयोग नही किया जा सकता। जब हमे पूर्ववर्तियो और अनुवर्तियो के समूहो मे यह ज्ञात हो जाता है कि पूर्ववर्तियो के कोई अश अनुवर्तियो के कुछ भाग के कारण हैं तो हम अवशेषो की विधि की सहायता से शेष अश का कारण पता लगा लेते है।

(४) **निगमन प्रधान विधि**—इस प्रकार अवशेषो की विधि निगमन प्रधान विधि है। इसमे निगमन का तत्व रहता है। जब हम किसी अनुवर्ती घटना के समूह को किसी पूर्ववर्ती घटना समूह का कार्य मानते है और अनुवर्तियो मे कुछ भागो के कारणो का हमे पता होता है तो हम इससे निगमन के द्वारा यह निर्णय निकालते हैं कि पूर्ववर्ती समूह का शेप अश अनुवर्ती के शेप अश का कारण होगा। इस प्रकार अवशेप विधि वास्तव मे आगमन विधि नही है। इस विधि का प्रयोग तभी हो सकता है जबकि पूर्व आगमन द्वारा पूर्ववर्ती और अनुवर्ती घटना समूहों मे कारण कार्य सम्बन्ध स्थापित किया जा चुका हो। इस प्रकार यह विधि आगमनात्मक विधियो पर निर्भर हैं। इसी कारण इसे आगमनात्मक विधियो मे गिना जाता है।

(५) **व्यतिरेक विधि का विशिष्ट रूप**—अवशेपो की विधि व्यतिरेक विधि का विशिष्ट रूप है। इन दोनो ही विधियो मे यह नियम काम करता है कि यदि दो उदाहरण ऐसे है जिनमे केवल एक ही परिस्थिति का अन्तर है जो कि एक उदाहरण मे उपस्थित है और दूसरे मे अनुपस्थित है तो पूर्ववर्तियो के दो समूहो मे जिस परिस्थिति का अन्तर है वह अनुवर्तियों के समूहो मे अन्तर वाली परिस्थिति

1. "When any part of a complex phenomenon is still unexplained by the causes which have been assigned, a further cause for the remainder must be sought" —Mellone.

का कारण है। फिर भी व्यतिरेक विधि और अवशेषो की विधि मे पर्याप्त अन्तर है।

अवशेषों की विधि और व्यतिरेक विधि

पीछे बतलाया जा चुका है कि अवशेष विधि और व्यतिरेक विधि मे बहुत कुछ समानता है परन्तु इस समानता के आधार पर केवल इतना ही कहा जा सकता है कि अवशेष विधि व्यतिरेक विधि का विशेष रूप है। दोनो ही विधियो के केवल दो ही उदाहरणो की आवश्यकता होती है। दोनो ही विधियो मे ये दोनो उदाहरण किसी एक बात को छोड़कर अन्य बातो मे समान होते हैं। दोनो विधियो का आधारभूत सिद्धान्त एक ही है। दोनो ही विधियो मे निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचने की क्षमता है।

फिर भी अवशेष विधि और व्यतिरेक विधि मे निम्नलिखित अन्तर है—

(१) **अवशेष विधि परतन्त्र और व्यतिरेक विधि स्वतन्त्र है**—अवशेष विधि का प्रयोग करने के लिये किसी घटना के एक भाग के कारण को पूर्व आगमन द्वारा पहले ही ज्ञात होना चाहिये। इस प्रकार यह विधि परतन्त्र है। दूसरी ओर, व्यतिरेक विधि इस प्रकार से आगमन की अन्य विधियो के पूर्व प्रयोग पर आश्रित नही है, इसलिये व्यतिरेक विधि स्वतन्त्र है।

(२) **अवशेष विधि में निगमन है, व्यतिरेक विधि आगमनात्मक है**—जैसा कि पीछे बतलाया जा चुका है, आगमनात्मक विधियो मे गिने जाने के बावजूद भी अवशेष विधि मे मुख्य रूप से निगमन की क्रिया होती है। दूसरी ओर व्यतिरेक विधि विशुद्ध रूप से आगमनात्मक विधि है, उसमे निगमन विधि का कोई अश नही है।

प्रायोगिक विधियों का परस्पर सम्बन्ध

मिल के द्वारा बतलाई गई उपरोक्त प्रायोगिक विधियो मे परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। इनमे केवल अन्वय और व्यतिरेक की विधियाँ मौलिक है। सयुक्त विधि, जैसा कि पीछे बतलाया जा चुका है, अन्वय विधि का ही विशिष्ट रूप है। सहचारी परिवर्तनो की विधि या तो अन्वय विधि या व्यतिरेक विधि का विशिष्ट रूप है। अवशेषो की विधि, जैसा कि मिल ने स्वय लिखा है, "वास्तव मे व्यतिरेक विधि का एक विशिष्ट रूप है।" कार्वेथ रीड के अनुसार अन्वय विधि व्यतिरेक विधि के अन्तर्गत आती है क्योकि अन्य सब परिस्थितियो को एक के बाद एक उदाहरण मे छोडने पर ही अन्वय विधि का बल निर्भर है और यह निरास व्यतिरेक विधि का कार्य है। इस प्रकार कार्वेथ रीड के अनुसार प्रायोगिक विधियो मे व्यतिरेक विधि सबसे अधिक मौलिक है। मिल ने भी व्यतिरेक विधि को अधिक मौलिक माना है क्योकि अन्वय की विधि कारण सम्बन्ध का सुझाव मात्र देती है जब कि व्यतिरेक की विधि उसे सिद्ध करती है। कार्वेथ रीड और मिल के मत के विरुद्ध कुछ तर्कशास्त्री व्यतिरेक विधि को अन्वय विधि के अन्तर्गत मानते हैं क्योकि उसके लिये आवश्यक उदाहरणो मे केवल एक बात को छोड़कर अन्य बातो मे समानता आवश्यक है। वास्तव मे अन्वय और व्यतिरेक विधि मे कौन सी मौलिक हैं इस विषय मे विवाद व्यर्थ है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, अन्वय और व्यतिरेक दोनो ही समान रूप से मौलिक है और परस्पर पूरक हैं।

प्रायोगिक विधियो मे से कुछ विधियाँ विशेष रूप से निरीक्षण मे ही प्रयोग की जाती है। उदाहरण के लिये अन्वय विधि आवश्यक रूप से निरीक्षण की विधि

है। इसी प्रकार संयुक्त विधि भी निरीक्षण की विधि है। दूसरी ओर व्यतिरेक की विधि और अवशेषो की विधि विशेष रूप से प्रयोग की विधियाँ है। सहचारी परिवर्तनो की विधि का प्रयोग निरीक्षण अथवा प्रयोग दोनो मे ही होता है। फिर भी उपरोक्त पाँचो प्रायोगिक विधियो मे निरीक्षण अथवा प्रयोग विधियो का विभाजन सम्भव नही है। इसी प्रकार प्रायोगिक विधियो को अनुसधान की विधि अथवा उपपत्ति की विधियो मे नही बाँटा जा सकता यद्यपि भिन्न-भिन्न विधियाँ अनुसधान अथवा उपपत्ति के लिये विशेष रूप से उपयुक्त है। उदाहरण के लिये अन्वय विधि के कारण सम्बन्ध का सुझाव मिलने के कारण यह विशेष रूप से अनुसधान की विधि है। इसी प्रकार सहचारी परिवर्तनो की विधि और अवशेषो की विधियाँ विशेष रूप से अनुसधान मे सहायक सिद्ध होती है। दूसरी ओर व्यतिरेक विधि कारण सम्बन्ध सिद्ध करने के कारण उपपत्ति की विधि है। इसी प्रकार सयुक्त विधि अनुसधान से अधिक उपपत्ति की विधि है। स्पष्ट है कि मिल का यह कहना उचित नही था कि प्रायोगिक विधियाँ अनुसधान की नही बल्कि उपपत्ति की विधियाँ हैं। जैसा कि पीछे बतलाया गया है प्रायोगिक विधियो मे से अनेक उपपत्ति की नही बल्कि अनुसधान की विधियाँ है। इसलिये अनेक प्रायोगिक विधियो का विभिन्न विज्ञानो मे अनुसधान के लिये व्यापक रूप से प्रयोग किया जाता है। इनमें अन्वय की विधि, सहचारी परिवर्तन विधि और अवशेष विधि विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वैज्ञानिक अनुसधानो मे इनके उपयोग का विवरण पीछे इनके प्रसग मे दिया जा चुका है।

प्रायोगिक विधियों की आलोचना

मिल के अनुसार प्रायोगिक विधियाँ, "प्रायोगिक खोज की, निगमन से भिन्न सीधे आगमन की एकमात्र सम्भव विधियाँ है।"[1] अन्य स्थान पर मिल ने लिखा है, "आगमन शास्त्र का कार्य ऐसे नियम और नमूने उपस्थित करना है कि यदि आगमनात्मक युक्तियाँ उनके अनुरूप हो तो वे असदिग्ध होती है, अन्यथा नही। प्रायोगिक विधियाँ ऐसा ही होने का दावा करती है।"[2] इस प्रकार मिल ने प्रायोगिक विधियो से बडी ऊँची आशाये दिलाई है किन्तु अन्य तर्कशास्त्री मिल के विचार से सहमत नही है। सक्षेप मे प्रायोगिक विधियो के सम्बन्ध मे मिल के विचार के विरुद्ध निम्नलिखित आक्षेप उपस्थित किये गये है—

(१) **जटिल प्राकृतिक तथ्यों को सरल सूत्रों में रखने का प्रयास**—मिल की प्रायोगिक विधियो की आलोचना करते हुए व्हेवेल ने लिखा है, "ये उसी बात को जिसका कि पता लगाना सबसे कठिन है अर्थात युक्ति के उन सूत्रो के रूप मे न्यूनीकरण को जो कि हमारे सम्मुख उपस्थित किये जाते है पहले से ही मान लेती हैं··· आप कहते हैं कि जब हम A B C को a b c के साथ और A B D को a b d के साथ पाते है तो हम अपना अनुमान कर सकते है। ठीक है, परन्तु ऐसे सयोग हमे कब और कहाँ प्राप्त होगे।" इस प्रकार व्हेवेल को यह शिकायत है कि ये विधियाँ प्रकृति के जटिल तथ्यो को एक सूत्र में रखने की सम्भावना मान लेती है।

1. "The only possible modes of experimental enquiry of direct induction ..as distinguished from deduction." —Mill

2 "The business of Inductive logic is to provide rules and models to which if inductive arguments can form, those arguments are conclusive, and not otherwise. This is what the methods profess to be" —Mill.

उपरोक्त आक्षेप को स्वीकार करते हुए मिल ने यह माना है कि आगमन के आधार वाक्यो को सरल रूप मे रखना अति कठिन है। इसके पहले यह जानना आवश्यक है कि वे रूप क्या होगे, जिनमे इन तथ्यो को रक्खा जायेगा किन्तु दूसरी ओर मिल यह कहता है कि प्रायोगिक विधियो का लक्ष्य आगमन के आधार वाक्य प्रदान करना नही वल्कि ऐसे नियम देना है जिनका पालन करके आगमनात्मक युक्तियो द्वारा निश्चित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।

(२) **कारणो की अनेकता की सम्भावना से विफलता**—कारणों की अनेकता के सिद्धान्त के अनुसार अलग-अलग अवसरो पर एक ही कार्य के भिन्न-भिन्न कारण होते है। अस्तु, अन्वय विधि के द्वारा सही कारण का पता नही लगाया जा सकता यद्यपि उदाहरणो को बढाकर अन्वय विधि के विफल होने की सम्भावना को कम किया जा सकता है। दूसरी ओर व्यतिरेक विधि से भी केवल यही सिद्ध होता है कि दिये हुये उदाहरण मे एक विशेष परिस्थिति कारण है, उससे यह सिद्ध नही होता कि यह परिस्थिति सभी उदाहरणो मे कारण है। अव चूंकि सभी अन्य प्रायोगिक विधियाँ अन्वय अथवा व्यतिरेक विधि के रूपान्तर हैं इसलिये कारण वहुत्व की सम्भावना के कारण वे भी सही कारण का पता लगाने मे विफल होती है।

(३) **कार्यो के मिश्रण की सम्भावना से विफलता**—कार्यो के मिश्रण के सिद्धान्त के अनुसार भिन्न-भिन्न कारणो के कार्य सदैव अलग-अलग नही रहते और वहुधा कोई अकेला कार्य अनेक कारणो का परिणाम होता है। अस्तु, यह निश्चय करना असम्भव है कि मिश्रित कार्यो मे से कौन सा किस पूर्ववर्ती के कारण है। अस्तु, कार्यो के मिश्रण की घटनाओ मे प्रायोगिक विधियो से कार्य कारण सम्वन्ध निश्चित नही किया जा सकता। प्रायोगिक विधियो की इस कठिनाई को दूर करने के लिये निगमनात्मक विधि का प्रयोग करना आवश्यक हो जाता है।

(४) **प्रायोगिक विधियाँ निगमनात्मक है**—मिल प्रायोगिक विधियो को आगमन की विधियाँ मानता है किन्तु कुछ तर्कशास्त्रियो के अनुसार ये विधियाँ वास्तव मे आगमनात्मक विधियाँ न होकर निगमनात्मक है। वेन के शब्दो मे "इनको नम्रतावश ही आगमनात्मक विधियाँ कहा गया है जव कि वास्तव मे ये निगमनात्मक विधियाँ है जो आगमनात्मक अनुसधान मे सहायक होती है।"[1] मिल की विभिन्न प्रायोगिक विधियो की विवेचना करके उपरोक्त कथन की सच्चाई की जाँच की जा सकती है। उदाहरण के लिये अन्वय विधि मे यह मूल नियम है कि जो भी वस्तु कार्य मे अन्वय उत्पन्न किये विना छोडी जा सकती है वह कारण का अश नही हो सकती। यह नियम कारण के नियम से नियमन के द्वारा निकाला गया है। यही वात व्यतिरेक विधि के साथ मे भी कही जा सकती है। इसमे भी कारण के नियम से निगमन के द्वारा आधार वाक्य निकाला जाता है। सहचारी परिवर्तनों की विधि मे इस नियम से निगमन किया जाता है कि वह पूर्ववर्ती और एक अनुवर्ती जिनकी मात्राये साथ-साथ घटती वढती है, कारण और कार्य है। क्योकि सयुक्त विधि अन्वय विधि का ही रूपान्तर है इसलिये वह भी निगमनात्मक है। अवशेषों की विधि मे तो मिल ने स्वयं ही निगमन का अश स्वीकार किया है। उपरोक्त

1. "These are called by courtesy Inductive Methods, they are more properly Deductive Methods, available in inductive investigations" —Bain.

विवेचन से स्पष्ट है कि मिल की विधियाँ शुद्ध आगमनात्मक विधियाँ नही है। इस प्रसग से कार्वेथ रीड के शब्दो मे, यह निष्कर्ष निकालना उचित होगा कि, "आगमन शास्त्र को शुद्ध निगमनात्मक स्वभाव का माना जा सकता है क्योकि इसमे १. कारण और कार्य के नियम का कथन है, २ इस नियम मे कुछ अव्यवहित अनुमान निकाल कर उन्हे सूत्रो के रूप मे रख दिया जाता है, इन सूत्रो को न्याय का दीर्घ वाक्य मान कर और ऐसे वाक्यो को ह्रस्व वाक्य मानकर जो यह दिखाते है कि कुछ उदाहरण इन सूत्रो की माँग को पूरा करते है, कारण कार्य सम्बन्ध को व्यक्त करने वाले विशेष वाक्य निगमित किये जाते है।"[1]

सारांश

प्रायोगिक विधियाँ क्या है—प्रायोगिक विधियाँ वे विधियाँ है जो कि वैज्ञानिक प्रयोग या निरीक्षण में काम में लायी जाती हैं। ये प्रायोगिक छानबीन की विधियाँ, आगमनात्मक सूत्र, प्रत्यक्ष आगमन के सूत्र, निरास की विधियाँ तथा निरीक्षण की विधियाँ भी कहलाती है। इनके द्वारा आकस्मिक तथ्यों का निरास करके ऐसे तथ्य चुने जाते हैं जिनके द्वारा कार्यकारण सम्बन्ध सिद्ध होता है। ये पाँच प्रकार की मानी गयी है। इनमें से प्रत्येक के मल में निरास का नियम काम करता है।

१. अन्वयविधि—यदि गवेषणीय तथ्य के दो या अधिक दृष्टान्तों में केवल एक परिस्थिति समान है तो केवल वह परिस्थिति जिसमें सब दृष्टान्तों मे समानता है दिये हुये तथ्य का कारण या कार्य है। अन्वय विधि मुख्य रूप से निरीक्षण की विधि है। इसके मुख्य लाभ हैं—१ प्रयोग का विस्तृत क्षेत्र, २. कारण से कार्य और कार्य से कारण का अनुमान। इसके मुख्य दोष है—१. सहअस्तित्व और कारणता में पहचान की कठिनाई, २. एक ही कारण के दो कार्यो में कार्य कारण सम्बन्ध मान लेने की सम्भावना, ३. एक से अधिक कारण होने पर अनुपयुक्त, ४. पूर्ववर्ती और अनुवर्ती का भेद स्पष्ट न होने पर असफलता, ५. पेचीदा घटनाओं में कठिनाई, ६. अनिरीक्षण की सम्भावना। अन्वय विधि साधारण गणनात्मक आगमन के समान होते हुए भी उससे अधिक वैज्ञानिक है।

२ अन्वय और व्यतिरेक की संयुक्त विधि—यदि किसी तथ्य के होने के दो या अधिक उदाहरणों में केवल एक परिस्थिति समान है जबकि उसके न होने के दो या अधिक उदाहरणो में उस परिस्थिति के अभाव के अतिरिक्त कोई भी बात समान नहीं है तो जिस परिस्थिति का उदाहरणो के दोनो समूहों में अन्तर है वह दिये हुए तथ्य का कारण या कार्य या कारण का अनिवार्य अंश है। अन्वय विधि की तुलना में इस विधि की विशेषतायें है—१. अधिक विश्वसनीयता, २. कारण बहुत्व को दूर करने का प्रयास।

३. व्यतिरेक विधि—यदि एक उदाहरण जिसमें दिया हुआ तथ्य हो और एक उदाहरण जिसमें दिया हुआ तथ्य न हो, ऐसे हैं कि एक परिस्थिति को छोड़कर

---

1. "Inductive logic may be considered as having a purely formal character. It consists (1) in a statement of the law of cause and effect (2) in certain immediate inferences from this law, expanded into the canons, (3) in the syllogistic applications of the canons to special predictions of causation by means of minor premises, showing that certain instances satisfy the canons"

—Carveth Read

जो कि केवल दृष्टान्त में मौजूद है शेष सब परिस्थितियाँ दोनों दृष्टान्तों में बिल्कुल समान हैं तो जिस परिस्थिति का दोनो में अन्तर है वह दिये हुये तथ्य का कार्य या कारण या कारण का आवश्यक अंश है। व्यतिरेक विधि के मुख्य गुण हैं—१. कार्यकारण सम्बन्ध सिद्ध करने की क्षमता, २. उपकल्पनाओं की परीक्षा करने की क्षमता, ३. कारणबहुत्व की स्थिति में भी भूल की सम्भावना न होना, ४. केवल दो उदाहरणों की आवश्यकता। व्यतिरेक विधि मे मुख्य दोष हैं—१. कारण के किसी अंश को कारण मान लेना, २. कारण को मुक्त करने वाली उपाधि को कारण मान लेना, ३. कारण बहुत्व की सम्भावना का निराकरण न करना, ४ कार्य से कारण की ओर जाने में कठिनाई, ५ प्रयोग का संकुचित क्षेत्र, ६. काकतालीय दोष की सम्भावना। व्यतिरेक विधि के प्रयोग में इन बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है—१ एक काल में एक ही स्थिति में अन्तर करना, २. कारण को मुक्त करने वाली उपाधि का निश्चय, ३. काल क्रम पर ध्यान। अन्वय विधि की तुलना में व्यतिरेक विधि के मुख्य गुण हैं—१. कार्यकारण सम्बन्ध सिद्ध करने की क्षमता, २. उपकल्पनाओं की परीक्षा करने की क्षमता, ३ कारण बहुत्व की स्थिति में भी भूल की कम सम्भावना, ४ केवल दो उदाहरणो की आवश्यकता, ५ प्रयोगात्मक विधि। व्यतिरेक विधि और उभयान्वय विधि में अनेक समानतायें होते हुए भी महत्वपूर्ण अन्तर हैं।

४. सहचारी परिवर्तनों की विधि—जब भी कोई तथ्य किसी विशेष प्रकार से परिवर्तित होता है तब जो तथ्य उसके साथ उसी प्रकार से परिवर्तित होता है वह पहले तथ्य का कार्य या कारण है या किसी अन्य प्रकार से उसके साथ कारण सम्बन्ध रखता है। सहचारी परिवर्तन विधि में मुख्य विशेषतायें है—१ सहचारी वृद्धि, २. सहचारी न्यूनता, ३. वृद्धि के साथ न्यूनता, ४. न्यूनता के साथ वृद्धि। इस विधि के मुख्य गुण है—१. पूर्णनिरास न होने पर भी उपयुक्त, २. कार्य कारण में पारिमाणिक सम्बन्ध का निश्चय। इस विधि की मुख्य सीमायें हैं—१ केवल अनुभव की सीमा में लागू होना, २. गुणात्मक अथवा प्रकारात्मक परिवर्तनों में अनुपयुक्त, ३. कार्यो में कार्य कारण सम्बन्ध मानने की सम्भावना।

५. अवशेषों की विधि—किसी भी घटना से ऐसा भाग घटा दीजिये जिसका कि कुछ विशेष पूर्ववर्ती बातों का कार्य होना पूर्वागमन से ज्ञात हो तो घटना का शेष भाग अवशिष्ट पूर्ववर्ती बातो का कार्य है। अवशेषों की विधि की मुख्य विशेषतायें हैं—१. इसका आधारभूत नियम यह है कि जो एक वस्तु का कारण है वह दूसरी वस्तु का कारण नहीं हो सकता, २. यह उपपत्ति की नहीं बल्कि खोज की विधि है. ३ कारणो के ज्ञान में कुछ प्रगति होने पर इसका प्रयोग होता है, ४. यह निगमन प्रधान विधि है, ५. यह व्यतिरेक विधि का विशिष्ट रूप है। फिर भी इसमें व्यतिरेक विधि से दो मुख्य अन्तर है—१ अवशेष विधि परतन्त्र और व्यतिरेक विधि स्वतन्त्र है, २ अवशेष विधि में निगमन है, व्यतिरेक विधि आगमनात्मक है।

प्रायोगिक विधियों का परस्पर सम्बन्ध—उपरोक्त पाँचो विधियों में परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। इनमे से कुछ विधियाँ विशेष रूप से निरीक्षण मे और कुछ प्रयोग में इस्तेमाल की जाती हे। इनमें से कुछ उपपत्ति की और कुछ अनुसंधान की विधियाँ है।

प्रायोगिक विधियों की आलोचना—१. जटिल प्राकृतिक तथ्यों को सरल सूत्रों में रखने का प्रयास, २. कारणों की अनेकता की सम्भावना से विफलता ३. कार्यों के मिश्रण की सम्भावना से विफलता, ४. प्रायोगिक विधियाँ निगमनात्मक है।

अभ्यास के लिये प्रश्न

प्रश्न १. मिल की पांच आगमन की विधियो मे से किन को आप आधारभूत समझते हैं और क्यो? (१९६६)

प्रश्न २. प्रायोगिक विधियो से आपका क्या अभिप्राय है? अन्वय विधि में कौन सी कमियाँ हैं? वे किस प्रकार दूर की जा सकती हैं? (१९६१)

प्रश्न ३. व्यतिरेक विधि पर पूर्ण प्रकाश डालकर यह सिद्ध कीजिये कि यह विधि अन्वय विधि से अधिक उपयोगी है। (१९६०)

प्रश्न ४. आगमन में व्यतिरेक विधि का रूप बतलाइये और समझाइये कि सत्य की खोज मे यह विधि अन्वय विधि से क्यो अधिक उपयोगी है। (१९५९)

प्रश्न ५. वैज्ञानिक जांच क्या है? उसकी विशेषतायें बतलाइये। (बुन्देलखण्ड १९७८)

प्रश्न ६ मिल की अवशेष प्रणाली को समझाइये। क्या इस दावे का आधार है कि यह णाली आगमनात्मक न होकर निगमनात्मक है? (मेरठ १९७८)

प्रश्न ७ मिल का दावा है कि उसकी विधियाँ खोज की विधियाँ हैं और साथ ही उपपत्ति का प्रमाणीकरण की विधियाँ हैं। उसके दावे की व्याख्या तथा परीक्षा कीजिये। (गोरखपुर १९७७)

प्रश्न ८ मिल की अन्वय विधि की व्याख्या तथा परीक्षा कीजिये। (प्रयाग १९७५)

प्रश्न ९. मिल ने पांच नही केवल एक ही प्रयोगात्मक विधि बनाई है। विवेचन कीजिये। विधियो के परस्पर सम्बन्धो का उल्लेख कीजिये। (गोरखपुर १९७६)

प्रश्न १०. मिल की सहपरिवर्तन प्रणाली को समझाइये और आगमनात्मक अनुमान में इसके महत्व का विवेचन कीजिये। (प्रयाग १९७४)

प्रश्न ११ मिल की अन्वय और व्यतिरेक की सयुक्त प्रणाली की व्याख्या और समीक्षा कीजिये। (प्रयाग १९७३)

२६

सादृश्य से तर्क

(INFERENCE FROM ANALOGY)

तर्कशास्त्रियो ने उचित आगमन को तीन भागो मे विभाजित किया है—वैज्ञानिक आगमन, आंशिक गणनात्मक आगमन और सादृश्यानुमान। इस प्रकार सादृश्यानुमान उचित आगमन का एक प्रकार है। सामान्य रूप से हम बहुधा दो या अधिक व्यक्तियो, वस्तुओं, परिस्थितियो इत्यादि मे सादृश्य देखकर ज्ञात सादृश्य के आधार पर अज्ञात सादृश्य का अनुमान कर लिया करते है। यदि कोई व्यक्ति हम से क्रूरता का व्यवहार करता है तो उससे सादृश्य रखने वाले व्यक्ति के विषय मे हम यह अनुमान लगा लेते है कि वह भी क्रूर होगा। इससे अनुमान की प्रक्रिया इस प्रकार चलती है कि अमुक विशेष रूप का व्यक्ति क्रूर था, इस व्यक्ति का रूप भी उसी प्रकार का है, अस्तु यह भी क्रूर होगा। मनुष्य अपने चारो ओर की वस्तुओ मे से किसी एक का अनुभव करके सादृश्यानुमान के आधार पर उस जाति की अन्य सभी वस्तुओ के विषय मे अनुमान लगा लेता है। उदाहरण के लिये हम किसी पेड का एक आम खाकर देखते है और वह हमे मीठा लगता है तो हम सादृश्यानुमान के आधार पर तुरन्त यह निष्कर्ष निकाल लेते है कि इस पेड के आम मीठे है या पेड का दूसरा आम भी मीठा होगा। जिन भौगोलिक परिस्थितियो और जलवायु मे किसी विशेष प्रकार की वनस्पति अथवा जीव जन्तु पाये जाते है उनके सदृश्य भौगोलिक परिस्थितियो और जलवायु वाले देश के विषय मे आसानी से यह अनुमान लगा लिया जाता है कि वहाँ भी उसी प्रकार की वनस्पति और जीव जन्तु पाये जाते होगे। हम यह कैसे जानते है कि राम दुखी है और मोहन सुखी है? यह हम उनके चेहरो से देखकर जान लेते है। क्योंकि राम के समान चेहरा तब पाया जाता है जबकि मनुष्य को दुख होता है यह हमारे अनुभव की बात है। इस प्रकार अपने अनुभव के आधार पर सादृश्यानुमान की सहायता से व्यक्ति की समान शारीरिक घटनायें, हाव भाव और प्रतिक्रियाये देखकर उसकी मानसिक स्थिति का अनुमान लगा लिया जाता है। ये सब सादृश्यानुमान के उदाहरण है।

सादृश्यानुमान की परिभाषा

सादृश्यानुमान अथवा सादृश्य के अग्रेजी पर्याय शब्द को अनेक अर्थो मे प्रयोग किया गया है। यह शब्द यूनानी शब्द Analogia से निकला है। इस

यूनानी शब्द को अरस्तू ने अनुपात की समता के अर्थ में प्रयोग किया था। अरस्तू के अनुसार सादृश्य से अनुमान वह है जो कि सम्बन्ध के सादृश्य पर आधारित हो।

अरस्तू की धारणा

प्रचलित अर्थ मे सादृश्यानुमान के लिये केवल दो पद ही पर्याप्त माने जाते हैं परन्तु अरस्तू के सादृश्यानुमान मे चार पदो की आवश्यकता थी। किसी भी सम्बन्ध की स्थापना के लिये कम से कम दो पदों का होना आवश्यक है। इन दो सम्बन्धो मे सादृश्य दिखलाने के लिये कम से कम चार पद होने चाहियें। गणित के अनुपात मे अरस्तू के अनुसार सादृश्यानुमान का स्वरूप निम्नलिखित है १ : २ : : २ : ४।

इस सूत्र मे एक का दो से जो सम्बन्ध है वही सम्बन्ध दो का चार से है। अरस्तू के अनुसार सादृश्यानुमान के स्वरूप को एक अन्य उदाहरण से इस प्रकार समझाया जाता है। एक उपनिवेश और मातृ-भूमि मे वही सम्बन्ध है जो एक बालक और उसकी माता मे है। माता सदैव अपने बालक के हित का ध्यान रखती है। अतः मातृ-भूमि भी अपने उपनिवेशो का ध्यान रखती है। प्रतीकात्मक रूप मे अरस्तू की सादृश्यानुमान की धारणा को निम्न प्रकार से अभिव्यक्त किया जा सकता है—

अ का ब के साथ वही सम्बन्ध है जो कि स का द के साथ है।

अ व ब के सम्बन्ध के साथ क की बात की जाती है।

अतः स द के सम्बन्ध के साथ भी क की बात जाती है।

अरस्तू ने सादृश्यानुमान को अत्यन्त सकुचित अर्थ मे लिया है। आजकल अधिकाश तर्कशास्त्री उसे अधिक व्यापक अर्थ मे प्रयोग करते है जिनमे सभी प्रकार

आधुनिक धारणा

के सादृश्यो के आधार पर अनुमान सम्मिलित है। बेन के अनुसार सादृश्यानुमान अनुमान का वह स्पष्ट रूप है जो कि इस कल्पना पर आधारित है कि कुछ बातो मे सादृश्य रखने वाली दो वस्तुयें किसी अन्य बात से भी सदृश्य हो सकती हैं जो कि सादृश्य की बातो के साथ कारण अथवा साहचर्य के नियम के द्वारा सम्बन्धित न हो। सादृश्यानुमान मे मूल बात यह है कि थोडी सी समानता देखकर अज्ञात समानता का अनुमान लगा लिया जाता है। वेल्टन के अनुसार सादृश्यानुमान विषय के अपर्ण तादात्म्य के आधार पर उसके अतिरिक्त अन्य तादात्म्य का अनुमान है। तर्कशास्त्र मे सादृश्यानुमान केवल सम्बन्धो का सादृश्य नही है बल्कि उसमे अन्य सादृश्य भी सम्मिलित है। इस बात को स्पष्ट करते हुये मिल ने लिखा है, "कुल मिलाकर अधिकतर मतो को देखते हुये सम्बन्धो के सादृश्य का पृथक चिन्तन करके हम सादृश्यानुमान नाम मे किसी भी तरह की सादृश्यमूलक युक्ति को सम्मिलित कर सकते है, शर्त यह है कि युक्ति वैज्ञानिक आगमन न हो।"[1] सादृश्यानुमान के इस वर्तमान अर्थ को अरस्तू ने उदाहरण से युक्ति कहा है और उसे समझाते हुए यह उदाहरण दिया है, पहलवानो का चुनाव चिट्ठी डालकर नहीं होता, अतः

---

1 "It is on the whole more usual to extend the name of analogical evidence to arguments from any sort of resemblance, provided they do not amount to a complete induction, without peculiarly distinguishing resemblance of relation" —Mill.

राजनीतिज्ञों का चुनाव भी इस प्रकार नही होना चाहिये ।

सादृश्यानुमान को कुछ मुख्य परिभाषायें निम्नलिखित है—

(१) **मिल द्वारा परिभाषा**—"दो वस्तुये एक या एक से अधिक बातो मे सादृश्य रखती है, एक वाक्य उनमे से जिस वस्तु पर लागू होता है, वह दूसरी वस्तु पर भी लागू होता है ।"[1]

परिभाषा

(२) **बेन द्वारा परिभाषा**—"सादृश्यानुमान अनुमान का एक स्वतन्त्र रूप है जिसके अनुसार यदि दो वस्तुये अनेक बातो में सादृश्य रखती है तो वे किसी ऐसी बात मे भी सादृश्य रखती है जिनका उन अनेक सदृश्य बातो से कार्यकारण सम्बन्ध या सहअस्तित्व का सम्बन्ध रहना ज्ञात नही है ।"[2]

(३) **कार्वेथ रीड द्वारा परिभाषा**—"सादृश्य तुलना के प्रदत्त और हमारे अनुमान के विषय के बीच अपूर्ण समानता पर आधारित एक प्रकार का सम्भावित प्रमाण है ।'[3]

(४) **वेल्टन का मत**—"वस्तुओ की आशिक एकता से अन्य बातो मे एकता का अनुमान सादृश्यानुमान कहलाता है ।"[4]

उपरोक्त परिभाषाओ से स्पष्ट है कि सादृश्यानुमान मे अपूर्ण अथवा आशिक समानता के आधार पर किसी सम्भावित समानता का अनुमान लगाया जाता है । उदाहरण के लिये मगल और पृथ्वी दोनो ग्रहो मे वायु-मण्डल, भूमि, समुद्र, ध्रुव प्रदेश, ताप इत्यादि सदृश्य है और दोनो सूर्य की परिक्रमा करते है तथा उससे प्रकाश लेते है इत्यादि ।

पृथ्वी मे एक गुण आबाद होना है ।
∴ मगल भी आबाद है ।

सादृश्यानुमान के प्रकार

तर्क की दृष्टि से सादृश्यानुमान कभी उचित होता है और कभी अनुचित सादृश्यानुमान के बलाबल की दृष्टि से उसे निम्नलिखित दो वर्गो मे विभाजित किया जाता है ।

(अ) उत्तम सादृश्यानुमान
(Good Analogy)

सादृश्यानुमान के इस प्रकार मे दो वस्तुओं मे अथवा व्यक्तियो या परिस्थितियो मे आधारभूत सदृश्यता अधिक और महत्वपूर्ण पाई जाती है और विदृश्यता

---

1 "Two things resemble each other in one or more respect, a certain proposition is true of the one, therefore it is true of the other." —Mill

2. "Analogy as a distinct form of inference, supposes that two things from resembling in a number of points may resemble in some other point, which other point is not known to be connected with the agreeing points by a law of causation or of co-existence " —Bain

3. "A kind of probable proof based on imperfect similarity. between the data of comparison and the subject of our inference " —Carveth Read

4 "An inerence from partial identity of content to further identity of content " —Welton

वहुत थोड़ी और महत्वहीन होती है। उदाहरण के लिये यदि दो विद्यार्थियों मे चरित्र, व्यक्तित्व, बुद्धि और मानसिक सामर्थ्यो तथा परिस्थितियों मे वहुत कुछ सादृश्य हो तो इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि वे परीक्षा मे एक ही श्रेणी मे उत्तीर्ण होगे। यदि उनमे से एक प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण होता है तो इस सूचना के आधार पर सादृश्यानुमान की सहायता से यह कहा जा सकता है कि दूसरा भी प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण हुआ होगा। इस उदाहरण से स्पष्ट है कि उत्तम सादृश्यानुमान का वल निम्नलिखित वातो पर निर्भर होता है।

(१) **सादृश्य का आन्तरिक एवं आवश्यक होना**—मिल के शव्दों में सादृश्यानुमान का मूल्य " निर्धारित-समानता के विस्तार की पहले निर्धारित असमानता के परिणाम के साथ तुलना और अनिर्धारित गुणो के जिस क्षेत्र की छानवीन नही हुई है उसके विस्तार के साथ की तुलना पर निर्भर होता है।"[1] दूसरे शव्दों में, यदि तुलनात्मक दृष्टि से समानता असमानता से अधिक मूल्य रखती है तो उसके आधार पर अन्य समानता का अनुमान किया जा सकता है। वेन के शव्दो मे, "सादृश्य के निष्कर्ष की सम्भावना को मानने के लिये समान वातों के महत्व और सख्या से तुलना की जाती है और ज्ञात गुणो की तुलना मे अज्ञात गुणो के विस्तार का भी अनुमान लगाया जाता है।"[2] कुछ सादृश्य केवल वाहरी होते हैं और उनका कोई विशेष महत्व नही होता जैसे वेष-भूषा का सादृश्य या चाल ढाल का सादृश्य इत्यादि दूसरी ओर आदर्शो, मूल्यो, चरित्र और व्यक्तित्व के गुणो का सादृश्य आवश्यक और आंतरिक होता है।

(२) **सादृश्य की पर्याप्त मात्रा**—सादृश्य आवश्यक और आतरिक होने के साथ-साथ सादृश्यानुमान का वल सादृश्य की मात्रा के पर्याप्त होने पर भी निर्भर है। थोडी वहुत समानता से सादृश्यानुमान लगाना उपयुक्त नही है। उदाहरण के लिये पृथ्वी और चन्द्रमा मे वहुत कम वाते समान है। अस्तु, केवल इसी आधार पर कि वे दोनो ही सूर्य से प्रकाश लेते हे, यह नही कहा जा सकता है कि चन्द्रमा भी पृथ्वी के समान आवाद है। दूसरी ओर मगलग्रह मे पृथ्वी की वहुत सी सादृश्यता है जिससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि मगलग्रह पृथ्वी के समान आवाद है।

(३) **भेद का अनावश्यक और कम होना**—समानता पर दृष्टि रखने के साथ साथ सादृश्यानुमान के उत्तम होने के लिये यह भी आवश्यक है कि भेद का भी मूल्याकन किया जाये। सादृश्यानुमान तभी सम्भव है जवकि भेद वहुत कम हो और जो हो भी वह आवश्यक हो। उदाहरण के लिये पृथ्वी और चन्द्रमा मे वहुत भेद है और आवश्यक भेद है। जवकि पृथ्वी मे वायु-मण्डल है, चन्द्रमा मे कोई वायु-मण्डल नही है। अस्तु, सादृश्यानुमान पृथ्वी और चन्द्रमा के सम्वन्ध मे सम्भव नही है। दूसरी ओर मगलग्रह और पृथ्वी मे भेद वहुत कम है और जो है भी वह अनावश्यक

---

1 "On the extent of ascertained resemblance, compared first with the amount of asceramed difference and next with extent of unexplored region of unascertained properties" —Mill.

2 "The probability is measured by comprising the numbe" and import ance of the points of agreement with the number and importance of the points of difference, having respect also to the extent of unknown properties as compared with the known" —Bain.

है। अस्तु, इसके सम्बन्ध मे सादृश्यानुमान सम्भव है यदि दो विद्यार्थियो मे बुद्धि और व्यक्तित्व के गुणो मे अन्तर है तो उनमे बाहरी वेष-भूषा, शारीरिक आकार प्रकार परिस्थितियाँ इत्यादि अन्य बाते कितनी भी समान क्यो न हो, सादृश्यानुमान नही हो सकता क्योकि बुद्धि और व्यक्तित्व का अत्यधिक महत्व होता है। दूसरी ओर यदि बुद्धि और व्यक्तित्व के गुण समान है तो वेश भूषा, शारीरिक आकार प्रकार आदि मे भेद होते हुए भी समान परीक्षा फल का अनुमान किया जा सकता है।

(४) **समानता का पर्याप्त ज्ञान**—उत्तम सादृश्यानुमान के लिये यह भी आवश्यक है कि हमे दो वस्तुओ की समानता के विषय मे पर्याप्त ज्ञान हो। उदाहरण के लिये अभी मनुष्य मगलग्रह से पृथ्वी की समानता के विषय मे इतना अधिक नही जानता कि वह निश्चित रूप से यह अनुमान कर सकता कि मगलग्रह मे किस प्रकार की आबादी होनी चाहिये। भविष्य मे जब मनुष्य मगलग्रह पर पहुँच जायेगा और वहाँ के विषय मे अधिक ज्ञान प्राप्त करेगा तो इस सम्बन्ध मे निश्चयपूर्वक अनुमान लगाया जा सकता है। अपर्याप्त ज्ञान के आधार पर किया हुआ प्रत्येक सादृश्यानुमान निर्बल होता है।

(ब) सादृश्याभास

(False Analogy)

सादृश्यानुमान किस स्थिति मे अयथार्थ होता है, इसको जानने के लिये सादृश्याभास का विवेचन करना आवश्यक है। इसमे, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, केवल बाह्य रूप से सादृश्य दिखलाई पड़ता है और यथार्थ सादृश्य नही होता। यह निकृष्ट अथवा मिथ्या सादृश्यानुमान है। उदाहरण के लिये दो विद्यार्थी एक ही नगर मे एक ही मौहल्ले मे रहते है, एक ही कालिज मे पढते है, एक से कपडे पहनते है और शारीरिक आकार प्रकार मे भी बहुत कुछ मिलते जुलते है तो इन सब समानताओ के आधार पर यह नही कहा जा सकता कि यदि उनमे से एक प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण हुआ है तो दूसरा भी प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण हुआ होगा। इसका कारण यह है कि इन दोनो विद्यार्थियो मे बहुत कम समानता है और जो समानता है भी वह आवश्यक समानता नही है। वास्तव मे समानता का मूल्याकन करते समय उसकी सख्या पर कम और उसके महत्व पर विशेष बल दिया जाना चाहिये। बोसान्केट के शब्दो मे, "हमे समान बातो को तौलना चाहिये, गिनना नही चाहिये।"[1] इसी बात को भिन्न शब्दो मे रखते हुये वैल्टन ने लिखा है, "किसी सादृश्यमूलक युक्ति का बल एकता के स्वरूप पर निर्भर होता है, समानता की मात्रा पर नही।"[2]

अस्तु, सादृश्याभास के आधार पर किया गया सादृश्यानुमान मिथ्या अथवा निकृष्ट सादृश्यानुमान होता है। इसमे ऊपरी समानताओ के आधार पर अनुमान किया जाता है। फाऊलर के शब्दो मे, "सादृश्याभास उन सादृश्यमूलक युक्तियो को कहा जाता है जिनमे निष्कर्ष का कोई भी आधार नही होता।"[3] उदाहरण के

---

1 "The force of argument from Analogy depends on the character of entity and not on the amount of similarity"

2 "We must weigh the points of resemblance rather than count them" —Bosanquent

3 "The term False Analogy is applied to those cases of analogical inference in which there exists no ground for analogy whatever" —Fowler.

लिये मनुष्यों के समान पेड पौधों में भी जन्म, विकास, वृद्धि और ह्रास तथा मृत्यु पायी जाती है।

मनुष्यों मे विवेक होता है।
अतः पेड़ पौधों मे भी विवेक होता है।

समाज और जीवित शरीर में बहुत कुछ समानतायें देखकर के कुछ समाज शास्त्रियों ने इसी प्रकार समाज की तुलना जीवित शरीर से की है। वे यह भूल जाते है कि मनुष्य का समाज से जो सम्बन्ध है, वह जीवित कोष का जीवित शरीर से नही है। विभिन्न विज्ञानों मे कुछ सादृश्याभास के आधार पर मिथ्या सादृश्यानुमान के बहुत से उदाहरण मिलते है। निम्न श्रेणियों के जीव जन्तुओ मे शिकार करना भोजन एकत्रित करना, घर बनाना, सतानोत्पत्ति करना और उसका पालन-पोषण करना, सहयोग से काम करना और सघर्ष इत्यादि बहुत सी ऐसी बातें दिखलाई पड़ती है जो मनुष्य मे होती हैं। इस आधार पर कुछ व्यक्ति यह अनुमान लगा लेते हैं कि इनमे भी मनुष्य के समान बुद्धि होती है। यह सादृश्याभास है क्योंकि मनोवैज्ञानिको ने यह दिखलाया है निम्न श्रेणी के जीवों मे ये सब क्रियायें मूल प्रवृत्तियो के कारण हैं जब कि मनुष्य मे ये बुद्धि मे की जाती है। और चूंकि मूल प्रवृत्ति तथा बुद्धि के लक्षणो मे बुनियादी अन्तर है इसलिये इन वाह्य क्रियाओ की समानता के आधार पर सादृश्यानुमान उपयुक्त नही है। बहुधा मिथ्या युक्तियो का कारण रूपको का अनुचित प्रयोग भी होता है। समाज और शरीर की तुलना करते हुये कुछ विचारको ने आवागमन के साधनों की नाडियो से, हृदय की राजधानी से और इसी प्रकार शरीर के अन्य अवयवो की देश के विभिन्न क्षेत्रो से तुलना की हे। यह रूपक सरासर अनुचित है और इसके आधार पर किया गया प्रत्येक अनुमान गलत ही होगा। एक अग्रेज ग्रथकार स्मोलिट ने लन्दन के विषय मे जो लिखा है वह भी इसी प्रकार का एक उदाहरण है, "यह राजधानी एक दीर्घाकार दैत्य हो गयी है जो कि एक जलोदर से ग्रस्त सिर की तरह है जो कालान्तर में शरीर और हाथ पैरो को खुराक और सहारा देने मे असमर्थ हो जाता है। इसमे क्या आश्चर्य है कि हमारे गावो की आबादी घट गयी है और हमारे खेतों मे श्रमिको का अभाव हैं।" व्यक्ति और समाज मे सम्बन्ध को बतलाते हुए हर्बर्ट स्पेन्सर ने लिखा है, "सामाजिक ढांचे की तुलना एक पशु के शरीर से की जा सकती है जिसकी पाचन व्यवस्था के अनुरूप समाज मे औद्योगिक और कृषि की व्यवस्थाये है। हृदय, नाडियो और धमनियो के साथ रक्त प्रवाह की व्यवस्था, एक राष्ट्र के यातायात और सन्देश-वहन की व्यवस्थाओं के समान है, नाड़ी सस्थान सरकार के समान है और इसी प्रकार अन्य भी हैं।" इसी प्रकार हेगेल ने लिखा है, "राज्य के रूप मे अभिव्यक्त समाज पूर्ण का या ऐतिहासिक विश्व प्रक्रिया की एक व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करने वाला एक स्वाभाविक सावयव है। व्यक्ति नही वल्कि राज्य ही वास्तविक पुरुष है। व्यक्ति उसी सीमा तक यथार्थ है जहाँ तक वह राज्य का सदस्य है।"

सादृश्याभास के उपरोक्त उदाहरणो से स्पष्ट है कि निम्नलिखित स्थितियों मे सादृश्यानुमान अयथार्थ सिद्ध होता है—

(१) सादृश्यानुमान का अनावश्यक और वाह्य समानताओं पर आधारित होना—जैसा कि पीछे बतलाया जा चुका है, केवल निवास स्थान, वेश भूषा, एक ही विद्यालय और कक्षा आदि की अनावश्यक और वाह्य समानताओ के आधार पर

किसी एक विद्यार्थी के परीक्षा परिणाम को देखकर दूसरे के परीक्षा फल के विषय मे अनुमान नही लगाया जा सकता और यदि ऐसा किया जाता है तो अनुमान यथार्थ नही होता । उदाहरण के लिये निम्नलिखित युक्तियाँ देखिये—

(अ) इन खपच्चियो ने राम की टूटी हुई टाग ठीक कर दी थी अतः इनके प्रयोग से तुम्हारा टूटा हुआ दिल भी ठीक हो जाएगा ।

(ब) सब धर्म ईश्वर की ओर ले जाते है, क्या सब मार्ग रोम की ओर नही ले जाते ।

(स) जीवन केवल एक प्रकार का प्रकाश है और दीपको का जगमगाता प्रकाश बहुधा हवा के झोको द्वारा बुझा दिया जाता है । अतः किसी नवयुवक की मृत्यु हो जाने मे कोई आश्चर्य की बात नही ।

उपरोक्त तीनो उदाहरणो में मिथ्या सादृश्य के आधार पर अनुचित अनुमान लगा लिया गया है जो कि यथार्थ नही है ।

(२) **सादृश्य की न्यून मात्रा**—जब तक पर्याप्त मात्रा मे सादृश्य न हो तब तक उसके आधार पर अनुमान उपयुक्त नही होता । न्यून मात्रा मे सादृश्य होने पर सादृश्यानुमान अयथार्थ होता है । उदाहरण के लिये प्लेटो ने अपने ग्रन्थ The Republic मे सुकरात से कहलवाया है कि यदि सम्पत्ति की सुरक्षा मे ही न्याय है तो न्याय प्रिय व्यक्तियो को एक प्रकार से चोर होना चाहिये क्योकि सम्पत्ति को सुरक्षित रखने के लिये जिस प्रकार की कुशलता का व्यक्ति मे होना आवश्यक है उससे वह चोरी भी कर सकता है । यहाँ पर केवल सम्पत्ति को सुरक्षित रखने की कुशलता की समानता के आधार पर चोर और न्यायप्रिय व्यक्ति को समान कह दिया गया है ।

(३) **आवश्यक भेद होना**—उपरोक्त उदाहरण मे चोर और न्यायप्रिय व्यक्ति मे आवश्यक भेद है । अस्तु, थोडी सी समानता के आधार पर अनुभव सम्भव नही है ।

(४) **अपर्याप्त ज्ञान**—सादृश्यानुमान के निम्नलिखित उदाहरण मे अपर्याप्त ज्ञान के आधार पर अयथार्थ अनुमान किया गया है ।

मगल ग्रह मे भी पृथ्वी के जैसा ही वायु मण्डल, जल और मध्य परिमाण का तापक्रम है । अतः यह अनुमान किया जा सकता है कि मगल ग्रह मे भी मनुष्य निवास करते होगे ।

उपरोक्त उदाहरण से वायु मण्डल, जल और मध्य परिमाण के तापक्रम के आधार पर मनुष्य के निवास का अनुमान लगा लिया गया है । वास्तव मे अभी मंगल ग्रह के विषय मे पृथ्वी से उसकी समानता के बारे मे इतना पर्याप्त ज्ञान नही है कि वहाँ मनुष्यो के रहने का अनुमान किया जा सकता हो । अपर्याप्त ज्ञान पर आधारित होने के कारण यहा पर सादृश्यानुमान अयथार्थ है ।

सादृश्यानुमान का बलाबल

उत्तम और निकृष्ट सादृश्यानुमान के उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि सादृश्यानुमान का बलाबल किन बातो पर आधारित होता है । सक्षेप मे ये बाते अग्रलिखित है—

(१) समान बातो की सख्या और महत्व ।

(२) असमान बातो की संख्या और महत्व ।
(३) ज्ञात बातों की तुलना मे अज्ञात बातो की सख्या और महत्व ।
(४) तुलना की हुई वस्तुओं का पर्याप्त ज्ञान ।

यदि समान बातों की संख्या और महत्व असमान बातो की संख्या और महत्व से अधिक है और अज्ञात बातों की सख्या और महत्व से ज्ञात बातों की सख्या और महत्व अधिक है तथा तुलना की हुई वस्तुओ के विषय में पर्याप्त ज्ञान है तो सादृश्यानुमान मे बल होगा । इसके विरुद्ध यदि समान बातों की सख्या और महत्व की तुलना मे असमान बातो की संख्या और महत्व अधिक है और ज्ञात बातों की सख्या और महत्व से अज्ञात बातो की सख्या और महत्व अधिक है तथा तुलना की गई वस्तुओ के विषय मे पर्याप्त ज्ञान नही है तो सादृश्यानुमान का बल कम होगा । इस प्रकार के सादृश्यानुमान का बलाबल सादृश्य की मात्रा और महत्व, विसादृश्य की मात्रा और महत्व और तुलना की हुई वस्तुओ के स्वरूप के ज्ञान पर निर्भर है । गणितशास्त्र की भिन्न का रूप देकर इस बात को निम्नलिखित सूत्र मे स्पष्ट किया जा सकता है ।

सादृश्य + ज्ञातगुण
विसादृश्य + अज्ञात गुण

यहाँ पर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि गणित का यह सूत्र पूर्णतया ठीक नही कहा जा सकता । इसका प्रयोजन केवल इतना ही है कि हमे यह याद रहे कि सादृश्यानुमान का मूल्याकन करते समय किन किन बातो का ध्यान रक्खा जाना चाहिये ।

सादृश्यानुमान की परीक्षा

सादृश्यानुमान के बलाबल के उपरोक्त विवेचन मे स्पष्ट है कि उसकी परीक्षा के लिये कुछ विशेष बातो का ध्यान रखना आवश्यक है । इस सम्बन्ध मे मुख्य बाते निम्नलिखित है—

(१) **अनुमित सादृश्य का पता लगाना**—सादृश्यानुमान की परीक्षा मे उन व्यक्तियो पर दृष्टि डालनी चाहिये जिनकी तुलना की गई है और अनुमित सादृश्य का पता लगाना चाहिये ।

(२) **ज्ञात सादृश्य की परीक्षा**—इसके बाद ज्ञात सादृश्य की परीक्षा कीजिये । इसके आधार पर अज्ञात सादृश्य का अनुमान किया जाता है । ज्ञात सादृश्य मे यह पता लगाइये कि वह कितना और कैसा है और अनुमित सादृश्य की दृष्टि से आवश्यक और महत्वपूर्ण है या नहीं ? यह भी परीक्षा कीजिये कि दिया हुआ सादृश्य केवल बाह्य, अनावश्यक और अपर्याप्त तो नही है ।

(३) **भेद की परीक्षा**—अब सादृश्यानुमान मे दिये गये व्यक्तियो या वस्तुओ मे भेद की मात्रा और प्रकार का पता लगाइये । बहुधा इनका भेद प्रश्न मे दिया हुआ नही रहता और विचारक को स्वय उसका पता लगाना पड़ता है ।

(४) **ज्ञान की मात्रा की परीक्षा**—अब तुलना की हुई वस्तुओ के विषय मे अपने ज्ञान की परीक्षा करके यह पता लगाइये कि उसमे एक या दो दोनो के विषय मे आपका ज्ञान सकीर्ण तो नही है ।

(५) **तुलनात्मक विवेचना**—अन्त मे उपरोक्त चारो परीक्षाओं के परिणामो

की तुलनात्मक विवेचना करके यह पता लगाइये कि सादृश्य और विसादृश्य मे कहाँ तक वास्तविकता है और उनमे कहाँ तक आन्तरिक महत्व रखने वाली बाते उपस्थित है। सादृश्यानुमान कभी भी निश्चयात्मक नही होता, वह सम्भावना मात्र होता है तथा यह सम्भावना भी भिन्न-भिन्न परिस्थितियो मे भिन्न-भिन्न मात्रा मे होती है। जैसा कि पीछे वतलाया जा चुका है, सादृश्यानुमान का वलावल सादृश्य के आवश्यक और आन्तरिक होने, सादृश्य की पर्याप्त मात्रा, भेद का अनावश्यक और कम होना, तथा तुलना की हुई वस्तुओ के पर्याप्त ज्ञान पर आधारित है। इनके होने पर सादृश्यानुमान उपयुक्त है और उसके सही होने की अधिक सम्भावना है। दूसरी ओर उनके न होने पर सादृश्यानुमान निर्वल होगा और उसके सही होने की सम्भावना वहुत कम हो जाएगी।

सादृश्यानुमान और साधारण गणना

साधारण गणना (Simple Enumeration) मे एक प्रकार के कई दृष्टान्तो मे किसी गुण को देख करके उसकी व्याप्ति के विपय मे सामान्य नियम वना दिया जाता है। उदाहरण के लिये, चूँकि हमारे निरीक्षण मे आये हुये कौवो मे से प्रत्येक का रंग काला था इसलिये हम यह निष्कर्ष निकाल लेते है कि कौवा काला होता है। सादृश्य मे दो विशेप वस्तुओ मे कुछ वातो मे समानता के आधार पर यह अनुमान कर लिया जाता है कि वे अन्य वातो मे भी समान होगे। स्पष्ट है कि सादृश्यानुमान और साधारण गणना मे अन्तर है। जवकि साधारण गणना मे पदो के निर्देश का व्यवहार किया जाता है सादृश्यानुमान मे पद के स्वभाव से तात्पर्य होता है। पीछे दिये गये उदाहरण मे साधारण गणनात्मक आगमन कौवा पद मे निर्देश के वारे मे हमारा ज्ञान वढाता है। दूसरी ओर सादृश्यानुमान के उदाहरण मे मंगल पद के स्वभाव के विषय मे हमारा ज्ञान वढता है। किन्तु इससे यह निष्कर्ष नही निकाला जा सकता कि साधारण गणनात्मक आगमन और सादृश्यानुमान मे कोई सम्वन्ध ही नही है। वास्तव मे निर्देश और स्वभाव घनिष्ठ रूप से सम्वन्धित होते है। अस्तु, साधारण गणनात्मक अनुमान और सादृश्यानुमान मे भी घनिष्ठ सम्वन्ध है, दोनो मे केवल यही अन्तर है कि पहले मे विशेष दृष्टान्तों से किसी सामान्य वाक्य पर पहुँचा जाता है और दूसरे मे एक विशेष दृष्टान्त से दूसरे विशेप दृष्टान्त पर पहुँचा जाता है।

सादृश्यानुमान और वैज्ञानिक आगमन

सादृश्यानुमान उचित आगमन का एक प्रकार है। वैज्ञानिक आगमन (Scientific Induction) भी उचित आगमन का एक प्रकार है। इन दोनो मे ज्ञात से अज्ञात की ओर कुदान उपस्थित है। फिर भी वैज्ञानिक आगमन की तुलना मे सादृश्यानुमान अपेक्षाकृत निर्वल आगमन है क्योकि यह अपूर्ण समानता पर आधारित होता है। सक्षेप मे वैज्ञानिक आगमन और सादृश्यानुमान मे निम्नलिखित अन्तर है—

(१) **वैज्ञानिक आगमन में विशेष से सामान्य की ओर और सादृश्यानुमान में विशेष से विशेष की ओर जाते है**—वैज्ञानिक आगमन मे किसी विशेष प्रकार के दृष्टान्तो की एक सख्या का निरीक्षण करके एक सामान्य वाक्य की स्थापना की जाती है। उदाहरण के लिये हम बहुत से मनुष्यो की मृत्यु की जाँच करके इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि मनुष्य मरणशील है। दूसरी ओर सादृश्यानुमान मे एक

विशेष दृष्टान्त से दूसरे विशेष दृष्टान्त पर पहुँचा जाता है जिसका निरीक्षण नही किया गया है। उदाहरण के लिये पृथ्वी और मंगल ग्रह में वायु मण्डल, सूर्य की परिक्रमा, सूर्य का प्रकाश आदि कुछ बातों की समानता देखकर सादृश्यानुमान के आधार पर हम यह विशेष निष्कर्ष निकाल लेते हैं कि पृथ्वी के समान मगल ग्रह में भी आबादी होगी। यहाँ पर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि ऐसा नहीं है कि सादृश्यानुमान मे किसी प्रकार का सामान्य तत्व नही देखा जाता। वास्तव में गुणों की सादृश्यता के आधार पर एक विशेष से दूसरे विशेष के बारे मे अनुमान करने मे अचेतन रूप से उन दोनो विशेषों को कुछ विशेष गुण रखने वाले एक सामान्य का प्रतिनिधि मान लिया जाता है और उस सामान्य के अन्तर्गत आने के कारण उनमे से जो एक मे देखा जाता है उसी का दूसरे में अनुमान कर लिया जाता है। अस्तु, जबकि वैज्ञानिक आगमन मे निष्कर्ष में जान बूझकर सामान्य वाक्य प्रकट किया जाता है सादृश्यानुमान मे सामान्य तत्व अचेतन रूप से अनुमान का आधार होता है।

(२) **कार्यकारण सम्बन्ध के ज्ञान के विषय में अन्तर**—वैज्ञानिक आगमन मे कार्यकारण सम्बन्ध का पता लगाया जाता है और वह इसी पर आधारित होता है। दूसरी ओर सादृश्यानुमान मे कार्यकारण सम्बन्ध स्थापित नही किया जाता और उसके विषय के कोई ज्ञान नही रहता। उनमे तथ्यो को जोडने वाला कोई नियम नही निकाला जाता। उसमें केवल कुछ समानता के आधार पर किसी ऐसी समानता का अनुमान किया जाता है जिसको हम अनुभव से नही जानते।

(३) **वैज्ञानिक आगमन से निश्चित और सादृश्यतानुमान से सम्भावित निष्कर्ष मिलते हैं**—वैज्ञानिक आगमन के आधार पर जो निष्कर्ष निकाले जाते है वे न्यूनाधिक निश्चित होते है क्योंकि वे कार्यकारण सम्बन्ध पर आधारित होते हैं। दूसरी ओर सादृश्यानुमान के निष्कर्ष सदिग्ध और अधिक से अधिक सम्भावित मात्र होते है क्योंकि न तो उनमे कार्यकारण सम्बन्ध जैसा जोड़ने वाला कोई तत्व होता है और न वस्तुओं या व्यक्तियों के विषय मे पूर्णतया समानता का ज्ञान ही होता है।

(४) **विश्लेषण की मात्रा**—जब कि वैज्ञानिक आगमन मे आवश्यक और अनावश्यक कार्य और कारण इत्यादि का विश्लेषण करना आवश्यक होता है, सादृश्यानुमान मे यह विश्लेषण करना आवश्यक नही होता और इसलिये उसमे विश्लेषण बहुत कम होता है।

(५) **परीक्षण विधि**—जब कि वैज्ञानिक आगमन मे आगमन की प्रामाणिकता की परीक्षण विधि अनिवार्य रूप से उपस्थित होती है, सादृश्यानुमान मे ऐसी कोई परीक्षण विधि नही होती।

उपरोक्त अन्तर के बावजूद भी यह ध्यान रखना आवश्यक है कि उचित आगमन के दो प्रकार के कारण वैज्ञानिक आगमन और सादृश्यानुमान दोनो मे उचित आगमन की विशेषतायें समान रूप से पाई जाती हैं। इसलिये उनमें निम्नलिखित समानताये दिखलाई जा सकती हैं—

(१) ज्ञान से अज्ञान की ओर कुदान।

(२) निरीक्षण पर आधारित होना।

अन्त मे यह कहा जा सकता है कि सादृश्यानुमान वैज्ञानिक आगमन पर

पहुँचने की सीढ़ी है। उसमे किसी प्रकार के कार्यकारण सम्बन्ध का ज्ञान नही होता वल्कि केवल धुंधला सा विश्वास रहता है कि इस प्रकार का ज्ञान कालान्तर मे ज्ञात हो जायेगा। यदि यह सम्बन्ध ज्ञात हो जाये तो सादृश्यानुमान वैज्ञानिक ज्ञान वन जाये। इसलिये मिल ने कहा है कि सादृश्यानुमान, "उस दिशा की ओर सकेत करने वाला माना जाता है जिस दिशा मे अनुसंधान कार्य को उत्साह के साथ आगे वढ़ाना चाहिये।"[1] इस प्रकार सादृश्यानुमान उपकल्पना बनाने मे सहायक होता है। सादृश्य के आधार पर उपकल्पना वनाकर फिर उसकी परीक्षा के लिये निरीक्षण अथवा प्रयोग का सहारा लिया जा सकता है। यहाँ पर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि सादृश्यानुमान उपकल्पना तो दे सकता है परन्तु उसकी परीक्षा नही कर सकता है। यह परीक्षा वैज्ञानिक आगमन में ही की जा सकती है।

अस्तु, आगमन मे सादृश्यानुमान का महत्वपूर्ण स्थान है भले ही वह उतना निश्चित और वैज्ञानिक ज्ञान न दे सके जितना कि वैज्ञानिक आगमन से मिलता है। किन्तु उपकल्पना बनाने मे सहायता करके वह आगमन मे महत्वपूर्ण कार्य करता है। उदाहरण के लिये किसी नये रोग के लक्षणो को देखकर चिकित्सक उससे मिलते जुलते लक्षणो वाले अन्य रोगो के उपचार मे प्रयोग होने वाली औषधि को आजमाकर देख सकता है। सक्षेप मे, सादृश्यानुमान साधारण गणना और वैज्ञानिक आगमन के वीच की प्रक्रिया कहा जा सकता है।

सारांश

सादृश्यानुमान की परिभाषा—सादृश्यानुमान में अपूर्ण अथवा आंशिक समानता के आधार पर किसी सम्भावित समानता का अनुमान लगाया जाता है।

सादृश्यानुमान के प्रकार—१. उत्तम सादृश्यानुमान—इसमें चार वातों पर विशेष वल दिया जाता है यथा सादृश्य का आन्तरिक एव आवश्यक होना, सादृश्य की पर्याप्त मात्रा. भेद का अनावश्यक और कम होना तथा समानता का पर्याप्त ज्ञान, २. सादृश्याभास—इसमें केवल वाह्य सादृश्य दिखलाई पड़ता है और यथार्थ सादृश्य नही होता। वस्तुतः यह मिथ्या अथवा निकृष्ट सादृश्यानुमान है। यह इन स्थितियों में होता है—(१) सादृश्यानुमान का अनावश्यक और वाह्य समानताओं पर आधारित होना, (२) सादृश्य की न्यून मात्रा (३) अनिवार्य भेद होना, (४) अपर्याप्त ज्ञान। इससे स्पष्ट है कि सादृश्यानुमान का वलावल समान वातों की संख्या और महत्व, असमान वातों की संख्या और महत्व, ज्ञात वातों की तुलना में अज्ञात वातों की संख्या और महत्व तथा तुलना की हुई वस्तुओं के पर्याप्त ज्ञान पर आधारित है।

सादृश्यानुमान की परीक्षा—(१) अनुमित सादृश्य का पता लगाना, (२) ज्ञात सादृश्य की परीक्षा, (३) भेद की परीक्षा, (४) ज्ञात की मात्रा की परीक्षा, (५) तुलनात्मक विवेचन।

सादृश्यानुमान और साधारण गणना मे वहुत कुछ समानता होते हुए भी इनमें स्पष्ट अन्तर है। सादृश्यानुमान और वैज्ञानिक आगमन दोनों उचित आगमन का प्रकार है। फिर भी इनमें अनेक अन्तर है यथा (१) विशेष वैज्ञानिक आगमन में

---

1. "A guide post pointing out direction in which more rigorous investigations should be prosecuted" —Mill.

विशेष से सामान्य की ओर तथा सादृश्यानुमान में विशेष से विशेष की ओर जाते है, (२) कार्यकारण सम्बन्ध के ज्ञान के विषय में अन्तर, (३) वैज्ञानिक आगमन से निश्चित और सादृश्यानुमान से सम्भावित निष्कर्ष मिलते हैं, (४) विश्लेषण की मात्रा, (५) परीक्षण विधि।

आगमन में सादृश्यानुमान का महत्वपूर्ण स्थान है भले ही वह पूर्णतया वैज्ञानिक न हो। वह साधारण गणना और वैज्ञानिक आगमन के बीच की प्रक्रिया है।

अभ्यास के लिये प्रश्न

प्रश्न १. सादृश्यानुमान के स्वरूप को समझावें। सदृश्यानुमान किस स्थिति में अयथार्थ होता है? (यू० पी० बोर्ड १९६८)

प्रश्न २. सादृश्यानुमान और साधारण गणना तथा वैज्ञानिक आगमन में अन्तर बतलाइये। सादृश्यानुमान की परिभाषा कीजिये। उत्तम सादृश्यानुमान और सादृश्याभास में अन्तर कीजिये। (बुन्देलखण्ड १९७८)

प्रश्न ३. साम्यानुमान द्वारा युक्ति क्या है? इस सदर्भ मे प्रासगिक तथा अप्रासगिक साम्यानुमानो मे भेद दृष्टान्त देकर कीजिये। प्रासगिकता की क्या कसौटी है? (प्रयाग १९७४)

प्रश्न ४. साम्यानुमान द्वारा युक्ति क्या है? साम्यानुमानिक युक्तियो के मूल्य निर्धारण के लिए क्या विभिन्न कसौटियाँ हैं? उपयुक्त उदाहरण सहित उत्तर दीजिये। (प्रयाग १९७०)

२७

भारतीय तर्कशास्त्र में अन्वय और व्यतिरेक

(ANVAYA AND VYATIREKA IN INDIAN LOGIC)

जिस प्रकार पाश्चात्य न्यायशास्त्र मे मिल ने प्रायोगिक विधियो का विवेचन किया है इसी प्रकार भारतीय तर्कशास्त्र मे न्याय दर्शन मे प्रायोगिक विधियो का विश्लेपण किया गया है। भारतीय तर्कशास्त्र मे निगमन और आगमन दोनो विधियो पर विचार किया गया है किन्तु आगमनात्मक न्याय भारत मे उतना विकसित नही हुआ जितना कि पाश्चात्य देशो मे। इसका कारण पाश्चात्य देशो की तुलना में भारतवर्ष मे विज्ञान की अपेक्षाकृत कम उन्नति है। फिर भी, जैसा कि पीछे बतलाया जा चुका है, भारतीय तर्कशास्त्रियो ने आगमन विधि की विवेचना की है। ये कारण का पता लगाने की विधियाँ है।

भारतीय न्याय मे कारण की खोज करने के लिये दो विधियाँ मानी गयी है—अन्वय विधि और व्यतिरेक विधि। दूसरी ओर, पाश्चात्य तर्कशास्त्र मे मिल ने पाँच प्रायोगिक विधियाँ मानी है जिनमें पहली अन्वय विधि, दूसरी व्यतिरेक विधि और तीसरी सयुक्त विधि है। इनमे पहली और दूसरी विधि भारतीय अन्वय विधि और व्यतिरेक विधि से मिलती जुलती है, तीसरी विधि इन दोनो की संयुक्त विधि है। इस प्रकार मिल की तीन विधियाँ भारतीय तर्कशास्त्र मे देखी जा सकती है किन्तु इनके अतिरिक्त भी मिल ने अन्य प्रायोगिक विधियाँ मानी है—सहचारी परिवर्तन विधि और अवशेषो की विधि। ये दोनो विधियाँ भारतीय तर्कशास्त्र मे नही मिलती। अस्तु, स्पष्ट है कि मिल की प्रायोगिक विधियो का क्षेत्र भारतीय न्याय मे प्रायोगिक विधियो से कही अधिक विकसित है। उसका वर्गीकरण सीमित और सरल है।

मिल की विधियों से तुलना

व्याप्ति स्थापना की विधियाँ

न्यायदर्शन मे व्याप्ति स्थापना और कारण की खोज दोनो के प्रसग मे अन्वय और व्यतिरेक विधियो का विवेचन किया गया है। न्यायदर्शन मे व्याप्ति पर व्यापक रूप से विचार किया गया है क्योकि व्याप्ति सम्बन्ध ही अनुमान का आधार है।

तर्क सग्रह नामक ग्रन्थ के अनुसार व्याप्ति का अर्थ दो वस्तुओ का साथ-साथ रहना है। उदाहरण के लिये धुँआ और आग साथ-साथ दिखलाई पडते है। व्याप्ति की परिभाषा करते हुए न्याय मजरी मे लिखा गया है कि व्यापक और व्याप्य अथवा साध्य और लिंग के विना किसी उपाधि या व्यभिचार के एक ही

अधिकरण मे रहने को व्याप्ति कहा जाता है जैसे जहाँ-जहाँ धूम्र होता है वहाँ-वहाँ अग्नि होती है, इस सामान्य वाक्य में धुँए और आग मे व्याप्ति सम्बन्ध है क्योकि ये दोनो बिना किसी उपाधि के प्रत्येक परिस्थिति मे सहचारी रहते है। यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि इस नियम का उल्टा अनिवार्य रूप से सत्य नही होता अर्थात् यह नही कहा जा सकता है कि जहाँ-जहाँ आग होती है वहाँ धुँआ भी होता है क्योकि आग के साथ धुँआ प्रत्येक परिस्थिति मे नही होता। उदाहरण के लिये यदि लकडी सूखी हो तो धुँए के बिना ही आग उत्पन्न हो सकती है। लकडी का गीला होना धुँए का कारण है। इस बात को स्पष्ट करते हुए न्याय मंजरी मे व्याप्ति की परिभाषा करते हुए उसे साधन और साध्य का स्वाभाविक अविनाभाव सम्बन्ध बतलाया गया है। स्वाभाविक सम्बन्ध वह है जो आकस्मिक या उपाधिजन्य न हो। अविनाभाव सम्बन्ध का अर्थ किसी वस्तु के किसी अन्य वस्तु के बिना न रहने से है। दूसरे शब्दो मे, यह सम्बन्ध वहाँ पाया जाता है जहाँ कोई वस्तु अन्य वस्तु के होने पर हो और न होने पर न हो। उदाहरण के लिए धुँआ आग के होने पर होता है और आग के न होने पर नही होता, इसलिए धुँए का आग से स्वाभाविक अविनाभाव सम्बन्ध है। इसलिये उसे अग्नि का लिंग या साधन माना जाता है और उसे देखकर आग की उपस्थिति का अनुमान लगा लिया जाता है। व्याप्ति सम्बन्ध के ज्ञान के बिना किसी वस्तु को देखकर अन्य वस्तु का अनुमान नही लगाया जा सकता। धुँए और आग में व्याप्ति सम्बन्ध है इसलिए धुँए को देखकर आग का अनुमान लगा लिया जाता है। भारतीय न्यायशास्त्र के अनुसार व्याप्ति स्थापना के साधन अन्वय और व्यतिरेक विधियाँ है। नव्य न्याय में इनके आधार पर अनुमान के तीन भेद बतलाये गये हैं—केवलान्वयी, केवल व्यतिरेकी और अन्वय-व्यतिरेकी। इनकी चर्चा आगे की जायेगी।

अन्वय विधि

भारतीय न्यायशास्त्र के अनुसार किन्हीं वस्तुओ मे भाव साहचर्य के अनुभव को अन्वय सम्बन्ध कहते है। दूसरे शब्दो मे, जब दो वस्तुये साथ-साथ पाई जाती है तो उनमे अन्वय सम्बन्ध माना जाता है। यह विधि मिल के द्वारा बतलाई गयी अन्वय विधि के समान है जिसमे दो वस्तुओं को विभिन्न अवसरो और दशाओं मे साथ-साथ देखे जाने के कारण उनमे एक को दूसरे का कारण अथवा कार्य मान लिया जाता है। उदाहरण के लिए धुँआ और आग साथ-साथ देखे जाने के कारण धुँए को देखकर आग का अनुमान लगा लिया जाता है। भारतीय न्यायशास्त्र में केवल अन्वय के आधार पर अनुमान की स्थापना की गयी है। अनुमान का यह प्रकार केवलान्वयी कहलाता है। इसके अनुसार जहाँ साधन और साध्य सदा साथ पाए जाते है अर्थात् जिसकी व्याप्ति केवल अन्वय के द्वारा स्थापित होती है और जिससे व्यतिरेक बिल्कुल न हो वह केवलान्वयी अनुमान है। उदाहरण के लिये :—

सभी प्रमेय अभिधेय है।
घट प्रमेय है।
∴ घट अभिधेय है।
अथवा, जिसका ज्ञान हो सकता है उसका नाम भी होगा।
घडे का ज्ञान हो सकता है।
∴ घडे का नाम भी अवश्य होगा।

उपरोक्त अनुमान मे पहले वाक्य मे उद्देश्य ओर विधेय के बीच केवलान्वयी व्याप्ति सम्बन्ध है। किन्तु केवल अन्वय के आधार पर व्याप्ति सम्बन्ध स्थापित करना उपयुक्त नही है। भारतीय न्याय दार्शनिक भी इस बात को जानते थे इसलिए उन्होने केवल अन्वय के आधार पर व्याप्ति स्थापना को उपयुक्त नही माना है फिर भी अन्वय सम्बन्ध कार्यकारण सम्बन्ध की ओर संकेत करता है। वास्तव मे भारतीय न्यायशास्त्र मे केवलान्वयी अनुमान या व्याप्ति से उसी दशा मे काम लिया जाता था जिसमे कि व्यतिरेक व्याप्ति सम्भव न हो। ऊपर दिये गये उदाहरण मे जो व्याप्ति सम्बन्ध है वह केवल अन्वय के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। हमे केवल ऐसे ही उदाहरण मिल सकते है जिनमे प्रमेयत्व और अभिधेयत्व अर्थात् ज्ञान होना और नाम होना साथ-साथ उपस्थित हों। हमे ऐसे उदाहरण नही मिल सकते जिनमे ज्ञान न हो और नाम भी न हो क्योकि ज्ञान न होने पर किसी भी प्रकार का उदाहरण सम्भव नही है। उदाहरण के लिये धान के ज्ञान के लिये धान का ज्ञान और नाम आवश्यक होता है।

व्यतिरेक विधि

भारतीय न्यायशास्त्रियो के अनुसार दो वस्तुओ के अभाव में साहचर्य के अनुभव के आधार पर उनमे व्याप्ति स्थापित करने की प्रणाली व्यतिरेक विधि कहलाती है। यह विधि वास्तव मे मिल की व्यतिरेक विधि से नही वल्कि अन्वय विधि मे ही मिलती जुलती है। कुछ न्यायशास्त्रियो ने केवल व्यतिरेक के आधार पर भी व्याप्ति की स्थापना को सम्भव माना है। इसको केवल व्यतिरेकी नाम दिया जाता है। जहाँ साधन और साध्य की अन्वयमूलक व्याप्ति से नही वल्कि साध्य के अभाव के साथ साधन के अभाव की व्याप्ति के ज्ञान से अनुमान होता है वह व्यतिरेकी अनुमान कहलाता है। इस अनुमान का उदाहरण निम्नलिखित रूप मे दिया जा सकता है—अन्य भूतो से जो भिन्न नही है उसमे गध नही है।

पृथ्वी मे गन्ध है।

अत: पृथ्वी अन्य भूतो से भिन्न है।

उपरोक्त अनुमान मे पहले वाक्य मे साध्य के अभाव के साथ साधन के अभाव की व्याप्ति दिखलाई गयी है। साधन गन्ध को पक्ष पृथ्वी के अतिरिक्त अन्य कही देखना सम्भव नही है। इसलिये साधन और साध्य में अन्वय के आधार पर व्याप्ति स्थापित नही हो सकती। इस प्रकार यहाँ अनुमान केवल व्यतिरेक के आधार पर व्याप्ति के द्वारा किया गया है। परन्तु यह ध्यान रखना आवश्यक है कि जिस प्रकार केवल व्यतिरेक के आधार पर व्याप्ति स्थापित करना भी उचित नही है उसी प्रकार केवल अन्वय के आधार पर ही व्याप्ति स्थापित करना भी उचित नही है। पीछे जो तर्कसग्रह से उदाहरण दिया गया है वह ऐसी परिस्थिति का उदाहरण है जिसमें अन्वय विधि सम्भव नही है। यहाँ पर अन्वय विधि मे व्याप्ति स्थापित नही हो सकती। नव्य न्याय के अनुसार केवल व्यतिरेक विधि का प्रयोग ऐसी ही परिस्थितियो मे होना चाहिये जिनमे अन्वय विधि का प्रयोग सम्भव न हो। स्पष्ट है कि साधारणतया न्यायदर्शन मे अन्वय और व्यतिरेक दोनो विधियो के द्वारा व्याप्ति स्थापना को उचित माना गया है। मीमासा और अद्वैत वेदात के अनुयायी केवल व्यतिरेकी अनुमान को नही मानते हैं क्योकि वस्तुओ के केवल अभाव के आधार

पर उनके भाव के साहचर्य के विषय में निश्चित रूप से कुछ भी नही कहा जा सकता ।

जैसा कि पीछे बतलाया जा चुका है, व्यतिरेक विधि में एक वस्तु के अभाव के साथ दूसरी वस्तु का अभाव देखे जाने से व्याप्ति सम्बन्ध की स्थापना की जाती है । उदाहरण के लिये जहाँ आग नही है वहाँ धुँआ भी नही है इस व्याप्ति से आग के अभाव और धुँए के अभाव मे साहचर्य सम्बन्ध का प्रतिपादन किया गया है । इस प्रकार व्यतिरेक व्याप्ति किन्ही वस्तुओं के अभाव मे साहचर्य की उपलब्धि पर आधारित होती है । उपरोक्त उदाहरण मे जहाँ आग का अभाव होता है वहाँ धुँए का भी अभाव होता है अर्थात् साध्य और साधन के अभाव में सहचारी सम्बन्ध है इसलिये अभाव साहचर्य के आधार पर व्यतिरेक व्याप्ति की स्थापना की गई है ।

अन्वय-व्यतिरेकी विधि

जिस प्रकार मिल ने अन्वय और व्यतिरेक की सयुक्त विधि का प्रतिपादन किया है उसी प्रकार भारतीय न्यायशास्त्र मे भी अन्वय व्यतिरेकी विधि मिलती है । इस विधि मे, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, व्याप्ति की स्थापना करने के लिये अन्वय और व्यतिरेक दोनो ही विधियो का प्रयोग किया जाता है । इस प्रकार यह मिल की उभयान्वय या सयुक्त विधि से मिलती जुलती है । तर्क सग्रह मे इस प्रकार के अनुमान की परिभाषा करते हुये लिखा गया है, "अन्वयेन व्यतिरेकण व्याप्तिमद न्वयव्यतिरेकी" अर्थात् अन्वय व्यतिरेकी अनुमान वह है जो कि अन्वय और व्यतिरेक के द्वारा व्याप्ति से प्राप्त होता है । दूसरे शब्दो मे, जहाँ साधन और साध्य का सम्बन्ध अन्वय तथा व्यतिरेक दोनों के द्वारा स्थापित किया जाता है वहाँ अन्वय-व्यतिरेकी अनुमान होता है । इस प्रकार के अनुमान का उदाहरण निम्नलिखित युग्म अनुमान से दिया जा सकता है ।

जहाँ धुँआ है वहाँ आग है ।
पहाड़ मे धुँआ है ।
इसलिये पहाड मे आग है ।
जहाँ आग नही है वहाँ धुँआ नही है ।
पहाड मे धुआ है ।
इसलिये पहाड़ मे आग है ।

उपरोक्त उदाहरण मे धुँआ हेतु है जिसके भाव साहचर्य अथवा अभाव साहचर्य के आधार पर पहाड पर आग की उपस्थिति का अनुमान लगाया गया है । इस अनुमान मे भाव साहचर्य और अभाव साहचर्य दोनो प्रकार के उदाहरणो के द्वारा व्याप्ति सम्बन्ध की स्थापना की गई है । पहले उदाहरण मे साध्य और साधन से भाव साहचर्य है अर्थात् धुँआ और आग साथ-साथ देखे जा सकते है । दूसरे उदाहरण में साध्य और साधन मे अभाव साहचर्य है अर्थात् आग के न होने पर धुँआ भी नही देखा जा सकता । इस प्रकार आग और धुँए मे अन्वय और व्यतिरेक दोनो के आधार पर व्याप्ति की स्थापना की गई है ।

केवलान्वयी और केवल व्यतिरेकी विधियो की तुलना मे कारण की खोज अथवा व्याप्ति स्थापना की अन्यव्यतिरेकी विधि अधिक उपयुक्त है क्योंकि इसमे पिछली दोनो विधियो के दोषो का निराकरण हो जाता है । जैसा कि पीछे बतलाया

जा चुका है, केवल भावात्मक उदाहरणो के आधार पर व्याप्ति अथवा कारण सम्बन्ध का पूरी तरह निश्चय नही हो सकता। इससे केवल कारण सम्बन्ध का सकेत मात्र मिलता है। यह सकेत व्यतिरेक के उदाहरणो से पुष्ट होने पर निश्चित कारण सम्बन्ध मिलता है। अर्थात् जब हम आग के साथ-साथ धुँए का होना देखते है तो हमे केवल यह सकेत मिलता है कि धुँए और आग मे व्याप्ति सम्बन्ध है। अब जब हम यह देखते है कि जहाँ-जहाँ आग नही होती वहाँ धुँआ भी नही होता तो हमे व्यतिरेक विधि से अपने अनुमान की पुष्टि प्राप्त होती है। इस प्रकार अन्वय व्यतिरेकी विधि के द्वारा व्याप्ति स्थापना अथवा कारण की स्थापना अधिक निश्चित हो जाती है। अस्तु, यह विधि भारतीय प्रायोगिक विधियो मे सबसे अधिक विश्वसनीय है। मिल ने भी उभयान्वय विधि अथवा सयुक्त विधि को अधिक विश्वसनीय माना है।

पचकारणी विधि

जैसा कि पीछे बतलाया जा चुका है, मिल की व्यतिरेक विधि भारतीय व्यतिरेक विधि से भिन्न है क्योकि जब कि मिल की विधि मे दो उदाहरणो मे से एक अनिवार्य रूप से भावात्मक होता है भारतीय केवल व्यतिरेकी विधि मे सभी उदाहरण निषेधात्मक होते है। इसका अर्थ यह नही है कि भारतीय दार्शनिक पाश्चात्य व्यतिरेक विधि को जानते नही थे। बौद्ध तर्कशास्त्र मे पचकारणी विधि का उल्लेख किया गया है जो कि मैलोन की व्यतिरेक विधि से बहुत कुछ समानता रखती है। बौद्ध दार्शनिको ने इसका प्रयोग वस्तुओ या घटनाओ मे कार्य कारण सम्बन्ध निश्चित करने के लिये किया है। इस विधि के अनुसार न तो कारण और न कार्य की उपलब्धि, कारण की उपलब्धि होने पर तुरन्त कार्य की उपलब्धि, कारण के विधान का अनुभव होने पर तुरन्त ही कार्य के विधान का अनुमेय होता है।

भारतीय अन्वयव्यतिरेक और पाश्चात्य व्यतिरेक विधि

भारतीय अन्वयव्यतिरेक विधि और पाश्चात्य व्यतिरेक विधि मे भी बहुत कुछ अन्तर दिखलाई पडता है। यह अन्तर वही है जो मिल की उभयान्वय विधि और व्यतिरेक विधि मे है। जब कि मिल की व्यतिरेक विधि परीक्षण की विधि है भारतीय अन्वय—व्यतिरेक विधि परीक्षण की विधि है। जब कि मिल की व्यतिरेक विधि मे केवल दो ही उदाहरण पर्याप्त होते हैं भारतीय अन्वयव्यतिरेक विधि मे उदाहरणो के दो समूहो की आवश्यकता होती है। तीसरे, जबकि मिल की व्यतिरेक विधि मे दोनो उदाहरण केवल एक स्थिति और खोज की घटना को छोडकर अन्य सभी बातो मे बिल्कुल एक दूसरे के समान होने चाहिये भारतीय अन्वय व्यतिरेक विधि मे इस शर्त का पालन करना आवश्यक नही है।

कारण की खोज की विधियाँ

पीछे अन्वय और व्यतिरेक की विधियो की चर्चा करते हुए उनके आधार पर व्याप्ति की स्थापना के उदाहरण दिये गये है किन्तु भारतीय न्यायशास्त्रियो ने इन विधियो को कारण की खोज करने के लिये भी प्रयोग किया है। इस प्रकार ये कारण की खोज की भारतीय विधियां है। मिल के समान भारतीय न्यायशास्त्री कारण को कार्य का नियत पूर्ववर्ती मानते थे। इसलिये उसका पता लगाने के लिये

यह आवश्यक माना जाता था कि न केवल ऐसे उदाहरणों का अनुभव किया जाये जिनमे विशेष वस्तु या घटना किसी अन्य वस्तु या घटना के पूर्व नियत रूप से विद्यमान हो किन्तु साथ ही ऐसे उदाहरणो का अनुभव करना भी आवश्यक है जिनमे किसी वस्तु या घटना के अभाव मे नियत रूप से दूसरी वस्तु या घटना का अभाव देखा जाये। पहले उदाहरण मे अन्वय विधि के आधार पर नियत पूर्व गामी का निश्चय किया जाता है। दूसरे उदाहरण मे व्यतिरेक विधि के द्वारा नियत पूर्ववर्ती की परीक्षा की जाती है। इनमे से किसी भी विधि का अकेले प्रयोग करने से कारण सम्बन्ध ज्ञात नही हो सकता। केवल अन्वय अथवा केवल व्यतिरेक विधि के द्वारा कारण सम्बन्ध की स्थापना होने से गलती होने की सम्भावना है। यह बात पीछे व्याप्ति स्थापना के प्रसंग मे समझाई जा चुकी है। अस्तु, व्याप्ति की स्थापना के समान कारण की खोज मे भी भारतीय न्यायशास्त्री अन्वयव्यतिरेक विधि का प्रयोग करना अधिक उपयुक्त मानते है क्योंकि इसमें भाव साहचर्य के सकेत की अभाव साहचर्य से पुष्टि हो जाती है।

सारांश

पाश्चात्य न्यायशास्त्र के समान भारतीय न्यायशास्त्र में भी अन्वय विधि, व्यतिरेक विधि और अन्वय-व्यतिरेक विधि का व्याप्ति की स्थापना और कारण की खोज में प्रयोग किया गया है। अन्वय विधि भाव साहचर्य और व्यतिरेक विधि अभाव साहचर्य के आधार पर साध्य और साधन में व्याप्ति अथवा कारण सम्बन्ध की स्थापना करती है। अन्वय-व्यतिरेक विधि इन दोनो से ही अधिक उपयुक्त है क्योंकि इसमें भाव-साहचर्य और अभाव साहचर्य दोनों के आधार पर व्याप्ति सम्बन्ध की स्थापना की जाती है। भारतीय न्यायशास्त्र में मिल की सहचारी परिवर्तन विधि और अवशेषों की विधि नही मिलती, अन्य तीनों विधियाँ मिलती है।

अभ्यास के लिये प्रश्न

प्रश्न १ भारतीय न्याय मे प्रायोगिक विधियो को सक्षेप मे समझाइये तथा मिल की प्रायोगिक विधियो से उसकी तुलना कीजिये। (यू० पी० बोर्ड १९६६)

प्रश्न २. भारतीय न्याय के अनुसार कारण के निश्चय करने की विभिन्न विधियो की विवेचना सक्षेप मे लिखिये। (यू० पी० बोर्ड १९६४)

प्रश्न ३. अन्वय तथा व्यतिरेक की सयुक्त विधि की पूर्णतया से विवेचना कीजिये।

२८

अनुसंधान की निगमनात्मक विधि

(THE DEDUCTIVE METHOD OF INVESTIGATION)

तर्कशास्त्र मे ज्ञात से अज्ञात पर पहुँचने की दो विधियो की विवेचना की जाती है—निगमन और आगमन । निगमन विधि सामान्य सिद्धात से विशेष तथ्य पर पहुँचने का सिद्धान्त है । उदाहरण के लिये एनाफिलीस मच्छर के काटने से मलेरिया होता है । राम को मलेरिया हुआ है इसलिये राम को एनाफिलीस मच्छर ने काटा होगा यहाँ पर सामान्य सिद्धात से विशेष निष्कर्ष निकाला गया । दैनिक जीवन मे और विभिन्न विज्ञानो मे कदम कदम पर निगमन की विधि से काम लेना पडता है । कोई भी चिकित्सक किसी भी रोगी के रोग के लिये औषधि का चुनाव करने मे इस विधि से काम लेता है । इसमे वह चिकित्सा के सम्बन्ध मे ज्ञात सामान्य सिद्धात के आधार पर विशेष रोग के रोगी के लिये उपयुक्त दवा का चुनाव करता है । उदाहरण के लिये अमुक इन्जैक्शन देने से अमुक रोक दूर होता है । इस रोगी को अमुक रोग है इसलिये इसे अमुक इन्जैक्शन दिया जाना चाहिये । इसी प्रकार भिन्न-भिन्न विज्ञानो का व्यावहारिक प्रयोग करने मे उनके सामान्य सिद्धातो का विशेष परिस्थितियो मे प्रयोग किया जाता है । भिन्न-भिन्न क्षेत्रो के विशेषज्ञ अपने अपने क्षेत्रो मे सामान्य सिद्धान्तो से निगमन के द्वारा विशेष तथ्यो के बारे मे निष्कर्ष निकालते है ।

निगमन विधि क्या है ?

निगमन और आगमन ज्ञात से अज्ञात पर पहुँचने की दो परस्पर पूरक विधियाँ है । निगमन विधि का महत्व वही है जो आगमन विधि की सीमाये है । दूसरे शब्दो मे, जिन समस्याओ को सुलझाने के लिये अथवा जिस तथ्य का पता लगाने के लिये आगमन विधि उपयुक्त नही होती वहाँ पर निगमन विधि से काम लिया जाता है । प्रकृति मे जहाँ कारणो की अनेकता और कार्यो के मिश्रण पाए जाते है वहाँ पर प्रायोगिक विधियो से कार्य सिद्ध नही होता क्योकि इनके विभिन्न कारणो को अलग नही किया जा सकता । कार्यो का मिश्रण सजातीय अथवा विजातीय होता है । सजातीय मिश्रण मे विभिन्न कार्य मिलकर एक जटिल कार्य समूह बनाते है जिसमे भिन्न-भिन्न कार्य अलग-अलग कारणो से उत्पन्न होते है । विजातीय मिश्रण मे विभिन्न कार्यो को अलग नही किया जा सकता क्योकि कार्य समूह मिलकर एक ऐसा रूपान्तरित आकार धारण कर लेता है जिसमे से मूल तत्वो को नही निकाला जा सकता । इसका एक उदाहरण रासायनिक मिश्रण मे है

जिसके गुण मूल तत्वों से सर्वथा भिन्न होते है। सजातीय मिश्रण में ज्यों ज्यों जटिलता बढ़ती जाती है त्यों-त्यों प्रायोगिक विधियो को लागू करना कठिन होता जाता है और विजातीय मिश्रण मे तो उन्हे लागू भी नही किया जा सकता। इसीलिये मिल ने यह माना है कि निरीक्षण और प्रयोग की विधियाँ जटिल कार्यों की छानबीन में लागू नही की जा सकती। मिल ने साथ ही साथ यह भी सकेत किया है कि जिन मामलो में प्रायोगिक विधियो को लागू नहीं किया जा सकता वहाँ निगमन विधि से काम लिया जाना चाहिये। अस्तु, जिन मामलो मे निरीक्षण और प्रयोग विधियाँ काम नही देतीं उनमे निगमन विधि का प्रयोग किया जाता है।

निगमन विधि का प्रयोग वहाँ भी आवश्यक है जहाँ आगमनात्मक विधि मे निकाले गये सत्यों की जांच करनी होती है। उदाहरण के लिये यदि कोई चिकित्सक अनेक रोगियो पर प्रयोग करके यह पता लगाता है कि किसी रोग मे कौन सी औषधि देने से लाभ हो सकता है तो इस सामान्य नियम की पुष्टि उस रोग के विशिष्ट रोगी के मामले में उस औषधि का प्रयोग करने मे होती है। जिन सामान्य सिद्धान्तों से निगमन करके व्यावहारिक जगत मे सही निष्कर्ष निकाले जा सकते है वे ही सामान्य सिद्धान्त नियम मान लिये जाते है। विज्ञान के क्षेत्र मे जब कभी कोई वैज्ञानिक अपने निरीक्षण अथवा प्रयोग से कोई सामान्य सिद्धान्त निकालता और उसे प्रकाशित कर देता है तो वैज्ञानिक उस सामान्य सिद्धान्त से निगमन करके देखते है कि वह कहाँ तक सही है। यदि निगमित सत्य तथ्यो के अनुरूप होते हैं तो सामान्य सिद्धान्त सिद्ध हो जाता है। इस प्रकार तथ्य विषयक नियमो को साबित करने के लिये आगमन की विधि के साथ-साथ निगमन विधि का प्रयोग करना भी आवश्यक है। इसलिये इन दोनो विधियो को परस्पर पूरक माना जाता है।

निगमन विधि के प्रकार

निगमन विधि के निम्नलिखित तीन प्रकार माने जाते हैं—

(१) अनुलोम निगमन विधि या भौतिक विधि।
(Direct Deductive Method or the Physical Method)

(२) विलोम निगमन विधि या ऐतिहासिक विधि।
(Inverse Deductive Method or the Historical Method)

(३) अमूर्त निगमन विधि या ज्यामिति विधि।
(Abstract Deductive Method or Geometrical Method)

(१) अनुलोम निगमन विधि या भौतिक विधि

अनुलोम निगमन विधि में निगमन की प्रक्रिया में निम्नलिखित तीन सोपान होते हैं—

(१) **प्रत्यक्ष आगमन**—प्रत्यक्ष आगमन मे, जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है, पिछले आगमनो के निष्कर्षों को स्थायी रूप से सही मान लिया जाता है। उदाहरण के लिये यदि आप किसी नदी को नाव द्वारा पार करना चाहते हैं और ऐसा करने से पहले यह पता लगाना चाहते हैं कि इसमे कितना समय लगेगा तो इसका हिसाब लगाने के लिये नदी की चौडाई और नाव की गति दोनो पता होनी चाहिये। अब यदि नदी की चौड़ाई पहले मे ही पता है तो नाव की गति का अनुमान लगाना रह

जाता है। नाव की गति, पानी की गति, पानी का बहाव, वायु की दिशा और वेग इत्यादि कारको पर निर्भर होती है। इसका निरीक्षण, परीक्षण अथवा विश्लेषण आदि प्रायोगिक विधियो मे लगाया जाता है। इसीलिये निगमन के इस सोपान को प्रत्यक्ष आगमन कहा गया है। यह आगमन वास्तव मे उपकल्पना के रूप मे होता है और सत्यापन करने से पहले निगमन के प्रथम सोपान मे इसको सही मान लिया जाता है।

(२) **गणना का पूर्व विचार अथवा निगमन** (Ratiocination)—आगमन के पश्चात् अब गणना का पूर्व विचार से निगमन किया जाता है। इसमे अलग अलग कारणो के नियमो से यह गणना की जाती है कि उनके सयुक्त होने से क्या कार्य उत्पन्न होगा। इस प्रकार इसमे सयुक्त कार्य की गणना की जाती है चूँकि इस गणना मे किसी भी आगमनात्मक विधि से काम नही लिया जाता इसलिये यह पूरी तरह निगमन की प्रक्रिया है। इसके पूर्व और पश्चात की दोनो ही क्रियाये आगमनात्मक होती है। यह सोपान देखने मे सरल होते हुए भी वास्तव मे उतना सरल नही होता क्योकि गणना मे कोई भी बात छूट जाने से निष्कर्ष के गलत होने की सम्भावना होती है। इस कार्य मे दूसरी कठिनाई यह होती है कि सयुक्त कार्य अलग-अलग कार्यो का योगमात्र नही होता और कभी-कभी उसके कुछ विशेष नियम होते है जिनको जाने बगैर गणना नही की जा सकती। पीछे बतलाये गये उदाहरण मे नाव की गति के सम्बन्ध मे गणना करने के लिए पानी के बहाव वायु की दिशा और वेग आदि विभिन्न कार्यो से संयुक्त परिणाम की गणना करनी होगी। इसमे गणना अपेक्षाकृत सरल है परन्तु फिर कुछ अन्य उदाहरणो मे यह कार्य इतना अधिक सरल नही होता। उदाहरण के लिए मिल ने तोप के गोले की गति और उसके निशाने पर पहुँचने की गणना के सम्बन्ध मे यह बतलाया है कि किसी व्यक्ति को बारूद की शक्ति, तोप की नाल का कोण, वायु का घनत्व, हवा की शक्ति और दिशा आदि विभिन्न कारणो का ज्ञान होने पर भी वह इन कारणो की सयुक्त क्रिया से उत्पन्न होने वाले कार्य का तब तक ठीक ठीक पता नही लगा सकता जब तक कि उसे इस सम्बन्ध मे गणित का पर्याप्त ज्ञान न हो। फिर भी निगमन मे इस सोपान से गुजरना आवश्यक है। यह कहाँ तक सही या गलत हुआ है इसकी परीक्षा निगमन के तीसरे सोपान मे होती है।

(३) **सत्यापन** (Verification)—निगमन से प्राप्त परिणामो की यथार्थ अनुभव से जाच किये बिना वह विश्वसनीय नही हो सकता है। अस्तु, सत्यापन के बिना निगमन केवल अटकल मात्र रहता है। सत्यापन से यदि यह पता चलता है कि निगमन तथ्यो के अनुरूप नही है तो निगमन की प्रक्रिया की फिर से जाच की जाती है कि उसमे कहाँ पर भूल हुई है। तोप के गोले के उदाहरण मे यदि वह गणना के अनुसार निर्दिष्ट स्थान पर नही होता, पीछे रह जाता है या आगे चला जाता है तो इससे अवश्य यह निष्कर्ष निकलता है कि गणना करने मे कोई भूल हुई है। यह भूल या तो किसी प्रासगिक कारण के छूट जाने से होती है या विभिन्न कारणो के सयुक्त रूप से कार्य करने के नियमो के विषय मे अज्ञान से होती है। दोनो ही स्थितियो मे आगमन गलत ठहरता है और तथ्यो के अनुरूप नही होता। अस्तु, सत्यापन आगमन की सफलता अथवा प्रामाणिकता की जाच करना है।

किसी भी अनुलोम आगमन या भौतिक विधि मे उपरोक्त तीनों सोपान आवश्यक है। कार्वेथ रीड के शब्दो मे, "यदि कोई जटिल यान्त्रिक तथ्य दिया हुआ है तो अनुसन्धानकर्ता यह विचार करता है कि १. आगमन से पहले निर्धारित किन नियमों के यहां लागू होने की सम्भावना है, २. तब इन नियमो से ज्ञात परिस्थितियो में जो कार्य उत्पन्न होते हुए देखे गये है उनसे गणना करके वह सयुक्त कार्य मालूम करता है, ३. तथा वास्तविक तथ्यो से तुलना करके वह अपने निष्कर्ष का सत्यापन करता है।"[1] तोप के गोले के उदाहरण मे सबसे पहले पूर्व आगमन से यह पता लगाया जाता है कि उसकी गति को तीन कारण निर्धारित करते है गुरुत्वाकर्षण, वायु की शक्ति और वायु का प्रतिरोध। इन तीनो कारको की संयुक्त क्रिया के आधार पर गणना करके यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि तोप का गोला निशाने पर किस तरह पहुँचेगा। अब यदि वह निशाने पर पहुँच जाता है तो इससे गणना का सत्य होना सिद्ध हो जाता है और यदि ऐसा नही होता तो हम यह समझ लेते है कि गणना में कही न कही भूल अवश्य हुई है।

उपरोक्त विधि को अनुलोम विधि कहने का कारण यह है कि इसमें पहले निगमन और फिर आगमन का प्रयोग हुआ है। निगमन और आगमन दोनो का प्रयोग होने के कारण इस विधि को जेवोन्स ने सयुक्त विधि या मिश्र विधि भी कहा है। मिल इसको भौतिक विधि कहता है क्योंकि भौतिक विज्ञानों में इस विधि का व्यापक रूप से प्रयोग किया जाता है।

(२) विलोम निगमन विधि

पीछे बतलाया जा चुका है कि अनुलोम विधि में अन्तिम चरण आगमन है और उससे पहले निगमन होता है। विलोम विधि मे इसका उल्टा है अर्थात् इसमे पहले आगमन होता है और तब निगमन होता है। दूसरे, जब कि अनुलोम निगमन विधि में आगमन पहले के निगमन को सत्यापित करता है, विलोम निगमन विधि मे निगमन आगमन को सत्यापित करता है। तीसरे जबकि अनुलोम विधि मे निगमन पहले और आगमन बाद मे होता है विलोम विधि मे आगमन पहले और निगमन बाद मे होता है।

जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है, विलोम विधि मे पहला सोपान आगमन का है। इसमे निरीक्षण की सहायता से यह दिखलाने का प्रयास किया जाता है कि कोई जटिल घटना किन विभिन्न परिस्थितियो का परिणाम है। इस प्रकार इसमे किसी जटिल कार्य मे उलझे हुये विभिन्न कार्यों के कारण नियमों का पता लगाया जाता है। उदाहरण के लिए यदि किसी राजनैतिक क्रान्ति का कारण मालूम करना है तो राजनैतिक क्रान्ति के अनेक उदाहरणो का निरीक्षण करके यह दिखलाया जाता कि जनता की गरीबी, सरकार का अत्याचार इत्यादि कुछ कारणों से क्रान्ति हुआ करती है। इसमे जनता की गरीबी, सरकार का अत्याचार आदि के

---

1. "Given any complex mechanical phenomenon the inquirer considers (1) What laws already ascertained by induction seem likely to apply to it (in default of known laws, hypotheses are substituted); he then (2) computes the effect that will follow from these laws in circumstances similar to the case before him; and (3) he verifies his conclusion by comparing it with the actual phenomena." —Carveth Read.

परिणामो को उन नियमो से निगमित किया जाता है जो इन्हे चलाते है । एक अन्य उदाहरण लीजिये । यदि आपको हडताल के कारण का पता लगाना है तो इसके लिये आप उन कई हडतालो पर ध्यान देते है जिनका आपने निरीक्षण किया है । इससे आप को निरीक्षण के द्वारा यह ज्ञात होता है कि जहाँ-जहा हडताल हुई है वहाँ उसके मूल मे श्रमिको के अधिकारो का उल्लघन या पदाधिकारियो के अत्याचार है । अस्तु, इस आगमन से आप वर्तमान हडताल के सम्बन्ध मे यह निष्कर्ष निकाल लेते है कि यहाँ पर भी श्रमिको के अधिकारो के उल्लघन या अधिकारो के अत्याचार के कारण हडताल हुई होगी । यह एक निगमन की प्रक्रिया है । इसमे विभिन्न हड़तालो के कारण का पता लगाया जाता है । यह प्रक्रिया इस प्रकार होती है — आगमन से यह ज्ञात हुआ कि जहाँ कही हडताल होती है वहाँ श्रमिको के अधिकारो को छीना जाता है और उन पर अत्याचार किया जाता है । वर्तमान स्थिति मे हडताल हुई है इसलिए इसके मूल मे भी श्रमिको के अधिकारो का उल्लघन और पदाधिकारियो के अत्याचार होगे ।

विलोम निगमन विधि ऐतिहासिक विधि भी कहलाती है क्योकि इसका ऐतिहासिक विज्ञानो मे विशेष प्रयोग किया जाता है । जैवोस इसे भी सयुक्त या मिश्र विधि कहता है क्योकि इसमे भी आगमन और निगमन दोनो का प्रयोग किया जाता है । किन्तु ऐतिहासिक विधि कहने से यह निष्कर्ष नही निकाला जाना चाहिये कि इस विधि का प्रयोग अन्य स्थानो पर नही किया जा सकता । वास्तव मे जिस प्रकार अनुलोम विधि अथवा भौतिक विधि का प्रयोग केवल भौतिक विज्ञानो मे ही सीमित नही है उसी प्रकार ऐतिहासिक विधि का प्रयोग केवल राज-नीति, समाजशास्त्र इत्यादि ऐतिहासिक विज्ञानो मे ही सीमित नही है । वास्तव मे इस विधि का प्रयोग वही किया जाता है जहाँ किसी जटिल कार्य के पीछे इतने बहुसख्यक अथवा निश्चित कारण होते है कि उनके सयुक्त प्रभाव की पहले से गणना नही की जा सकती ।

(३) ज्यामितीय विधि

निगमन की विभिन्न विधियो मे ज्यामितीय विधि विशुद्ध निगमनात्मक विधि है क्योकि इसमे निरीक्षण अथवा प्रयोग आदि किसी भी आगमनात्मक क्रिया का प्रयोग नही किया जाता । यह विधि अमूर्त (Abstract) निगमन विधि भी कहलाती है । यह नाम देने से यह अनुलोम और विलोम निगमन विधियो से अलग पहचानी जाती है क्योकि अनुलोम और विलोम विधियाँ मूर्त (Concrete) निगमन विधियाँ कहलाती है ।

ज्यामितीय विधि का विशेषतया गणित मे प्रयोग किया जाता है । चूँकि गणित का सम्बन्ध अमूर्त प्रत्ययो से है, मूर्त तथ्यो से नही है इसलिये उसमे अमूर्त निगमन विधि का प्रयोग किया जाता है । ज्यामिति के प्रत्यय जैसे बिन्दु, रेखा आदि वास्तविक बिन्दु अथवा रेखा नही है । बिन्दु की परिभाषा यह कहकर की जाती है कि उसकी स्थिति तो है परन्तु आकृति नही है । इसी प्रकार रेखा की परिभाषा मे यह कहा जाता है कि उसमे लम्बाई तो है परन्तु चौड़ाई नही है । स्पष्ट है कि इस प्रकार का बिन्दु अथवा रेखा वस्तु जगत मे नही होते क्योकि वस्तु जगत मे प्रत्येक रेखा की कुछ न कुछ मोटाई भी अवश्य होगी । दूसरे शब्दो मे, ऐसी रेखा खीचना सम्भव नही है जिसकी लम्बाई तो हो किन्तु मोटाई न हो । रेखाओ

और बिन्दुओं के मिलने से ही ज्यामिति की अन्य आकृतियां बनती हैं जैसे तीन रेखाओं से त्रिभुज बनता है। यह त्रिभुज भी वास्तव में अमूर्त प्रत्यय है। ज्यामिति के क्षेत्र में अमूर्त प्रत्यय होने के कारण निगमनात्मक निष्कर्षों की जाच की भी आवश्यकता नहीं होती और वे पहले से ही सही मान लिये जाते हैं।

जैसा कि पीछे बतलाया जा चुका है ज्यामिति विधि का यथार्थ प्रयोग गणित के क्षेत्र में ही किया जा सकता है किन्तु इससे यह निष्कर्ष नहीं निकाला जाना चाहिये कि इस विधि का प्रयोग अन्य कहीं नहीं किया गया है। अन्य स्थानों पर भी इस विधि का प्रयोग किया गया है। उदाहरण के लिये आधुनिक पाश्चात्य दर्शन के इतिहास में रेने देकार्ते और स्पिनोजा ने गणित की विधि का दर्शन में प्रयोग किया। स्पिनोजा की नीति शास्त्र नामक पुस्तक में ईश्वर, जगत और आत्मा इत्यादि दर्शन की विभिन्न समस्याओं के सम्बन्ध में ज्यामितीय निगमन विधि से निष्कर्ष उपस्थित किये गये हैं। दर्शन के क्षेत्र में देकार्ते और स्पिनोजा द्वारा गणित की विधि के प्रयोग की पर्याप्त आलोचना की गई है क्योंकि वास्तव में दर्शन और ज्यामिति की विषय वस्तु में इतना अन्तर है कि ज्यामितीय विधि का दर्शन के क्षेत्र में प्रयोग नहीं होना चाहिये। इसी प्रकार कुछ विचारकों ने अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, समाजशास्त्र इत्यादि अन्य सामाजिक विज्ञानों में ज्यामिति विधि का प्रयोग करने का प्रयास किया है। किन्तु इन सभी क्षेत्रों में इस विधि का प्रयोग उपयुक्त नहीं माना गया क्योंकि इनमें से कोई भी गणित के समान अमूर्त नहीं है। अस्तु, इस विधि का प्रयोग गणित के क्षेत्र में ही उचित है। विशुद्ध निगमन विधि होने के कारण यह निगमनात्मक न्यायशास्त्र का अंग है।

सारांश

निगमन विधि में सामान्य सिद्धांत से विशेष तथ्य निकाला जाता है। इसके मुख्य प्रकार हैं—१. अनुलोम निगमन विधि या भौतिक विधि, २. विलोम निगमन विधि या ऐतिहासिक विधि, ३. अमूर्त निगमन विधि या ज्यामिति विधि।

अभ्यास के लिये प्रश्न

प्रश्न १. अनुसंधान की निगमनात्मक विधि पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिये।

प्रश्न २. वैज्ञानिक अनुसंधान का क्या स्वरूप है? साधारण चिन्तन तथा वैज्ञानिक चिन्तन में क्या अन्तर है?

२९

व्याख्या

(EXPLANATION)

किसी भी तत्व को समझाने के लिये उसे अन्य वस्तुओ से भिन्न पहचानने की आवश्यकता है। अन्य वस्तुओ से अलग करने के लिए उसकी व्याख्या करना आवश्यक है। व्याख्या के बिना किसी भी वैज्ञानिक सिद्धान्त का अर्थ स्पष्ट नही होता। व्याख्या मे उसके निहित अर्थ को अभिव्यक्त किया जाता है। इस प्रकार व्याख्या से तात्पर्य किसी अस्पष्ट या गूढ वात को स्पष्ट करना है। इसके अंग्रेजी पर्यायवाची शब्द Explanation का शाब्दिक अर्थ स्पष्टीकरण है। स्पष्टीकरण की वही आवश्यकता होती है जहाँ घटनायें, पदार्थ अथवा वस्तुये स्पष्ट नही होती। जो वात स्पष्ट है उसके स्पष्टीकरण की कोई आवश्यकता नही होती। साधारण अर्थ मे व्याख्या वह है जिससे समझने वाले को वात स्पष्ट हो जाये, उसके मन मे कोई सन्देह न रहे और न उसके 'क्यो' और 'कैसे' के प्रश्नो का उत्तर मिल जाये।

व्याख्या से लाभ

संक्षेप मे, व्याख्या को समझने के लिये उससे होने वाले निम्नलिखित लाभो को ध्यान मे रखना आवश्यक है। इन्ही से यह भी मालूम होता है कि व्याख्या क्या है—

(१) **क्यों और कैसे आदि प्रश्नो का उत्तर**—व्याख्या से किसी भी पदार्थ के विषय मे क्यो और कैसे के प्रश्नो का उत्तर मिलता है। सामान्य रूप से दैनिक जीवन मे वहुत सी घटनाये ऐसी होती हैं जिनके वारे मे यह प्रश्न उठता है कि वे क्यो होती हैं और किस तरह होती हैं। इन प्रश्नो का उत्तर मिलने से मनुष्य को संतोप मिलता है और उसकी जिज्ञासा शात होती है तथा ज्ञान वढता है।

(२) **जिज्ञासा की तुष्टि और ज्ञान की वृद्धि**—इस प्रकार व्याख्या से मनुष्य की जिज्ञासा तृप्त होती है और उसका ज्ञान वढता है। व्याख्या के पहले वह अधिकतर जटिल घटनाओ को पूरी तरह नही समझता। व्याख्या से वह यह जान लेता है कि किन परिस्थितियो का क्या परिणाम होता है और यह परिणाम किस प्रकार का होता है। व्याख्या से उसके ज्ञान की खाइया भर जाती है।

(२) **कार्य-कारण सम्वन्धों का ज्ञान**—इस प्रकार अधिकतर वस्तुओ की व्याख्या यह वतलाकर की जाती है कि उसके कारण क्या थे अथवा उनके क्या प्रभाव होते हैं। इससे उनका अन्य वस्तुओ से सम्बन्ध स्पष्ट होता है।

वैज्ञानिक व्याख्या क्या है

यद्यपि सामान्य रूप से व्याख्या के उपरोक्त गुण लौकिक और वैज्ञानिक व्याख्या दोनो मे ही पाये जाते है किन्तु फिर भी इन दोनो मे सापेक्ष रूप से अन्तर

है। इस अन्तर को जानने के पूर्व वैज्ञानिक व्याख्या की परिभाषा कहना उपयुक्त होगा। कार्वेथ रीड के शब्दो मे, "वैज्ञानिक व्याख्या तथ्यों के नियमो की खोज निगमन और एकीकरण है।" इसी प्रकार जैवन्स ने लिखा है, "व्याख्या में तथ्य का तथ्य के साथ या तथ्य का नियम के साथ या नियम का नियम के साथ इस प्रकार सामंजस्य स्थापित किया जाता है कि हम दोनो को एक ही कारण नियम के उदाहरणों के रूप मे देख सकें।"[1] वैज्ञानिक व्याख्या की इन दोनो परिभाषाओ से उनके निम्नलिखित लक्षण स्पष्ट होते हैं—

(१) **तथ्यों के नियमों की खोज** (Discovery of laws of facts)—वैज्ञानिक व्याख्या तथ्यो के क्षेत्र मे कार्य कारण सम्वन्धी नियमो की खोज करती है। इस प्रकार भौतिक विज्ञानो मे भौतिक तथ्यों और सामाजिक विज्ञानों मे सामाजिक तथ्यो के नियमो की खोज की जाती है। उदाहरण के लिये असामान्य मनोविज्ञान मे मानसिक रोगो से सम्वन्धित तथ्यो के नियम निकाले जाते है, यह पता लगाया जाता है कि कौनसा मानसिक रोग किन कारणो से होता है। इससे उसके उपचार का भी पता लगाया जा सकता है। विज्ञान की नई खोजो मे अनेक ऐसे तथ्यो के नियमो का पता चलता है जिनके वारे मे पहले से कुछ भी ज्ञान नही होता। वैज्ञानिक नये-नये क्षेत्रो मे तथ्यो के नियमों की खोज करता है। उदाहरण के लिये आजकल परामनोविज्ञान के क्षेत्र मे मनोगति, पुनर्जन्म इत्यादि अनेक ऐसे तथ्यो के नियमों की खोज की जा रही है जिनके वारे मे मनुष्य पहले से अधिक नहीं जानता।

(२) **निगमन** (Deduction)—वैज्ञानिक व्याख्या का एक कार्य निगमन है। विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रो में जो सामान्य सिद्धान्त स्थापित हो चुके हैं उन सिद्धान्तो के आधार पर विशेष तथ्यो की व्याख्या की जाती है। उदाहरण के लिए राम को तपेदिक का रोग क्यों हुआ इसकी व्याख्या तपेदिक के रोग के सम्वन्ध मे सामान्य सिद्धान्तो से निगमन के द्वारा की जाती है। डाक्टर यह जानता है कि अमुक परिस्थितियो मे तपेदिक का रोग उत्पन्न होता है और बढता है। यह एक सामान्य नियम है। चूंकि राम को तपेदिक का रोग है इसलिये स्पष्ट है कि वह भी उन परिस्थितियों मे रहा होगा जिनमे यह रोग वढ़ता है। इसी प्रकार अन्य विज्ञानो मे विशेष तथ्य की व्याख्या करने के लिये सामान्य सिद्धान्तो से निगमन किया जाता है। उदाहरण के लिये मोहन अपराधी व्यापार क्यो करता है, मेरठ शहर मे दंगे क्यो हुये, उत्तर प्रदेश मे कांग्रेस की क्यों जीत हुई अथवा पाकिस्तान ने हिन्दुस्तान मे क्यो युद्ध छेड़ दिया, इन सामाजिक तथ्यों और कोयना मे भूकम्प क्यो आया, आसाम मे बाढ क्यो आई और राजस्थान मे सूखा क्यों पड़ा, इन भौतिक तथ्यो की व्याख्या करने के लिये इनसे सम्वन्धित सामान्य सिद्धान्तो मे निगमन करने की आवश्यकता है। जब कभी भी किसी वैज्ञानिक से कोई प्रश्न पूछा जाता है अथवा किसी तथ्य की व्याख्या करने को कहा जाता है तो वह यह बतलाता है कि वह तथ्य किस सामान्य सिद्धान्त के अन्तर्गत आता है अर्थात किस सामान्य सिद्धान्त मे निगमन करके उस तथ्य की व्याख्या की जा सकती है।

---

1 "Scientific explanation consists in discovering, deducing and assimilating the laws of phenomena" —Carveth Read.

पेड़ से सेव जमीन पर गिरा तो इस तथ्य की व्याख्या न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण के सामान्य सिद्धान्त से की।

(२) **एकीकरण** (Assimilation)—व्याख्या का एक अन्य कारण विभिन्न सम्वद्ध घटनाओं का एकीकरण है। इसी को जैवोन्स ने तथ्य का तथ्य के साथ या तथ्य का नियम के साथ या नियम का नियम के साथ सामजस्य स्थापित करना कहा है जिससे कि दोनो को एक ही कारण नियमो के उदाहरणो के रूप मे देखा जा सके। मानव मन का यह स्वभाव है कि वह बिखरे हुये और पृथक-पृथक तथ्यो को मस्तिष्क मे नही रख सकता। उसमें स्वभाव से ही पूर्ण की ओर प्रवृत्ति है। वह विभिन्न तथ्यो को परस्पर सम्बन्धित देखना चाहता है। एक विज्ञान मे तो विभिन्न सिद्धान्तो को भी परस्पर सम्वन्धित किया जाता है और अन्त मे एक विश्व रूप मे समस्त तथ्यो और नियमो का एकीकरण किया जाता है जिससे यह मालूम होता है कि सब कही भिन्न-भिन्न रूप मे एक ही नियम काम कर रहा है। उदाहरण के लिए प्रकृति की समरूपता का सिद्धान्त सभी वैज्ञानिक तथ्यो या नियमो मे सम्वन्ध स्थापित करता है। एकीकरण से वस्तुये भिन्न-भिन्न न देखी जाकर एक जाति के विभिन्न नमूनो के रूप मे देखी जाती है। उदाहरण के लिए यदि जेवरा की व्याख्या करने मे यह कहा जाये कि वह घोड़े के समान होता है तो उसमे जेवरा और घोड़े का एकीकरण किया गया और यदि हम घोडे की विशेषताओ को जानते है तो हमे जेवरा की विशेषतायें भी ज्ञात हो जाती है। इस दृष्टि से व्याख्या मे वर्गीकरण का काम किया जाता है। एकीकरण का शाब्दिक अर्थ किसी वस्तु का सदृश्य वस्तुओ से सम्वन्ध स्थापित करना है।

(४) **आगमन** (Induction)—वैज्ञानिक व्याख्या मे केवल निगमन ही नही बल्कि आगमन की भी आवश्यकता पड़ती है। आगमन मे सामान्यीकरण की प्रक्रिया के द्वारा विशेष तथ्यो से सामान्य सिद्धान्त निकाला जाता है। इस सामान्य सिद्धान्त पर पहुँचने से विशेष तथ्यो की और भी अधिक अच्छी व्याख्या हो जाती है क्योकि हम यह जान लेते है कि निगमन क्या है। उदाहरण के लिए किशोरापराध की दो चार घटनाओ को देखकर हमे यह आभास होता है कि उसके अमुक अमुक कारण हो सकते है। किन्तु जब बहुत से उदाहरणो के आधार पर सामान्यीकरण के द्वारा किशोरापराध के कारण के विषय मे नियम निकाला जाता है तो उस नियम से किशोरापराध के कारणो की और भी अधिक अच्छी व्याख्या होती है। आगमन से हमारी पूर्वकल्पना की उत्पत्ति भी होती है और कार्य कारण सम्वन्धो का भी पता चलता है। इसी कारण व्याख्या को साध्य और आगमन को साधन माना गया है।

लौकिक और वैज्ञानिक व्याख्या में अन्तर

वैज्ञानिक व्याख्या के उपरोक्त विवेचन से लौकिक व्याख्या से उसका अन्तर स्पष्ट होता है। सक्षेप मे यह अन्तर निम्नलिखित है—

(१) **लौकिक व्याख्या स्थूल तथा वैज्ञानिक व्याख्या सूक्ष्म होती है**—लौकिक व्याख्या स्थूल होती है। उसमे अधिक गहराई मे जाने का प्रयास नही किया जाता और केवल वाह्य रूप से व्याख्या करके सतोष कर लिया जाता है।

इसीलिये बहुधा यह व्याख्या अन्धविश्वास युक्त होती है। उदाहरण के लिये बेपढे लिखे लोगो मे बहुत से बड़े आत्मविश्वास के साथ प्रत्येक घटना की उल्टी सीधी व्याख्या किया करते हैं। वे सूखा पड़ने को अधार्मिकता के कारण मानते है और गरीबी को पूर्व जन्म के पापो का परिणाम ठहराते हैं। उन्हे अपनी व्याख्या मे कभी भी सन्देह नही होता क्योकि वे पीढी दर पीढी वही व्याख्या सुनते आ रहे है। वे व्याख्या करने मे अनावश्यक और अप्रासगिक बातो को आवश्यक और प्रासगिक बातो से अलग करने की चेष्टा नही करते। वे ऊपरी समानता के आधार पर बहुत सी बातो की व्याख्या कर देते है। दूसरी ओर वैज्ञानिक व्याख्या अधिक सूक्ष्म होती हैं। उसमे गहराई मे जाकर सूक्ष्म समानताओ का पता लगाया जाता है। उसमे केवल किसी घटना के नियम का ही नही बल्कि उस नियम के उससे बड़े नियम से सम्बन्ध का पता लगाया जाता है। यही कारण है कि वैज्ञानिक व्याख्या अधिक सही होती है। व्याख्या के विभिन्न गुण लौकिक व्याख्या की तुलना मे वैज्ञानिक व्याख्या मे अधिक पाये जाते है।

(२) लौकिक व्याख्या में कौन और क्या तथा वैज्ञानिक व्याख्या में क्यो और कैसे का उत्तर दिया जाता है—लौकिक व्याख्या वर्णनात्मक और वैज्ञानिक व्याख्या समीक्षात्मक होती है। उदाहरण के लिये कोई घटना होने पर लौकिक व्याख्या मे केवल यह कहकर सतोष कर लिया जाता है कि वह घटना क्या है और किसके कारण हुई। मोहन के जजीर खीचने से गाडी रूक गई, सूखा पड़ने से खेती मारी गई, फसल नष्ट हो जाने से गरीबी बढ गयी इत्यादि अपेक्षाकृत लौकिक व्याख्याओ के उदाहरण है। दूसरी ओर इन घटनाओ की वैज्ञानिक व्याख्या करने मे यह पता लगाया जायेगा कि फसल क्यो मारी गई, गरीबी क्यो बढी, सूखा क्यो पड़ा इत्यादि। लौकिक और वैज्ञानिक व्याख्या के अन्तर को स्पष्ट करते हुये वेन ने लिखा है, व्याख्या का एक विशेष और दैनिक प्रकार होता है जिसमे किसी विशेष घटना के कर्ता अथवा कारक का उल्लेख किया जाता है जैसे कि जब हम यह पूछते हैं कि क्या वस्तु रास्ता रोकती है? जूनियस किसने लिखा था? बारूद की खोज किसने की? इन प्रश्नो का सम्बन्ध यद्यपि हमारी व्यावहारिक आवश्यकताओ के साथ है परन्तु उनके उत्तर मे वैज्ञानिक व्याख्या की प्रक्रिया का समावेश नही है परन्तु यदि हम कौन या क्या से क्यो की ओर चले—अ की गाडी मार्ग क्यो रोकती है? जूनियस के लेखक ने इतनी कटुतापूर्वक क्यो लिखा? तो उच्चतर वैज्ञानिक प्रक्रिया के लिये मार्ग खुला है।'' स्पष्ट है कि लौकिक और वैज्ञानिक व्याख्या मे सापेक्ष अन्तर है। जब तक हम कौन और क्या के विषय मे प्रश्न करते है तब तक व्याख्या लौकिक रहती है किन्तु जब क्यो और कैसे के प्रश्नो को हल किया जाता है तो व्याख्या वैज्ञानिक हो जाती है।

(३) लौकिक व्याख्या में अधिकारी भेद होता है, वैज्ञानिक व्याख्या में ऐसा नही होता—लौकिक व्याख्या मे व्यक्ति की बुद्धि के अनुसार अथवा उसकी स्थिति को ध्यान मे रखते हुये व्याख्या दी जाती है। इस प्रकार भिन्न-भिन्न व्यक्तियो को एक ही तथ्य की भिन्न-भिन्न व्याख्याये दी जाती हैं। उदाहरण के लिये बालक को नक्षत्र विद्या सम्बन्धी बातें उसी प्रकार से नही समझाई जा सकती जिस प्रकार से वयस्क समझ लेता है। दूसरी ओर वैज्ञानिक व्याख्या मे व्यक्ति की समझ पर कोई भी ध्यान नही दिया जाता। उसमे लक्ष्य किसी व्यक्ति विशेष का सतोष करना

नही है । वैज्ञानिक व्याख्या मे यह बात ध्यान मे रखी जाती है कि वह सभी की समझ मे आ जाए । उसे वे सब समझ सकते है जो उस विशेष बौद्धिक स्तर पर होते हैं । उससे निम्न बुद्धि के व्यक्ति उसे समझ नही सकते । वैज्ञानिक का उद्देश्य तो घटना की अधिक से अधिक यथार्थ व्याख्या करना है । इसमे वह समझाने की चेष्टा नही करता । वैज्ञानिक व्याख्या को समझाने के लिये बहुधा उसका लौकिकीकरण किया जाता है । उदाहरण के लिये शिक्षकगण वैज्ञानिक व्याख्या को भिन्न-भिन्न व्यक्तियो को उनकी समझ के अनुसार अलग-अलग प्रकार से समझाते है ।

(४) लौकिक व्याख्या विशेष बातो की और वैज्ञानिक व्याख्या नियमों की व्याख्या होती है—सामान्य रूप से लौकिक व्याख्या मे विशेष घटनाओ की व्याख्या की जाती है और साधारण व्यक्ति इसी से सतुष्ट हो जाता है । उदाहरण के लिये राधे के घर में आग कैसे लगी इस सम्बन्ध मे केवल यह बतलाने से उसे सतोष हो जायेगा कि यह घटना किस प्रकार हुई । वह यह जानने की कोशिश नही करेगा कि आग क्यो लगा करती है और इस सम्बन्ध मे सामान्य नियम क्या है ? मोहन को बुखार क्यो आया, उसके माता-पिता केवल यही जानना चाहते है, किन्तु चिकित्सक बुखार सम्बन्धी सामान्य नियम पर ध्यान देता है । किसी भी क्षेत्र के विशेषज्ञ और सामान्य व्यक्ति मे यही अन्तर होता है । जबकि सामान्य व्यक्ति विशेष बातो के कारण को जानकर ही सतुष्ट हो जाता है विशेषज्ञ अपने क्षेत्र की घटनाओ के नियमो का पता लगाता है । विभिन्न भौतिक और सामाजिक विज्ञानो मे विशेष घटनाओ की व्याख्या नही की जाती बल्कि उनके सम्बन्ध मे सामान्य नियमो का पता लगाया जाता है । इन सामान्य नियमो से निगमन के द्वारा विशेष तथ्यो की व्याख्या की जाती है ।

(५) लौकिक व्याख्या में अलौकिक शक्तियो का भी सहारा लिया जाता है—बहुत से प्राकृतिक तथ्यो की लौकिक व्याख्या अलौकिक शक्तियो के आधार पर की गयी है । उदाहरण के लिये भूकम्प का कारण पृथ्वी को फन पर धारण किये हुए शेषनाग के फन हिलाने को समझा जाता है, चन्द्रग्रहण की व्याख्या राहु और केतु के उसे निगलने के द्वारा की जाती है । भौतिक जगत मे होने वाली अनेक दुर्घटनाओ मृत्युओ, अकाल, सूखा, बाढ, भयकर आग, इत्यादि की व्याख्या देवी देवताओ के प्रकोप से की जाती है । यह लौकिक व्याख्या सामान्य व्यक्ति को सन्तुष्ट करती है किन्तु इससे वैज्ञानिक का सतोष नही होता । वैज्ञानिक किसी घटना के मूल में किसी अलौकिक शक्ति का हाथ मानने को तैयार नही है । सामान्य रूप से विज्ञान जडवादी होता है, उसमे प्रकृति के नियमो से सभी घटनाओ की व्याख्या की जाती है । भले ही अलौकिक शक्तियाँ अस्तित्व रखती हो, किन्तु वैज्ञानिक व्याख्या मे यह नियम है कि किसी भी घटना की व्याख्या करने मे अलौकिक शक्ति का सहारा न लिया जाये ।

उपरोक्त विवेचना से स्पष्ट है कि लौकिक और वैज्ञानिक व्याख्या मे केवल मात्रा का ही नहीं बल्कि प्रकार का भी अन्तर है । दूसरे शब्दो मे, वैज्ञानिक व्याख्या लौकिक व्याख्या का अधिक सूक्ष्म अथवा व्यवस्थित रूप ही नही है बल्कि इनमे कभी-कभी व्याख्या का आधार सर्वथा भिन्न होता है । यही कारण है कि अनेक लौकिक व्याख्याये ऐसी होती है जिनको वैज्ञानिक दृष्टि से व्याख्या नहीं

बल्कि अन्धविश्वास कहा जाना चाहिये। उदाहरण के लिये भौतिक घटनाओ की अलौकिक शक्तियो से व्याख्या करने के प्रयत्न वास्तव मे अन्धविश्वास के द्योतक है।

वैज्ञानिक व्याख्या के प्रकार

मिल ने वैज्ञानिक व्याख्या के तीन प्रकार माने है—विश्लेषण, शृंखला बन्धन और अन्तर्भाव।

(१) **विश्लेषण** (Analysis)—विश्लेषण व्याख्या का वह प्रकार है जिसमे किसी सयुक्त कार्य के नियम को उसके कारणो के और उन कारणो के एक साथ होने के नियमो मे विश्लेषण किया जाता है। दूसरे शब्दो मे, विश्लेषण से किसी जटिल कारण समूह मे कारणो को अलग-अलग किया जाता है। कारण और कार्य समूहो मे विभिन्न प्रकार के मिश्रण पाये जाते है। सजातीय मिश्रण अलग-अलग कार्यो का योग होता है। इस प्रकार के मिश्रण की व्याख्या करने के लिये इन कार्यो को अलग-अलग करने से सहायता मिलती है क्योकि साथ रहते हुए भी वे अलग-अलग कारण से कार्य करते है। दूसरी ओर यदि घटना समूह ऐसा है जिसमे एक साथ गुथे हुए कारक सयुक्त होकर नया रूप बना लेते है तो ऐसी स्थिति मे विश्लेषण मे विशेष लाभ नही होता। विश्लेषण के प्रयोग के उदाहरण सभी भौतिक और सामाजिक विज्ञानो मे देखे जा सकते है। उदाहरण के लिये आकाश मे किसी नक्षत्र के मार्ग की व्याख्या करने के लिये उन सब प्रभावो का विश्लेषण किया जाता है जो नक्षत्र की गति को निर्धारित करते है। इसी प्रकार किशोरापराध बढने पर उसकी व्याख्या करने के लिये उन कारणो का विश्लेषण किया जाता है जो किशोरापराध की घटनाये उत्पन्न करते है। आधुनिक काल मे बहुत से विचारको ने विद्यार्थियो मे बढती हुई अनुशासनहीनता की व्याख्या के लिये विश्लेषण का सहारा लिया है।

(२) **शृंखला बन्धन** (Concatenation)—व्याख्या के इस प्रकार मे एक कारण और उसके दूरस्थ कार्य की मध्यवर्ती कडियो को खोजा जाता है। अनेक घटनाये एक के बाद दूसरी घटनाओ के क्रमबद्ध कार्य करने का परिणाम होती है। इनका कारण निकट नही होता बल्कि दूरस्थ होता है। उदाहरण के लिये अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे होने वाली अनेक घटनाये इसी प्रकार की होती है। आजकल दुनियाँ इतनी छोटी हो गई है कि ससार मे कही भी राजनैतिक अथवा आर्थिक परिवर्तनो की घटनाओ से दूरस्थ देशो मे कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य पड़ता है। इसीलिये भारतवर्ष मे शेयर मार्केट मे आने वाली मन्दी की व्याख्या करने के लिये कभी-कभी दूरस्थ कार्य की मध्यवर्ती कड़ियो को खोजा जाता है। आकाश मे बिजली चमकने से ऐसा मालूम पड़ता है कि उसमे विस्फोट करने की शक्ति है किन्तु वास्तव मे विस्फोट करने की शक्ति बिजली मे नही होती बल्कि उसके द्वारा उत्पन्न ताप मे होती है क्योकि ताप वायु को अकस्मात फैलाकर जोर की ध्वनि उत्पन्न करता है। इस उदाहरण मे आकाश मे विस्फोट होने की व्याख्या करने के लिये बिजली के चमकने और विस्फोट के मध्य की कडी का पता लगाया गया। रसायनशास्त्र के क्षेत्र मे एक उदाहरण दिया जाये तो क्लोरीन के कारण रग नष्ट हो जाता है किन्तु वास्तव मे रंग नष्ट करने का कारण क्लोरीन नही बल्कि आक्सीजन है। क्लोरीन पानी को उसके तत्वो मे बाँट देता है और हाइड्रोजन को लेकर ऑक्सीजन को अत्यधिक सक्रिय दशा मे छोड देता है। यह आक्सीजन रग वाले पदार्थ को नष्ट कर

देता है। जेवोन्स के द्वारा दिये गये इस उदाहरण में यह स्पष्ट किया गया है कि व्याख्या मे शृंखला बन्धन किस प्रकार किया जाता है।

(३) **अन्तर्भाव** (Subsumption)—जब कभी किसी सामान्य नियम की व्याख्या यह बतलाकर की जाती है कि वह किस बडे नियम के अन्तर्गत आता है तो यह अन्तर्भाव की प्रक्रिया कहलाती है। विज्ञान के क्षेत्र मे सीमित क्षेत्र मे काम करने वाले नियम व्याख्या नियमों के अन्तर्गत आते है। उदाहरण के लिये भौतिक शास्त्र के विभिन्न नियम पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के नियम के अन्तर्गत आते है। मनोविज्ञान में समानता का नियम सान्निध्य के नियम के अन्तर्गत आता है। भौतिक पिण्डो का पृथ्वी की ओर गिरने का नियम गुरुत्वाकर्षण के नियम के अन्तर्गत आता है। चुम्बकत्व का नियम विद्युत धाराओ के नियम के अन्तर्गत आता है। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि व्याख्या के इस प्रकार मे कम सामान्य नियमो की व्याख्या यह बतलाकर की जाती है कि वे किस अधिक सामान्य नियम के अन्तर्गत आते है। कार्वेथ रीड के शब्दो में, "अन्तर्भाव की यह प्रक्रिया गौण नियमो से वही सम्बन्ध रखती है जो ये विशेष तथ्यो से रखते है। कई विशेष तथ्यों का सामान्यीकरण एक नियम है और इन नियमो का सामान्यीकरण एक उच्च नियम होता है, और यह प्रक्रिया चाहे ऊपर की ओर हो चाहे नीचे की ओर, वैज्ञानिक प्रगति की विशेषता है।"[1] किसी भी विज्ञान का विकास इस बात मे होता है कि उसके क्षेत्र मे नित्य नये और अधिक तथ्य शामिल होते रहे है और यह दिखा दिया जाता है कि वे सब कम से कम नियमों के दृष्टान्त हैं जो उनकी सबसे गहन समानताओ को सिद्ध करते हैं।

वैज्ञानिक व्याख्या की सीमायें

किन्तु सभी क्षेत्रो मे वैज्ञानिक व्याख्या देना सम्भव नही है। इसीलिये सभी क्षेत्र विज्ञान के क्षेत्र मे नही आते। जिन क्षेत्रों मे वैज्ञानिक व्याख्या सम्भव नही है संक्षेप मे वे क्षेत्र निम्नलिखित है—

(१) **चेतना की मौलिक अवस्थायें**—सुख दु ख, इच्छा आदि चेतना की मौलिक अवस्थाओ की व्याख्या नही की जा सकती। कोई भी व्यक्ति अपने सुख, दु:ख इच्छा आदि चेतना की विभिन्न अवस्थाओ का स्वरूप किसी दूसरे को नही समझा सकता और न इसकी उपमा किसी अन्य अवस्था से दे सकता है। इसका विश्लेषण नही किया जा सकता और न इनको किसी अन्य व्यापक तथ्य के अन्तर्गत रखा जा सकता है। अस्तु इनकी व्याख्या नही की जा सकती।

(२) **भौतिक द्रव्यों के मूल गुण**—पुद्गल अथवा भौतिक द्रव्य के मूल गुणो जैसे विस्तार, भार, गति, आकार, प्रतिरोध इत्यादि की व्याख्या नही की जा सकती क्योंकि ये एक दूसरे से सर्वथा भिन्न होते है और इनका एकीकरण सम्भव नही है।

---

1. "This process of subsumption bears the same relation to the secondary laws, that these do, to particular facts The generalisation of many particular facts (that is a statement of that in which they agree) is a law and the generalisation of these laws (that is again, statement of that in which they agree) is a higher law . and this process upwards or downwards is characteristic of scientific progress."
—Carveth Read

(३) **विशेष पदार्थों की विशेषतायें**—विशेष पदार्थों की अपनी विशेषताओं की व्याख्या नही की जा सकती क्योंकि ये विशेषतायें जातिगत गुण नही है। उदाहरण के लिए किसी व्यक्तित्व की पूर्ण व्याख्या नही की जा सकती केवल यही क्यो, अनेक भौतिक पदार्थ भी ऐसे हैं जिनकी व्याख्या नही की जा सकती।

(४) **स्वयंसिद्ध सत्य**—स्वय सिद्ध सत्यों की व्याख्या नहीं होती क्योंकि उनकी व्याख्या करना अनावश्यक है और दूसरे वे किसी बड़े नियम के अन्तर्गत नहीं रक्खे जा सकते। उनकी सहायता से अन्य बातो को सिद्ध किया जाता है किन्तु स्वयं उनको बिना सिद्ध किए हुए ही मान लिया जाता है। स्वय सिद्ध सत्य इतने स्पष्ट होते है कि उनकी व्याख्या करना अनावश्यक है। उदाहरण के लिये यह एक स्वयसिद्ध सत्य है कि, "दो चीजें जो किसी तीसरी एक चीज के बराबर होती हैं आपस में भी बराबर होती है।" गणित के सत्य स्वयं सिद्ध सत्यों के उदाहरण हैं और इसलिये उनकी व्याख्या नही की जा सकती।

(५) **मौलिक अथवा अन्तिम नियम**—मौलिक अथवा अन्तिम नियमों की व्याख्या नही की जा सकती क्योंकि वे किसी और अधिक सामान्य नियम के अन्तर्गत नही रखे जा सकते और न उनकी व्याख्या ही की जा सकती है। उदाहरण के लिये विचार के नियम, प्रकृति की समरूपता का नियम इत्यादि ऐसे अन्तिम नियम है जिनसे ऊपर या अधिक व्यापक कोई नियम नही है। अस्तु इनका वर्णन मात्र किया जा सकता है, व्याख्या नही की जा सकती।

मिथ्या स्पष्टीकरण

जब किसी व्याख्या मे वैज्ञानिक व्याख्या की विशेषतायें नही होती तो वह दोषपूर्ण व्याख्या अथवा मिथ्या स्पष्टीकरण मानी जाती है। अधिकतर लौकिक व्याख्याये दोषपूर्ण होती है। दोषपूर्ण व्याख्या से किसी तथ्य की व्याख्या होने का आभास तो होता है किन्तु वस्तुत व्याख्या नही होती। इसलिये इसको व्याख्या न कहकर व्याख्याभास कहा जाता है। सक्षेप में. व्याख्या सम्बन्धी दोष अथवा दोषपूर्ण व्याख्यायें निम्नलिखित हैं—

(१) **अव्याख्येय तत्वों की व्याख्या करना**—चेतना की मौलिक अवस्थायें, भौतिक द्रव्यों के प्राथमिक गुण, विशेष पदार्थों के विशेष गुण, स्वयसिद्ध सत्य तथा मौलिक या अन्तिम नियम अव्याख्येय तत्व है। इनकी व्याख्या नही की जा सकती, इसलिये इनकी व्याख्या करने के सभी प्रयास दोषपूर्ण होते हैं।

(२) **दूसरी भाषा में आवृत्ति**—कभी-कभी किसी नियम अथवा घटना की

शब्दो म, "दोषपूर्ण व्याख्या का एक प्रकार है एक तथ्य का उसक समान कोइ दूसरा तथ्य बतलाये बगैर दूसरी भाषा मे आवृत्ति करना।"[1] जैसाकि इसके नाम से स्पष्ट है, इसमे व्याख्या न करके उसी बात को दूसरे शब्दो में दोहरा दिया जाता है। उदाहरण के लिये हम शीशे के आर-पार देख सकते हैं। इसकी व्याख्या में यह कहना कि शीशा पारदर्शी है, व्याख्या न होकर व्याख्याभास है। इसी प्रकार अफीम से नीद क्यो आती है, इसकी व्याख्या में यह कहना कि अफीम में नीद पैदा करने का गुण है अशुद्ध व्याख्या है।

1. "One form of illusory explanation is to repeat the fact in different language assigning on other distinct yet parallel facts" —Bain.

(३) **परिचित तथ्यों को सरल मान लेना**—बेन के शब्दो में, "परिचित तथ्यों को सरल मान लेना भी एक भ्रम है।"[1] व्याख्या मे यह भ्रम परिचय के कारण होता है। जो घटनाये हम अपने दैनिक अनुभव मे देखते है उनको अति परिचय के कारण वहुधा अव्याख्येय मान लेते है। उदाहरण लिये सूर्योदय इतनी सामान्य वात है कि सामान्य व्यक्ति उसको व्याख्या का विषय नही मानता किन्तु पृथ्वी का अपनी कीली पर घूमना इस तथ्य की व्याख्या करता है। इसी प्रकार पेड़ से फल टूटने पर उसका भूमि पर गिरना अधिकतर लोगो को इतनी सरल वात प्रतीत होती है कि उसकी व्याख्या की आवश्यकता नही लगती किन्तु न्यूटन ने इसी सरल तथ्य की व्याख्या करने के लिये गुरुत्वाकर्पण का सिद्धान्त निकाला।

(४) **अन्तिम नियमों से अधिक सामान्य नियमो की आशा करना**—वेन के शब्दो मे, "सवसे वडा दोप यह मान लेना है कि तथ्यो के सवसे अधिक सामान्यीकृत सयोगो या अनुक्रमो के वाद भी कुछ अन्य की आवश्यकता है।"[2] उदाहरण के लिये विचार के नियम विचार के क्षेत्र मे अन्तिम नियम है। अव यदि इन नियमों से भी अधिक सामान्य नियमो की आशा की जाये अर्थात् उनकी व्याख्या का पयास किया जाये तो यह अनुचित होगा।

(५) **लौकिक व्याख्यायें**—समस्त लौकिक व्याख्यायें दोपपूर्ण मानी जाती है क्योकि उनमे अनावश्यक और ऊपरी वातो को महत्व दिया जाता है, आवश्यक और अनावश्यक का अन्तर नही किया जाता, अलौकिक शक्तियो के माध्यम से व्याख्या की जाती है और क्यो तथा कैसे के उत्तर नही दिये जाते। ये व्याख्याये वर्णनात्मक होती है, समीक्षात्मक नही होती।

सारांश

व्याख्या का अर्थ स्पष्टीकरण है। व्याख्या से मुख्य लाभ है—१. क्यो और कैसे आदि प्रश्नों के उत्तर, २. जिज्ञासा की पुष्टि और ज्ञान की वृद्धि, ३. कार्य-कारण सम्बन्धों का ज्ञान। वैज्ञानिक व्याख्या के मुख्य लक्षण है—१. तथ्यों के नियमों की खोज २ निगमन, ३. एकीकरण ४. आगमन।

लौकिक और वैज्ञानिक व्याख्या में अन्तर—१ लौकिक व्याख्या स्थूल तथा वैज्ञानिक व्याख्या सूक्ष्म होती है, २. लौकिक व्याख्या में, कौन और क्या तथा वैज्ञानिक व्याख्या में क्यों और कैसे का उत्तर दिया जाता है। ३. लौकिक व्याख्या में अधिकारी भेद होता है वैज्ञानिक व्याख्या में ऐसा नही होता. ४. लौकिक व्याख्या विशेष वातों की और वैज्ञानिक व्याख्या नियमों की व्याख्या होती है। ५. लौकिक व्याख्य में अलौकिक शक्तियो का भी सहारा लिया जाता है।

वैज्ञानिक व्याख्या के प्रकार—१. विश्लेषण, २. शृंखला वन्धन, ३. अन्तर्भाव।

वैज्ञानिक व्याख्या की सीमायें—१. चेतना की मौलिक अवस्थायें, २. भौतिक द्रव्यो के मूल गुण, ३ विशेप पदार्थो की विशेपतायें, ४. स्वय सिद्ध सत्य, ५. मौलिक अथवा अन्तिम नियम।

---

1 "Another illusion consists in regarding phenomena as simple because they are familiar"
—Bain

2 "The greatest fallacy of all is the supposition that some thing is to be desired beyond the most generalised conjunction or sequences of phenomena"
—Bain

मिथ्या स्पष्टीकरण—१. अव्याख्येय तत्वों की व्याख्या करना, २. दूसरी भाषा में आवृत्ति, ३. परिचित तथ्यों को सरल मान लेना, ४. अन्तिम नियमों से अधिक सामान्य नियमों की आशा करना, ५. लौकिक व्याख्यायें।

अभ्यास के लिये प्रश्न

प्रश्न १. व्याख्या के स्वरूप को समझाइये। प्रचलित तथा वैज्ञानिक व्याख्या के अन्तर को स्पष्ट कीजिये। (यू० पी० बोर्ड १९६३)

प्रश्न २. प्रचलित तथा वैज्ञानिक व्याख्या में अन्तर स्पष्ट कीजिये। वैज्ञानिक व्याख्या की सीमायें कौन सी हैं?

प्रश्न ३. परिभाषा, वर्णन और व्याख्या के अर्थ समझाइये। वे एक दूसरे से किस प्रकार भिन्न हैं?

प्रश्न ४. तार्किक व्याख्या के स्वरूप की पूर्ण रूप से विवेचना कीजिये। प्रचलित व्याख्या से इसकी भिन्नता प्रदर्शित कीजिये।

५. वैज्ञानिक व्याख्या के स्वरूप को समझाइये और सीमाओं को स्पष्ट कीजिये।
(यू० पी० बोर्ड १९६३)

प्रश्न ६. मिथ्या स्पष्टीकरण के लक्षण बतलाकर उसके उदाहरण दो।
(यू० पी० बोर्ड १९६१)

प्रश्न ७. व्याख्या का क्या अर्थ है? उपयुक्त दृष्टान्तों सहित वैज्ञानिक तथा लौकिक प्रचलित व्याख्याओं के अन्तर का वर्णन कीजिये। (मेरठ १९७८)

प्रश्न ८. "व्याख्या का क्या अर्थ है? विशेष को सामान्य के आधीन या कम व्याप्त को अधिक व्यापक के अन्तर्गत लाना।" विवेचना कीजिये और व्याख्या की सीमा बतलाइये।
(आगरा १९७६)

प्रश्न ९. वैज्ञानिक और अवैज्ञानिक व्याख्या में क्या अन्तर है? वैज्ञानिक व्याख्याओं के मूल्यांकन की कसौटियों का विवेचन कीजिये। (प्रयाग १९७३)

३०

नियम

(THE LAW)

नियम शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों मे किया जाता है। प्रकृति के नियम के अतिरिक्त हम राज्य के नियम, समाज के नियम, धर्म के नियम, नैतिक नियम और विचारो के नियम आदि की चर्चा करते है।

नियम शब्द के अर्थ

प्रकृति के नियम और राज्य के नियम मे स्पष्ट अन्तर है इस प्रकार नियम शब्द को अनेक अर्थो मे प्रयोग किया गया है। मुख्य अर्थ निम्नलिखित है—

(१) **श्रेष्ठ व्यक्ति का आदेश**—सामान्य जन अधिकतर श्रेष्ठ व्यक्तियो का अनुकरण करते है। राजा का कथन राज्य का नियम वन जाता है क्योकि राजा को श्रेष्ठ व्यक्ति माना जाता है। इस प्रकार नियम एक आज्ञा या आदेश है जो किसी श्रेष्ठ व्यक्ति की इच्छा को प्रगट करता है और उसके आधीन समूह पर लागू किया जाता है। उस आदेश का पालन करना समूह के प्रत्येक सदस्य का कर्त्तव्य माना जाता है। उदाहरण के लिए आदिम जातियो, घुमक्कड समूहो तथा विभिन्न दलो मे सरदार का आदेश सर्वमान्य होता है। समूह के सदस्यो द्वारा श्रेष्ठ व्यक्ति के आदेश को इस प्रकार मान्यता देने से उनके व्यवहार मे समरूपता दिखलाई पडती है। नियम के इस अर्थ मे राज्य के कानून, समूह के सरदार के आदेश आदि आते है।

(२) **समरूपता**—नियम का एक अर्थ समरूपता (Uniformity) है। प्रकृति के नियम इसी अर्थ मे लिये जाते है। इन से तात्पर्य प्रकृति के तथ्यो मे पाये जाने वाले समरूप सम्बन्ध से होता है। प्रकृति के नियम किसी श्रेष्ठ व्यक्ति के आदेश नही है न इन नियमों का कोई व्यक्ति पालन ही कर पाता है। किसी भी व्यक्ति की इच्छा से ये वदले नही जाते इसलिये ये राज्य के नियमो से सर्वथा भिन्न है।

(३) **मानदण्ड या आदर्श**—नियम शब्द का अर्थ मानदण्ड (Standard) के रूप मे भी किया जाता है। समाज के नियम, नीति के नियम और तर्क के नियम इसी अर्थ मे लिये जाते हैं। इनमे से प्रत्येक मे किसी मानदण्ड को प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। उदाहरण के लिये नीतिशास्त्र मे शुभ के आदर्श (Ideal) को प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। तर्कशास्त्र का आदर्श सत्य को प्राप्त करना है। समाज के नियमो का आदर्श समाज मे व्यवस्था वनाए रखना है। इस प्रकार ये नियम आदर्श की ओर ले जाने वाले मापदण्ड है। नैतिक नियम स्वय आदर्श है। इसी प्रकार सामाजिक नियम आदर्श है।

प्रकृति के नियम और अन्य नियमों में अन्तर

पीछे जो प्रकृति के नियमो का अर्थ बतलाया गया है, उससे स्पष्ट होता है कि प्रकृति के नियम अन्य नियमो से भिन्न होते हैं। इनमे निम्नलिखित मुख्य अन्तर है—

(१) **क्षेत्र का अन्तर**—प्रकृति के नियम सार्वभौम होते है जबकि राज्य, समाज, धर्म, नीति इत्यादि के नियम सीमित क्षेत्र मे काम करते हैं। समाज के नियम विशिष्ट समाज से बाहर लागू नहीं होते और जैसा कि सामाजिक मानव-शास्त्रियो ने दिखलाया है भिन्न भिन्न समाजो मे भिन्न भिन्न सामाजिक नियम प्रचलित है। इसी प्रकार विभिन्न संस्कृतियो में नैतिक और धार्मिक नियमों मे भारी अन्तर देखा जा सकता है। अलग अलग धर्मों मे अनुयायियो के लिये अलग-अलग नियमों का पालन आवश्यक माना गया है। इसी प्रकार भिन्न भिन्न राज्यो के कानून अलग अलग होते है। स्पष्ट है कि प्रकृति के नियमो के अतिरिक्त अन्य कोई भी नियम सार्वभौम नही होते। विचार के नियमो का क्षेत्र अन्य नियमो से अधिक है किन्तु प्रकृति के नियमो से कम है क्योकि वह केवल विचार के क्षेत्र मे ही सीमित है। वास्तव मे विचार के नियम प्रकृति के सार्वभौम नियमो का ही एक अंग हैं।

(२) **परिवर्तनशीलता में अन्तर**—प्राकृतिक नियम सबमे कम परिवर्तनशील है। राज्य के नियम बराबर बदलते रहते हैं। इसी प्रकार समाज के नियम भी बदलते रहते हुए देखे जाते है। यद्यपि कुछ शाश्वत नैतिक नियम है किन्तु फिर देशकाल के अनुसार नैतिक नियमो मे परिवर्तन दिखलाई पड़ता है। इसी प्रकार धर्म के नियम भी सदैव बदलते रहते हैं। विचार के नियमो मे परिवर्तन नही होता इस दृष्टि से वे प्राकृतिक नियमो के समान है।

(३) **उल्लंघन सम्बन्धी अन्तर**—प्राकृतिक नियमो का उल्लघन सम्भव नहीं है जब कि अन्य सब नियमो का उल्लघन किया जाता है। इस प्रकार मनुष्य राज्य समाज, धर्म, नीति आदि के नियमो का उल्लघन कर सकता है। वह नियमो के नियमो का भी उल्लघन करता है। दूसरी ओर प्राकृतिक नियम अटूट हैं, उनका उल्लघन कोई भी नही कर सकता। उदाहरण के लिये जहर खाने से उसका दुष्परिणाम होना अनिवार्य है, वह किसी की इच्छा अनिच्छा पर निर्भर नही है। दूसरी ओर, मनुष्य राज्य का नियम तोड़ सकता है भले ही इसके लिये उसे दण्ड भोगना पड़े।

(४) **प्रकृति में अन्तर**—प्रकृति के नियमो और अन्य नियमो की प्रकृति मे अन्तर है। जबकि प्रकृति के नियम भावात्मक होते हैं अन्य नियम आदेशात्मक होते हैं। समाज, राज्य, धर्म और नीति के नियमो मे 'पालन करना चाहिये' अथवा 'पालन करना पडेगा' का आदेश होता है उनमे बाध्यता (Obligation) होती है तथा उनके पीछे किसी न किसी प्रकार की शक्ति की स्वीकृति (Sanction) होती है। उदाहरण के लिये राज्य के नियमों के पीछे सरकार द्वारा दण्ड की शक्ति होती है। इसी प्रकार सामाजिक नियमो के पीछे समाज द्वारा दण्डित किये जाने की शक्ति होती है। यही बात धार्मिक नियमो के विषय मे भी है। नैतिक नियमो के पीछे इस प्रकार की कोई शक्ति नही होती यद्यपि उनमे बाध्यता होती है। प्राकृतिक नियम आदेश नही बतलाते, बल्कि वास्तविक घटनाओ का परिचय देते हैं। उनका स्वरूप 'है' है जब कि अन्य नियमो का स्वरूप 'चाहिये' है।

(५) **निर्माता सम्बन्धी अन्तर**—जबकि प्राकृतिक नियम मनुष्य द्वारा बनाए हुए नही है, राज्य, समाज, धर्म और नीति के नियम मनुष्य द्वारा बनाए हुए हे। विचार के नियमो को भी किसी सीमा तक मनुष्य द्वारा निर्मित नही माना जा सकता किन्तु प्राकृतिक नियम तो मनुष्य के अधिकार से सर्वथा बाहर है। मनुष्य उनका पता लगाता है किन्तु उनमे परिवर्तन नही कर सकता। वास्तव मे प्राकृतिक नियमो का निर्माता कौन है, इस सम्बन्ध मे निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता, यह दर्शन और धर्मशास्त्र का विषय हैं।

प्रकृति के नियमो और अन्य नियमो के उपरोक्त अन्तर से स्पष्ट है कि नियमो मे विभिन्न प्रकार का स्वभाव देखा जा सकता है। जबकि कुछ नियम स्थायी है अन्य परिवर्तनशील है। जबकि कुछ नियम अनुलंघनीय है, अन्य का उल्लघन किया जा सकता है। जबकि कुछ नियम व्यापक है, अन्य का प्रयोग सीमित क्षेत्र मे ही हो सकता है। गणित के नियम स्थायी, अनुलघनीय और व्यापक होते है, राज्य के नियम परिवर्तनशील, उल्लघनीय और सीमित होते है। सामान्य रूप से नियमो के स्वभाव को लेकर न केवल प्रकृति के नियम अन्य नियमो से भिन्न हैं किन्तु राज्य के नियमो, धार्मिक नियमों और नैतिक नियमो मे भी परस्पर अन्तर देखा जा सकता है।

नियमों के प्रकार

सामान्य रूप से नियमो को निम्नलिखित वर्गो मे बाँटा जा सकता है—

(१) **स्वयंसिद्धियाँ** (Axioms)—ये सर्वाधिक सामान्य नियम है। ये वास्तविक और स्वय प्रमाणित वाक्य हैं। सक्षेप मे इनकी विशेषताये निम्नलिखित है—

(क) **वास्तविक वाक्य**—स्वयसिद्धियाँ शाब्दिक वाक्यो और परिभाषाओ से भिन्न होती है क्योकि ये वास्तविक वाक्य है।

(ख) **सामान्य वाक्य**—स्वय सिद्धियाँ सामान्य वाक्य के रूप मे रखी जाती है। जैसा कि पीछे बतलाया जा चुका है ये सबसे अधिक सामान्य नियम है। इनसे अधिक सामान्य कोई नियम नहीं होता। स्वयसिद्धियो मे ही कोई स्वयसिद्धि अन्य से अधिक सामान्य हो सकती है। यह क्षेत्र के अन्तर के कारण होता है अन्यथा अपने क्षेत्र में प्रत्येक स्वयसिद्धि सर्वाधिक सामान्य नियम होती है।

(ग) **स्वयं प्रमाणित**—स्वयंसिद्धि स्वय प्रमाणित वाक्य है, उसको किसी प्रमाण की आवश्यकता नही होती, वह सब प्रमाणो का आधार है। इसलिये ज्ञान की प्रत्येक शाखा मे कुछ स्वयंसिद्धियाँ मानी जाती है। उदाहरण के लिये प्रकृति मे समरूपता होती है, यह स्वयसिद्धि प्रत्येक विज्ञान मे मानी जाती है। विचार के नियम तर्कशास्त्र की स्वयसिद्धियाँ है। कारण का नियम प्रत्येक विज्ञान मे माना जाता है।

स्वयसिद्धि के उपरोक्त लक्षणो को किसी भी स्वयसिद्धि मे देखा जा सकता है। उदाहरण के लिये तर्कशास्त्र मे यह स्वयसिद्धि प्रचलित है कि "जो वस्तुये एक ही वस्तु के समान हो वे आपस मे भी बराबर होती है।" यह वास्तविक, सामान्य और स्वय प्रमाणित वाक्य है। तर्कशास्त्र मे स्वयसिद्धियो का अत्यधिक महत्व है क्योकि अन्य विज्ञानो के समान तर्कशास्त्र भी कुछ स्वयसिद्धियों पर आधारित है।

इसीलिये कार्वेथ रीड ने लिखा है, "स्वयंसिद्धियाँ तर्कशास्त्र की ऊपरी सीमा बनाती हैं और तर्कशास्त्र को सब विशिष्ट विधानों के समान उनको मान लेना पड़ता है, जो कि सब नियमनों का आरम्भ बिन्दु और सब सामान्यीकरणों का लक्ष्य होती हैं।"

(२) **प्राथमिक अथवा अन्तिम नियम** (Primary or Ultimate law)—सामान्यता की दृष्टि से प्राथमिक या अन्तिम नियमों को स्वयसिद्धियों के बाद गिना जाता है। ये सिद्ध किये जाने वाले नियमों में सबसे अधिक सामान्य हैं। ये विज्ञान की सबसे ऊँची उड़ान हैं। चूँकि ये प्रमाणित किये जा सकते हैं इसलिये ये स्वयं-सिद्धियों से भिन्न हैं। प्राथमिक या अन्तिम नियमों का उदाहरण गुरुत्वाकर्षण का नियम है। रसायनशास्त्र में निश्चित अनुपात का नियम प्राथमिक नियम है। भिन्न-भिन्न विज्ञानों में भिन्न-भिन्न प्राथमिक या अन्तिम नियम पाए जाते हैं। विशिष्ट विज्ञान के समस्त नियम इन्हीं मूल नियमों पर आधारित हैं।

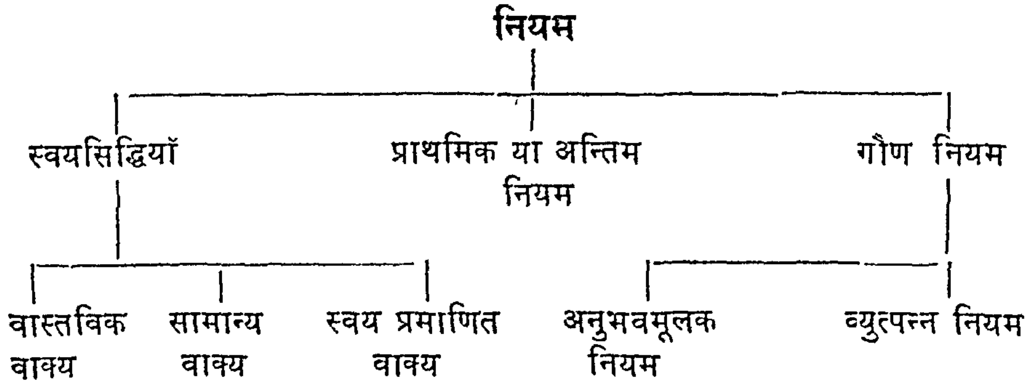
(३) **गौण नियम** (Secondary law)—सामान्यता की दृष्टि में प्राथमिक अथवा अन्तिम नियमों के पश्चात गौण नियमों का नम्बर आता है। बेकन इन्हें उच्चतर नियमों पर पहुँचने की सीढ़ियाँ कहता है। बेन के अनुसार ये न केवल प्राथमिक नियमों में पहुँचते हैं बल्कि स्वयं उच्चतर नियम भी गौण नियमों में आ जाते हैं। दूसरे शब्दों में, जब कि गौण नियम अधिकाधिक सामान्य होकर उच्चतर नियम बन जाते हैं, *उनका प्राथमिक नियमों से निगमन किया जा सकता है*, इन नियमों के लागू करने का क्षेत्र सीमित होता है। कार्वेथ रीड के शब्दों में, "गौण नियमों का विश्वास केवल निकटवर्ती मामले में ही करना चाहिये, अर्थात केवल वहीं जहाँ परिस्थितियाँ उन परिस्थितियों के समान हैं जिनमें इन नियमों का सत्य होना ज्ञात है।" गौण नियमों के निम्नलिखित दो वर्ग माने जाते हैं—

(क) **अनुभवमूलक नियम** (Empirical laws)—ये नियम, जैसा कि इनके नाम से स्पष्ट है, अनुभव के आधार पर माने जाते हैं। इस प्रकार ये अनुभवात्मक नियम हैं। विज्ञानों में निरीक्षण अथवा प्रयोग से निकाले गये अधिकतर नियम इसी प्रकार के होते हैं। उदाहरण के लिये गरीबी अपराध का कारण है, कुनैन मलेरिया रोग को दूर करती है, तनाव बढ़ने से हिंसा बढ़ती है इत्यादि अनुभव मूलक नियम हैं। इस प्रकार के नियमों के उदाहरण सभी विज्ञानों में देखे जा सकते हैं। ये अन्वय की विधि से प्राप्त होते हैं जो कि कारण सम्बन्ध को सिद्ध नहीं करती बल्कि उसका सुझाव मात्र देती है। अस्तु, अनुभवमूलक नियम व्याख्यात्मक न होकर केवल वर्णनात्मक होते हैं। ये वस्तुओं अथवा घटनाओं के गुणों या क्रियाओं का वर्णन करते हैं, उनमें कार्यकारण सम्बन्ध नहीं बतलाते। ये सत्य अथवा असत्य कैसे भी सिद्ध हो सकते हैं, इन्हें किसी उच्चतर नियम से निगमित नहीं किया जाता बल्कि ये अनुभव के आधार पर निकाले जाते हैं। ये अनुभव बदल जाने से इनमें परिवर्तन हो जाता है।

(ख) **व्युत्पन्न नियम** (Derivative laws)—ये नियम, जैसा कि इनके नाम से स्पष्ट है, प्राथमिक नियमों से निगमन के द्वारा निकाले जाते हैं। उदाहरण के लिये गुरुत्वाकर्षण का नियम व्युत्पन्न नियम है क्योंकि यह आकर्षण के सार्वभौम नियम से निगमित किया जाता है।

अनुभवमूलक और व्युत्पन्न नियमों में सापेक्ष अन्तर है। अनेक अनुभवमूलक

नियम बाद मे व्युत्पन्न नियम वन जाते है । उदाहरण के लिये ऊँचे पहाड़ों पर वर्फ का होना अथवा गुरुत्वाकर्पण का नियम पहले अनुभवमूलक नियम माने जाते थे । अव चूँकि उनसे अधिक सामान्य नियम का पता लगा है इसलिये ये व्युत्पन्न नियम माने जाते है । ये दोनो ही प्रकार के नियम सीमित क्षेत्र मे लागू होते हैं । इसलिये वेन ने लिखा है, "व्युत्पन्न नियम को और उससे भी ज्यादा अनुभवमूलक नियम को समय, स्थान और परिस्थितियो की सकीर्ण सीमाओ के वाहर नही ले जाना चाहिये ।" व्युत्पन्न नियम या तो किसी अकेले सामान्य नियम से या कई सामान्य नियमों से निगमित किये जाते है । जो व्युत्पन्न नियम कई सामान्य नियमो से निगमित किये जाते है, वे अधिक माने जाते है । नियमो का उपरोक्त वर्गीकरण निम्नलिखित चार्ट से स्पष्ट होता है ।



कुछ तर्कशास्त्रियो ने गौण नियमो के कुछ अन्य वर्ग भी माने हैं जिनमे मुख्य निम्नलिखित है—

(क) **नियत और निकटतम सामान्यीकरण** (Invariable and Approximate Generalization)—नियत सामान्यीकरण वे है जो अनुभव की सीमाओ मे ही सत्य होते है । इनमे उद्देश्य और विधेय मे सामान्य सम्बन्ध होता है उदाहरण के लिये सब कौवे काले होते है । दूसरी ओर निकटतम सामान्यीकरण नियम, जैसा कि इनके नाम से स्पष्ट है, निकटतम सामान्य होते है, पूरी तरह से सामान्य नही होते । इनमे से कुछ अनुभवमूलक होते है और कुछ व्युत्पन्न होते है । अनुभवमूलक निकटतम सामान्यीकरण का उदाहरण है—अधिकतर मनुष्य स्वार्थी होते है । दूसरी ओर, अधिकतर ध्रुवीय पशु सफेद होते है, यह व्युत्पन्न निकटतम सामान्यीकरण है । निकटतम सामान्यीकरण नियम निश्चित नही होते, उनके सही होने की सम्भावना मात्र होती है । वैज्ञानिक दृष्टि से उनका महत्व अधिक नही होता यद्यपि दैनिक जीवन मे उनसे वहुत कुछ मार्गदर्शन मिलता है । इस प्रकार के नियम राजनैतिक, सामाजिक, व्यक्तिगत विभिन्न प्रकार के जीवन मे देखे जाते है । यदि पर्याप्त आँकडे उपलब्ध हो जाते है तो निकटतम सामान्यीकरण नियम नियत सामान्यीकरण नियम वन जाते है ।

(ख) **अनुक्रम और सहअस्तित्व के गौण नियम** (Secondary laws of Succession and Co-Existence)—कार्वेथ रीड ने गौण नियमो को अनुक्रम के नियम और सहअस्तित्व के नियम मे वाँटा है । पहले प्रकार के नियम अव्यवहित कारण, दूरस्थ कारण अथवा एक ही कारण के सयुक्त कार्यो के नियम होते है । इसके कुछ उदाहरण है—रोटी भूख वुझाती है, दिन के वाद रात आती है, इत्यादि

दूसरी ओर, सहअस्तित्व के नियम अन्वय की विधि पर आधारित सामान्य नियम है। ये आपेक्षिक स्थिति की स्थिरता या प्राकृतिक व्याधियों मे गुणो का सहअस्तित्व दिखलाते है। ये बहुधा कार्यकारण सम्बन्धी नियम है। यद्यपि ये सर्वथा अनिवार्य नही होते किन्तु इनमे सत्य होने की बहुत कुछ सम्भावना होती है।

विश्व नियमों की एक व्यवस्था है

जैसा कि विभिन्न प्रकार के नियमो के विवेचन से स्पष्ट होता है, विश्व मे विभिन्न क्षेत्रो मे अलग-अलग नियम पाये जाते है। ये नियम अधिक व्याप्त नियमो के अन्तर्गत आते है और ये व्यापक नियम सार्वभौम नियम के अन्तर्गत आते हैं तथा सार्वभौम नियम स्वयसिद्धियो के अन्तर्गत माने जाते हैं। इसी प्रकार विश्व नियमो की एक व्यवस्था है। इसमे विभिन्न क्षेत्र एक दूसरे से पूरी तरह अलग नही है। विभिन्न क्षेत्रो के नियम एक व्यवस्थित और क्रमबद्ध विश्व व्यवस्था के अग है। सक्षेप मे विश्व नियमो की एक व्यवस्था है, इस सिद्धान्त की व्याख्या निम्नलिखित दो रूपो मे की जा सकती है—

(१) **विश्व नियमों के द्वारा शासित है**—यद्यपि बाह्य रूप से देखने से विभिन्न प्राकृतिक तथ्य और घटनाये एक दूसरे से अलग-अलग मालूम पड़ती हैं किन्तु गहरे जाने से यह पता लगता है कि प्रकृति की इस विविधता मे एक मौलिक एकता विद्यमान है। उदाहरण के लिये प्रकृति की समरूपता का सिद्धान्त और कार्यकारण का नियम प्रकृति के प्रत्येक क्षेत्र मे काम करते हैं। इसीलिये प्रकृति के क्षेत्र मे कही भी सयोग के लिये कोई स्थान नही है, सब कही व्यवस्था है, सब कही नियमो का राज्य है, भले ही इन नियमो को जानने के कारण हमे कोई घटना आकस्मिक दिखलाई पडती हो।

(२) **नियमो से व्याख्या**—प्रकृति के विभिन्न क्षेत्रो के नियम समष्टि के अग के समान है। सुविधा की दृष्टि से हम इन अगो को अलग-अलग मान लेते है किन्तु वास्तव मे ये सब प्रकृति का अग होने के कारण परस्पर सम्बन्धित है। इसीलिये विभिन्न विज्ञानो के नियम मिलकर एक व्यवस्था बनाते है। वैज्ञानिक प्रगति के साथ-साथ नये-नये नियम ज्ञात होते रहते है किन्तु इससे नियमो की व्यवस्था मे अन्तर नही आता और प्रकृति एक सुव्यवस्थित समष्टि बनी रहती है।

सारांश

नियम शब्द को तीन अर्थो में लिया जाता है—१. श्रेष्ठ व्यक्ति का आदेश, २. समरूपता, ३. मानदण्ड या आदर्श।

प्रकृति के नियमों और अन्य नियमों में अन्तर—१. क्षेत्र का अन्तर, २. परिवर्तनशीलता में अन्तर, ३ उल्लंघन सम्बन्धी अन्तर, ४. प्रकृति में अन्तर, ५ निर्माता सम्बन्धी अन्तर।

नियमों के प्रकार—१. स्वयंसिद्धियाँ—ये वास्तविक, सामान्य और स्वयं प्रामाणित वाक्य हैं, २. प्रामाणिक अथवा अन्तिम नियम, ३. गौण नियम—(क) अनुभवमूलक नियम, (ख) व्युत्पन्न नियम अथवा, (क) नियत और निकटतम सामान्यीकरण और (ख) अनुक्रम और सहअस्तित्व के गौण नियम।

दार्शनिकों ने विश्व को नियमों की व्यवस्था माना है। इस सिद्धान्त के दो अर्थ है, एक तो विश्व नियमो के द्वारा शासित है और दूसरे नियमो मे व्यवस्था है।

अभ्यास के लिये प्रश्न

प्रश्न १. नियम शब्द के विभिन्न अर्थ उदाहरण देकर समझाइये। (यू० पी० बोर्ड १९६५)

३१

वर्गीकरण

(CLASSIFICATION)

शाब्दिक अर्थ मे वर्गीकरण से तात्पर्य किसी विशेष प्रकार के तथ्यो या वस्तुओ को विभिन्न वर्गो मे बाटना है। कार्वेथ रीड ने वर्गीकरण की परिभाषा करते हुए लिखा है, "तथ्यो को उनकी समानताओ के और विषमताओ के अनुसार इस प्रकार मानसिक समूहो मे रखना कि उनसे कोई उद्देश्य अच्छी तरह से पूरा होता है।"[1] इसी से मिलती जुलती परिभाषा वेल्टन और मोनाहन ने उपस्थित की है। इनके अनुसार, "वर्गीकरण व्यवस्थित क्रमसस्थापन है···। वह वस्तुओ को उनकी विषमता के अनुसार अलग अलग करके और उनके सादृश्य के अनुसार उनके समुदाय बनाने का इस प्रकार प्रयत्न करके कि वह समुदायीकरण मे उपस्थित प्रयोजनो के लिये उपयोगी सिद्ध हो सके, प्रकृति की भ्रमोत्मादक विभिन्नता को कम करके उसे व्याख्या या क्रम का कुछ रूप देता है।"

वर्गीकरण की परिभाषा

वर्गीकरण की विशेषतायें

वर्गीकरण की उपरोक्त परिभाषाओ मे उसकी निम्नलिखित विशेषताएँ स्पष्ट होती है—

(१) तथ्यो को मानसिक समूहो में रखना—वर्गीकरण भौतिक विभाजन नही है। उनमे जो तथ्यो को भिन्न भिन्न समूहो मे बाँटा जाता है वे मानसिक समूह है। दूसरे शब्दो मे, वर्गीकरण मे समूहीकरण भौतिक न होकर मानसिक होता है।

(२) समूहो मे बाँटना—शाब्दिक रूप मे वर्गीकरण का अर्थ ही समूहो मे बाँटना है। ससार मे असख्य वस्तुओ को विभिन्न समूहो मे बाटे बिना उनकी व्याख्या नही की जा सकती और न उनको समझा ही जा सकता है। वर्गो मे बाटे जाने वाले बहुत से तथ्यो का हमे प्रत्यक्ष ज्ञान नही होता, फिर भी उनका वर्गीकरण किया जाता है क्योकि वर्गीकरण समूहीकरण है।

(३) समानताओ और विषमताओं के अनुसार वर्गीकरण—वर्गीकरण समानताओ अथवा विषमताओ के आधार पर किया जाता है। समान वस्तुओ को एक वर्ग मे रखा जाता है और विषम अथवा परस्पर भिन्न वस्तुओ को एक दूसरे से अलग भिन्न वर्गो मे रखा जाता है। अस्तु, वर्गीकरण के लिये वस्तुओ की समानताओ और विषमताओ का पता लगाना अत्यन्त आवश्यक है। यह कार्य वैज्ञानिक खोज से

---

1. "As a mental grouping of facts or phenomena according to their resemblances and differences so as best to serve some purpose"

—Carveth Read

किया जाता है। खोज के पश्चात् जिस वस्तु मे जो गुण मालूम होते है उसे उन गुणो को रखने वाली वस्तुओ के वर्ग मे रख दिया जाता है और उनसे भिन्न गुणो वाली वस्तुओ से अलग किया जाता है।

(४) उद्देश्य को पूरा करने के लिये वर्गीकरण—तथ्यो का वर्गीकरण विशेष उद्देश्य को पूरा करने के लिये किया जाता है। उससे भिन्न उद्देश्य को पूरा करने के लिये भिन्न प्रकार से वर्गीकरण करना पडेगा। उदाहरण के लिए पुस्तकालय मे पुस्तको का वर्गीकरण विषयो के अनुसार और लेखको के नाम के अनुसार तथा कभी-कभी पुस्तको के नाम के अनुसार विभिन्न प्रकार से किया जाता है जिससे भिन्न-भिन्न उद्देश्यो की पूर्ति होती है। वर्गीकरण मे ये उद्देश्य निम्नलिखित दो प्रकार के हो सकते है :—

(अ) सामान्य या वैज्ञानिक उद्देश्य—तथ्यो के वैज्ञानिक वर्गीकरण का उद्देश्य तथ्यो को उनके प्राकृतिक वर्गो मे बाँटना है जिसमे कि उनके छिपे हुए गुण स्पष्ट हो जाएँ और उनकी प्रकृति की व्याख्या की जा सके। वैज्ञानिक वर्गीकरण का उद्देश्य तथ्यो की जानकारी करना होता है भले ही उससे कोई व्यावहारिक प्रयोजन सिद्ध होता हो या न सिद्ध होता हो। बहुधा इस वर्गीकरण का उद्देश्य तथ्यो के सम्बन्ध मे वैज्ञानिक नियमों का पता लगाना होता है, इसीलिये यह सामान्य अथवा प्राकृतिक वर्गीकरण भी कहलाता है।

(ब) विशिष्ट या व्यवहारिक उद्देश्य—पीछे जो पुस्तकालय मे पुस्तको के वर्गीकरण का उदाहरण दिया गया है वह विशिष्ट अथवा व्यावहारिक उद्देश्य को पूरा करने के लिये किया गया वर्गीकरण है। इसमे उद्देश्य यह होता है कि पढने वाला आसानी से पुस्तक निकाल सके। लेखक के नाम के अनुसार वर्गीकरण करने से पढने वाला लेखक के नाम को निकालकर यह पता लगा सकता है कि उसकी कौन कौन सी पुस्तकें पुस्तकालय में है। पुस्तक के नाम के अनुसार वर्गीकरण से पुस्तक का नाम ज्ञात होने पर पढने वाला उसके लेखक का नाम पता लगा सकता है। विषयो के अनुसार वर्गीकरण करने से पढने वाला विशेष विषय के समस्त कार्डो को एक साथ देखकर यह जान सकता है कि पुस्तकालय मे उस विषय पर कौन कौन सी पुस्तके उपलब्ध है। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न व्यापारिक सस्थानो, बडी बड़ी दुकानो और जनरल स्टोर्स मे वस्तुओ का व्यावहारिक उद्देश्य से अलग अलग वर्गीकरण किया जाता है।

वर्गीकरण के प्रकार

वर्गीकरण की उपरोक्त विशेषताओ से यह स्पष्ट होता है कि सामान्य रूप से वर्गीकरण दो प्रकार का हो सकता है प्राकृतिक और कृत्रिम वर्गीकरण। प्राकृतिक वर्गीकरण वैज्ञानिक वर्गीकरण होता है। दूसरी ओर कृत्रिम वर्गीकरण व्यावहारिक वर्गीकरण होता है।

(१) वैज्ञानिक अथवा प्राकृतिक वर्गीकरण—इस वर्गीकरण मे अधिकतम और महत्वपूर्ण समानताओ के आधार पर तथ्यो को उनके प्राकृतिक वर्गो मे बाटा जाता है। स्मरण रहे कि समानताओ का महत्वपूर्ण होना आवश्यक है। यह महत्वपूर्ण समानता क्या है, इसकी व्याख्या करते हुए मिल ने लिखा है, "जो स्वय या अपने प्रभावो के द्वारा किसी वर्ग की वस्तुओ को अधिक से अधिक एक दूसरी के समान और अन्य वर्गो की अन्य वस्तुओ के असमान बनाती हो, जो उन वस्तुओ के

वर्ग को अधिक से अधिक प्रखरता प्रदान करती हो जो उनके अस्तित्व मे सबसे अधिक स्थान लेती हो।"[1] प्राकृतिक वर्गीकरण मे वस्तुओ को उसके प्राकृतिक प्रकारो मे रखा जाता है। ये प्राकृतिक प्रकार वे वर्ग है जिनका स्वय प्रकृति ने निर्माण किया है, वज्ञानिक केवल इनका पता लगाता है, वह इनकी रचना नही करता उदाहरण के लिये प्रकृति मे गाय, बैल, घोड़े, कुत्ते, भेड़, बकरिया, मनुष्य, हाथी इत्यादि प्राकृतिक प्रकार है। कोई भी हाथी को कुत्ते या कुत्ते को हाथी के वर्ग मे नही रखता और न ऐसा करना सम्भव ही है क्योकि कुत्तो मे कुछ विशेप गुण पाये जाते है और हाथी मे उनसे सर्वथा भिन्न गुण पाये जाते है। इसलिये स्वाभाविक रूप से वे एक दूसरे से अलग वर्गो मे रक्खे जाने चाहिये। यह ठीक है कि आधुनिक विकासवाद का सिद्धान्त यह दिखलाता है कि प्राणी एक दूसरे से भिन्न नही है क्योकि उनका एक दूसरे से विकास हुआ है किन्तु एक बार किसी विशेष प्राणी से उत्परिवर्तन के द्वारा नवीन प्राणी का जन्म हो जाने के बाद इस नवीन प्राणी को पिछले वर्ग मे नही रखा जा सकता। अस्तु, विकासवाद के सिद्धान्त से प्राकृतिक प्रकार का सिद्धान्त खण्डित नही होता। वैज्ञानिक लोग जब किसी विशिष्ट प्रकार का जीव, धातु, वस्तु अथवा अन्य कोई तथ्य देखते है तो उसे उसके विशिष्ट गुणो के अनुसार प्राकृतिक वर्ग में रख देते है। यह वैज्ञानिक वर्गीकरण है।

(२) **कृत्रिम वर्गीकरण**—कृत्रिम वर्गीकरण, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, प्राकृतिक अथवा स्वाभाविक वर्गीकरण नही होता। इसमे व्यक्ति अपनी इच्छा के अनुसार अपने विशिष्ट व्यावहारिक उद्देश्य को पूरा करने के लिये तथ्यो का वर्गीकरण करता है। इसका एक उदाहरण पुस्तकालय मे किताबो का वर्गीकरण है जो भिन्न-भिन्न उद्देश्यो को लेकर अलग-अलग प्रकार से किया जाता है। इसी प्रकार कृषि शास्त्री अथवा वनस्पतिशास्त्री और वैद्य पौधो के भिन्न भिन्न प्रकार से वर्गीकरण करते हे क्योकि उनके उद्देश्य भिन्न-भिन्न होते है। जबकि वनस्पति शास्त्री का उद्देश्य पौधो को उनके प्राकृतिक वर्गो मे रखना है, कृषि शास्त्री कृषि के दृष्टिकोण से पौधो को वर्गो मे बाटता है। वैद्य औपधि के गुण वाले पौधो को अन्य पौधो से भिन्न वर्ग मे रखकर इन औषधीय पौधो को अन्य वर्गो मे बाटता है।

वैज्ञानिक और कृत्रिम वर्गीकरण में अन्तर

वैज्ञानिक अथवा स्वाभाविक और कृत्रिम वर्गीकरण के उपरोक्त विवेचन से उनमे निम्नलिखित अन्तर स्पष्ट होते है :—

(१) **उद्देश्य का अन्तर**—जबकि वैज्ञानिक वर्गीकरण का उद्देश्य सामान्य ज्ञान प्राप्त करना है अथवा वैज्ञानिक तथ्यो का पता लगाना है, कृत्रिम वर्गीकरण का उद्देश्य किसी व्यावहारिक लक्ष्य को पूरा करना होता है। पहले प्रकार का उदाहरण वनस्पतिशास्त्री द्वारा किया गया वर्गीकरण है। दूसरे प्रकार के वर्गीकरण का उदाहरण पुस्तकालय मे पुस्तको का वर्गीकरण है।

(२) **आधार का अन्तर**—जब कि वैज्ञानिक वर्गीकरण का आधार वस्तुओ की अधिकतम और महत्वपूर्ण समानताये है, कृत्रिम वर्गीकरण मे ऊपरी और अनावश्यक बातो को ही वर्गीकरण का आधार बना लिया जाता है।

1 ".. those which contribute most, either by themselves or by their effects to render the things (in any class) like one another, and unlike other things, (of other classes), which give to the class composed of them the most marked individuality, which fill as it were the largest space in their existence." Mill

(३) मानसिक अथवा यथार्थ वर्गीकरण—जब कि वैज्ञानिक वर्गीकरण सदैव मानसिक वर्गीकरण होता है, कृत्रिम वर्गीकरण यथार्थ वर्गीकरण भी होता है। उदाहरण के लिये पुस्तकालय मे पुस्तकों का वर्गीकरण करके अलग-अलग आलमारियों मे रखा जाता है।

(४) निश्चित और अनिश्चित वर्गीकरण—वैज्ञानिक वर्गीकरण निश्चित होते है क्योंकि वे प्राकृतिक वर्गीकरण होते है। उनको मनुष्य नही बनाता बल्कि प्रकृति बनाती है इसलिये मनुष्य अपनी इच्छानुसार उनमे परिवर्तन नही कर सकता। दूसरी ओर कृत्रिम वर्गीकरण अनिश्चित होते है क्योंकि उद्देश्य बदल जाने पर उनमें परिवर्तन किया जा सकता है। ये वर्गीकरण अनिश्चित होते हैं क्योंकि उद्देश्य बदल जाने पर उनमे परिवर्तन किया जा सकता है। ये वर्गीकरण मनुष्य द्वारा बनाये हुए होते है, इसलिये इनमे मनुष्य सुविधानुसार परिवर्तन कर सकता है।

(५) समानताओं और विषमताओ की संख्या—वैज्ञानिक और कृत्रिम वर्गीकरण मे एक अन्य अन्तर यह बतलाया जाता है कि जब कि वैज्ञानिक वर्गीकरण बहुत सी समानताओ और विषमताओ के आधार पर किया जाता है कृत्रिम वर्गीकरण कुछ थोडी सी समानताओ अथवा विषमताओ के आधार पर कर लिया जाता है। उदाहरण के लिये कुत्ते और भेडिये का वैज्ञानिक वर्गीकरण इनमें सूक्ष्म समानताओ और विभिन्नताओ के आधार पर किया गया है जबकि सवारियों का बैल गाडी, साईकिल, मोटर, रेल, जलपोत और वायुयान मे विभाजन कृत्रिम वर्गीकरण का उदाहरण है जिनमे जमीन, वायु अथवा जल मे चलने के आधार पर या गति के आधार पर वर्गीकरण किया जाता है।

प्ररूप द्वारा या परिभाषा द्वारा वर्गीकरण

कुछ तर्कशास्त्रियो ने प्ररूप द्वारा अथवा परिभाषा द्वारा वर्गीकरण में अन्तर किया है। व्हेवेल के अनुसार वर्गीकरण प्ररूप के अनुसार होता है। उसने लिखा है, "प्राकृतिक वर्गो का सर्वोत्तम वर्णन उनकी सीमा सूचक किसी परिभाषा के द्वारा नही बल्कि उनके केन्द्र को बतलाने वाले एक प्ररूप के द्वारा होता है। किसी प्राकृतिक वर्ग का प्ररूप वह उदाहरण है जिसमे कि उस वर्ग की सभी मुख्य और आवश्यक बाते एक विशेष मात्रा मे उपस्थित हो···प्राकृतिक वर्ग किसी बाहरी सीमा द्वारा नही बल्कि प्ररूप के द्वारा निर्धारित होता है।"

दूसरी ओर मिल ने वर्गीकरण को परिभाषा पर आधारित माना है। मिल के अनुसार वर्गीकरण का आधार किसी वर्ग की परिभाषा ही होनी चाहिये क्योंकि परिभाषा मे किसी वर्ग की आवश्यक विशेषताओ को निश्चित किया जाता है और इन विशेषताओ को रखने वाली वस्तुओ को एक ही वर्ग मे रखा जाना चाहिये। प्ररूप से केवल यह पता चलता है कि दी हुई वस्तु किस वर्ग मे रखी जायेगी किन्तु उस वस्तु को विशेष वर्ग मे रखना उचित है या नही इसका पता उसकी परिभाषा से ही चल सकता है। इस प्रकार प्ररूप से वर्गीकरण का सुझाव मात्र मिलता है, उसका निश्चय नही होता। वर्गीकरण का निश्चय करने के लिये परिभाषा का ज्ञान आवश्यक है।

वर्गीकरण के आधार के विषय मे उपरोक्त दोनो मत भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है। वर्गीकरण का मिल का मत उसके वैज्ञानिक रूप को दिखलाता है जिसमे परिभाषा के बिना प्राकृतिक प्रकारो का पता नही लगाया जा सकता।

अस्तु, न्यायशास्त्र की दृष्टि से मिल का मत अधिक उचित है अर्थात् यह कहना अधिक अच्छा है कि वर्गीकरण को परिभाषा पर आधारित होना चाहिये । दूसरी ओर व्हेवेल का मत मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अधिक उपयुक्त है । अपने क्रमश. विकास मे जब बालक विभिन्न पदार्थों या प्राणियो का वर्गीकरण करता है तो उसे परिभाषा का पता नही होता, वह तो प्ररूप के आधार पर ही वर्गीकरण करता है । इसी प्रकार सामान्य व्यक्ति को विभिन्न तथ्यो की परिभाषा का पता नही होता और वह प्ररूप के आधार पर ही वर्गीकरण करता है । अस्तु व्हेवेल का मत वर्गीकरण के लौकिक रूप से सम्बन्ध रखता है । अन्त मे यह कहा जा सकता है कि जबकि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से हम अधिकतर प्ररूप के आधार पर वर्गीकरण करते हैं, वैज्ञानिक दृष्टि से हमें परिभाषा के आधार पर वर्गीकरण करना चाहिये ।

सक्रम वर्गीकरण
(Classification by Series)

साधारण वर्गीकरण मे तथ्यो को समानताओ और विषमताओ के आधार पर विभिन्न वर्गो मे रखा जाता है । समानताओ के आधार पर वस्तुओ का वर्गीकरण करने मे यह देखा जाता है कि विभिन्न वस्तुओ मे वह समानता विभिन्न मात्राओ मे रहती है । समानता की मात्रा के अनुसार तथ्यों को भिन्न-भिन्न वर्गों मे बाँटना सक्रम वर्गीकरण कहलाता है । मिल के अनुसार सक्रम वर्गीकरण मे निम्नलिखित दो बाते होनी आवश्यक है—

(१) किसी भी मात्रा मे एक विशेष समानता रखने वाली वस्तुओ को एक बड़े वर्ग मे रख दिया जाता है ।

(२) अब इन वस्तुओ को समानता की मात्रा के अनुसार क्रमबद्ध कर दिया जाता है जिसमे सर्वोच्च मात्रा रखने वाली वस्तु सबसे ऊपर और न्यूनतम मात्रा रखने वाली वस्तु सबसे अन्त मे रखी जाती है । उदाहरण के लिये चेतना के गुण के अनुसार तथ्यो को मनुष्यो, पशुओ और पेड, पौधो के वर्गो मे बाँटा जा सकता है । इनमे मनुष्यो मे सबसे अधिक चेतना होने के कारण उनको सबसे पहले और पेड पौधो मे सबसे कम चेतना होने के कारण उनको सबसे बाद मे रखा जायेगा । पशुओ मे भी विभिन्न स्तर के पशुओ मे चेतना मे क्रमश. अन्तर किया जा सकता है । सक्रम वर्गीकरण विशेष परिस्थितियो मे लाभदायक सिद्ध होता है । इससे यह मालूम हो जाता है कि समान गुण रखने वाले तथ्यो मे से किस मे वह गुण सबसे अधिक मात्रा मे है और किसमे सबसे कम मात्रा मे है । उदाहरण के लिये विषयो के सक्रम वर्गीकरण से अधिकतम घातक विष और न्यूनतम घातक विष का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है ।

वर्गीकरण के नियम

तर्कशास्त्रियो ने तर्कयुक्त वर्गीकरण मे निम्नलिखित नियमो का पालन करना आवश्यक माना है—

(१) **अधिकतम और महत्वपूर्ण समानताओं के अनुसार वर्गीकरण**—मिल ने वर्गीकरण के सिद्धान्त को सबसे अधिक महत्वपूर्ण माना है । वर्गीकरण बहुत कम अथवा अनावश्यक समानताओ या विषमताओ के आधार पर नही होना चाहिये । उसको वैज्ञानिक बनाने के लिये यह आवश्यक है कि वह अधिकतम और महत्वपूर्ण समानताओ के आधार पर हो । जिन वस्तुओ मे अधिक से अधिक और

महत्वपूर्ण समानतायें पायी जाती हो उन्हें एक वर्ग में रखा जाना चाहिये। कभी-कभी व्यावहारिक दृष्टिकोण से कुछ थोड़ी सी और ऊपरी समानताओं के आधार पर भी वर्गीकरण किया जा सकता है किन्तु यह वर्गीकरण व्यावहारिक दृष्टि से लाभदायक होते हुए भी वैज्ञानिक दृष्टि से किसी काम का नही होता।

(२) **निर्मित वर्गों में आवश्यक समानता और विषमता के अनुसार सम्बन्ध जोड़ना**—वैज्ञानिक वर्गीकरण का दूसरा आवश्यक नियम यह है कि वर्गीकरण से मिले हुए वर्गों को उनकी समानता और विषमता को ध्यान मे रखते हुए एक दूसरे से सम्बन्धित कर दिया जाये। जिन वर्गों मे समानता अधिक हो वे एक दूसरे से समीप रक्खे जाये और जिनमे समानता कम तथा विषमता अधिक हो उनको एक दूसरे से दूर रखना चाहिये। दूसरे शब्दों मे, वैज्ञानिक वर्गीकरण में वर्गों के परस्पर सम्बन्ध को निश्चित करना भी आवश्यक है।

(३) **क्रमपूर्वक नीचे से ऊपर की ओर बढ़ना**—वैज्ञानिक वर्गीकरण मे नीचे से ऊपर की ओर क्रमपूर्वक बढते हुए वर्गीकरण किया जाना चाहिये और यह प्रक्रिया तब तक चलती रहनी चाहिये जब तक कि अधिकतम व्यापक वर्ग प्राप्त न हो जाये। यह अधिकतम व्यापक वर्ग राज्य (Kingdom) कहलाता है। उदाहरण के लिये प्राणी जगत या प्राणी राज्य (Animal Kingdom) सबसे अधिक व्यापक वर्गीकरण है जिसको कम व्यापक वर्गों मे बाँटा जा सकता है जैसे पृष्ठ वंशी और अपृष्ठ वंशी। इनमें भी पृष्ठ वंशी जीवों को तीन वर्गों मे बाँटा जा सकता है स्तनपायी, मीराडा और मत्स्याकार। इनमे भी स्तनपायी वर्ग को नाल से उत्पन्न होने वाले और नाल से न उत्पन्न होने वाले दो वर्गों मे बाँटा जा सकता है। इनमे से नाल से उत्पन्न होने वाले पशुओ को आगे अनेक वर्गों मे बाँटा जा सकता है। इस प्रकार वर्गीकरण करते हुए हम किसी विशेष पशु तक पहुँच सकते है जो कि सबसे छोटा वर्गीकरण होगा। यह सबसे छोटा वर्ग प्रकार (Type) कहलाता है। प्रकार से बड़ा वर्ग उपजाति (Species) और उपजाति से बडा वर्ग जाति (Genes) कहलाता है। जाति के ऊपर श्रेणी (Class) श्रेणी से ऊपर उपराज्य (Sub kingdom) और उपराज्य से ऊपर राज्य होता है। संक्षेप मे, वर्गीकरण का यह क्रम निम्नलिखित तालिका से समझा जा सकता है—

राज्य—जन्तु जगत
|
उपराज्य—पृष्ठ वंशी
|
श्रेणी—स्तनपायी
|
जाति—नाल से उत्पन्न होने वाले
|
उपजाति—चौदस्ते, कुतरने वाले, माँस भुज, खुर वाले
| इत्यादि।
प्रकार—सिंह, बाघ, चीता, पीयूमा, लिक्स, बिल्ली आदि।

वर्गीकरण और तार्किक विभाजन

तार्किक विभाजन मे किसी वर्ग का उपवर्गों मे विभाजन किया जाता है।

यह विभाजन किसी गुण के आधार पर होता है। इस गुण को लेकर उस गुण को रखने वाले तथ्यों को उन तथ्यो से अलग किया जाता है जिनमे वह गुण नही पाया जाता। दूसरी ओर वर्गीकरण मे वस्तुओ को उनके वर्ग मे रखा जाता है। इस प्रकार विभाजन मे अधिक सामान्य से कम सामान्य की ओर प्रगति होती है जबकि वर्गीकरण मे कम सामान्य से अधिक सामान्य की ओर चलते है। अस्तु विभाजन निगमनात्मक होता है और वर्गीकरण आगमनात्मक होता है। जबकि विभाजन आकार विषयक है वर्गीकरण द्रव्य विषयक है। दूसरे शब्दो मे, विभाजन प्रत्ययात्मक होता है और वर्गीकरण वास्तविक व्यवस्था से सम्बन्ध रखता है। विभाजन एक विश्लेषणात्मक प्रयास है और वर्गीकरण सश्लेषणात्मक प्रयत्न है। विभाजन मे एक जाति को उसकी उपजातियो मे विभाजित किया जाता है जबकि वर्गीकरण मे अनेक वस्तुओ को समानता अथवा विषमता के आधार पर वर्गो मे रखा जाता है। विभाजन मे जाति और उपजाति शब्द आपेक्षिक होते है अर्थात् एक ही वर्ग को कम व्यापक वर्ग की दृष्टि से जाति और अधिक व्यापक वर्ग की दृष्टि से उपजाति कहा जा सकता है किन्तु दूसरी ओर वर्गीकरण मे दो विभिन्न आपेक्षिक दृष्टियो से एक ही वर्ग को जाति और उपजाति नही कहा जा सकता। जो वर्ग जाति होता है वह सदैव जाति रहता है और जो उपजाति होता है वह उपजाति ही कहा जाता है। इस प्रकार वर्गीकरण मे अनापेक्षित और निश्चित वर्ग होते है। सक्षेप मे, तार्किक विभाजन और वर्गीकरण मे मुख्य अन्तर निम्नलिखित है—

(१) विभाजन निगमनात्मक और वर्गीकरण आगमनात्मक है।

(२) विभाजन विश्लेषणात्मक और वर्गीकरण सश्लेपणात्मक है।

(३) विभाजन आकार विषयक और वर्गीकरण द्रव्य विपयक है।

(४) विभाजन मे वर्ग आपेक्षिक और वर्गीकरण मे अनापेक्षिक होते है।

(५) विभाजन में ऊपर से नीचे की ओर और वर्गीकरण मे नीचे से ऊपर की ओर चलते है।

(६) वर्गीकरण विभाजन की अपेक्षा कठिन होता है।

(७) जबकि विभाजन मे यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि वह ठीक है वर्गीकरण की सत्यता का निश्चय अत्यन्त कठिन है क्योकि हो सकता है कि जिस समानता अथवा विपमता को आज हम आवश्यक समझते है वही कालान्तर मे अनावश्यक सिद्ध हो।

वर्गीकरण और परिभाषा

पीछे बतलाया जा चुका है कि वैज्ञानिक वर्गीकरण परिभापा पर आधारित होता है। अस्तु, वर्गीकरण का परिभापा से घनिष्ठ सम्बन्ध है। किन्तु जब कि वर्गीकरण किसी पद के निर्देश से सम्बन्धित होता है परिभाषा उसके गुणार्थ से सम्बन्ध रखती है। जबकि वर्गीकरण मे हम वस्तुओ को वर्गो मे बाँटते है, परिभापा मे उनके आवश्यक गुण निर्धारित किये जाते है। इसके अतिरिक्त कृत्रिम वर्गीकरण का परिभापा से कोई सम्बन्ध नही होता है क्योकि यह विशेप उद्देश्य को लेकर ऊपरी समानता के आधार पर किया जाता है।

कृत्रिम वर्गीकरण के लाभ

वर्गीकरण के लाभ अथवा उपयोग को समझने के लिये कृत्रिम और वैज्ञानिक

वर्गीकरण के लाभों को अलग अलग देखना चाहिये। कृत्रिम वर्गीकरण के लाभ अथवा उपयोगितायें निम्नलिखित है।

(१) **सुविधाजनक वर्गीकरण**—कृत्रिम वर्गीकरण सुविधाजनक होता है। उदाहरण के लिये पुस्तकालय मे पुस्तको के वर्गीकरण के कारण पढने वाले को पुस्तको को ढूंढने मे सुविधा होती है। इस वर्गीकरण के अभाव मे पुस्तको को ढूंढना बहुत कठिन हो जायेगा।

(२) **समय की बचत**—विभिन्न व्यवसायी और दुकानदार अपने माल को विभिन्न प्रकार से क्रमबद्ध करके दुकान मे लगाते है। इससे वे आवश्यकता पड़ने पर दुकान मे से आसानी से चीज निकाल कर ग्राहक को दे देते हैं। जो लोग ऐसा नही करते उन्हे कोई भी वस्तु ढूंढने मे बडा समय लगता है। घर मे कुशल गृहणी विभिन्न वस्तुओं को उनकी आवश्यकता के अनुसार अलग अलग वर्गीकरण करके रखती है जिससे जरूरत पडने पर वह किसी भी वस्तु को तुरन्त निकाल लेती है। इस प्रकार कृत्रिम वर्गीकरण से समय की बचत होती है।

(३) **सुन्दरता और व्यवस्था बढाने वाला**—पुस्तकालय मे पुस्तको के वर्गीकरण से और दुकानो मे वस्तुओ के वर्गीकरण से तथा घर मे घर के सामान के वर्गीकरण मे सुन्दरता और व्यवस्था आ जाती है।

वैज्ञानिक वर्गीकरण की उपयोगिता

वैज्ञानिक वर्गीकरण की उपयोगिता या लाभ निम्नलिखित है—

(१) **व्याख्या करने में सहायता**—कार्वेथ रीड ने वर्गीकरण के दो मुख्य उपयोग बतलाये हैं, एक तो व्याख्या करने मे सहायता और दूसरे स्मृति मे सहायता पहले उपयोग का वर्णन करते हुए कार्वेथ रीड ने लिखा हैं, "वर्गीकरण का पहला उपयोग यह है कि वह प्रकृति के तथ्यो को अच्छी तरह समझने मे सहायक है...... क्योकि अच्छी तरह समझने के लिये वस्तुओ को समानताओ और विषमताओ को देखना और समझना होता है और इस प्रक्रिया को व्यवस्थित रूप मे करने में गुणो के नये-नये सम्बन्ध प्रकट होते रहते है।" इस प्रकार व्याख्या और वर्गीकरण दोनो मे वस्तुओ मे समानताओ और विषमताओं की परीक्षा की जाती हैं। व्याख्या मे इस परीक्षा का उद्देश्य कारणो और नियमो का पता लगाना होता है जबकि वर्गीकरण मे उसका उद्देश्य उन्हे अलग अलग समूहो मे रखना होता है। इन दोनो ही कार्यो मे हमे सतोष प्राप्त होता है। एक मे दूसरे मे सहायता मिलती है। व्याख्या हो जाने से वर्गीकरण सरल हो जाता है और वर्गीकरण हो जाने से व्याख्या की जा सकती है। किसी घटना का कारण ज्ञात हो जाने से उसे किसी वर्ग मे रखने मे आसानी होती है। दूसरी ओर वर्गीकरण सम्भव होने मे किसी वस्तु की व्याख्या की जा सकती है।

(२) **स्मृति में सहायक**—वैज्ञानिक वर्गीकरण वस्तुओ को याद करने मे सहायक होता है क्योकि वर्गीकरण की सहायता से बहुत सी वस्तुओ को कुछ थोड़े मे वर्गो मे बाँटा जा सकता है। इन वर्गो को याद रखने मे वस्तुओ के गुण याद रहते है। उदाहरण के लिये यदि हमे यह ज्ञात है कि अमुक जीव अमुक वर्ग मे आता है तो केवल इसी ज्ञान के आधार पर हमे उसकी विशेषताये याद रहेंगी।

वर्गीकरण की सीमाये

अन्त मे वर्गीकरण की सीमाओ का उल्लेख करना प्रासगिक होगा। सक्षेप मे वर्गीकरण की मुख्य सीमाये निम्नलिखित है—

(१) **उच्चतम वर्गों का वर्गीकरण नही हो सकता**—वर्गीकरण कम सामान्य से अधिक सामान्य की ओर चलता है। इसमे कम सामान्य वर्ग को अधिक सामान्य वर्ग मे रखा जाता है किन्तु उच्चतम वर्ग से अधिक सामान्य वर्ग कोई नही होता इसलिये उसका वर्गीकरण करना सम्भव नही है। इसी प्रकार सामान्य सत्यो का भी वर्गीकरण नही किया जा सकता क्योकि उनसे अधिक सामान्य कोई सत्य नही होते।

(२) **सीमावृत्ति वस्तुओं का वर्गीकरण नहीं होता**—कुछ वस्तुये ऐसी होती है जिनमे कुछ विशेषताये एक वर्ग की और कुछ विशेषताये दूसरे वर्ग की होती है। उदाहरण के लिये स्पन्ज मे जन्तु और वनस्पति दोनो ही के गुण दिखलाई पड़ते है। जेली में ठोस और तरल दोनो ही पदार्थो की विशेषताये पाई जाती है। अनेक पुस्तके ऐसी होती है जो इतिहास की पुस्तकें होने के साथ साथ दर्शन अथवा साहित्य अथवा विज्ञान की पुस्तके भी होती हैं। इस प्रकार की सीमावृत्ति वस्तुओं का वर्गीकरण करना बडा कठिन होता है।

(३) **परिभाषा के अभाव मे वर्गीकरण नही हो सकता**—प्रोफेसर जेवोन्स के अनुसार, वर्गीकरण और ठीक ठीक ज्ञान की सीमाये एक ही है। दूसरे शब्दो मे जिन वस्तुओ का हमे ठीक ठीक ज्ञान नही है उनका वैज्ञानिक वर्गीकरण नही किया जा सकता। ये वे वस्तुये है जिनकी परिभाषा नही की जा सकती क्योकि परिभाषा करने के लिये वस्तुओं के गुणों को निश्चित करना पडता है। अस्तु, जिन वस्तुओ की परिभाषा नही की जा सकती उनका वर्गीकरण नही हो सकता।

सारांश

वर्गीकरण क्या है—वर्गीकरण किसी उद्देश्य को पूरा करने के लिये समानताओं और विषमताओ के अनुसार किसी समूह के तथ्यों को मानसिक समूह में रखना है।

वर्गीकरण की विशेषताये—१ तथ्यों को मानसिक समूहों में रखना, २ समूहों में बाँटना, ३. समानताओ और विषमताओ के अनुसार वर्गीकरण, ४. उद्देश्यों को पूरा करने के लिये वर्गीकरण। ये उद्देश्य सामान्य या वैज्ञानिक, विशिष्ट या व्यावहारिक हो सकते है।

वर्गीकरण के प्रकार—१. वैज्ञानिक अथवा प्राकृतिक वर्गीकरण, २. कृत्रिम वर्गीकरण। वर्गीकरण के इन दोनो रूपों में अनेक अन्तर हैं—१. उद्देश्य का अन्तर २. आधार का अन्तर, ३. मानसिक अथवा यथार्थ वर्गीकरण, ४. निश्चित और अनिश्चित वर्गीकरण, ५. समानताओ और विषमताओं की सख्या।

कुछ तर्कशास्त्रियो ने प्ररूप द्वारा अथवा परिभाषा द्वारा वर्गीकरण में अन्तर किया है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्ररूप द्वारा वर्गीकरण और वैज्ञानिक दृष्टि से परिभाषा द्वारा वर्गीकरण अधिक उपयुक्त है।

सक्रम वर्गीकरण—समानता की मात्रा के अनुसार तथ्यो को विभिन्न वर्गो मे बाँटना सक्रम वर्गीकरण कहलाता है।

वर्गीकरण के नियम—१. अधिकतम और महत्वपूर्ण समानताओं के अनुसार वर्गीकरण, २. निर्मित वर्गों में आवश्यक समानता और विषमता के अनुसार सम्बन्ध जोड़ना, ३ क्रमपूर्वक नीचे से ऊपर की ओर बढ़ना।

वर्गीकरण और तार्किक विभाजन—१ विभाजन निगमनात्मक और वर्गीकरण आगमनात्मक है, २. विभाजन विश्लेषणात्मक और वर्गीकरण संश्लेषणात्मक है, ३. विभाजन आकार विषयक और वर्गीकरण द्रव्य विषयक है, ४. विभाजन में वर्ग आपेक्षिक और वर्गीकरण में अनापेक्षिक होते हैं, ५. विभाजन में ऊपर से नीचे और वर्गीकरण में नीचे से ऊपर चलते हैं, ६. वर्गीकरण विभाजन की अपेक्षा कठिन है। इसी प्रकार वर्गीकरण और परिभाषा में भी अन्तर है।

वर्गीकरण के लाभ—१. सुविधाजनक वर्गीकरण, २. समय की बचत, ३. सुन्दरता और व्यवस्था बढ़ाने वाला।

वैज्ञानिक वर्गीकरण की उपयोगिता—१. व्याख्या करने में सहायता, २. स्मृति में सहायता।

वर्गीकरण की सीमायें—१. उच्चतम वर्गों का वर्गीकरण नहीं हो सकता, २. सीमावृति वस्तुओं का वर्गीकरण नहीं होता, ३. परिभाषा के अभाव में वर्गीकरण नहीं हो सकता।

अभ्यास के लिये प्रश्न

प्रश्न १. वर्गीकरण का स्वरूप क्या है ? वर्गीकरण के विभिन्न प्रकारों की व्याख्या कीजिये।

प्रश्न २. निम्नलिखित की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिये—

(अ) परिभाषा द्वारा वर्गीकरण, (आ) उदाहरण द्वारा वर्गीकरण, (इ) सक्रम वर्गीकरण।

प्रश्न ३ विभाजन और वर्गीकरण की परिभाषा कीजिये। इनका परिभाषा से क्या सम्बन्ध है समझा कर लिखिये।

प्रश्न ४. वर्गीकरण के प्रमुख आधार क्या-क्या हैं ? उससे हमे वैज्ञानिक गवेषणा मे क्या सहायता मिलती है ?

प्रश्न ५. वैज्ञानिक वर्गीकरण का स्वरूप समझाइये और उसके नियमो तथा सीमाओं को समझाइये। (यू० पी० बोर्ड १९६६)

प्रश्न ६ वर्गीकरण के लाभ तथा नियमो को सक्षेप मे लिखिये। वर्गीकरण का तार्किक विभाजन तथा परिभाषा से क्या सम्बन्ध है ? (यू० पी० बोर्ड १९६८)

प्रश्न ७. वैज्ञानिक वर्गीकरण किसे कहते हैं ? विभाजन से इसका अन्तर समझाइये। (यू० पी० बोर्ड १९५९)

प्रश्न ८. वर्गीकरण का स्वरूप क्या है ? तार्किक विभाजन वर्गीकरण से किस प्रकार भिन्न है ?

३२

शब्दीकरण और नामकरण

(TERMINOLOGY & NOMENCLATURE)

नाम मे क्या है ? इस फूल को आप गुलाव क्यो कहते है और उस पशु को गाय क्यो कहा जाता है ? गुलाब और गाय शब्दों से आपको क्या लाभ होता है ? चमेली के फूल को किसी भी नाम से पुकारिये. वह मीठी ही खुशबू देगा, फिर नाम का फूल से क्या सम्बन्ध है ? तर्कशास्त्र मे शब्दीकरण और नामकरण के परस्पर सम्बन्ध और आगमन मे इनकी उपयोगिता पर विचार किया जाता है। भापा का विचारो से घनिष्ठ सम्बन्ध है। भापा के अभाव मे विचार नही हो सकते भापा के माध्यम से विचार व्यक्त किए जाते है। भाषा के द्वारा विचार परम्परागत रूप मे एक पीढी से दूसरी पीढी को दिये जाते है। समृद्ध भाषा वह मानी जाती है जिसमे भिन्न-भिन्न क्रियाओ के लिये भिन्न-भिन्न शब्द पाए जाते है। अस्तु विकासमान भापाओ मे नई-नई क्रियाओ के लिये बराबर नए नए क्षेत्र खुलते रहे है और नए नए विज्ञानो का प्रादुर्भाव होता रहा है। इन विज्ञानो मे नई नई वस्तुओ, उनके गुणो और प्रक्रियाओ की खोज होती रही है। इनमे से प्रत्येक का सकेत करने के लिये नए नए शब्द गढे जाते रहे है और पारिभापिक पदावली की यह रचना कभी भी नही रुकती। भारत को ही लीजिए तो हिन्दी साहित्य के सैकडो सालो के विकास के बावजूद भी आजकल बराबर नए नए पारिभापिक शब्दो की रचना की जा रही है क्योकि पाश्चात्य वैज्ञानिक साहित्य को हिन्दी भाषा मे उपलब्ध करने के लिये यह आवश्यक है।

इस दृष्टि से सस्कृत भापा बहुत समृद्ध मानी जाती रही है। उसमे किसी भी बात को व्यक्त करने की अनन्त शक्ति है। उसमे विभिन्न सवेगो, अनुभूतियो, परिस्थितियो और घटनाओं का सजीव चित्र खीचा जा सकता है। इसी प्रकार अग्रेजी भापा भी बहुत समृद्ध भाषा मानी जाती रही है क्योकि इस भापा मे विशाल वज्ञानिक साहित्य की रचना की गई है।

शब्दीकरण क्या है ?

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रत्येक समृद्ध भाषा मे पारिभाषिक पदावली की भरमार होती है। यह शब्दीकरण अथवा पारिभापिक पदावली क्या है ? शब्दीकरण वस्तुओ के अवयवो, गुणो और क्रिया प्रक्रियाओ के वर्णन के लिये निश्चित नामो का समूह है। स्पष्ट है कि शब्दीकरण सामान्य पदावली से भिन्न है। लौकिक पदावली मे वस्तुओ के विभिन्न भागो और क्रियाओ के लिये निश्चित और एक दूसरे से भिन्न शब्दो का प्रयोग नही किया जाता। दूसरी ओर वैज्ञानिक पदावली मे प्रत्येक वस्तु, उसके भाग, गुण और क्रिया के लिये निश्चित और भिन्न

शब्दों की आवश्यकता होती है। ऐसा न होने पर विचार मे गडबड़ी हो जाती है और विज्ञान का प्रयोजन सिद्ध नही होता। शब्दीकरण वैज्ञानिक पदावली है। उसमें कोई भी नई वस्तु, गुण अथवा क्रिया स्पष्ट होने के साथ उसके लिये नवीन शब्द की रचना की जाती है। संक्षेप मे, शब्दीकरण मे निम्नलिखित प्रकार के शब्दो का समावेश किया जाता है—

(१) **विभिन्न अवयवों के लिये शब्द**—जैसाकि पीछे बतलाया जा चुका है, विभिन्न विज्ञानो मे विभिन्न वस्तुओ के विभिन्न अवयवों के लिये भिन्न-भिन्न शब्दो का प्रयोग किया जाता है जैसे पौधे मे जड, तना, शाखे, डण्ठले, पत्तियाँ, फल, फूल, पराग आदि पाये जाते है। इसी प्रकार पशु शरीर मे हाथ पैर, सिर, आँख, कान, नाक, हृदय, स्नायु, गुर्दा, तिल्ली इत्यादि विभिन्न अवयवो के विभिन्न नाम पाये जाते है। इसी प्रकार विभिन्न भौतिक और सामाजिक विज्ञानो मे विभिन्न वस्तुओ के विभिन्न अगों का सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है और प्रत्येक अवयव को भिन्न नाम दिया गया है। जब कभी किसी वस्तु मे कोई नया अवयव पता लगता है तो तुरन्त शब्दीकरण के द्वारा उसको नया नाम दिया जाता है।

(२) **विभिन्न गुणों के लिये नाम**—विभिन्न वस्तुओ मे भिन्न-भिन्न गुण पाए जाते है। शब्दीकरण की प्रक्रिया मे इन गुणो को अलग-अलग नाम दिये जाते है जैसे स्वाद खट्टा, मीठा, तीता आदि अनेक प्रकार का होता है। इसी प्रकार अनेक प्रकार के रग और आकार पाये जाते है। विभिन्न विज्ञानो मे विभिन्न वस्तुओ के गुणो में सूक्ष्म विश्लेषण करके उनको अलग-अलग नाम दिये गये हैं।

(३) **क्रियाओं और प्रक्रियाओं के नाम**—विभिन्न वस्तुओ मे अनेक प्रकार की क्रिया प्रक्रियायें पाई जाती है। शब्दीकरण की प्रक्रिया में इनके लिये अलग-अलग शब्दो का प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के लिये मानव शरीर मे रक्त सचार, पाचन, श्वसन, आकर्षण, प्रतिरोध, गति इत्यादि अनेक प्रकार की क्रियायें देखी जाती हैं।

पारिभाषिक शब्दावली मे आने वाले विभिन्न प्रकार के नामों के समूह के उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि शब्दीकरण से तात्पर्य वस्तुओ के गुणों, अवयवो, क्रियाओ और प्रक्रियाओ का वर्णन करना है।

नामकरण

वैज्ञानिक दृष्टि से नामो का उपयोग परोक्ष और प्रत्यक्ष दोनो रूपों मे देखा जाता है। परोक्ष रूप मे नाम विचार का साधन है। उससे विचार क्रिया संक्षिप्त हो जाती है। उसके द्वारा विचार को दूसरो पर प्रकट किया जा सकता है अथवा स्मृति मे रक्खा जा सकता है। अनेक नाम ऐसे है जो बडे जटिल विचारो को अभिव्यक्त करते है जैसे सस्कृति ही को लीजिये तो यह विचारो और अनुभूतियों तथा भावात्मक लगावो को सामूहिक रूप से अभिव्यक्त करने वाला एक शब्द है जिसकी व्याख्या करने के लिये बडे-बड़े ग्रन्थ लिखे जाते है। इस शब्द के अभाव मे ज्ञान के इस क्षेत्र की विवेचना नही की जा सकती थी। नामो का प्रत्यक्ष वाक्य सामान्य वाक्य बनाने मे दिखलाई पडता है। नामो की सहायता से सामान्य वाक्य बनाये जाते है और उनको सुरक्षित रखा जाता है। नाम के रूप में मानव जाति के हजारो साल के सामूहिक अनुभव सुरक्षित रहते है। नाम हजारो सालों के परिवर्तनो से बनते है। नामो के द्वारा ही तुलना के परिणाम और नियम लिपिबद्ध किये जाते

है । किन्तु विज्ञान के क्षेत्र मे नामकरण सामान्य नाम से भिन्न है । वैज्ञानिक नामकरण के लिये यह आवश्यक है कि प्रत्येक महत्वपूर्ण वात को प्रकट करने के लिये एक ही नाम हो और प्रत्येक नाम का एक निश्चित अर्थ हो ।

नामकरण क्या है ?

नाम के उपरोक्त विवेचन से नामकरण का अर्थ स्पष्ट होता है । नामकरण अथवा नाममाला, वस्तुओ के सब वर्गो के लिये उन नामो का समूह है जो प्रत्येक विज्ञान की आवश्यकता के अनुसार वन जाते है । अग्रेजी के शव्द Nomenclature का प्रयोग नामो के समूह और नामकरण की प्रक्रिया दोनों के लिये किया गया है । इस शव्द का हिन्दी अनुवाद करने के नामो मे समूह के अर्थ मे इसे नाममाला और नाम देने की क्रिया के अर्थ मे नामकरण कहा जाना चाहिये । इसी प्रकार पारिभाषिक शव्दावली Terminology शव्द का इस अर्थ मे पर्याय है कि वह पारिभाषिक शव्दो का समूह है । दूसरी ओर इस प्रकार के शव्द वनाने की प्रक्रिया के रूप मे उसे शव्दीकरण कहा जा सकता है ।

शव्दीकरण और नामकरण

शव्दीकरण और नामकरण की उपरोक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि जवकि नामकरण वस्तुओ की जाति वतलाने वाले शव्दो का समूह है, शव्दीकरण वस्तुओ के अवयवो, गुणो और क्रियाओ का वर्णन करने वाले शव्दो का समूह है । इस प्रकार ये दोनो ही नामो के समूह है । जवकि न्यायमाला मे वस्तुओ के वर्गो के नाम आते है पारिभाषिक पदावली मे विभिन्न वस्तुओ के अवयवो, गुणो और क्रियाओ के नाम आते है । विज्ञान मे इन दोनो की ही आवश्यकता पडती है क्योकि वैज्ञानिक भाषा के लिये जहाँ यह आवश्यक है कि प्रत्येक महत्वपूर्ण अर्थ को प्रकट करने के लिये एक नाम हो वहाँ यह भी आवश्यक है कि प्रत्येक सामान्य नाम का निश्चित और स्थिर अर्थ हो । ऐसा न होने पर भिन्न-भिन्न व्यक्ति एक ही नाम का भिन्न-भिन्न अर्थ लगायेगे जिससे विचार अथवा विवाद मे वैज्ञानिकता न आ सकेगी। अस्तु, नामकरण और शव्दीकरण मे घनिष्ठ सम्वन्ध है । नामकरण से वस्तुओ का वर्गीकरण होता है । वर्गीकरण के वाद उनको अवयवो, गुणो अथवा क्रियाओ की दृष्टि से अलग-अलग वर्गो मे बाँटा जा सकता है । नाममाला मे वर्ग और उपवर्ग के नाम आते है । इनकी सख्या इतनी अधिक है कि प्रत्येक का नाम रखना लगभग असम्भव है । उदाहरण के लिये अकेले पौधो के ही अव तक ज्ञात वर्गो की सख्या साठ हजार से भी अधिक है और यदि इनके उपवर्गो की गणना की जाये तो वह कई लाख बैठेगी । स्पष्ट है कि इन सवके लिये अलग-अलग शव्द रचना करना असम्भव है । इसके लिये कुछ विज्ञानो मे द्विसज्ञक विधि (Binary method) अपनाई गई है जिसमे वनस्पति, जीव अथवा रसायन का दोहरा नाम रखा जाता है जिसमे से एक जाति का वोधक होता है और दूसरा विशेषण का वोधक होता है । रसायनशास्त्र मे यौगिको के लिये दोहरा नाम होता है जो उनकी रचना को वतलाता है ।

उपरोक्त घनिष्ठ सम्वन्ध के वावजूद भी शव्दीकरण और नामकरण मे महत्वपूर्ण अन्तर पाया जाता है । उदाहरण के लिये जवकि वर्गीकरण के अभाव मे नामकरण होना सम्भव नही है, शव्दीकरण के लिये वर्गीकरण आवश्यक नही है । विभिन्न वस्तुओ के अवयवो, गुणो और क्रियाओ के नाम वर्गीकरण के बिना भी

रखे जा सकते है । दूसरी ओर, भिन्न-भिन्न वस्तुओ की जातियों को अलग-अलग किए विना नामकरण सम्भव नही है। उदाहरण के लिये रसायनशास्त्र अथवा वनस्पतिशास्त्र मे विभिन्न रसायनो अथवा वनस्पतियों को वर्गो और उपवर्गों मे विभाजित करके ही नामकरण किया जा सकता है ।

नामकरण और शब्दीकरण

वैज्ञानिक विवेचन के लिये नामकरण और शब्दीकरण दोनों आवश्यक है। दोनों ही समान रूप से शब्दो की व्यवस्थायें हैं। कई बार कुछ नाम किसी एक विज्ञान में नामकरण माने जाते है जबकि दूसरे विज्ञान मे शब्दीकरण मे गिने जाते है। उदाहरण के लिये शरीर रचनाशास्त्र मे अस्थियाँ और अग नामकरण मे गिने जाते हैं जबकि जीवशास्त्र मे इनकी गणना शब्दीकरण में होती है। वैज्ञानिक भाषा के विकास मे इन दोनो का ही विकास आवश्यक है। इसलिये इन दोनों की शर्ते वैज्ञानिक भाषा की शर्ते है। वैज्ञानिक भाषा के विकास मे दो बातें आवश्यक मानी जाती है पहली यह है कि उसमे प्रत्येक आवश्यक अर्थ को सही सही अभिव्यक्त करने के लिये उपयुक्त शब्द होना चाहिये और दूसरी यह है कि उसमे प्रयोग किये जाने वाले प्रत्येक शब्द या नाम का अर्थ निश्चित होना चाहिये। इनमें से पहली शर्त शब्दीकरण के द्वारा और दूसरी शर्त नामकरण के द्वारा पूरी होती है। समृद्ध विज्ञानो मे न केवल प्रत्येक वर्ग और उपवर्ग के लिये पृथक शब्दों का प्रयोग किया जाता है किन्तु विभिन्न वस्तुओ के अवयवो, गुणो और क्रियाओं को भी अलग-अलग नाम दिये जाते हैं। इसको समझने के लिये जीवशास्त्र, रसायनशास्त्र अथवा वनस्पतिशास्त्र किसी से भी उदाहरण दिये जा सकते हैं। इस प्रकार समृद्ध विज्ञान में शब्दीकरण और नामकरण दोनों होते है।

नामकरण तुरन्त नही हो सकता । बहुधा इसका क्रमश: विकास होता है। विभिन्न शब्दों का वर्तमान अर्थ लम्बेकाल मे विकास होकर निश्चित हुआ है। शब्द का अर्थ दो प्रकार मे बनता है एक तो उसके गुणार्थ मे आकस्मिक परिवर्तन होता है और दूसरे उसे नई-नई वस्तुओं के लिये प्रयोग किया जाने लगता है। इन दोनो ही कारणो से शब्दो के अर्थ बदलते रहते है। अर्थ बदलने की प्रक्रिया सामान्यीकरण (Generalisation) अर्थात शब्द के बढ़ने से और विशिष्टीकरण (Specialisation) अर्थात शब्द के मूल निर्देश के घटने से देखी जा सकती हैं। पहले का उदाहरण अग्रेजी का Oil शब्द है जिसका प्रयोग प्रारम्भ मे केवल जैतून के तेल के लिये किया जाता था। क्रमश. इसका प्रयोग अन्य प्रकार के तेलों के लिये भी किया जाने लगा। इसी प्रकार Salt शब्द प्रारम्भ मे समुद्री नमक के लिये इस्तेमाल किया जाता था बाद मे इसको कैल्शियम कार्बोनेट, सोडियम कार्बोनेट, पोटेशियम नाइट्रेट इत्यादि अनेक प्रकार की चीजो के लिये प्रयोग किया जाने लगा। विशिष्टीकरण का उदाहरण अग्रेजी के Story शब्द मे देखा जा सकता है जिसका प्रयोग पहले सच्ची अथवा काल्पनिक दोनो प्रकार की घटनाओ के वृतान्त के लिये किया जाता था। अब इसका अर्थ घटाकर केवल असत्य वृतान्त के लिये ही प्रयोग किया जाता है विभिन्न भाषाओ मे ऐसे बहुत से शब्द देखे जा सकते है जिनके अर्थ सामान्यीकरण अथवा विशिष्टीकरण की प्रक्रिया से बढ़ते घटते रहे है। अन्त मे यह ध्यान रखना आवश्यक है कि शब्दीकरण और नामकरण की प्रक्रिया मे शब्द एकार्थक और अर्थपूर्ण होने चाहिये जिससे कि विभिन्न शब्दों से भिन्न-भिन्न बातो को अभिव्यक्त किया जा सके।

सारांश

विज्ञान के किसी भी क्षेत्र में निष्कर्षो को अभिव्यक्त करने के लिये समृद्ध भाषा की आवश्यकता होती है । समृद्ध भाषा में विभिन्न जाति की वस्तुओ के लिये अलग अलग नाम और इन वस्तुओं तथा उनके गुणों और त्रियाओ के लिये अलग अलग शब्दो की आवश्यकता होती है । वस्तुओ के विभिन्न भागो, गुणो और क्रियाओ के लिये शब्द निश्चित करना शब्दीकरण कहलाता है । शब्दीकरण में विभिन्न अवयवों के विभिन्न गुणो के लिये नाम और क्रिया और प्रक्रियाओं के नाम सम्मिलित है । वस्तुओं के विभिन्न वर्गो के लिये रक्खे जाने वाले नाम नामकरण में आते हैं । इस प्रकार शब्दीकरण और नामकरण दोनों घनिष्ठ रूप में सम्बन्धित है । किन्तु जबकि वर्गीकरण के अभाव में नामकरण नही होता, शब्दीकरण के लिये वर्गीकरण आवश्यक नहीं है । वैज्ञानिक आगमन में नामकरण और शब्दीकरण दोनों ही आवश्यक है । इन दोनों का ही क्रमशःविकास होता है। इनमें यह ध्यान रखना आवश्यक है कि शब्द एकार्थक और अर्थपूर्ण हों जिससे कि भिन्न-भिन्न शब्दों से भिन्न-भिन्न भाव अभिव्यक्त हो सकें ।

अभ्यास के लिये प्रश्न

प्रश्न १. शब्दीकरण और नामकरण का अन्तर समझाइये और वताइये कि आगमन मे उनका क्या महत्व है ? (यू० पी० वोर्ड १९५९)

३३

निगमनात्मक तर्क में आने वाले दोष

(FALLACIES INCIDENTAL TO DEDUCTIVE REASONING)

तर्कशास्त्र मे अनुमान की प्रक्रिया दो प्रकार से काम करती है आगमन और निगमन। आगमन मे विशेष तर्क वाक्यों मे सामान्य निष्कर्ष निकाला जाता है। निगमन मे सामान्य तर्कवाक्य मे विशेष निष्कर्ष निकाला जाता है। इन दोनों प्रक्रियाओं मे तर्कशास्त्र के कुछ नियमो का पालन करना पडता है। उदाहरण के लिये परिभाषा, वर्गीकरण, व्याख्या, नामकरण, शब्दीकरण, निरीक्षण इत्यादि अनेक तार्किक प्रक्रियाओ के कुछ नियम होते हैं जिन नियमो को पालन किए विना ये प्रक्रियाये तार्किक रूप से सिद्ध नहीं हो सकती। तर्कशास्त्र के विभिन्न क्षेत्रो मे तार्किक नियमो का उल्लघन करना तार्किक दोष कहलाता है। तार्किक प्रक्रियाओ के अनुरूप ये दोष दो प्रकार के होते है—निगमनात्मक दोष और आगमनात्मक दोष। प्रस्तुत अध्याय मे निगमनात्मक दोषो की चर्चा की जायेगी।

निगमन के दोष

तर्कशास्त्रियो ने निगमन की प्रक्रिया मे निम्नलिखित दो प्रकार के दोष माने है—अनुमान के आकार विषयक दोष और अर्थ तार्किक दोष।

(अ) **अनुमान के आकार विषयक दोष**—इनमे, जैसाकि इनके नाम से स्पष्ट है, अनुमान के आकार से सम्बन्धित दोष आते है। आकार की दृष्टि से अनुमान दो प्रकार का होता है—सान्तरानुमान और अनन्तरानुमान। अस्तु, अनुमान के आकार विषयक दोष निम्नलिखित दो वर्गो मे वाटे जा सकते है।

(१) **अनन्तरानुमान दोष**—पीछे अनन्तरानुमान के प्रकरण मे नौ प्रकार के अनन्तरानुमान वतलाये गये है—परिवर्तन, प्रतिवर्तन, परिवर्तित प्रतिवर्तन, विपर्यय, विरोध, सम्बन्ध रूपान्तर, विवेचन पूर्व अनुमान, विश्लेषण सयोजनात्मक अनुमान और मिश्र विचाराश्रित अनुमान। अनन्तरानुमान के इन प्रकारो मे तर्कशास्त्र के नियमो का पालन न करने से तर्क सम्बन्धी दोष होते है। इन दोषो का विवरण पीछे अनन्तरानुमान के प्रकरण मे दिया जा चुका है।

(२) **सान्तरानुमान के दोष**—सान्तरानुमान मे शुद्ध और मिश्रित न्याय और न्याय मालाये सम्मिलित है। इसमे न्याय के सामान्य नियम, हेतुफलाश्रित निरपेक्ष न्याय के नियम, उभयतोपाश के नियम और अनुलोम तथा विलोम न्याय मालाओं के नियमों का पालन करना आवश्यक है। इन नियमो का और इनके उल्लघन से होने वाले दोषो का पीछे इन विषयो से सम्बन्धित अध्यायो मे वर्णन किया जा चुका है।

(ब) **अर्धतार्किक दोष**—अर्धतार्किक दोष वे है जिनमे भाषा का अनुचित प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार के दोषो मे मुख्य निम्नलिखित है—

(१) **अनेकार्थकता दोष** (Fallacy of Equivoction)—पीछे बतलाया जा चुका है कि प्रत्येक न्याय मे तीन पद होते है दीर्घ, ह्रस्व और निष्कर्ष पद अथवा मध्यम पद। इनमे से किसी भी पद को एक से अधिक अर्थो मे प्रयोग करने से अनेकार्थक दोप उत्पन्न होता है। जिस पद को अनेक अर्थ मे प्रयोग किया जाता है वह भ्रामक हो जाता है। इस प्रकार अनेकार्थकता दोप तीन प्रकार का हो सकता है भ्रामक दीर्घ पद दोप, भ्रामक ह्रस्व पद दोप और भ्रामक मध्यम पद दोप। इन दोषो का विवरण आगे तार्किक दोषो के उदाहरणो मे दिया गया है।

(२) **आलंकारिता दोष** (Fallacy of Figure of Speech)—यह अर्ध तार्किक दोष तब होता है जब कि समान धातु मे निकले हुए समान रूप किन्तु भिन्न अर्थ रखने वाले शब्दो को एक ही अर्थ मे प्रयोग किया जाता है। इस दोप के उदाहरण भी आगे दिये गये है।

(३) **उपाधि भेद दोष** (Fallacy of Accident)—इस अर्ध तार्किक दोष मे मध्यम पद को एक आधार वाक्य मे बिना उपाधि और दूसरे आधार वाक्य मे उपाधि सहित ग्रहण किया जाता है। यह दोप तब भी होता है जब कि मध्यम पद को दो आधार वाक्यो मे अलग अलग उपाधियो से युक्त किया जाता है। उदाहरण के लिये—

जो कुछ हम खाते है वह खेत मे पैदा होता है।
हम डबल रोटी और बिस्कुट खाते है।
डबल रोटी और बिस्कुट खेत मे पैदा होते हैं।

(४) **भ्रामक रचना दोष** (Fallacy of Amphibology)—यह दोप, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, वाक्य की भ्रमपूर्ण रचना के कारण उत्पन्न होता है। भ्रमपूर्ण रचना तब होती है जब एक ही वाक्य को दो प्रकार से रखा जा सकता है और इसलिए उसके दो अर्थ हो सकते है। उदाहरण के लिये भागो मत, जाने दो इसको इस प्रकार भी लिखा जा सकता है भागो, मत जाने दो। इससे अर्थ बदल जाता है जो कि भ्रामक रचना के कारण है।

(५) **भ्रामकोच्चारण दोष** (Fallacy of Accent)—यह दोष तब होता है जब कि किसी वाक्य मे किसी एक शब्द या शब्दो पर अनुचित जोर दिया जाये। उदाहरण के लिए मै अपने सम्बन्धी के विरुद्ध मुकद्दमा नही चलाऊँगा इस वाक्य मे सम्बन्धी पर जोर देने से यह अर्थ निकलता है कि सम्बन्धी के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियो पर मुकद्दमा चलाया जा सकता है। दूसरी ओर यदि विरुद्ध शब्द पर जोर दिया जाये तो इसका अर्थ बदला जा सकता है अर्थात् सम्बन्धी के पक्ष मे मुकद्दमा चलाया जा सकता है विरुद्ध नही चलाया जा सकता।

(६) **विग्रह दोष** (Fallacy of Division)—यह दोप तब होता है जब कि जो बात किसी समुदाय के विपय मे सामूहिक रूप से सत्य हो उसे उस समुदाय के भिन्न-भिन्न व्यक्तियो या पदार्थो के विपय मे सत्य मान लिया जाये। उदाहरण के लिये राजस्थान के निवासी अकाल से पीड़ित है इसमे यह निप्कर्ष निकालने मे विग्रह दोप होगा कि मोहनलाल सुखाडिया अकाल मे पीडित है।

(७) **संग्रह दोष** (Fallacy of Composition)—यह दोप तब होता है

जब कि जो बात अलग-अलग व्यक्तियो या वस्तुओ के विषय मे सत्य है उसको समूह के विषय मे सत्य मान लिया जाये। इसका प्रसिद्ध उदाहरण पाश्चात्य नीतिशास्त्र मे सुखवादी और उपयोगितावादी सिद्धान्त से मिलता है। उपयोगिता-वादी दार्शनिक मिल ने इस तथ्य से कि प्रत्येक व्यक्ति का सुख उसके लिये शुभ है यह निष्कर्ष निकाला है कि सब का सुख सबके लिये शुभ है। इस दोषपूर्ण तर्क के लिये मैकेन्जी ने ठीक ही लिखा है कि सुखो का समूह मनुष्य नही है। इसी तरह सुखवादी दार्शनिको ने विभिन्न मनुष्यो का निरीक्षण करके और यह देखकर कि अ, ब, स, द अपने अपने सुख चाहते हैं यह निष्कर्ष निकाला है कि सभी मनुष्य सुख चाहते है। यह तर्क अनुचित है।

सारांश

निगमन के मुख्य दोषों के प्रकार है—(अ) अनुमान के आकार विषयक दोष—१. अनन्तरानुमान के दोष, २. सान्तरानुमान के दोष, (ब) अर्धतार्किक दोष, १. अनेकार्थकता दोष, २. आलंकारिता दोष, ३. उपाधिभेद दोष, ४. भ्रामक रचना दोष, ५. भ्रामकोच्चारण दोष, ६. विग्रह दोष और ७ संग्रह दोष।

अभ्यास के लिये प्रश्न

प्रश्न १ निम्नलिखित न्याय वाक्यो मे किन नियमो का उल्लघन हुआ है? उनमे किये गये तर्क दोषो की पहचानिये —

(अ) सभी कुत्ते स्तनपायी हैं
कोई बिल्लियाँ कुत्ते नही हैं
अत. कोई बिल्लियाँ स्तनपायी नही है।

(ब) सभी पाठ्य-पुस्तकें गम्भीर अध्ययन की पुस्तके है
कुछ सन्दर्भ-पुस्तकें गम्भीर अध्ययन की पुस्तके हैं
अत. कुछ सन्दर्भ-पुस्तकें पाठ्य-पुस्तकें है। (मेरठ १९७८)

प्रश्न २. निम्नलिखित युक्तियो की परीक्षा कीजिये और यदि उनमे कोई तर्क दोष हो तो बताइये तथा अपने उत्तर के पक्ष मे तर्क दीजिये :—

(क) प्रधान मन्त्री को बदनामी की हवा कभी नही लगी है। अत प्रधान मन्त्री इतना ईमानदार है कि उसे भ्रष्ट नही किया जा सकता।

(ख) सेना बुरी तरह से अयोग्य है। अत' मेजर वर्मा योग्यता पूर्वक अपना कार्य कर सकते हैं, इसकी आशा हम नही कर सकते।

(ग) रसोइये पीढ़ियो से भोजन पका रहे हैं। अत हमारा रसोइया वस्तुत पाक-विशेषज्ञ होगा। (गोरखपुर १९७७)

३४
प्रसम्भाव्यता
(PROBABILITY)

प्रकृति मे अनेक घटनाओं के विषय मे निश्चित रूप से कार्यकारण सम्बन्ध की खोज नही की जा सकती क्योकि इन घटनाओ मे अनेक कार्य-कारण इस कदर उलझे हुये होते है कि उनको अलग-अलग करके यह निश्चित करना सम्भव नही होता कि कौनसा कारण किस कार्य के लिये उत्तरदायी है। ऐसी स्थिति मे कारण के विषय मे सम्भावना मात्र बतलाई जा सकती है। अस्तु, अनेक कारणो वाली घटनाओ मे आगमन मे प्रसम्भाव्यता के सिद्धान्त से काम लिया जाता है। जैसा कि पीछे बतलाया जा चुका है, इस सिद्धान्त का उपयोग उन परिस्थितियो मे किया जाता है जिनमे कारण के विषय मे अन्तिम निष्कर्ष प्राप्त नही किये जा सकते। प्रसम्भाव्यता के सिद्धान्त से यह बतलाया जाता है कि इस या उस कारण की तुलना मे अमुक कारण का होना अधिक सम्भव है। प्रसम्भाव्यता का अर्थ यह नही है कि कारण अनुपस्थित है बल्कि केवल यह है कि कार्य कारण सम्बन्ध के विषय मे निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता। प्रसम्भाव्यता कोरा सयोग मात्र नही होती क्योंकि उसमे विशिष्ट घटनाओ मे सम्बन्ध निश्चित होता है। अस्तु, प्रसम्भाव्यता का अर्थ घटना दैवयोग (chance) से या अकस्मात होना नही है। सयोग या दैवयोग की बात तो तभी की जाती है जब कि कारण सम्बन्ध का ज्ञान ही न हो।

संयोग क्या है ?

यहाँ पर प्रसम्भाव्यता को समझने के लिये सयोग (chance) के प्रत्यय को अधिक स्पष्ट करना आवश्यक है। सयोग का अर्थ यह नही है कि किसी घटना का कोई कारण ही नही है। दूसरे शब्दो मे, जब हम यह कह सकते है कि अमुक घटना संयोग या दैवयोग से हुई है तो हमारा तात्पर्य यह नही होता कि वह अकारण ही है बल्कि यह होता है कि उसका कारण हमे ज्ञात नही है। प्रकृति मे सब कही कार्यकारण सम्बन्ध की अनिवार्यता का सिद्धान्त विज्ञान की मूल मान्यता है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से संसार मे जहाँ कही भी कोई घटना होती है तो उसका कोई न कोई कारण भी अवश्य होता है भले ही यह कारण हमे ज्ञात न हो। एक स्थान पर अनेक कारण क्यो एकत्रित हो जाते है इसके विषय मे कोई विशेष सिद्धान्त स्थापित न हो सकने के कारण इसको सयोग कहा जाता है। उदाहरण के लिये पासे के खेल मे यदि कोई सख्या अनेक बार ऊपर आ जाती है तो ऐसा दैवयोग से ही माना जाता है। यदि बीस बार पासा फेकने से छ की सख्या पॉच बार ऊपर आयी है तो इससे यह नियम नही बनाया जा सकता कि आगे भी बीस बार पासा फेकने पर ही छ: की सख्या अवश्य ही पॉच बार ऊपर आयेगी। यदि बीस बार